ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

•

प्रथम संस्करण
१९६०
मूल्य आठ रुपये

•

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

अग्रजों एवं साथियोंको

जिनकी पगडंडियोंके कलेजोंमें
समीक्षाके प्रशस्त पथकी
अँगड़ाइयाँ
उभर-उभर उठती हैं

-सुमन-

व्याख्या-भाग

आये हो कल और आज ही कहते हो, कि जाऊँ,
माना कि हमेश. नहीं अच्छा, कोई दिन और।
जाते हुए कहते हो, कयामतको मिलेंगे,
क्या ख़ूब, क़यामतका है गोया कोई दिन और।
नादाँ हो, जो कहते हो, कि क्यो जीते हो 'गालिब',
किस्मत है मरनेकी तमन्ना कोई दिन और।

रदीफ़ 'ज़े' :

[३७]

क्योकर उस बुतसे रखूँ जान अज़ीज़,
क्या नहीं है मुझे ईमान अज़ीज़ ?
दिलसे निकला प न निकला दिलसे,
है तेरे तीरका पैकान[1] अज़ीब।

[३८]

नै गुले नग्म[2] हूँ, न पर्दए साज़[3],
मैं हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज़[4]।
तू. और आराइशे ख़मे काकुल[5]
मै, और अन्देशहाय दूरो-दराज़[6]।

---

१ नोक, २ सगीत-पुष्प, ३ बाजेका पर्दा जिसमे सुर निकलते है, ४ पराजयकी वाणी, ५ कुचित अलकोका शृगार, ६ दूर-दूरकी शकाएँ।

दो शब्द

मिर्जा या मीरज़ा गालिब उर्दू काव्यके सबसे अधिक विवादास्पद कवि हैं। उनके जीवन-कालमें कुछने उनपर फब्तियाँ कसीं, कुछने श्रद्धासे उनके आगे सिर झुकाया। आजतक यही हाल है। कुछ कहते हैं, उर्दू क्या, किसी भारतीय भाषामें उनकी समता नहीं, कुछ उन्हें दुर्बल अनुभूतियाँ लेकर कल्पनाके गगनमें उड़नेवाला एक सामान्य कवि मानते हैं।

जो हो, गालिबकी हस्तीमें एक कशिश है। विरोध करो या अपनाओ, पर उसे छोड़ नहीं सकते। इसीलिए गालिबपर इतना लिखा गया है और इतने प्रकारसे लिखा गया है कि वह एक भूल-भुलैया बनकर रह गया है। पाठक समझ नहीं पाता, उलटे उलझकर रह जाता है।

हिन्दीमें भी उनका दीवान, दो एक जगहसे निकला है—सभाष्य भी और मूल रूपमें भी। पर एक भी उनके बहुरंगी व्यक्तित्वको स्पष्ट नहीं करता। उनमें अशुद्धियाँ भी हैं। उनके दीवानके एक अच्छे भाष्यकी आवश्यकता आज भी है। गालिबका सम्पूर्ण काव्य भी हिन्दीमें नहीं निकल पाया है।

इस पुस्तकमें ग़ालिबके काल, व्यक्तित्व, काव्य तथा उसकी मानसिक पृष्ठभूमिके साथ उनके काव्यके चुने हुए अंश दिये गये हैं। चुनाव करते समय उनके दीवानेतर काव्यका भी ध्यान रखा गया है। चेष्टा की गयी है कि ग़ालिबको तथा उनके काव्यको सर्वांगीण दृष्टिसे देखने-परखनेमें हम पाठकके लिए कुछ उपयोगी हो सकें।

बस इतना ही।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

दश्नःए ग़मज़ः[१] जाँसिताँ,[२] नावके नाज़ बेपनाह[३],
तेरा ही अक्से रुख़ सही, सामने तेरे आये क्यों ?
वाँ वह ग़ुरूरे इज़्ज़ोनाज़[४], याँ यह हिजाबे पासे वज़अ[५],
राहमें हम मिलें कहाँ, बज़्ममें[६] वह बुलाये क्यों ?

[६७]

मैंने कहा कि, बज़्मे नाज़ चाहिए ग़ैरसे, तिही[७],
सुनके सितम ज़रीफ़[८]ने मुझको उठा दिया, कि यों ।
मुझसे कहा जो यारने, जाते हैं होश किस तरह,
देखके मेरी बेख़ुदी, चलने लगी हवा, कि यों ।
गर तेरे दिलमें हो ख़याल, वस्लमें शौक़का ज़वाल[९],
मौज मुहीते आब[१०]में, मारे है दस्तो पा, कि यों ।

रदीफ़ 'वाव' :

[६८]

हसदसे दिल अगर अफ़सुर्दः[११] है गर्मे तमाशा हो,
कि चश्मे तंग[१२], शायद कसरते नज़्ज़ार:[१३] से वा हो ।

---

१ कटाक्ष-कटारी, २ प्राणलेवा, ३ गर्वपूर्ण सौन्दर्यका बाण जिससे रक्षा सम्भव नहीं, ४ अपनी शानका अभिमान, ५ अपनी परम्परा रखनेकी लज्जा, ६ मा'शूक़की महफ़िल, ७ रिक्त, ८ अत्याचारमें भी परिहास करनेवाला, ९ पतन, ह्रास, १० जलपरिधि, ११ खिन्न, १२ संकीर्ण नयन, १३ दृश्यके आधिक्य ।

कृतज्ञता-ज्ञापन

पुस्तक लिखनेमें निम्नलिखित पुस्तकों एवं पत्रिकाओंसे सहायता ली गयी है। लेखक इनके रचयिताओंके प्रति आभार प्रकट करता है।

१	अहवाले ग़ालिब	मुख़्तारुद्दीन अहमद
२	ज़िक्रे ग़ालिब	मालकराम
३	यादगारे ग़ालिब	हाली
४	ग़ालिब नाम	मुहम्मद इकराम
५	'ग़ालिब' लाइफ एण्ड क्रिटिकल एप्रीसियेशन आफ़ हिज उर्दू पोएट्री	सय्यद अब्दुल लतीफ़
६	नक़्दे ग़ालिब	मुख़्तारुद्दीन अहमद
७	फ़िल्सफ़ए कलामे ग़ालिब	शौकत सब्ज़वारी
८	नक़्शे आज़ाद	गुलाम रसूल मेह्र
९	मुहासिने कलामे ग़ालिब	अब्दुर्रहमान बिजनौरी
१०	ग़ालिबकी शाइरी	मिर्ज़ा अस्करी
११	उर्दू शाइरीपर एक नज़र	कलीमुद्दीन अहमद
१२	ग़ालिब	गुलाम रसूल मेह्र
१३	अरमुग़ाने ग़ालिब	इकराम
१४	इन्तख़ाबे ग़ालिब	मुमताज़ हुसैन
१५	तलामज़ए ग़ालिब	मालक राम
१६	दीवाने ग़ालिब	मालक राम
१७	दीवाने ग़ालिब	शफ़ीउद्दीन नैयर
१८	दीवाने ग़ालिब	वह्ह इलाहाबादी
१९	दीवाने ग़ालिब	आग़ा मुहम्मद ताहिर
२०	दीवाने ग़ालिब मय शरह	नज्म तबातबाई
२१.	मरातुल्ग़ालिब	बेख़ुद देहलवी
२२	दीवाने ग़ालिब मय शरह	जोश मलसियानी
२३.	बयाने ग़ालिब	आग़ा मुहम्मद बाक़र

२४.	मोमिन व गालिब	अजीज यार जग
२५	मुतालए गालिब	अमर लखनवी
२६	शरह कलामे गालिब	आसी
२७	सरगुजश्ते गालिब	सय्यद मुहीउद्दीन कादरी
२८	रूहे गालिब	सय्यद मुहीउद्दीन
२९	दीवाने गालिब उर्दू	इम्तियाज अली अर्शी
३०	दीवाने गालिब	सरदार जा'फ़ी
३१	दीवाने गालिब मुसव्विर	चगताई
३२	उर्दू ए मुअल्ला	गालिब
३३	ऊदे हिन्दी	गालिब
३४	अदबी खुतूते गालिब	मिर्ज़ा अस्करी
३५	नादिराते गालिब	आफाक हुसेन आफाक
३६	मकातीबे गालिब	इम्तियाज़ अली अर्शी
३७	आबे हयात	आज़ाद
३८	लाल किलअकी एक झलक	नासिर नजीर 'फिराक'
३९	देहलीका आखरी सांझ	हसन निजामी
४०	गदर देहलीकी सुवह शाम	हसन निज़ामी

हिन्दी पुस्तकें

४१	गालिब	दयाकृष्ण गजूर
४२	दीवाने गालिब	मुगनी अमरोहवी एव नूरनबी अब्बासी
४३	गालिवकी कविता	कृष्णदेव प्रसाद गौड़
४४	महाकवि गालिबकी गज़लें	रामानुज लाल श्रीवास्तव

पत्र-पत्रिकाएँ

अदब लतीफके विशेषाक
आजकलके विशेषाक एव सामान्य अक
नया दौरके कई अक

—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-तालिका

जीवन-भाग [१७–२०३]

१ ग़ालिब-जीवन-रेखा··· ··· ··· ··· १९–१७५

[उर्दू और दिल्ली, उर्दूका यौवन, आगराके दिन, वंश-परम्परा, दादा और पिता, ग़ालिबका जन्म और बचपन, शिक्षा, अब्दुस्समद ईरानीका प्रभाव, बौद्धिक वातावरण; नसीरका दूसरा रूप, काव्यकी गुप्तधारा, विवाह, आगरा और देहलीका अन्तर, प्रारम्भिक काव्य, फज़लहक़ खैराबादीका प्रभाव, काव्यपर आक्षेप, अर्थकष्टका आरम्भ, ग़ालिबकी मुसीबतें, झगड़ेका मूल, कलकत्ता जानेका निश्चय, लखनऊमें, अन्य स्थानोंकी यात्रा, बुतोंके नगर बनारसमें, बनारसकी गंगा एवं प्रभात, कलकत्ता, कलकत्ताकी साहित्यिक कुश्तियाँ, गुले राना, कलकत्ता-यात्राका परिणाम, ग़ालिबका दावा, लोहारूका झगड़ा, फ्रेज़रका कत्ल और शम्सुद्दीनखाँकी फाँसी, सीधी पेंशन और नया प्रार्थनापत्र, अन्तिम निर्णय, सलीम और ज़फ़र, लखनऊकी ओर दृष्टि 'मयख़ानए आर्ज़ू', प्रोफेसरीसे इन्कार, जुएकी लत, गिरफ्तारी, अज़ीज़ों और दोस्तोंकी तोताचश्मी, सज़ा, जेलमें, गहरा प्रभाव, क़िलेकी नौकरी, युवराजके गुरु, मोमिन एवं आरिफ़की मृत्यु, ज़ौक़से छेड़छाड़, चंदरोज़ा खुशहाली, बहादुर-शाह एवं ग़ालिब, एक रोज़ा नहीं, दुनियादारी एवं व्याव-

हारिकता, गदर, चोटपर चोट, हिन्दू मित्रोकी सहायता, मुसलमान हूँ पर आधा, मिर्जा यूसुफका अन्त, उस जमानेकी हालत, मिर्जाके दोस्तो एव परिचितोकी हालत, शेफ्ता, मुफ्ती सदरउद्दीन, मौ० फज्लहक, असीम कष्टोकी घटाएँ, रामपुरसे सम्बन्ध, पेंशनकी चिन्ता, रामपुरसे मासिक वृत्ति, रामपुरमे, पेंशनकी बहाली, खिलअतकी बहाली, नई दर्खास्त, नवाब यूसुफ द्वारा आदर, रामपुरकी दूसरी यात्रा, निराशा, प्रसिद्धि, शाहगौससे घनिष्ठता, उर्दू किस किताबकी अच्छी है ?, बुरहान कातअका सघर्ष, विरोधका ववण्डर, तेगेतेज़, विरोधका कारण, हगामए दिल आशोब, तेगेतेजतर, शमशीर तेजतर, शरीरका निरन्तर ह्रास, चर्मरोगसे कष्ट, लम्बी बीमारी, बिलग्रामीका चित्र, अजीज़ द्वारा लिखित विवरण, आर्थिक चिन्ताएँ, रामपुर दरबारसे निराशा, मृत्युकी आकाक्षा, वह करुणाजनक पत्र, अन्तकाल, अन्तिम क्रिया, पारिवारिक सुखके लिए तडपते ही रहे, पत्नी एव पोषित बच्चे, बाकरअली एव उनकी सतति, हुसेनअली, उमराव बेगम]

२. गालिबका जीवन रहन-सहन, स्वभाव और आचरण···१२६–१४२
[व्यक्तित्व, वस्त्र विन्यास और भोजन, निवास, नौकर, अध्ययन, पत्र-लेखन, काव्य-रचना, शिष्टता एव मित्र-परायणता, उदारता, आत्माभिमान, धार्मिक औदार्य, दूसरे कवियोंके प्रशसक, पारिवारिक जीवन, मौलिकता एव नवीनताके प्रति आकर्षण]

३. गालिब दाम्पत्य-जीवन १४३–१५६
[टकरानेके लिए मिलन, उमरावका बचपन, एक अन्तर, अपना सोचा कहाँ होता है ? दिलोके बीच खाई बढती गयी, दूसरी औरतका आकर्षण, उमरावकी गूढ वेदना, सन्तानके

असमायकी व्यथा, दूरी पैदा करनेवाली निराशा, गोलने हास्यके पीछे अपार वेदना, शोक-भार]

. ग़ालिबका जीवन : हाजिरजवाबी तथा व्यंग-विनोद-वृत्ति
१५७–१६८

[लखनऊ या दिल्लीकी जबान, पुल्लिंग या स्त्रीलिंग ? गोरेकी कैद बनाम गालेकी कैद, "आधा मुसलमान हूँ", बाकी दिन गिना गया ?, खुदा या आप ?, गाली देनेकी भी कला होती है, तुम गोदार्ड हो, शैतानकी खोपड़ी, आमों पर नाम, बेशक गधा नहीं खाता, पीटमें भी विनोद, शराबीको और क्या चाहिए ?, जाड़ेमें भी ?, बोसेमें नजात मिल गयी, वहाँ कौन पकड़ेगा ?, मेरे पीपलके पत्ते क्यों न खा लिये ?, चोलने घोसलेमें मांस कहाँ ?, शैतान ग़ालिब है !, कर्जकी शराब, पत्नी या फाँसीका फन्दा ?, मियाँ तोते ! तुम्हे क्या फिक्र है ?, आपसे बढ़कर भी बला है ?]

५ ग़ालिब-जीवन एवं काव्यकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ··· १६९–२०३

[साम्राज्योंकी श्मशान-भूमि, राजमार्गपर बढ़ते ब्रिटिश चरण, नैतिक विश्रृंखलता, बेन्जामीनएन साम्राज्य, अंग्रेजोंके संरक्षणमें, दिल्लीमें, अकल्पनीय यन्त्रणाओंका जीवन, अकबर द्वितीय, नवमे प्रिय पुत्र तथा भृत्यकी बढ़ती हुई शक्ति, अंग्रेजोंके साथ संघर्ष, बादशाहकी मर्यादाका सवाल, इंग्लैण्डके सम्राट्को स्मृतिपत्र, राजा राममोहन राय द्वारा बादशाहका प्रतिनिधित्व, नियतिका उलटा चक्र, हास्यजनक स्थिति, क़िलेकी हालत, सम्राट्की ऊपरसे भरी पर अन्दरसे खोखली जिन्दगी, कहानी ख़त्म हो गयी, ग़ालिबके जीवन-कालकी राजनीतिक स्थिति, सजा हुआ मुर्दा, मुग़लकालीन सामाजिक अवस्था, मुगलोंका पतन; रईस-

ज़ादोकी हालत, भ्रष्टाचार, काव्यका समादर एवं उर्दूका संरक्षण, आत्मरोदन, जन-जीवनके स्तर एवं उनकी झाँकी, निराशाका युग, चेतनाके दो रूप, अंग्रेज़ोंमें भी दो वर्ग, शाप या वरदान, इससे तो टूट जाना अच्छा, ऐतिहासिक आवश्यकता, सब दृष्टियोंसे भारतीयोंको समत्वका अधिकार देना अच्छा है, साम्प्रदायिक वैमनस्यका अभाव, वातायन जिससे जीवनकी वायुके झकोरे आते रहे, दो प्रवृत्तियाँ, सार्वभौमिकताके तीन प्रतिद्वन्द्वी, मराठा शक्तिकी त्रुटि, मराठा शक्तिका अन्त, आत्मगौरव और आत्मसुधारकी दो धाराएँ, उच्च वर्गोंमें शिक्षणका रूप, उर्दूका जन्म, नवीनका आकर्षण, आत्मवेदना ही नहीं, युग-वेदना भी, प्राचीनके बीच नवीनकी पकड़—यह थे ग़ालिब, विधवा-सी उपहासका साधन दिल्ली, मिटते प्राचीनमेंसे फूटता नवीन, ग़ालिबका कार्य, अंग्रेज़ोंको इन्कार करना ज़मानेको इन्कार करना होता ।]

समीक्षा-भाग [२०५–३५७]

१. ग़ालिब : मानसिक पृष्ठभूमि और मानवीय संवेदनाएँ २०७–२२६

[मानवकी वह बुभुक्षा और प्यास, अन्तर्विरोध व्यक्ति और युग दोनोंके अन्तर्विरोध हैं, अन्तर्विरोधोंको समतल करनेवाला तत्त्व, वह ज़माना !, खुशहालीके पीछे झाँकती यतीमी, निर्बाध जीवनकी डगरपर, स्थायी पतझड़का जीवन, जीवनकी प्यास, रोदनको मुसकराहटकी गोदमें उछालनेवाला इंसान, अर्शपर उछालनेवाला ग़म नहीं, वह ग़म भी नहीं जो कभी दूर न हो, दुनियासे मुहब्बत सिखानेवाला ग़म, मुग़लका रंग, यह अदम्य प्यास ही जीवनका उत्स और काव्यका प्राण है, जीवन गति है, ग़मोंको

चौसर खेलते हुए गम और हास्यके खेलने, यह विश्वास ही ग़ालिबका ऐश्वर्य है, जहाँ गम गम नहीं, सुखकी सीढ़ी है, ग़ालिब और मीरके मानसिक निर्माणमें अन्तर, ग़ालिबकी कुंजी, क्या उनको मालूम था जाम है ?, मानवी प्रेयसी, वातावरण और संगति, वासना ही जीवनका सत्य है, तीव्र आसक्तियोंके मूलमें एक अनासक्ति भी है, राहसे हटकर पर नवीनका स्वागत करनेको उत्सुक, एक मानवमें अनेक मानव ।]

२. ग़ालिबके काव्यमें दर्शन . . २२७–२५४

[क्या ग़ालिब दार्शनिक थे ? दार्शनिकका कार्य, कविका कार्य, जीवन दर्शन देनेवाले कवि, ग़ालिब उनमें नहीं, ग़ज़लगो शाइर-की मर्यादा, बन्धनोंको चुनौती देनेवाला कवि, एक अर्थमें दर्शन-शास्त्री है, संसारमें मचलता सौन्दर्य; आसमान, जहान, बयाबान और समुद्र, जगत्का रूप, संसार उसीका आईना है, दरिया और क़तरा, संसार माशूकके हुस्नका जल्वा है, 'प्रसाद'से साम्य, हमारा मुँह उसीका मुँह है; अभेद तत्त्व, तब अन्तर्विरोध क्या है ?, मलिनताकी पृष्ठभूमिपर प्रकाशका गौरव, सब कुछ उसका है, दृष्टिका पर्दा, दुःख-दर्द माशूककी अदाएँ हैं, हर चीज़ प्यार-के क़ाबिल है, तुम्हारी कृपा हमें लूट लेगी, मिट्टीके पर्देमें मचलता प्रलय, मानव, अबाध कामनाका कवि, कामना ही माशूक़से जोड़ती है, उनके जीवनकी जड़ें इसी संसारकी धरतीमें गहरी गयी है, जन्नतका लोभ हेय है, बिहिश्तके तसव्वुरसे कलेजा मुँहको आता है, मंज़िलका नहीं राहका, तृप्तिका नहीं तृष्णाका कवि, हँसीमें रोदन, रोदनमें हँसी, जिसमें आसक्तियाँ अनासक्ति-की गोदमें सो जाती है, मूढ़ परम्पराओंसे ऊपर, तत्त्ववेत्ता न होकर भी तत्त्ववेत्ता, ज़िन्दगी और कामनाकी अगणित भंगिमाएँ उसके काव्यमें मचलती हैं,]

३ गालिबकी रचनाएँ २५५–२६६

[**फारसी पद्य** कुल्लियाते नज्म फारमी, अब्रे गुहरबार, मवदे-चीन, सवद बागे दोदर, दुआए मवाह । **फारसी गद्य** पच आहग, मेह्र नीमरोज, दस्तबू, कुल्लियाते नस्र, कातअ बुरहान, दुरक्श कावयानी, मआमिर गालिब, मुतफर्रकाते गालिब । **उर्दू पद्य** दीवाने गालिब, नुस्ख हमीदिय, अर्शी-सम्पादित दीवाने गालिब । **उर्दू गद्य** ऊदे हिन्दी, उर्दूए मुअल्ला, मकातीबे गालिब, नादिराते गालिब, खुतूते गालिब, नकाते गालिब, नामए गालिब]

४ गालिबका काव्य—१ विकास-रेखा २६७–२८३

[इन आलोचनाओमे प्रकाश उतना नही जितना अन्धकार है, यह अन्धपूजा, **प्रारम्भिक काव्य** बेदिलका प्रभाव, कृत्रिमताका आधिक्य, खूबसूरत लाशानी कविता, इस जगलमे प्राणोन्मादक फूल भी है, भावोकी झलक । **मध्ययुगका काव्य** उर्फी और नजीरीका रग, ज्योतिर्मयी कल्पना, सशोधनकी कलाका निखार । **प्रौढयुगका काव्य** शिल्प और सौन्दर्यकी पराकाष्ठा । **उत्तरकालिक काव्य**]

५ गालिबका काव्य—२ लोकप्रियताका रहस्य · · २८४–२९०

[उर्दूका सबसे जिन्दा शाइर, विविधताका कवि, राहमे चलते चलो, अनेक रूपरूपाय, अनेक शैलियाँ, गहरी मानवीय अपील,]

६ गालिबका काव्य—३ प्रेम और सौन्दर्य ··· ··· २९१–३०७

[प्रेम जीवनका उत्स है, फारसी काव्यकी जमीन, प्रेमीकी मुसीबतें, ईरानका गुल है, भारतका कमल नही, आंख और दिलका खेल, दृष्टि सौन्दर्यका आधार है, लज्जतपरस्ती, उपासनापूर्ण

प्रेमपर व्यंग, कामनाका जप है, इन्द्रियलम्पटता नहीं, वह जो समर्पणमें बाधक है, शाश्वत जलन वाली तृष्णा,]

ग़ालिबका काव्य—४ : काव्य-शिल्प ३०८–३३२

[उड़ान, छन्द-सीमाका विस्तार, व्यंजनाका प्रवाह, अगमोच्च और चित्राङ्कन, चित्रकारी, वेदना और तड़प, प्रकृतिके चित्र, चिन्तन एवं अनुभूतिका सन्तुलन, भावना एवं अनुभूतिकी विविधता, नवीन उपमाएँ, रूपक, उत्प्रेक्षाएँ, शोख़ी, व्यंग-विनोद, अर्थ-वैचित्र्य, प्रेम-दर्शन, तसव्वुफ़, वेदनाविह्वलता और आर्द्रता, निराशा, मुहाकात, मुआमिला बंदी, उलटबासियाँ, दोष ।]

ग़ालिब तथा अन्य कवि : तुलना ३३३–३५७

[मीर और ग़ालिब : जीवन-दृष्टिकी भिन्नता, इसी धरतीके पथिक, दिल्ली और शीराजका वातावरण, ग़ालिबकी जटिलता, प्रेम-सौन्दर्यकी धारणामें अन्तर, मीरका प्रभाव । ग़ालिब और मोमिन : समता, ग़ालिबकी विशेषता । ग़ालिब और दाग़ : दाग़की तड़प, भिखारीका तर्ज़ । ज़ौक़ और ग़ालिब : उर्दू क़सीदे का सीमित क्षेत्र । सौदा और ग़ालिब । अन्य कवि । ग़ालिब और फ़ारसी कवि ।]

व्याख्या-भाग [३५९–३९५]

कुछ शेर—व्याख्या-सहित ३६१–३९५

काव्य-भाग [३९७–४७६]

१ दीवाने ग़ालिब (चयन ग़ज़लें) ३९९

२. क़सीदे ,, क़सीदे ४५२

३	,,	मस्नवी	४५६
४	,,	कते	४५९
५.	,,	रुबाइयां	४६१
६	सेहरा		४६२
७	मर्सिय		४६४
८	स्फुट		४६५
९	चयन नुस्ख हमीदिय.से		४६६
१०	अप्रकाशित काव्य		४७४

परिशिष्ट-भाग [४७७–५११]

१	परिशिष्ट १	गालिबके कुछ शागिर्द	४७९
२	परिशिष्ट २	गदर और बादके जमानेकी दिल्ली	५०७

जीवन-भाग

ग़ालिब : जीवन-रेखा

उर्दू साहित्य, विशेषतः काव्य, के अभ्युदयमें दिल्ली और उसके बाद लखनऊका स्थान माना जाता है। उर्दू पैदा तो दिल्लीमें ही हुई थी पर बचपन उसका दक्षिणमें बीता, होश सँभालनेपर वह फिर दिल्ली आई और यहीं ब्याही भी गयी।

उर्दू और दिल्ली

उसका मायका चाहे दिल्लीको मानें या दक्षिणको, उसकी ससुराल तो दिल्ली ही थी और है। हाँ, तरुणाईकी अल्हड़ उमंगोंसे भरी रातें उसकी लखनऊमें भी बीतीं—यौवनकी एक लम्बी रात जो अठखेलियों, शोखियों, कटाक्षों और मोहक हाव-भावसे पूर्ण है, जिसमें यौवनकी वह लोच है जिसपर शत-शत प्राण निछावर, उसमें वह अदा है जिसके चरणोंमें दिल सिजदा करता है और जिसमें अगणित आलिङ्गनोंका स्पर्श है। लखनऊ जो भी हो पर उर्दूके प्राण दिल्लीमें ही बसते रहे, उसका कण्ठ वहीं फूटा। मुग़लोंकी दिल्ली, शक्तिहीन दिल्ली, षड्यन्त्रोंका केन्द्र दिल्ली, बार-बार लुटी हुई दिल्ली, पददलिता और भूलुण्ठिता दिल्लीके प्रति विद्वानों, लेखकों, कवियों, पर्यटकों, लुटेरों, सेनाधिपोंका आकर्षण सदा ही बना रहा और आज भी बना है। मजारोंकी भूमि, अगणित राज्योंका वह श्मशान दिल्ली, जहाँ जवानी और मृत्यु गलबहियाँ दिये खेलती रही है और खेलती है, कला और काव्यके लिए भी उपजाऊ भूमि रही है।

यों हम देखते है कि रेख़ता या उर्दूका बचपन चाहे दक्षिणमें बीता हो पर उसका शिक्षण और पालन-पोषण दिल्लीमें हुआ। यह अल्हड़ दिल्लीकी गलियोंमें घूमती फिरी, जामा मस्जिदकी सीढ़ियोंपर सोई,

महलोमे उसके स्वरालाप गूँजे, बागोमे वह लाला व गुलसे उलझी, नर्गिम को आँखे दिखाती फिरी। मज्लिसोमे साकी बन उसने जाम पिये-पिलाये और देखते-देखते सौन्दर्य और जवानी उसमे ऐसी फट पडी कि या अल्लाह ! फिर तो उसने अपने अकमे लखनऊको भर लिया और जिधरसे गुजरी उधर ही दीवाने पैदा कर दिये, शत-शत प्राण उसपर निछावर हो गये। मीर, सौदा और नासिख, मोमिन, मीर, दर्द और इशा, ज़ौक और गालिबने उसे क्या-क्या इशारे दिये कि उसका कण्ठ यौवनकी मस्तीमे फूटा तो फूटा और आज वह लाखोके दिल और दिमागपर छा गयी है।

उर्दू का यौवन

जिन कवियोंके कारण उर्दू अमर हुई और उसमे 'बहारे बेखिज़ाँ' आई उनमें मीर और गालिब सबसे अधिक प्रसिद्ध है। मीरने उसे घुलावट, मृदुता, सरलता, प्रेमकी तल्लीनता और अनुभूति दी तो गालिबने उसे गहराई, बातको रहस्य बनाकर कहनेका ढग, खमोपेच, नवीनता और अलङ्करण दिये।

आश्चर्य तो यह है कि दिल्ली (उस समय शाहजहानाबाद) मे उर्दू फूली-फली पर जिन दो सर्वोत्कृष्ट कवियो—मीर और गालिब—ने उर्दू काव्यको सर्वोत्तम निधियाँ प्रदान की, वे दिल्ली-के नही, अकबराबाद (आगरा) के थे। यह ठीक है कि उनका अभ्युदय दिल्लीमे हुआ, उनकी सस्कृति दिल्लीकी थी पर उनको जन्म देनेका श्रेय तो अकबराबाद (आगरा) को है ही।

आगराकी देन

ईरानके इतिहासमे जमशेदका नाम प्रसिद्ध है। यह थिमोरसके बाद सिंहासनासीन हुआ था। जश्ने नौरोज़का आरम्भ इसीने किया था जिसे आज भी, हमारे देशमें, पारसी लोग मनाते है। कहते है, इसीने द्राक्षासव या अगूरीको जन्म दिया था। फारसी एव उर्दू काव्यमे 'जामे-जम' (जो 'जामे जमशेद'का

वश-परम्परा

नशिप्त मय हैं)* अमर हो गया है। इससे इतना तो मालूम पड़ता ही है कि यह मदिराका उपासक था और डटकर पीता-पिलाता था। जमशेदके अन्तिम दिनोंमें बहुतसे लोग उसके शासन एवं प्रबन्धसे असन्तुष्ट हो गये थे। इन बागियोंका नेता ज़हाक था जिसने जमशेदको आरेसे चिरवा दिया था पर वह स्वयं भी इतना प्रजा-पीड़क निकला कि सिंहासनसे उतार दिया गया। उसके बाद जमशेदका पोता फ़रीदूँ गद्दीपर बैठा जिसने पहली बार अग्नि-मन्दिरका निर्माण कराया। यही फ़रीदूँ ग़ालिब वंशका आदि पुरुष था।

फ़रीदूँका राज्य उसके तीन बेटों एरज, तूर और सल्ममें बँट गया। एरजको ईरानका मध्य भाग, तूरको पूर्वी तथा सल्मको पश्चिमी क्षेत्र मिले। चूँकि एरजको प्रमुख भाग मिला था इसलिए अन्य दोनों भाई उससे असन्तुष्ट थे, उन्होंने मिलकर षड्यन्त्र किया और उसे मरवा डाला पर बादमें एरजके पुत्र मनोचहरने उनसे ऐसा बदला लिया कि वे तुर्किस्तान भाग गये और वहां तूरान नामका एक नया राज्य क़ायम किया। तूर-वंश और ईरानियोंमें बहुत दिनों तक युद्ध होते रहे। तूरानियोंके उत्थान-पतनका क्रम चलता रहा। अन्तमें ऐबकने ख़ुरासान, इराक इत्यादिमें सैलजूक राज्यकी नींव डाली। इस राज-वंशमें तोग़रलबेग (१०३७–१०६३ ई०), अलप अर्सलान (१०६३–१०७२ ई०) तथा मलिकशाह (१०७२–१०९२ ई०) इत्यादि हुए जिनके समयमें तूमी एवं उमर

---

* जामेजम = कहते हैं, जमशेदने एक ऐसा जाम (प्याला) बनवाया था जिसमें संसारकी समस्त वस्तुओं और घटनाओंका ज्ञान हो जाता था। जान पड़ता है इस प्यालेमें कोई ऐसी चीज़ पिलाई जाती होगी जिसे पीनेपर तरह-तरहके काल्पनिक दृश्य दीखने लगते होंगे। जामेजमके लिए जामे जमशेद, जामे जहांनुमां, जामे जहांबीं इत्यादि शब्द भी प्रचलित हैं।

खय्यामके कारण फारसी काव्यका उत्कर्ष हुआ। मलिकशाहके दो बेटे थे। छोटेका नाम बर्कियारूक (१०९४–११०४ ई०) था। इसीकी वंश-परम्परामे 'गालिब' हुए।

जब इन लोगोका पतन हुआ, खान्दान तितर-बितर हो गया। लोग किस्मत आजमाने इधर-उधर चले गये। कुछने सैनिक सेवा की ओर ध्यान दिया। इस वर्गमें एक थे तर्समखाँ जो समरकन्दमे रहने लगे थे। यही गालिबके परदादा थे।

तर्समखाँके पुत्र कौकान बेगखाँ, शाहआलमके ज़मानेमे, अपने बापसे झगडकर हिन्दुस्तान चले आये। उनकी मातृभाषा तुर्की थी, हिन्दुस्तानीमे बडी कठिनाईसे चन्द टूटे-फूटे शब्द बोल पाते थे।

दादा और पिता

यह कौकानबेग गालिबके दादा थे। वह कुछ दिन लाहौर रहे, फिर दिल्ली चले आये और शाहआलमकी नौकरीमे लग गये। ५० घोडे, भेरी और पताका इन्हे मिली और पहासूका पर्गना रिसाले और अपने खर्चके लिए इन्हे मिल गया। कौकानबेगके चार बेटे और तीन बेटियाँ थी। बेटोमें अब्दुल्लाबेग और नसरुल्लाबेगका वर्णन मिलता है। यही अब्दुल्लाबेग गालिबके पिता थे।

अब्दुल्लाबेगका जन्म दिल्लीमें ही हुआ था। जबतक पिता जीवित रहे मजेसे कटी पर उनके मरते ही पहासूकी जागीर हाथसे निकल गयी।

गालिबकी रचनाएँ—कुल्लियाते नस्र और उर्दू-ए-मोअल्ला—देखनेसे मालूम होता है कि उनके बाप अब्दुल्लाबेगखाँ, जिन्हे मिर्जा दूल्हा भी कहा जाता था, पहिले लखनऊ जाकर नवाब आसफउद्दौलाकी सेवामे नियुक्त हुए। कुछ ही दिनो ~ . वहाँसे हैदराबाद चले गये और नवाब निजाम अलीखाँ ... रिसालेके अफसर रहे। वहाँ भी ज्या... । राजा बख्तावर सिंहकी नौकरी ... इनकी मृत्यु हो गयी। पर बा... ।७४) ... उनके

छोटे भाईको मिलना था। नाल्दा नामका एक गांव भी जागीरमें मिला। इसप्रकार इनका वंश-वृक्ष यों बनता है —

तर्समखां
|
कौकानबेगखां
|
अब्दुल्लाबेगखां | नसरुल्लाबेगखां | पुत्र | पुत्र | पुत्री | पुत्री | पुत्री

अब्दुल्लाबेगखां
|
असदउल्लाबेगखां (असद या गालिब) | मिर्जा यूसुफ | पुत्री खानम

अब्दुल्लाबेगकी शादी आगरा (अकबराबाद) के एक प्रतिष्ठित कुलमें ख्वाजा गुलामहुसैनखां कमीदानकी बेटी इज्जतउन्निसाके साथ हुई थी। गुलामहुसैनखांकी आगरामें काफी जायदाद थी। वह एक फौजी अफसर थे। इस विवाहसे अब्दुल्लाबेगको तीन सन्तानें हुईं—मिर्जा असदउल्लाबेगखां, मिर्जा यूसुफ और सबसे बड़ी खानम।

गालिबका जन्म और बचपन

मिर्जा असदउल्लाखांका जन्म ननिहाल, आगरामें ही २७ दिसम्बर १७९७ ई० को, रातके समय, हुआ। चूंकि पिता फौजी नौकरीमें इधर-उधर घूमते रहे इसलिए ज्यादातर इनका पालन-पोषण ननिहालमें ही हुआ। जब यह पांच सालके थे तभी पिताका देहावसान हो गया। पिताके बाद चचा नसरुल्लाबेगखांने इन्हें बड़े प्यारसे पाला। नसरुल्लाबेग मराठोंकी ओरसे आगराके सूबेदार थे पर जब लार्ड लेकने मराठोंको हराकर आगरा पर अधिकार कर लिया तब यह पद भी टूट गया और उसकी जगह एक अंग्रेज कमिश्नरकी नियुक्ति हुई। किन्तु नसरुल्लाबेगखांके साले लोहारूके नवाब फखरुद्दौला अहमदबख्शखांकी लार्ड लेकसे मित्रता थी। उनकी

सहायतासे नसरुल्लाबेग अंग्रेजी सेनामे ४०० सवारोके रिसालदार नियुक्त हो गये। रिसाले तथा इनके भरण-पोपणके लिए १७०० रु० तनख्वाह तय हुई। इसके बाद मिर्जाने स्वय लडकर भरतपुरके निकट सोक और सोसाके दो परगने होलकरके सिपाहियोसे छीन लिये जो बादमे लार्ड लेक द्वारा इन्हें दे दिये गये। उस समय सिर्फ इन परगनोसे ही लाख डेढ लाखकी सालाना आमदनी थी।

पर एक ही साल बाद चचाकी मृत्यु हो गयी। *लार्ड लेक द्वारा नवाब अहमदबख्शखाँको फीरोजपुर झुर्काका इलाका पचीस हजार सालाना कर पर मिला हुआ था। नसरुल्लाखाँकी मृत्युके बाद उन्होने यह फैसला करा लिया कि 'पचीस हजारका कर माफ कर दिया जाय। इसकी जगह ५० सवारोका एक रिसाला रखूँ जिसपर पन्द्रह हजार सालाना खर्च होगा और जो आवश्यकता पडनेपर अंग्रेज सरकारकी सेवाके लिए भेजा जायगा। शेष १० हजार नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोको वृत्ति-रूपमे दिया जाय।' †यह शर्त मान ली गयी।

---

*किसी लडाईमें लडते हुए हाथीसे गिरकर १८०६ मे इनका देहावसान हुआ था।

† न जाने कैसे, इसके एक मास बाद ही ७ जून १८०६ ई० को, गुप्त रूपसे, नवाब अहमदबख्श खाँने अंग्रेज सरकारसे एक दूसरा आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया जिसमें लिखा था कि नसरुल्लाबेगखाँके सम्बन्धियोको पाँच हजार सालाना पेंशन निम्नलिखित रूपमे दी जाय—

१ ख्वाजा हाजी (जो ५० सवारो के अफसर थे)—दो हजार सालाना।

२ नसरुल्लाबेगकी माँ और तीन बहिनें—डेढ हजार सालाना।

३ मीरजा नौशा और मीरजा यूसुफ (नसरुल्लाके भतीजो) को डेढ हजार सालाना, इस प्रकार १० हजारसे ५ हजार हुए और ५ हजारमें भी सिर्फ ७५०–७५० सालाना गालिब और उनके छोटे भाईको मिले।

यह ठीक है कि बापकी मृत्युके बाद चचाने इनका पालन किया पर शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गयी और यह अपनी ननिहाल आ गये। पिता स्वयं घर-जमाईकी तरह, सदा ससुरालमें रहे। वहीं उनकी सन्तानोंका भी पालन-पोषण हुआ। ननिहाल खुशहाल था। इसलिए ग़ालिबका बचपन ज़्यादातर यहीं बीता और बड़े आरामसे बीता। उन लोगोंके पास काफ़ी जायदाद थी। ग़ालिब ख़ुद अपने एक पत्रमें 'मफ़ीदुल ख़लायक़' प्रेसके मालिक मुंशी शिवनारायणको, जिनके दादाके साथ ग़ालिबके नानाकी गहरी दोस्ती थी, लिखते हैं —

"हमारी बड़ी हवेली वह है जो अब लखमीचन्द सेठने मोल ली है। इसीके दरवाज़ेकी संगीन बारहदरीपर मेरी नशस्त थी।§ और पास इसीके एक 'खटियावाली हवेली' और सलीमशाहके तकियाके पास दूसरी हवेली और काले महलसे लगी हुई एक और हवेली और इससे आगे बढ़कर एक कटरा कि वह 'गडरियोंवाला' मशहूर था और एक कटरा कि वह 'कश्मीरनवाला' कहलाता था, इस कटरेके एक कोठे पर मैं पतङ्ग उड़ाता था और राजा बलवान सिंहसे पतङ्ग लड़ा करते थे।"

---

§ "यह बड़ी हवेली अब भी पीपलमण्डी आगरामें मौजूद है। इसीका नाम 'काला' (कलाँ ?) महल है। यह निहायत आलीशान इमारत है। यह किसी ज़मानेमें राजा गजसिंहकी हवेली कहलाती थी। राजा गजसिंह जोधपुरके राजा सूरजसिंहके बेटे थे और अहदे जहाँगीरमें इसी मकानमें रहते थे। मेरा ख़्याल है कि मिर्ज़ाकी पैदाइश इसी मकानमें हुई होगी। आजकल (१९३८ ई०) यह इमारत एक हिन्दू सेठकी मिल्कियत है और इसमें लड़कियोंका मदरसा है।"—'ज़िक्रे ग़ालिब' (मालिकराम), नवीन संस्करण, पृष्ठ २१।

मतलब ननिहालमे मजेसे गुज़रती थी। आराम ही आराम था। एक ओर खुशहाल परन्तु पतनशील उच्च मध्यमवर्गकी जीवन-विधिके अनुसार इन्हे पतङ्ग, शतरञ्ज और जुएकी आदत लगी, दूसरी ओर उच्चकोटिके बुजुर्गोंकी सोहबतका लाभ मिला। इनकी माँ स्वय शिक्षिता थी पर गालिबको नियमित शिक्षा कुछ ज्यादा नही मिल सकी। हाँ, ज्योतिष, तर्क, दर्शन, सङ्गीत एव रहस्यवाद इत्यादिसे इनका कुछ न कुछ परिचय होता गया। फारसीकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्होने आगराके उस समयके प्रतिष्ठित विद्वान् मौलवी मोहम्मद मोवज्जमसे प्राप्त की। इनकी ग्रहण शक्ति इतनी तीव्र थी कि बहुत जल्द वह जहूरी जैसे फारसी कवियोका अध्ययन अपने आप करने लगे बल्कि फारसीमे गजल भी लिखने लगे।

शिक्षण

इसी जमाने (१८१०-१८११ ई०) मे मुल्ला अब्दुस्समद ईरानसे घूमते-फिरते आगरा आये और इन्हीके यहाँ दो साल तक रहे। यह ईरानके एक प्रतिष्ठित एव वैभवसम्पन्न व्यक्ति थे और यज्दके रहनेवाले थे। पहिले जरतुस्त्रके अनुयायी थे पर बादमे इस्लामको स्वीकार कर लिया था। इनका पुराना नाम हरमुज़्द था। फारसी तो उनकी घुट्टीमे थी। अरबीका भी उन्हे बहुत अच्छा ज्ञान था। इस समय मिर्जा १४ सालके थे और फारसीमें उन्होने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। अब मुल्ला अब्दुस्समद जो आये तो उनसे दो वर्ष तक मिर्ज़ाने फारसी भाषा एव काव्यकी बारीकियोका ज्ञान प्राप्त किया और उनमे ऐसे पारङ्गत हो गये जैसे खुद ईरानी हो। अब्दुस्समद इनकी प्रतिभासे चकित थे और उन्होने अपनी सारी विद्या इनमे उँडेल दी। वह इनको बहुत चाहते थे। जब वह स्वदेश लौट गये तब भी दोनोका पत्र-व्यवहार जारी रहा। एक-बार गुरुने शिष्यको एक पत्रमे लिखा—"ऐ अजीज़! च कसी? कि

अब्दुस्समद ईरानीका प्रभाव

बाद इसके आज़ारेहा गाह गाह बयानिश भी गुज़री।"★ इससे साफ़ है कि मुल्लासमद अपने शिष्यको बहुत प्यार करते थे।

काज़ी अब्दुल वदूद तथा एकाध और विद्वानोंने अब्दुस्समदको एक कल्पित व्यक्ति बताया है। कहा जाता है कि मिर्ज़ासे स्वयं भी एकाध बार सुना गया कि 'अब्दुस्समद' एक फ़र्ज़ी नाम है। चूँकि मुझे लोग बे-उस्ताद कहते थे, उनका मुँह बन्द करनेको मैंने एक फ़र्ज़ी उस्ताद गढ़ लिया है।"§ पर इस तरहकी बातें केवल अनुमान और कल्पनापर आधारित हैं। अपने शिक्षणके सम्बन्धमें स्वयं मिर्ज़ाने एक पत्रमें लिखा है—

"मैंने अय्यामे दबिस्तां नशीनीमें[1] 'शरह मात-आमिल' तक पढ़ा। बाद इसके लहवो लइब[2] और आगे बढ़कर फ़िस्क व फ़िजूर[3], ऐशो इशरतमें मुनहमिक[4] हो गया। फ़ारसी ज़बानसे लगाव और शेरो-सुख़नका ज़ौक़ फ़ितरी व तबई[5] था। नागाह एक शख़्स कि सासाने पञ्जुमकी नस्लमें से मन्तक व फ़िल्सफ़ामें[6] मौल्वी फ़ज़ल हक़ मरहूमका नज़ीर मोमिने[7] मुवहिद व सूफ़ी-साफ़ी[8] था, मेरे शहरमें वारिद[9] हुआ और लताएफ़[10] फ़ारसी और ग़वामज़े[11] फ़ारसी आमेख़्ता ब अरबी इससे मेरे हाली हुए। सोना कसौटीपर चढ़ गया। ज़ेहन माऊज न था। ज़बाने दरीमें पैवन्दे अज़ली और उस्ताद बेमुबालग़ा था। हक़ीक़त इस ज़बानकी दिलनशीन व ख़ातिरनिशान[12] हो गयी।" ×

★ 'यादगारे ग़ालिब' (हाली)—इलाहाबादी संस्करण पृष्ठ १४–१५।

§ 'यादगारे ग़ालिब' (हाली)—इलाहाबादी संस्करण पृष्ठ १३।

१ पाठशालामें पढ़नेके दिनोंमें, २ खेल-कूद, ३ दुराचरण, ४ तल्लीन, ५ प्राकृतिक, स्वाभाविक, ६ तर्कशास्त्र व दर्शन, ७ धर्मात्मा, ८ सन्त, ९ प्रविष्ट, १० विशिष्टताएँ, ११ समीक्षा, १२ हृदयमें बैठना।

× यह इशारा मुल्ला अब्दुस्समदके लिए ही है।

पर इनमे उच्च प्रेरणाएँ जागरित करनेका काम इस शिक्षणमे भी ज्यादा उस वातावरणने किया जो इनके इर्द-गिर्द था। जिस मुहल्लेमे वह

बौद्धिक वातावरण

रहते थे वह (गुलावखाना) उम जमानेमे फारसी भापाके शिक्षणका एक उच्च केन्द्र था। रूमके भाष्यकार मुल्ला वली मुहम्मद, उनके वेटे शम्सुल जुहा, मौ० वदरुद्दिजा, आज़मअली आज़म तथा मौ० मुहम्मद कामिल वगैरा फारसीके एक-से-एक विद्वान् वहाँ रहते थे। वातावरणमें फारसीयत भरी थी इसलिए यह उससे प्रभावित न होते, यह कैसे सम्भव था ?

पर जहाँ एक ओर यह तालीम-तर्वियत थी तहाँ ऐशो-इशरतकी महफिले भी इनके इर्द-गिर्द विखरी हुई थी। दुलारे थे, पैसे-रुपयेकी कमी

तस्वीरका दूसरा रुख

न थी, वाप एव चचाके मर जानेसे कोई दवाव रखनेवाला न था। किशोरावस्था, तवीयतमे उमङ्गें, यार-दोस्तो के मजमे, खाने-पीने, शतरञ्ज, पतङ्गवाज़ी, यौवनोन्माद सवका जमघट। आदतें विगड गयी। 'शोरे सौदाए परीचेह्रगाँ'ने आकर्पित किया। हुस्नके अफसानो में मन उलझा, चन्द्रमुखियो ने दिलको खींचा। ऐशो-इशरतका वाज़ार गर्म हुआ। २४–२५ साल तक खूब रङ्गरलियाँ की पर वादमें उच्च प्रेरणाओ ने इन्हें ऊपर उठनेको वाध्य किया। ज्यादातर वुरी आदतें दूर हो गयी पर मदिरा-पानकी जो लत लगी सो मरते दम तक न छूटी।

इनकी काव्यगत प्रेरणाएँ स्वाभाविक थी। वचपनसे ही इन्हें शेरो-शायरीकी लत लगी। इश्कने उसे उभारा—गो वह इश्क वहुत छिछला

काव्यकी सुप्त धारा

और वाज़ारू था। जव यह मोहम्मद मोअज्ज़म-के मकतवमें पढते थे और १०–११ सालके थे तभीसे इन्होने शेर कहना शुरू कर दिया था। शुरूमें वेदिल एव शौकतके रङ्गमें कहते थे। वेदिलकी छाप इनपर वचपनसे ही पडी। २५ सालकी

इनमें दो हजार शेरोंका एक दीवान तैयार हो गया। इनमें वही चूमा-चाटी, वही स्त्रैण भावनाएँ, वही पिटे-पिटाये मजमून थे। एकबार उनके किसी हितैषीने इनके कुछ शेर मीर तक़ी 'मीर'को सुनाये। सुनकर 'मीर'ने कहा—"अगर इस लड़केको कोई कामिल[1] उस्ताद मिल गया और उसने इनको सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाब शायर बन जायगा वर्ना महमिल[2] बकने लगेगा।" 'मीर'की भविष्यवाणी पूरी हुई। सचमुच यह महमिल बकने लगे थे पर अन्तःप्रेरणा एवं बुजुर्गोंकी कृपासे उस स्तरसे ऊपर उठ गये। 'मीर'की मृत्युके समय 'ग़ालिब' केवल १३ वर्षके थे और दो ही तीन साल पहिले उन्होंने शेर कहने शुरू किये थे। प्रारम्भमें ही इस छोकरे कविकी ग़ज़ल इतनी दूर लखनऊमें 'ख़ुदाए-सख़ुन' 'मीर'के सामने पढ़ी गयी और 'मीर'ने, जो बड़ो-बड़ोंको ख़ातिरमें न लाते थे, इनकी सुप्त प्रतिभाको देखकर इनकी रचनाओंपर सम्मति दी, इससे ही जान पड़ता है कि प्रारम्भसे ही इनमें उच्च कविके बीज थे।

विवाह

जब यह सिर्फ़ तेरह सालके थे इनका विवाह लोहारूके नवाब अहमदबख़्श ख़ाँ (जिनकी बहिनसे इनके चचाका ब्याह हुआ था) के छोटे भाई मिर्ज़ा इलाहीबख़्श ख़ाँ 'मारूफ़'की लड़की उमराव बेगमके साथ ९ अगस्त १८१० ई० को सम्पन्न हुआ था। उमराव बेगम ११ सालकी थी। इस तरह लोहारू राजवंशसे इनका सम्बन्ध और दृढ़ हो गया। पहिले भी वह बीच-बीचमें दिल्ली जाते रहते थे पर शादीके २–३ साल बाद तो दिल्लीके ही हो गये। वह स्वयं 'उर्दू-ए-मोअल्ला' (पृ० ३८१ पर एक ख़त) में इस घटनाका ज़िक्र करते हुए लिखते हैं —

"७ रज्जब १२२५ हिजरीको मेरे वास्ते हुक्म दवामे हब्स[3] सादिर[4]

---

१ योग्य, समर्थ, २. निरर्थक, ३ स्थायी क़ैद, ४ जारी।

हुआ। एक बेडी (यानी बीवी) मेरे पांवमे डाल दी और दिल्ली शहरको जिन्दान[1] मुकर्रर किया और मुझे इस ज़िन्दांमे डाल दिया।"

मुल्ला अब्दुस्समद १८१०–११ ई०मे अकबराबाद आये थे और दो वर्षके शिक्षणके बाद असदउल्ला खाँ (गालिब) उन्हीके साथ आगरामे दिल्ली गये। दिल्लीमे यद्यपि वह अलग घर लेकर रहे पर इतना तो निश्चित है कि ससुरालकी तुलनामे इनकी अपनी सामाजिक स्थिति बहुत हलकी थी। इनके ससुर इलाहीबख्श खांको राजकुमारोका ऐश्वर्य प्राप्त था। यौवन-कालमे इलाहीबख्शकी जीवन-विधिको देखकर लोग उन्हे 'शहज़ादए गुलफाम' कहा करते थे। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि उनकी बेटीका पालन-पोषण किस लाड-प्यारके साथ हुआ होगा। असदउल्ला खाँ शक्ल-सूरतसे बडा आकर्षक व्यक्तित्व रखते थे, उनके बाप-दादे फौज़मे उच्चाधिकारी रह चुके थे इसलिए ससुरको आशा रही होगी कि असदउल्ला भी आला रुतबे तक पहुँचेंगे एव बेटी ससुरालमे सुखी रहेगी पर वह न होना था, न हुआ। अखीर तक यह शेरो-शाइरीमे पडे रहे और उमराव बेगम, बापके घर बाहुल्यके बीच पली, लडकीको ससुरालमे वे सब सुख सपने हो गये।

मिर्ज़ाके ससुर इलाहीबख्श खाँ न केवल वैभवशाली थे वर चरित्रवान्, धर्मनिष्ठ तथा अच्छे कवि भी थे। वह ज़ौकके शिष्योमे थे। ससुरालका वश-वृक्ष देखनेसे ही उसकी श्रेष्ठता एव वैभवका पता चलता है। श्री-मुहम्मद अकरामने 'आसारे-गालिब' में इनकी ससुरालका निम्नलिखित वशवृक्ष दिया है —

१ कारागार।

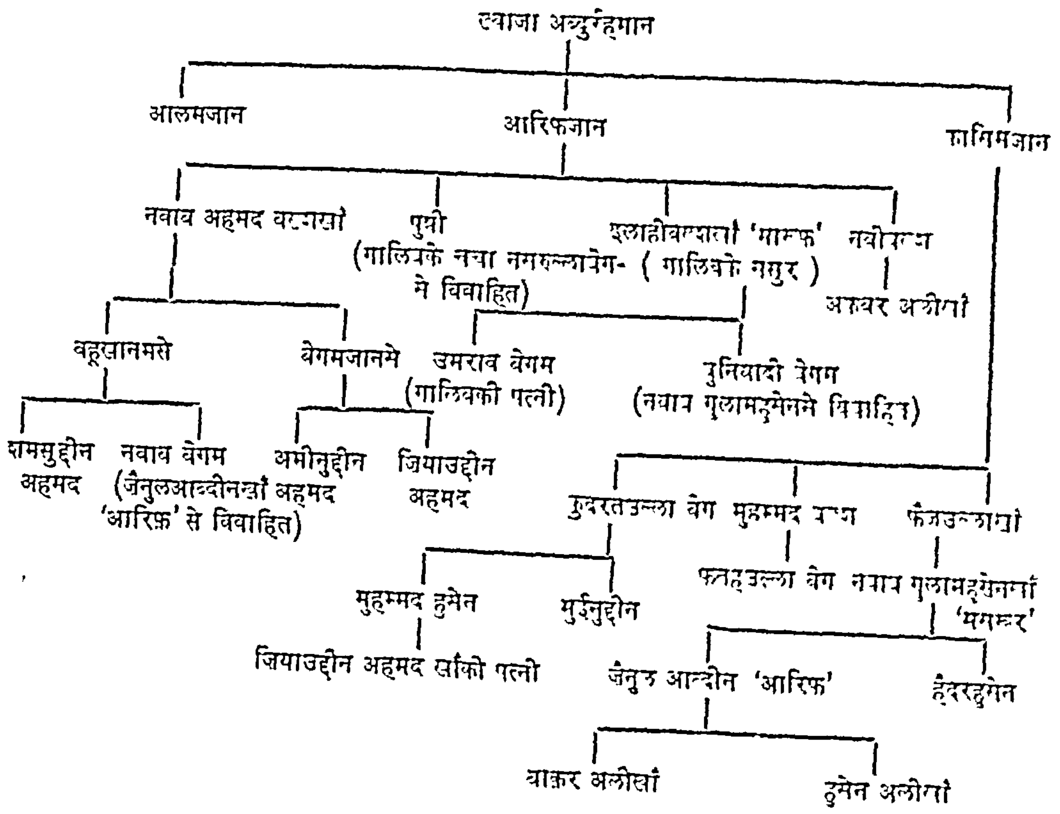
ख्वाजा अब्दुर्रहमान
आलमजान
आरिफजान
कासिमजान
नवाब अहमद बख्शखाँ
पुत्री
(गालिबके चचा नसरुल्लाबेग-
से विवाहित)
इलाहीबख्शखाँ 'मारूफ'
(गालिबके ससुर)
नबीबख्श
अकबर अलीखाँ
बहूखानमसे
बेगमजानमसे
उमराव बेगम
(गालिबकी पत्नी)
बुनियादी बेगम
(नवाब गुलामहुसैनसे विवाहित)
शमसुद्दीन
अहमद
नवाब बेगम
(जैनुलआब्दीनखाँ
'आरिफ़' से विवाहित)
अमीनुद्दीन
अहमद
ज़ियाउद्दीन
अहमद
कुदरतउल्ला बेग
मुहम्मद बख्श
फैजउल्लाखाँ
मुहम्मद हुसैन
मुईनुद्दीन
फतहउल्ला बेग
नवाब गुलामहुसैनखाँ
'मसरूर'
जियाउद्दीन अहमद खाँकी पत्नी
जैनुल आब्दीन 'आरिफ'
हैदरहुसैन
बाक़र अलीखाँ
हुसैन अलीखाँ

विवाहके दो-तीन साल बाद मिर्ज़ा स्थायी रूपमे दिल्ली आ गये और उनके जीवनका अधिकाश भाग दिल्लीमे ही गुज़रा। ग़ालिबके पिताकी अपेक्षा उनके चचाकी हालत कही अच्छी थी और उनका सम्मान भी अधिक था। पिताका तो अपना घर भी न था, वह जन्म भर इधर-उधर मारे-मारे फिरते रहे, जबतक रहे घर-जमाई रहे। घर-जमाईका ससुरालमे प्रधान स्थान नही होता क्योकि उसकी सारी स्थिति अपनी पत्नीसे पायी हुई स्थिति होती है। मिर्ज़ाका बचपन ननिहालमे आरामसे भले बीता हो पर बापके मरनेके बाद उनके-जैसे भावुक बच्चेपर अपनी यतीमीका भी असर पडा होगा, उन्होने कभी यह भी ख्याल किया होगा कि मेरा इसमे क्या है। चचाकी मृत्युके बाद ये विचार और प्रबल एव कष्टजनक हुए होगे। यतीमीके कारण इनका ठीक राहसे भटक जाना और लफगाई करना स्वाभाविक-सा रहा होगा। दिल्ली आनेका भी कारण यही रहा होगा कि वहाँ कुछ अपना बना सकूँगा। दिल्ली आनेपर कुछ समय तक तो माँ कभी-कदाच इनकी सहायता करती रही पर मिर्ज़ाके असख्य पत्रोमे कही भी मामा वगैरासे किमी प्रकारकी मदद मिलनेका उल्लेख नही है। इसलिए जान पडता है, धीरे-धीरे इनका सम्बन्ध ननिहालसे बिलकुल खत्म हो गया था।

आगरा और देहलीका असर

दिल्लीमे ससुर तथा उनके प्रतिष्ठित साथियो एव मित्रोके काव्य-प्रेमका इनपर अच्छा असर हुआ। इलाहीबख्शखाँ पवित्र एव रहस्यवादी प्रेमसे पूर्ण काव्य-रचना करते थे। वह पवित्र विचारोके आदमी थे। उनके यहाँ सूफियो तथा शायरोका जमघट रहता था। निश्चय ही ग़ालिबपर इन गोष्ठियोका अच्छा असर पडा होगा। यहाँ उन्हे तसव्वुफका परिचय मिला होगा, और धीरे-धीरे यह जन्मभूमि आगरामें बीते बचपन तथा बादमे किशोरावस्थामे दिल्लीमे बीते दिनोके बुरे प्रभावोसे मुक्त हुए होगे। दिल्ली आनेपर भी शुरू-शुरूमे तो मिर्ज़ाका वही तर्ज़ रहा पर बादमे यह सँभल गये।

कहा जाता है कि मनुष्यकी कृतियाँ उसके अन्तरका प्रतीक होती हैं। मनुष्य जैसा अन्दरसे होता है, उसीके अनुकूल वह अपनी अभिव्यक्ति कर पाता है। चाहे कैसा ही [illegible] हो, उसकी [illegible] कुछ न कुछ [illegible] आ ही जाती है। इनके प्रारम्भिक शायरीके चन्द नमूने लीजिए।

प्रारम्भिक काव्य

नियाज़े-इश्क़,[1] ख़िर्मनसोज़ असबाबे-हविस बेहतर।
जो हो जावें निसारे-बर्क़[2] मुश्ते-ख़ाशो-ख़स बेहतर।

× × ×

देखता हूँ उसे थी जिसकी तमन्ना मुझको।
आज बेदारी[3] में है ख़्वाबे-ज़ुलेख़ा मुझको।

× × ×

हँसते हैं देख-देखके सब नातवाँ[4] मुझे।
यह रंगे-ज़र्द[5] है चमने-ज़ाफ़राँ[6] मुझे।

× × ×

देख वह बर्क़े[7]-तबस्सुम बस कि दिल बेताब है।
दीदए-गिरियाँ[8] मेरा फ़ौआरए-सीमाब[9] है।
खोलकर दरवाज़ए मैख़ाना बोला मैफ़रोश,
अब शिकस्ते-तौबा[10] मयख़्वारोंको फ़तहुलबाब है।

× × ×

१ प्रेमका परिचय, २ विद्युत् पर न्योछावर, ३ जागरण, ४ दुर्बल, ५ पीत रंग, ६ केसरका उद्यान, ७ मुसकराहटकी बिजली, ८ रुदनशील नयन, ९ पारद, १० न पीनेकी प्रतिज्ञाका उल्लंघन।

इक गर्म आह की तो हज़ारोंके घर जले।
रखते हैं इश्क़में य असर हम जिगरजले।
परवानेका न गम हो तो फिर किसलिए 'असद'
हर रात शमअ शामसे ले तासहर जले।

× × ×

ज़ख्मे दिल तुमने दुखाया है कि जी जाने है।
ऐसे हँसतेको रुलाया है कि जी जाने है।

× × ×

सबा लगा वो तमाँचा तरफ़से बुलबुलकी
कि रूए-गुचए-गुल[1] सूए-आशियाँ[2] फिर जाय।

ऊपर जो शेर दिये गये हैं उनमें एक संवेदना, रसशीलता तो है पर उनकी अपेक्षा उनमें एक छटपटाहट, बेचैनी, जवानीके उड़ते हुए सपनोंकी छाया और कृत्रिम कल्पनाओंकी उछल-कूद अधिक है। कोई मौलिक भावना नहीं, कोई उथल-पुथल कर देनेवाली प्रेरणा नहीं। हाँ, इतना है कि बचपन में ही इनमें कवि-प्रतिभाके बीज दिखायी पड़ते हैं। ७-८ साल की उम्रमें यह उर्दू (रेख्ती) तथा ११-१२ सालमें फारसीमें कविता करने लगे थे।

जैसा मैं पहिले लिख चुका हूँ, दिल्ली आनेपर भी बहुत दिनों तक यह अपने उसी आगराके रंगमें रहे। ऐशो-इशरत, दिलकी सौदेबाज़ी और समय रईसजादोंकी तरह राग-रंग या फिज़ूलके कामोंमें बिताना। पर इनके हाथों उर्दूका उत्कर्ष होना था, संयोगवश इनकी मुलाकात मौलवी फज़लहक खैराबादीसे हो गयी। धीरे-धीरे दोनोंमें गहरी मित्रता और घनिष्ठता हो गयी। मौ० फजलहक साहित्य एवं धर्मके गहरे अध्येता

फजलहक़ खैराबादीका प्रभाव

१ पुष्प-कलिकाका मुख, २ घोंसलेकी ओर।

तो थे ही, गज़लके भी अच्छे पारखी थे। इस ज़मानेकी दिल्ली यद्यपि राजनीतिक दृष्टिसे बेदम, बेजान थी पर वहाँ कुछ ऐसे विचारक एकत्र हो गये थे जो समझते थे कि धार्मिक गतानुगतिकता ही हमारे पतनका मुख्य कारण है। वे स्वतन्त्र विचारकी प्रेरणा देते थे। ऐसे लोगोंमें शाह इस्माइल तथा सय्यद अहमद बरेल्वी मुख्य थे। सर सय्यद अहमदखाँने इनके स्वतन्त्र विचारके इस आन्दोलनकी तुलना यूरोपके 'रिफार्मेशन' आन्दोलनसे की है। इसके विरुद्ध पुरानी परम्पराके विद्वानोंका दल था जिसके नेता मौ० फ़ज़्लहक़ खैराबादी और शाह नसीर थे। मौ० फ़ज़्लहक़ने अपने जीवन और आचरणसे ग़ालिबपर बहुत प्रभाव डाला। ग़ालिब उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे पर ग़ालिबके विचार एवं चिन्तना नवीन आन्दोलनके अनुकूल थी। तरानर्ग शाह इस्माइलका अनुयायी था और ग़ालिब तथा मोमिन दोनों इस सुधार एवं स्वतन्त्र चेतनाके पक्षपाती थे।

बहरहाल, विचार-वैभिन्न्य होते हुए भी फ़ज़्लहक़ने अपने घनिष्ठ संसर्ग एवं आचरणसे ग़ालिबपर गहरा असर डाला। ग़ालिब इन्हें बहुत मानते थे, इनका सम्मान तथा इनकी पवित्रता एवं काव्यानुभूतिका समादर करते थे। इनकी मित्रताने वह काम किया जो पहिले किसीसे न हुआ था। फ़ज़्लहक़ने इनके काव्यको नये रास्तेपर मोड़ा, पुराने एवं निरर्थक काव्यके संशोधनपर बाध्य किया। इनके और एक दूसरे मित्र मिर्ज़ाख़ानी कोतवालके अनुरोधपर ही ग़ालिबने अपनी पुरानी ग़ज़लोंके निस्सार भागोंको काटकर निकाल दिया था तथा काट-छाँटकर एक छोटा दीवान बनाया जो आज इतना लोकप्रिय है।

मौ० फ़ज़्लहक़ने ग़ालिबके व्यक्तित्वको एक नई मोड़ दी, तथा काव्यमें भी एक नई मोड़ लानेमें सफल हुए। बात यह है कि जब 'असद'

काव्यपर आक्षेप

(ग़ालिबका पूर्व कवि-नाम) ने ग़ज़लें सुनानी शुरू कीं तो इनके शेरोंकी विचित्रतापर बड़ा तूफ़ान उठा, लोगोंने बड़ी आलोचना की पर अपने हठमें यह उन आप-

त्तियोकी परवाह न करते थे। इन छिद्रान्वेपकोको ही लक्ष्य कर उन्होने आगरामे एक रुवाई कही थी—

मुश्किल है ज़िबस[1] कलाम मेरा ऐ दिल।
होते है मलूल[2] इसको सुनके जाहिल*।
आसान कहनेकी करते है फर्माइश,
गोयम मुश्किल वगर्ना गोयम मुश्किल।[3]

पर न केवल आगरामे बल्कि दिल्लीमे भी ये आक्षेप जारी रहे। यह कोई विचित्रता, अद्भुतता लानेको ही काव्योत्कर्ष समझते थे। इससे इनका काव्य दुरूह हो जाता था। लोग इनके काव्यको बेमानी और महमिल बताते थे। मुशायरोमे, गोष्ठियोमे, जलसोमे, महफिलोमे इनकी 'मुश्किल-गोई' (काव्य-जटिलता) के चर्चे होते थे। लोग कहते—'अच्छा तो कहते है पर भई बहुत मुश्किल कहते है।' कुछने कहा—'क्या अच्छा क्या बुरा, महमिल बकते हैं।' लोगोकी भावनाको किसीने शेरोमे भी प्रकट किया—

अगर अपना कहा तुम आपही समझे तो क्या समझे
मज़ा कहनेका जब है एक कहे और दूसरा समझे।
कलामे-मीर समझे और ज़बाने-मीरज़ा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे।

---

१ बहुत, २ खिन्न।

* बादमे इसे बदलकर यो कर दिया—

सुन-सुनके उसे सखुनवराने कामिल।

३ अर्थात् आसान कहता हूँ तो मेरे लिए कठिनाई है और अगर नही कहता हूँ तो भी कठिनाई है

एक मज़ेकी बात है कि मौ० अब्दुल क़ादिर रामपुरीने, जो बड़े हास्य-प्रिय थे, मिर्ज़ासे किसी मौक़ेपर कहा कि आपका एक उर्दू शेर समझमें नहीं आता और उसी समय दो मिसरे ख़ुद मौज़ूँ करके मिर्ज़ाके सामने पढ़े—

पहले तो रोग़ने-गुल भैंसके अण्डेसे निकाल।
फिर दवा जितनी है कुल भैंसके अण्डेसे निकाल॥

मिर्ज़ा सुनकर सख़्त हैरान हुए और कहा यह मेरा शेर नहीं। मौ० अब्दुल क़ादिरने कहा कि मैंने ख़ुद आपके दीवानमें देखा है और दीवान हो तो मैं दिखा सकता हूँ। आख़िर मिर्ज़ाको मालूम हुआ कि मुझपर इस पैरायेमें एतराज़ करते हैं।*

लोगोंके आक्षेपपर चिढ़कर कहा था—

न सताइशकी[1] तमन्ना न सिलेकी[2] पर्वा,
गर नहीं हैं मेरे अशआरमें मानी न सही।

जैसा लिखा जा चुका है, बादमें मौ० फ़ज़्लहक़की मित्रता एवं सलाहसे इन्होंने न केवल अपने पुराने दीवानका संशोधन एवं चयन किया वरन् आगेके लिए भी अपनी राह बदल दी यद्यपि अपनी मौलिकता क़ायम रखी। न केवल काव्यमें वरन् जीवनमें भी परिष्कार हुआ। शराब तो न छूटी पर लफ़ंगई छूट गयी।

अर्थ-कष्टका आरम्भ

पर विवाहके बाद इनकी आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ती ही गयीं। आगरा-में, ननिहालमें, इनके दिन आराम व आसाइशसे बीतते थे। 'शाहिद व शमअ व शराब व शकर व नालये सरूद' की तृप्तिके लिए कोई कठिनाई न थी। दिल्लीमें भी कुछ दिनोंतक वही रङ्ग रहा। साढ़े सात सौ सालाना पेंशन नवाब

---

* यादगारेग़ालिब,

१ प्रशंसा, २ पुरस्कार।

त्तियोकी परवाह न करते थे। इन छिद्रान्वेषकोको ही लक्ष्य कर उन्होने आगरामे एक रुबाई कही थी—

मुश्किल है ज़िबस[1] कलाम मेरा ऐ दिल।
होते है मलूल[2] इसको सुनके जाहिल*।
आसान कहनेकी करते है फर्माइश,
गोयम मुश्किल वगर्ना गोयम मुश्किल।[3]

पर न केवल आगरामे बल्कि दिल्लीमे भी ये आक्षेप जारी रहे। यह कोई विचित्रता, अद्भुतता लानेको ही काव्योत्कर्ष समझते थे। इससे इनका काव्य दुरूह हो जाता था। लोग इनके काव्यको बेमानी और महमिल बताते थे। मुशायरोमे, गोष्ठियोमे, जलसोमे, महफिलोमे इनकी 'मुश्किल-गोई' (काव्य-जटिलता) के चर्चे होते थे। लोग कहते—'अच्छा तो कहते है पर भई बहुत मुश्किल कहते हैं।' कुछने कहा—'क्या अच्छा क्या बुरा, महमिल बकते है।' लोगोकी भावनाको किसीने शेरोमे भी प्रकट किया—

अगर अपना कहा तुम आपही समझे तो क्या समझे
मज़ा कहनेका जब है एक कहे और दूसरा समझे।
कलामे-मीर समझे और ज़बाने-मीरज़ा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे।

---

१ बहुत, २ खिन्न।

* बादमे इसे बदलकर यो कर दिया—

सुन-सुनके उसे सखुनवराने कामिल।

३ अर्थात् आसान कहता हूँ तो मेरे लिए कठिनाई है और अगर नहीं कहता हूँ तो भी कठिनाई है

तरावोंसे इनका नाता कम हो गया। इधर यह हाल था, उधर ग़ालिबके छोटे भाई मिर्ज़ा यूसुफ भरी जवानी—२८ वर्षकी आयुमें पागल हो गये। चारों ओरसे कठिनाइयाँ एवं मुसीबतें एक साथ उठ खड़ी हुईं और ज़िन्दगी दूभर हो गयी।

इधर यह अर्थाभाव एवं अन्य विपत्तियाँ, उधर ग़रीबीमें भी अमीरी शान। नवाबोंके कारण मिर्ज़ाका परिवार दिल्लीके सबसे अधिक प्रतिष्ठित समाजमें हो गया था। बड़ोंसे उनका मिलना-जुलना और मित्रता थी। उधर साढ़े बासठ रुपये माहवारकी आय, इधर नवाबोंका वैभवपूर्ण जीवन। मिर्ज़ा शानवाले आदमी, वह अपनी पत्नीके मायकेमें किसीके आगे सिर नीचा न होने देते थे। शेरो-शायरीके कारण भी उनकी प्रतिष्ठा थी। इसलिए थोड़ी आमदनीमें ऊपरी शानो-शौकत कायम रखना और मुश्किल हो रहा था। नवाबकी रियासतमेंसे पेंशनका जो इन्तज़ाम था उसमेंसे ख्वाजा हाजी नामक एक और व्यक्तिका भी हिस्सा था। यह ख्वाजा हाजी या उनके पिता ख्वाजा कुतुबुद्दीन ग़ालिबके दादा कौकानबेगके साथ ही हिन्दुस्तान आये थे। कई लोगोंने उन्हें ग़ालिबके ही वंशका बताया है। उनका कहना है कि वह ग़ालिबके पूर्व पुरुष तरसम खाँके छोटे भाई रुस्तम खाँके वंशमें थे। इस विषयमें कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। खुद ग़ालिबका कहना तो यह था कि 'ख्वाजा हाजीका बाप मेरे दादा कौकानबेग खाँका साईस था और उसकी औलाद तीन पुश्तसे हमारी नमकख्वार है।' पर सम्भव है, ग़ालिबने जल-भुनकर ऐसा लिखा हो। इतना तो तय है कि दोनों सम्बन्धी थे क्योंकि जिस मिर्ज़ा जीवनबेगके पुत्र मिर्ज़ा अकबरबेगसे ग़ालिबकी बहिन (मिर्ज़ा नसरुल्ला बेगकी भतीजी) छोटी खानम ब्याही थी उन्हीं जीवनबेगकी कन्या अमीरुन्निसा बेगमसे ख्वाजा हाजीकी शादी हुई थी। ख्वाजा हाजी मिर्ज़ा नसरुल्लाबेग खाँके अधीन उनके ४०० सवारोंके रिसालेमें एक अफ़सर थे। बादमें जब वह रिसाला टूटा तो उसमेंसे पचास सवार नवाब अहमदबख्श खाँको दिये गये थे

अहमद बख्शके यहाँसे मिलती थी। वह यों भी कुछ न कुछ देते रहते थे। माँके यहाँसे भी कभी-कभी कुछ आ जाता था। अलवरसे भी कुछ मिल जाता था। इस तरह मज़ेमे गुजरती थी। पर शीघ्र ही पासा पलट गया।

१८२२ ई० मे वृटिश सरकार एव अलवर दरबारकी स्वीकृतिसे नवाब अहमदबख्श खाँने अपनी जायदादका बँटवारा यो किया कि उनके बाद फिरोज़पुर झुर्काकी गद्दीपर उनके बडे लडके शम्सुद्दीन अहमद खाँ बैठे तथा लोहारूकी जागीर उनके दोनो छोटे बेटो अमीनुद्दीन अहमद खाँ और जियाउद्दीन अहमद खाँको मिले। शम्सुद्दीन अहमदकी माँ बहूखानम थी और अन्य दोनोकी बेगमजान। स्वभावत दोनो औरतोमे प्रतिद्वन्द्विता थी और भाइयोके दो गिरोह बन गये थे। आपसमे पटती न थी। बादमे झगडा न हो, इस भयसे नवाब अहमदबख्श खाँने अपने जीवन-कालमे ही इस बँटवारेको कार्यान्वित कर दिया और स्वय एकान्तवास करने लगे। इस प्रकार शम्सुद्दीन अहमद खाँ फिरोज़पुर झुर्काके नवाब हो गये और दूसरे दोनो भाइयोको लोहारूका इलाका मिल गया।

इस बँटवारेसे गालिब भी प्रभावित हुए। भविष्यके लिए इनकी पेंशन नवाब शम्सुद्दीन अहमद खाँसे सम्बद्ध हो गयी जबकि इनका सम्बन्ध अन्य दो भाइयोसे अधिक मित्रतापूर्ण था। इसलिए उनकी पेंशनमे तरह-तरहके रोडे अटकाये गये

गालिबकी मुसीबतें

और एप्रिल १८३१ मे वह बिलकुल बन्द कर दी गयी। यद्यपि १८३५ मे नवाब शम्सुद्दीनकी गिरफ्तारीके बाद पुन जारी हुई और १८३७ मे चार वर्पका बकाया पूरेका पूरा मिला। पर बीचमे सारी व्यवस्था भङ्ग हो जानेसे बडा कष्ट हुआ। कर्ज बढा। फिर नवाब अहमदबख्श खाँ बीच-बीचमे जो कुछ देते रहते थे, वह भी बन्द हो गया क्योकि वह बिलकुल एकान्तवासी हो गये थे और किसी मामलेमे दखल नही देते थे। गालिब-की यह हालत देख ऋणदाताओने भी अपने रुपये माँगना शुरू किया।

उन्होंको अपना उत्तराधिकारी माना था। किन्तु इस निर्णयसे दूसरे दो भाई स्वभावतः नाराज थे। झगड़ा खड़ा होनेसे पहले अहमदबख्शखाँने शम्सुद्दीन खाँको इस आधारपर राज्य दिया कि पर्गना लोहारू, कुछ गाँवोंके साथ, दूसरे दोनों भाइयोंको दे दें। १८२६ में यही हुआ था जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है। शेष जागीरका प्रबन्ध शम्सुद्दीनखाँने अपने हाथमें ले लिया।

पर एक और कठिनाई थी। गालिबके चचा नसरुल्ला बेग खाँकी जागीर भी नवाब अहमदखाँकी जागीरमें शामिल हो गयी थी।* इस

मुगल नियाज मुहम्मद बेगकी कन्या बहू बेगमसे नियमानुसार विवाह किया जिससे चार सन्तानें हुईं—अमीनउद्दीन अहमद, जियाउद्दीन अहमद, माहे-रुख बेगम और बादशाह बेगम। इस प्रकार शम्सुद्दीनको जायदाद मिलना ही अनियमित था पर नवाब उन्हें ही सबसे ज्यादा चाहते थे। झगड़ेका मूल यही था।

* पहिले हम बता चुके हैं कि मिर्जा नसरुल्लाखाँको दो पर्गने दिये गये थे। बादमें वे भी फीरोजपुर झिरकामें मिला दिये गये और तय पाया था कि नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोंको दस हजार सालाना पेंशन दी जायगी। किन्तु यह रकम गुप्त रूपसे ५ हजार कर दी गयी और इसमें ख्वाजा हाजीका खान्दान भी शामिल कर लिया गया एवं उसे दो हजार वार्षिक वृत्ति दी गयी। शेष तीन हजारमेंसे गालिबके हिस्सेमें ७५० रु० सालाना आये।

गालिबके चचा नसरुल्लाखाँ १८०६ में मरे थे। उनके मरनेपर ख्वाजा हाजीने जायदादमें हिस्सा पानेका दावा किया। नवाब अहमदबख्शने स्वयं उसकी ओरसे गवाही दी और वह जागीर हाजीको इस शर्तपर दे दी गयी कि उसीसे नसरुल्लाखाँके आश्रितोंको भी मदद की जाय। नवाब अहमद बख्शने हाजीको समझाया कि तुम्हारा इलाक़ा मेरे इलाक़ेसे मिला हुआ है

(जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है)। ख्वाजा हाजी इसी पचास सवारोके रिसालेके अफसर बना दिये गये थे। मतलब यह कि जब मिर्ज़ा नसरुल्लाबेग खाँके परिवार एव आश्रितोके लिए पाँच हजार वार्षिक पेशन तय हुई तो उसमेसे दो हजार ख्वाजा हाजीको देनेकी व्यवस्था नवाब अहमदबख्शने कर दी थी। १८२६ ई० मे ख्वाजा हाजीकी मृत्यु हो गयी। गालिब ख्वाजा हाजीके पेशन देनेके विरोधी थे पर यह सोचकर चुप हो गये थे कि पेशन हाजीकी जिन्दगी भरके लिए ही है और उसकी मृत्युपर हमे लौट आवेगी पर वैसा नही हुआ। हाजीका हिस्सा उसके दोनो बेटो शम्सुद्दीन खाँ (उर्फ खाजा जान) और बदरुद्दीनखाँ (उर्फ खाजा अमान) के नाम कर दिया गया। इससे वह और चिढ गये। उन्होने विरोध भी किया पर उसका कोई परिणाम न हुआ। तब उन्होने कलकत्ता जाकर इस निर्णयके विरुद्ध गवर्नर जेनरल-इन-कौसिलसे अपील करनेका निश्चय किया।

झगडेका मूल

इस झगडेका मूल रूप यह था कि नवाब अहमदबख्शके तीन पुत्र थे—नवाब अमीनुद्दीन तथा नवाब जियाउद्दीन और इन दोनोके सौतेले भाई और उर्दूके प्रसिद्ध कवि 'दाग' के जनक नवाब शम्सुद्दीन।★ अहमदबख्श शम्सुद्दीनको ज्यादा मानते थे और उन्होने महाराज अलवर तथा बृटिश सरकारकी स्वीकृतिसे

★ मुरक्का अलवरसे मालूम होता है कि शम्सुद्दीन खाँ नवाब अहमद बख्शके औरस पुत्र नही थे। अलवरके महाराज बख्तावरसिहके पास एक तवायफ थी—मूसी। उसकी दूरकी बहिन मुद्दीसे नवाब अहमदबख्शका सम्बन्ध हो गया। इस प्रकार यह उनकी रखैल थी। इससे चार बच्चे हुए थे—शम्सुद्दीन अहमद, इब्राहीम अली, नवाब बेगम और जहाँगीरा बेगम। नवाब बेगमका विवाह जैनुलआब्दीन खाँ 'आरिफ' से हुआ था। जहाँगीरा बेगम एक ईरानी मुहम्मद आजमसे ब्याही गयी। बादमे नवाब अहमदबख्शने

उन्होंने अपना उत्तराधिकारी माना था। किन्तु इस निर्णयसे दूसरे दो भाई स्वभावतः नाराज थे। झगड़ा शान्त होनेके लिये अहमदबख्शखाँने शम्सुद्दीन खाँको इस बातपर राजी किया कि परगना लोहारू, कुछ शर्तोंके साथ, दूसरे दोनों भाइयोंको दे दें। १८२६ में यही हुआ था जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है। शेष जागीरका प्रबन्ध शम्सुद्दीनखाँने अपने हाथोंमें ले लिया।

पर एक और कठिनाई थी। गालिबके चचा नसरुल्ला बेग खाँकी जागीर भी नवाब अहमदबख्शखाँकी जागीरमें शामिल हो गयी थी।* इस

मुगल नियाज मुहम्मद बेगकी कन्या फूफू बेगमसे नियमानुसार विवाह किया जिससे चार सन्तानें हुईं—अमीनुद्दीन अहमद, जियाउद्दीन अहमद, माहेरुख बेगम और बादशाह बेगम। इस प्रकार शम्सुद्दीनको जायदाद मिलना ही अनियमित था पर नवाब उन्हें ही सबसे ज्यादा चाहते थे। झगड़ेका मूल यही था।

* पहिले हम बता चुके हैं कि मिर्जा नसरुल्लाखाँको दो पर्गने दिये गये थे। बादमें वे भी फीरोजपुर झिरकामें मिला दिये गये और तय पाया था कि नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोंको दस हजार सालाना पेंशन दी जायगी। किन्तु यह रकम गुप्त रूपसे ५ हजार कर दी गयी और इसमें ख्वाजा हाजीका खान्दान भी शामिल कर लिया गया एवं उसे दो हजार वार्षिक वृत्ति दी गयी। शेष तीन हजारमेंसे गालिबके हिस्सेमें ७५० रु० सालाना आये।

गालिबके चचा नसरुल्लाखाँ १८०६ में मरे थे। उनके मरनेपर ख्वाजा हाजीने जायदादमें हिस्सा पानेका दावा किया। नवाब अहमदबख्शने स्वयं उसकी ओरसे गवाही दी और वह जागीर हाजीको इस शर्तपर दे दी गयी कि उसीसे नसरुल्लाखाँके आश्रितोंकी भी मदद की जाय। नवाब अहमद बख्शने हाजीको समझाया कि तुम्हारा इलाका मेरे इलाकेसे मिला हुआ है

अन्यायसे मिर्जा दुखी थे। नवाब अहमदबख्शखाँने नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोंके भरण-पोषणके लिए वृत्ति देनेका वादा किया था। नसरुल्लाखाँके कोई सन्तान न थी इसलिए स्वाभाविक उत्तराधिकार गालिब तथा उनके छोटे भाई मिर्जा यूसुफ तथा उनकी माँ बहिनोंको मिलना चाहिए था। नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोंके लिए शुरूमे दस हजार सालाना पेंशन नियत हुई थी। किन्तु नवाब अहमदबख्श सिर्फ ३ हजार देते थे जिसमेसे मिर्ज़ाके हिस्सेमे केवल साढे सात सौ आता था। आरम्भमे तो अहमदबख्शसे इनके सम्बन्ध बहुत अच्छे थे और वह समय समयपर इन्हे और भी आर्थिक सहायता देते रहते थे। इसलिए मामलेने तूल नही पकडा पर १८२६ ई० मे गालिबके ससुर एव नवाब अहमदबख्शखाँके छोटे भाई इलाहीबख्शखाँकी मृत्यु हो गयी। स्वभावत पुराने सम्बन्धोमे कडुवाहट आ गयी। इस समय गालिब २९ वर्षके थे। उनकी जिन्दगी ऐशो-इशरतमे बीती थी। लोग नवाबके साथ इनके सम्बन्धके कारण कर्ज भी आसानीसे दे देते थे पर अब जब वृत्तिमे कमी कर दी गयी और नवाबमे वह सुखद सम्बन्ध भी न रह गये तो ऋणदाताओने स्वभावत रुपये मॉगना शुरू कर दिया। गालिबको अन्दरूनी बाते मालूम न थी और वह यही समझे बैठे थे कि सरकारने जो पर्गने दिये थे वे दस हजार सालानाके थे और सिर्फ उनके चचाको दिये गये थे। इसलिए जब हाजीके लडकोको वारिस बनाया गया तो उन्होने उसका विरोध किया। नवाब अहमदबख्शको समझानेके लिए वह खुद फीरोजपुर-झुर्का गये। वहाँ जानेपर मालूम हुआ कि नवाब साहब अलवर गये हुए है। उन्हे वहाँ कुछ दिन टिकना पडा। जब नवाब लौटे

इसलिए तुमको मालगुजारी वसूल करनेमे कठिनाई होती है। इसे मेरे सुपुर्द करो। आमदनी तुम्हे भेजता रहूँगा। इसी समय तय हुआ कि दो हज़ार सालाना हाजीको और ३००० नसरुल्लाखाँके अन्य आश्रितोको मिला करेगा।

तब उन्होंने आगे चलने यहाँ पर नवाबके व्यवहारमें कोई परिवर्तन करनेसे इनकार कर दिया। तब वह निराश लौटे और उन्होंने ब्रिटिश सरकारसे अपील करनेका निश्चय किया, जिसकी चर्चा हम पहिले कर चुके हैं।

इधर असलियत यह थी कि नसरुल्ला बेगकी मृत्युके बाद उनकी जागीर (सोंख और सोंसा) अंग्रेजोंने ले ली थी। बादमें वह २५ हजार सालानापर अहमदबख्शखाँको दे दी गयी थी। ४ मई १८०६ को लार्ड लेकने अहमदबख्शखाँसे मिलनेवाली २५ हजार वार्षिककी मालगुजारी इस शर्तपर माफ कर दी थी कि वह दस हजार सालाना नसरुल्लाबेगके आश्रितोंको दे। पर इसके चन्द दिनों बाद ही, ७ जून १८०६ को, नवाब अहमदबख्शने लार्ड लेकसे मिल-मिलाकर इसमें गुपचुप परिवर्तन करा लिया था कि सिर्फ ५ हजार सालाना ही नसरुल्लाबेगके आश्रितोंको दिये जायें और इसमें ख्वाजा हाजी भी शामिल रहेगा। इस गुप्त परिवर्तन एवं संशोधनका ज्ञान गालिबको नहीं था। इसलिए उन्होंने फीरोजपुर-झिरकाके शासकपर दावा दायर कर दिया कि उन्होंने एक तो आदेशके विरुद्ध पेंशन आधी कर दी, फिर उस आधीमें भी ख्वाजाहाजीको शामिल कर लिया।

मिर्जाका विश्वास था कि उनके कलकत्ता जाने और गवर्नर जेनरल तथा अन्य उच्चाधिकारियोंसे मिलनेका मुकदमेपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

कलकत्ता जानेका निश्चय

उस जमानेमें, जब यात्राके साधन इतने सुलभ न थे, मिर्जाने बहुत विवश होने पर ही इस लम्बी यात्राका निश्चय किया होगा। अगस्त १८२६ के लगभग वह देहलीसे कलकत्ता जानेके लिए रवाना हुए। लखनऊके काव्यप्रेमी एवं विद्वज्जन बहुत समयसे इन्हें वहाँ बुला रहे थे। पर मौका न मिलता था। अब जो कलकत्ताके लिए निकले तो कानपुरसे लखनऊ होते हुए वहाँ जाना तय किया। लखनऊ वालोंने उनका हार्दिक स्वागत किया, उन्हें सिर आँखोंपर बिठाया। निम्नलिखित कतेमें उन्होंने लखनऊका जिक्र किया है—

वाँ पहुँचकर जो गश आता पैहम[1] है हमको ।
सद[2] रहे आहगे-ज़मीं[3] बोसे क़दम[4] है हमको ।

लखनऊ आनेका बाइस[5] नहीं खुलता यानी,
हविसे-सैरो-तमाशा सो वह कम है हमको ।

ताक़ते रंजे सफ़र ही नहीं पाते इतना,
हिज्रे याराने वतन[6] का भी अलम[7] है हमको ।

मकतए सिलसिलए शौक़[8] नहीं है यह शह्,
अज्मे सैर नजफ़[9] व तूफ़े-हरम[10] है हमको ।

लिये जाती है कहीं एक तवक़्क़ुअ[11] गालिब*
जादए राह[12] काशिशे काफ़े करम[13] है हमको ।

जब मिर्जा लखनऊ पहुँचे तो उन दिनो गाजीउद्दीन हैदर अवधके बादशाह थे । वह ऐशोइशरतमे डूबे हुए इन्सान थे, यद्यपि उन्हे भी शेरो-

---

१ लगातार, २ शत, सैकडो, ३ मसारके इरादे, ४ चरणचुम्बी, ५ कारण, ६ वतनके मित्रोंके वियोग, ७ दुःख, ८ उत्कण्ठाकी शृंखलाको विच्छिन्न करनेवाला, ९ नजफ (अरबका प्रसिद्ध नगर जहाँ हजरतअलीका मजार है) की सैरकी इच्छा, १० कावाकी परिक्रमा, ११ आशा, १२ सबल, १३ कृपा पुंज, (अत्यधिक कृपा) का आकर्षण ।

*पहिले यह पाठान्तर था (बादमे बदल दिया)—

लाई है मोतमुद्दौला बहादुरकी उमीद ।

शायरोंसे कुछ-न-कुछ दिलचस्पी थी। §लखनऊका शासन सुल्तान नायब सल्तनत मोतमुद्दौला सय्यद मुहम्मद खाँ देखते थे जो लखनऊके इतिहासमें 'आगा मीर' के नामसे मशहूर हैं। अबतक 'आगा

लखनऊकी

मीरकी ड्योढ़ी' मुहल्ला लखनऊमें ज्योंका त्यों क़ायम है। उस समय आग़ामीरमें ही शासनकी सब शक्ति केन्द्रित थी। वह सफ़ेद स्याह जो चाहते थे करते थे। यह आदमी शुरूमें एक ख़ानसामा-के रूपमें नौकर हुआ था किन्तु शीघ्र ही नवाब बेगम और रेज़ीडेण्टको ऐसा खुश कर लिया कि वे इसके लिए सब कुछ करनेको तैयार रहते थे। उन्हींकी मददसे वह इस पदपर पहुँच गया था। बिना उसकी सहायताके बादशाह तक पहुँच न हो सकती थी।

ग़ालिबके कुछ हितैषियोंने आग़ामीर तक ख़बर पहुँचाई कि ग़ालिब लखनऊमें मौजूद हैं। आग़ामीरने कहलाया कि उन्हें मिर्ज़ाकी मुलाक़ातसे ख़ुशी होगी। मिलनेकी बात तय हुई परन्तु मिर्ज़ाने यह इच्छा प्रकट की कि मेरे पहुँचनेपर आग़ामीर खड़े होकर मेरा स्वागत करें और मुझे नज़र-नज़र पेश करनेसे बरी रखा जाय। आग़ामीरने इन शर्तोंको स्वीकार न किया इसलिए मुलाक़ात न हो सकी। ग़ालिब लखनऊमें लगभग पाँच महीने रहे और वहाँसे २७ जून १८२७ शुक्रवारको कलकत्ताके लिए रवाना हुए। अभी सफ़रमें ही थे कि ग़ाज़ीउद्दीन हैदरका देहावसान हो गया और उनकी जगह नसीरउद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। बहरहाल आग़ामीरसे भेंट न होनेके कारण जो फ़ारसी क़सीदा ग़ालिबने दिल्लीसे लखनऊ आने तथा अपनी

---

§ इन्होंने 'नासिख' को 'मलिकुश्शुअरा' की उपाधि देकर अपने दरबार-में रखना चाहा था पर नासिखने यह कहकर ख़िताब वापिस कर दिया कि ग़ाज़ीउद्दीनको न तो देहलीके बादशाहोंका मर्तबा हासिल है न बृटिश सरकारका ही बल एवं सम्मान प्राप्त है, मैं उनका दरबारी शायर होकर क्या करूँगा।

मुसीबतोका जिक्र करते हुए लिखा था वह अवधके बादशाहके सामने पेश न हो सका और नसीरउद्दीन हैदरके गद्दीपर बैठनेके सात-आठ साल बाद नायब सल्तनत रोशन उद्दौला एव मुशी मुहम्मद हसनके माध्यमसे दरबार तक पहुँचा और वहाँ पढा गया। वहाँसे शायरको पाँच हजार रुपये इनाम देनेका हुक्म हुआ पर इसमेसे एक फूटी कौडी भी गालिबको न मिली। 'नासिख' के कथनानुसार तीन हजार रोशनउद्दौलाने और दो हजार मुहम्मद हसनने उडा लिये।

अन्य स्थानोकी यात्रा

लखनऊसे कलकत्ता जाते हुए यह कानपुर, बाँदा, बनारस, पटना मुर्शिदाबाद ठहरे। लखनऊसे ३ दिन चलकर कानपुर पहुचे। वहाँसे बाँदा गये। बाँदामे मौलवी मुहम्मदअली सदर अमीनने इनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया, इन्हे हर तरहका आराम दिया और कलकत्ताके प्रतिष्ठित एव प्रभावशाली आदमियोके नाम पत्र भी दिये। बाँदामे ही इन्होने वह गजल लिखी थी जिसका निम्नलिखित शेर मशहूर है--

सताइशगर[1] है ज़ाहिद[2] इस क़दर जिस बागे-रिज़वाँ[3] का।
व एक गुलदस्ता है हम बेख़ुदोके ताक़े-नसियाँ[4] का।

यात्रामे कठिनाइयाँ भी आई होगी, निराशा भी हुई होगी। यात्राकाल की गजलोमें इसकी भी ध्वनि है—

थी वतनमें शान क्या 'गालिब' कि हो गुरबत[5] मे क़द्र,
बेतकल्लुफ़ हूँ वह मुश्ते-ख़स कि गुलख़न[6] मे नहीं।

× × ×

---

१ प्रशसक, २ विरक्त, सयम व्रत करने[illegible] ३ स्वर्गो[illegible], ४ विस्मृतिका ताक, ५ परदेश-निवास, ६ भट्टी,

करते किस मुँहसे हो गुरबतकी शिकायत 'ग़ालिब'
तुमको बेमेहरिए-याराने-वतन[1] याद नहीं ?

× × ×

जुल्मतकदे[2] में मेरे शबेग़म[3] का जोश है।
एक शमअ है दलीले-सहर[4] सो ख़मोश है।

बांदासे मौदा गये, मौदासे चिल्लातारा। फिर वहाँसे नाव द्वारा इलाहाबाद पहुँचे। जान पड़ता है, इलाहाबादमें कोई अप्रीतिकर साहित्यिक संघर्ष हुआ। पर उसका कोई विवरण कहीं नहीं मिलता। उनके एक फ़ारसी पत्रसे सिर्फ़ इतना मालूम होता है कि वहाँ कुछ न कुछ हुआ था—

नफ़स बलर्ज़ः ज़ियादे नहीबे कलकत्ता,
निगाहे ख़ैरः ज़हंगामए इलाहाबाद।

इलाहाबादमें कुछ ज़्यादा ठहरना चाहते थे पर अवसर न मिला और वह बनारसके लिए रवाना हुए। बनारस पहुँचते-पहुँचते अस्वस्थ हो गये।

बुतोंके नगर बनारसमें

पर बनारसके जादूने जैसे 'हज़ीं' को मुग्ध कर लिया था वैसे ही उसके चित्ताकर्षक दृश्योंने इन्हें भी अनुरक्त बना लिया। बनारस इन्हें इतना भाया कि शाहजहानाबाद (दिल्ली) पर भी उसे तर्जीह दी—

जहाँ आबाद गर नबूद अलम नेस्त।
जहानाबाद बादाजाए कमनेस्त।

१ वतनके मित्रोंकी निष्ठुरता, २ अँधेरी दुनिया, अँधेरा गृह, ३ शोकरात्रि ४ प्रभातका प्रमाण।

न बाशद क़हत बहे आशियाने ।
सरे शाख़े गुले दर गुलसिताने ।
बख़ातिर दारम ऐनक गुल ज़मीने ।
बहार आई सवादे दिलनशीने ।
कि मी आयद बदऊ आगाहे लाफिश ।
जहाँ आबाद अज़ बहे तवाफिश ।

आखीरमे कहते हैं कि हे प्रभु! बनारसको बुरी नजरसे बचाना। यह नन्दित स्वर्ग है, यह भरा-पूरा स्वर्ग है —

तआलिल्ला बनारस चश्मे बददूर ।
बहिश्ते खुर्रमो फ़िरदौस मामूर ।

बनारसकी गगा एव प्रभात

बनारस उनको इतना अच्छा लगा कि जिन्दगी-भर उसे नही भूल पाये। ४० साल बाद भी एक पत्रमे लिखते है कि अगर मै जवानीमे वहाँ जाता तो वही बस जाता। बनारसकी गगा एव प्रभातने उन्हे मोह लिया था। इनका बडा ही हृदयग्राही वर्णन उन्होने किया है। वहाँकी उपासना, पूजा, घण्टाध्वनि, मूर्तियाँ —मानवी और दैवी दोनो—सबके प्रति उनमे आकर्षण उत्पन्न हो गया था। काशीके बारेमे वह कहते हैं—

इबादतख़ानए नाक़ूसियाँ अस्त ।
हमाना काबए हिन्दोस्ताँ अस्त ।

"यह शखवादकोका उपासनास्थल है। निश्चय ही यह हिन्दुस्तानका काबा है।"

वहाँकी सुन्दरियोके रूप-सौन्दर्य, चाल-ढाल, मस्ती इत्यादिका वर्णन करते हुए कहते है—

बुतानशरा हयूला शोलए तूर।
सरापा नूर ऐज़द चश्मे बद्दूर।

मियो हा नाज़ुकी दिल हा तुवाना।
जनादानी बकारे ख़्वेश दाना।

तबस्सुम बस कि दर दिल हा तिवी ईस्त।
दहन हा रश्के गुलहाए रवी ईस्त।

ज़ अंगेज़े क़द अन्दाज़े ख़रामे।
ब पाए गुल बुने गुस्तरदः दामे।

ज़ताबे जलवए ख़्वेश आतिश अफ़रोज़।
बयाने बुतपरस्ती बिरहमन सोज़।

ब लुत्फ़ मौजे गौहर नर्मरू तर।
ब नाज़ अज़ ख़ूने आशिक़ गर्मरू तर।

ब सामाने गुलिस्ताँ बरलबे गंग।
ज़ ताबे रुख़ चिराग़ाँ बरलबे गंग।

रसीदः अज़ अदाए शुस्त व शूए।
ब हर मौजे नवेदे आबरूए।

क़यामत क़ामताँ मिज़गाँ-दराज़ाँ।
ज़ मिज़गाँ बरसफ़े दिल तीरबाज़ाँ।

ब मस्ती मौजरा फ़रमूदा आराम।
ज़ नग़्ज़े आबरा बख़्शिन्दा अन्दाम।

फताद शोरिशे दर क़ालिबे आब ।
ज़ माही सद दिलश दर सीना बेताब।
ज़ताबे जल्वा हा बेताब गश्त ।
गुहर हा दर सदफ हा आब गश्त ।
ज़बस अर्ज़ तमन्ना मी कुनद् गग ।
ज़ मौजे आवहा बा मी कुनद् गग ।

अर्थात्—

"यहाँके बुतोकी आत्मा नूरके प्रकाशके समान है। वह सरापा (ऊपरसे नीचे तक, आमूल चूल) नूर है। उसपर शनिदृष्टि (बुरी नजर) न पडे। ये क्षीणकटि (पतली कमर) पर बलवान हृदय वाली है। ऊपरसे नादान-सी दिखती हैं पर अपने कार्यमे चतुर है। इनकी मुस्कान ऐसी है कि हर दिलको वशमे कर लेती है और इनके मुखडे चैती गुलाबको लजाते है। अपनी चालमे पाँवोसे गुलाबके फूलोंको बखेरती चलती हैं। अपनी ज्वाला-सी जलनेवाली कान्ति (जलवे) से अपनी पूजा करनेवालो (बुतपरस्तो) और ब्राह्मणोकी वाक्शक्तिको पराभूत करनेवाली है (अर्थात् वाणी उनकी कान्तिसे स्तब्ध एव मौन हो जाती है)। उनका जल-विहार मुक्ता-तरङ्गासे भी सुन्दर है। उनका नाज प्रेमीके रक्तसे भी अधिक उष्ण हैं। गङ्गा तटपर वे क्या आ गयी एक गुलिस्ताँ—पुष्पोद्यान—आ गया, उनके मुख ऐसे लगते है मानो गङ्गा-तटपर दीपक जल उठे हो। उनके जलविहार एव स्नानकी अदा लहरोको आवभगत निमन्त्रण देती है। ये मृदुल शरीर-यष्टिवाली सुलोचनाएँ दिलोकी पक्तियोपर अपनी बरौनियोके तीर चलाती है। अपनी मस्तीसे इन्होने तरङ्गोको चुप कर दिया है। उनके सौन्दर्यमे जल स्तब्ध—स्थिर—हो गया है। फिर देखो, उन्होने पानीके अन्तरमें हलचल पैदा कर दी और मीनोमे सैकडो दिल मछलियोकी भाँति

तरह उठे। अपने सौन्दर्यको दीपित देखेंगे होकर ये पानीमें जलती गयीं और ऐसी लगती है जैसे सीपमें मोती चुने हों। उन्हें देख गङ्गा भी अपने दिलमें यही तमन्ना रखती है कि आओ, मेरी लहरोंमें स्नान करो जिन्हें मैंने तुम्हारे लिए सुरक्षित किया है।"

कलकत्ता

बनारससे नौका-द्वारा ही कलकत्ता जानेकी इनकी इच्छा थी पर इसमें व्यय बहुत अधिक था इसलिए घोड़ेपर रवाना हुए और पटना एवं मुर्शिदाबाद होते हुए २० फरवरी १८२८ को कलकत्ता पहुँचे। यहाँ उन्होंने शिमला बाजारमें* मिर्जा अली सौदागरकी हवेलीमें एक बड़ा मकान १०) मासिक केराये पर लिया। पर इनके कलकत्ता पहुँचनेसे पूर्व ही नवाब अहमदबख्श उनकी

---

* स्व० मौलाना अबुलकलाम आजादने इसपर प्रकाश डाला है कि यह मुहल्ला कहाँ था और इसका नाम शिमला बाजार क्यों पड़ा। सम्भवतः लार्ड एमहर्स्ट पहिले गवर्नर-जेनरल थे जो शिमला गये। तबसे यह प्रथा चल पड़ी कि यदि प्रतिवर्ष नहीं तो हर दूसरे साल वे गर्मियाँ शिमलेमें बिताते थे। तब रेल नहीं थी। इलाहाबाद-कानपुर तक यात्रा प्राय नौका द्वारा होती थी। उसके बाद पालकी, गाड़ी और घोड़ेपर। यह यात्रा जिस राजसिक ठाठ-बाट एवं सामानके साथ होती थी उसका वर्णन उस कालके कई इतिहासकारोंने किया है। एक पूरा नगर कलकत्तासे शिमला तक और शिमलासे कलकत्ता तक गतिमान रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मजदूरों एवं मुलाजिमोंका एक बड़ा गिरोह, कलकत्तामें, केवल इस सफ़रके लिए रहने लगा और इनके मुहल्लेका नाम शिमला बाजार पड़ गया। यह चितपुर रोडके उस हिस्सेमें था जो बादको गेंदा तालाबके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जान पड़ता है, यहीं मिर्जा गालिब ठहरे थे। अब यह हिस्सा बिलकुल बदल गया है। पुराने मकानोंके नाम-निशान बाकी नहीं।

—नक्शे आज़ाद (गुलाम रसूल मेहर) पृष्ठ २७३

मृत्यु हो गयी इसलिए अब झगडा उनके वारिस नवाब शम्सुद्दीनखाँसे शुरू हुआ।

जब मिर्जा अनेक कठिनाइयाँ झेलनेके बाद कलकत्ता पहुँचे तो उन्हे गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिलका जवाब मिला कि पहिले यह मुकदमा दिल्लीके अग्रेज रेजीडेण्टके सामने पेश होना चाहिए। वहाँसे रिपोर्ट आनेपर निर्णय किया जायगा। उस जमानेमे जब यात्रा बडी कष्टसाध्य थी कलकत्तासे फिर दिल्ली, मुकदमेके लिए लौटना, मुश्किल था। इसलिए वह स्वय तो कलकत्ता रहे और दिल्ली रेजीडेसीमे मुकदमेके लिए हीरालाल नामक व्यक्तिको वकील नियुक्त किया। इन दिनो सर एडवर्ड कोलब्रुक दिल्लीमें रेज़ीडेण्ट थे। मिर्जाने कलकत्ताके उनके एक मित्र कर्नल हेनरी इम्लाकसे भेट करके उनसे सिफारिशी पत्र लिया। इसी प्रकार कोलब्रुकके मीर मुशी अल्तफात हुसेन खाँके नाम भी एक पत्र नवाब अकबरअली खाँ तबातबाई मोतवल्ली इमामबाडा हुगलीसे प्राप्त किया और दोनो खत अपने वकीलको दिल्ली भेज दिये। उन लोगोने मदद करनेका वादा किया। गालिब सरकारके सेक्रेटरी एण्डरू एस्टरलिंगसे भी मिले। उन्होने भी मिर्जाको आश्वासन दिया कि न्याय होगा। सर एडवर्ड कोलब्रुकने अपनी रिपोर्ट भी इनके अनुकूल भेज दी। पर कोलब्रुक अव्वल दर्जेका रिश्वतखोर था और इसी रिश्वतखोरीके जुर्ममे कुछ दिनो बाद निकाल दिया गया। उसकी जगह फासिस हाकिंस रेजीडेण्ट नियुक्त हुआ। हाकिंसकी नवाब शम्सुद्दीनसे मित्रता थी। स्वभावत उसने सरकारके पास दूसरी रिपोर्ट भेजी और लिखा कि असदउल्ला खाँको जो साढे सात सौ मिलते रहे है उससे अधिक पानेके वह अधिकारी नही है।

बहरहाल जिस उद्देश्यसे मिर्जा कलकत्ता गये थे, उसमे उन्हे सफलता नही मिली। अफसरोने इनकी इज्जत की, मददका वादा किया पर कोई ठोस नतीजा न निकला। मिर्जाको बडी आशा थी कि न्याय होगा और फैसला उनके पक्षमे होगा। इसी आशापर वह डेढ सालसे ज्यादा अर्से तक

कलकत्तामें पड़े रहे। फ़ैसलेमें बड़ी देर हो गयी थी और हाकिमोंके विरोध-का समाचार भी दिल्लीसे आ गया था इसलिए उन्होंने वकील नियुक्त कर दिल्ली लौटनेका निर्णय किया। २९ नवम्बर १८२९ को दिल्ली लौट आये। जिन एजेन्टजनरलपर उनको भरोसा था वह ३० मई १८३० को मर गया और २७ जनवरी १८३१ ई० को गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम बेंटिकने इनके विरुद्ध मुकदमेका निर्णय दे दिया। यद्यपि उसके बाद भी पुनर्निर्णयके लिए यह बराबर प्रयत्न करते ही रहे और वह सिलसिला १८४४ तक चलता रहा किन्तु उसकी चर्चा हम यथास्थान बादमें करेंगे।

कलकत्ताकी साहित्यिक कुश्तियाँ

मुकदमेके सम्बन्धमें तो कलकत्तामें कोई विशेष लाभ न हुआ पर फ़ारसीगोई (फ़ारसी काव्यरचना) में अपनी विशेषता प्रदर्शित करनेके अवसर प्राय मिलते रहे। इन दिनों कलकत्ता-में ईस्टइण्डिया कम्पनीने एक विद्यालय चला रखा था। उसके अन्तर्गत एक काव्यगोष्ठीका भी निर्माण हुआ था। प्रत्येक मासके प्रथम रविवारको इसकी बैठक हुआ करती थी। ज्यादातर यह मशायरेके रूपमें होती थी और इसमें उर्दू फारसीकी गजलें पढ़ी जाती थीं। मिर्ज़ा भी इसमें जाते और गजलें पढ़ते थे। मिर्ज़ाके कलकत्ता पहुँचनेके बाद जो मशायरा§ हुआ उसमें उन्होंने

---

§ यह मशायरा इस विद्यालयकी वेलेज्ली स्ट्रीटवाली इमारतमें हुआ था जिसकी नींव १५ जुलाई १८२४ को रखी गयी थी और जो ३ साल में तैयार हुई। ग़ालिबके कलकत्ता पहुँचनेके कुछ ही महीने पहिले (अगस्त १८२७ में) कक्षाएँ यहाँ लगने लगी थीं। मशायरेमें कविगण अन्दरके पश्चिमी बरामदेमें बैठते थे और श्रोतामण्डली बाहरके खुले सेहनमें फ़र्शपर बैठती थी। ग़ालिबका अन्दाज़ है कि इस मशायरेमें लगभग ५ हज़ार आदमी उपस्थित थे।

हुमाम तब्रेजीकी ज़मीनमे एक गजल पढी जिसका यह 'मकता' प्रसिद्ध है —

गर दहम शरह सितमहाय अज़ीज़ॉ 'गालिब',
रस्मे उम्मीद हुमा नाज़े जहॉ बरख़ेज़द ।

जब गजलका निम्नलिखित शेर पढा गया तो किसीने आपत्ति की —

जुज़वे अज़ आलमम व अज़ हमऽ आलम बेशम ।
हचो मुए कि बुतारा ज़मियॉ बरख़ेज़द ।

आपत्ति यह थी कि प्रथम मिसरेमे 'बेश'की जगह 'बेशतर' होना चाहिए था । एक दूसरे व्यक्तिने एतराज़ किया कि दूसरे मिसरेमे 'मुए जमियाँ'की तरकीब गलत है बल्कि पूरा शेर निरर्थक है । एक और साहबने 'हमऽ आलम' की तरकीबपर यह एतराज़ किया कि आलम एक वचन है और 'कतील'के अनुसार हमऽ एकवचनके पहिले नही आ सकता ।

इसी प्रकार एक और गजलके निम्नलिखित शेरपर भी एतराज किया गया—

शोरे अश्के बफिशारे बुने मिज़गॉ दारम ।
ता'नाबर बेसरोसामानिए तूफॉज़दहे ।

इसपर यह आपत्ति हुई कि 'जदह' का प्रयोग गलत है । आपत्ति-कर्त्ताओमे मौलवी अब्दुल कादिर रामपुरी, मौ० करम हुसेन बिलग्रामी, मौ० नेमत अली अजीमाबादी और फारसीके कई आचार्य थे । मिर्जाके समर्थकोमे भी किफायत खाँ ईरानी दूत, मौ० अब्दुलकरीम, मौ० मुहम्मद मोहसिन तथा नवाब अकबर अली मोतवल्ली इमामबाडा हुगली इत्यादि थे । किफायत खाँने पुराने आचार्योके शेर सुनाये जिनमे 'हम आलम' 'हम रोज़' जैसी तरकीबे थी । पर इससे विरोध दबा नही, विरोधियोको सन्तोष नही हुआ । इधर मिर्ज़ाको अपनी फारसीदानीका अभिमान था ।

वह भला क़तीलको प्रमाण क्या मानने लगे थे? जो आदमी फ़ैज़ी-जैसोंकी हँसी उड़ाता था वह क़तीलके उच्चारणके आगे क्यों झुकता? वह तो क़तीलका नाम सुनकर ही चिढ़ गये और बोले—"क़तील कौन? वही फ़रीदाबादका खत्री बच्चा? मैं क्यों उसे सनद मानने लगा?" उनकी इस बातपर और भी हंगामा मचा। विरोधका जो बवण्डर वहाँ उठा वह वहीं तक सीमित न रहा, कलकत्ताके दूसरे लोगोंमें भी फैला। इनके काव्यमें ढूँढ़-ढूँढ़कर दोष निकाले जाने लगे। लोग, राह चलते इनपर, आवाज़े कसते। विरोधकी उग्रताका अन्दाज़ इनके एक पत्रसे, जो इन्होंने अपने मित्रको लिखा था, चलता है—" 'अगर ये लोग जगह पाते तो मेरी खाल खींच डालते।'"

यह हालत दुखदायी थी। कलकत्ता क़तीलके शिष्यों एवं प्रशंसकोंसे भरा था। अन्तमें ग़ालिबने सोचा कि नदीमें रहकर मगरसे वैर करना ठीक नहीं। यह ग़रीबी और मुसीबतका ज़माना था, कलकत्ताके प्रभावशाली लोगोंसे दुश्मनी मोल लेना बुद्धिमत्ता न थी। यों भी ग़ालिब शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। इसलिए उन्होंने एक फ़ारसी मस्नवी 'बादे मुख़ालिफ़' लिखी जिसमें युक्तिपूर्वक आपत्तियोंके जवाब दिये गये, साथ ही गोष्ठीके अधिकारियों एवं क़तीलकी तारीफ़ करके विरोधकी धार कुन्द कर देनेकी कोशिश की। इसमें लिखा—" ख़ुदा गवाह, मुझे एतराज़ोंका ख़ौफ़ नहीं, सिर्फ़ यह ख़याल गुज़रता है कि संयोगवश चन्द दिनोंके लिए यहाँ आ गया हूँ। अगर आपलोगोंको नाराज़ कर लूँगा तो आप ही बादमें कहेंगे कि दिल्लीसे एक 'शोख़चश्म' और 'बेहया' शख़्स आया था जिसने बुज़ुर्गोंसे बेकारका झगड़ा किया। ख़ुदा न करे, मैं अपने वतनकी बदनामीका बाइस हूँ। पर मा'ज़रतख़्वाह हूँ और दरख़्वास्त करता हूँ कि आप यह वाक़आ भूल जायँ।"

कलकत्ता-प्रवासमें मिर्ज़ाने ज़्यादातर फ़ारसीमें काव्य-रचना की, कभी-कभी उर्दूमें भी कह लेते थे।

कलकत्तामे ही इनकी भेट मौ० सिराज अहमदसे हुई जिनका अधिकारि-वर्गमे अच्छा सम्मान था। धीरे-धीरे उनमे अच्छी मित्रता हो गयी।

गुले रा'ना

मिर्जाके जो फारसी पत्र मिलते है उनमे सबसे ज्यादा इन्हीके नाम है। इन्हीके अनुरोधपर, कलकत्ताके दौरानमे, मिर्जाने अपने उर्दू तथा फारसी कलामका एक सकलन 'गुले रा'ना' के नामसे किया। इसकी एक अपूर्ण प्रति स्व० मौलाना हसरत मोहानीके पास थी। इसमे अनेक ऐसे उर्दू शेर है जो बादके उर्दू काव्य-सकलन (दीवान) से अलग कर दिये गये।

मुकदमा हार जानेसे जो असर हुआ होगा उसकी कल्पना की जा सकती है। इनकी समस्त आशाएँ उसीपर लगी थी, वे टूट गयी। यात्रामे

कलकत्ता-यात्राका परिणाम

बहुत अधिक व्यय हुआ, तकलीफे उठानी पडी, कर्ज हो गया। अब कर्जदारोके तकाजे बढ गये। कइयोकी डिग्रियाँ हुई। इनके पास क्या था? ऐसी हालतमे इन्हें जेल जाना ही था पर चूँकि इनकी जान-पहिचान बडो-बडोसे थी इसलिए यह जबतक घरके बाहर न निकलते इनकी गिर-फ्तारी न होती। महीनो यह छिपे घरमे बैठे रहे। यही जमाना था जिसमे इनके कृपालु मित्र फ्रेजरकी हत्या हुई थी और नवाब शम्सुद्दीन उस सम्बन्ध मे पकडे गये थे और बादमे उन्हे फाँसी हुई थी (इसका वर्णन हम आगे करेंगे)। चूँकि इनकी शम्सुद्दीनसे न बनती थी और फ्रेजरसे बनती थी इसलिए बहुतसे लोगोकी यह धारणा हुई कि इसीने जासूसी करके नवाबको पकडवाया है। दिल्लीवाले नवाब शमसुद्दीनको बहुत मानते थे इसलिए लोग इनकी जानके ग्राहक हो गये। एक ओर अर्थकष्ट, दूसरी ओर प्राण-भय, यह समय इनके लिए बडा बुरा था।

इसलिए व्यावहारिक दृष्टिसे तो कलकत्ता-यात्रा निराशाजनक एव निरर्थक रही पर इनकी बौद्धिक सम्पदा और अनुभव-ज्ञानमे उससे खूब वृद्धि हुई। नये अनुभव हुए, गुर्बतमे नये नये आदमियोसे परिचय हुआ।

फिर उस जमानेमें कलकत्ता भारतमें ब्रिटिशराज नया-नया ही उग रहा था। वहाँ एक नई सभ्यता उठ रही थी, औद्योगिक सभ्यताकी भूमिका लिखी जा रही थी उससे इनका साक्षात् हुआ। इन्हें वैज्ञानिक आविष्कारों-के प्रत्यक्ष देखनेको मिले। जगमगाती बत्तियाँ, सेवाके लिये (नलोंमें) दौड़ता जल, इसी तरहके वाष्पदेवतासे इनका परिचय हुआ। इनसे उनके मानसिक निर्माणपर काफी असर पड़ा। फिर लखनऊमें नासिखके नेतृत्वमें ज़बानकी तराश-ख़राश और सफाईकी जो कोशिशें हो रही थीं उन्हें देखने तथा मार्गमें अनेक विद्वानोंसे मिलनेके बाद इनका दृष्टिकोण स्पष्ट और विशद होता गया। यात्राके पहिले और बादकी रचनामें स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है। बादका काव्य अधिक पुष्ट है।

गालिबने जो मुकदमा दायर किया था उसमें पाँच प्रार्थनाएँ थीं—

१ ४ मई १८०६ के आदेशानुसार मुझे और मेरे ख़ान्दानके दूसरे व्यक्तियोंको दस हज़ार रुपये सालाना मिलना चाहिए था। नवाब लोहारू पाँच हज़ार देते हैं और इनमेंसे भी दो हज़ार एक पराये व्यक्ति ख्वाजा हाजी या उसके वारिसोंको दे दिया जाता है जिसका हमारे ख़ान्दानसे कोई सम्बन्ध नहीं। भविष्यमें दस हज़ार मिलनेकी आज्ञा दी जाय।

ग़ालिबका दावा

२ मई १८०६ से लेकर अब तक हमें दस हज़ार सालानासे जितना कम मिला है वह सारा बकाया दिलाया जाय। (गालिबके हिसाबसे यह रक़म उस समय तक डेढ़ लाखके लगभग होती थी।)

३ हमारी पेंशनमें किसी पराये व्यक्तिका हिस्सा नहीं होना चाहिए। (मतलब ख्वाजा हाजीके बेटोंको जो पेंशन मिल रही है वह बन्द कर दी जाय)।

४ आगेसे मेरी पेंशन नवाब शम्सुद्दीन ख़ाँकी जगह अंग्रेज़ी खजानेसे सीधी दी जाया करे।

५ सम्मान-स्वरूप मुझे खिताब, खिलअत और दरबारका ममत्र दिया जाय।

फैसला हो जानेपर भी इन मांगोपर वह डटे रहे और उसके लिए कोशिशे करते रहे। इधर इनकी ये मांगें थी, उधर लोहारूकी जायदादके बारेमे खुद भाइयोमे झगडा था। पहिले लिखा जा चुका है कि नवाब अहमदबख्शखांकी वसीयतके

लोहारूका झगडा

अनुसार फीरोजपुर-झुर्काका इलाका शम्सुद्दीन अहमद खां एव पर्गना लोहारू उनके दोनो छोटे भाइयो—अमीनुद्दीन अहमदखां एव जियाउद्दीन अहमदखां के हिस्सेमे आया था। पिताकी मृत्यु होते ही शम्सुद्दीनखांने इस बंटवारेके विरुद्ध आवाज़ उठाई और कहा कि ज्येष्ठ पुत्र होनेके नाते सारी जायदाद-का अधिकार मुझे मिलना चाहिए, दूसरी सन्ततिको, ज्यादेसे ज्यादा, वृत्ति दिलाई जा सकती है। उन्हे एक और बहाना भी मिल गया। बात यह थी कि बडे होनेके कारण लोहारूका इन्तज़ाम नवाब अमीनुद्दीनखां के हाथ था। प्रबन्ध उन्हे सौंपते समय एक शर्त्त यह रखी गयी थी कि जायदादकी आमदनीमेसे ५२१० रुपये सालाना सरकारी खजानेमे छोटे भाई नवाब जियाउद्दीनके व्ययके लिए जमा कर दिया जाया करे। इसकी ओर ध्यान न दिया गया इसलिए शम्सुद्दीनखांका पक्ष प्रबल हो गया। दिल्लीके रेजीडेण्ट मि० मार्टिनने शम्सुद्दीनखांका समर्थन किया और अन्तमे, सितम्बर १८३३ मे लोहारूका प्रबन्ध भी शम्सुद्दीनखांको इस शर्त्तपर दे दिया गया कि वह अपने दोनो भाइयोको गुजारेके लिए २६ हजार रुपये सालाना देते रहेंगे।

मार्टिनके बाद विलियम फ्रेजर नये रेजीडेण्ट होकर आये। आरम्भमे तो इनकी भी नवाब शम्सुद्दीनखांसे अच्छी मित्रता थी पर बादमे किसी बात से दोनोमे विरोध हो गया। फ्रेजर लोहारू पर्गना शम्सुद्दीनखांको दिये जानेके पक्षमे न थे। उन्हे यह मांग अन्यायपूर्ण लगी इसलिए उन्होने पूरी चेष्टा की कि अंग्रेज़ सरकार इस प्रार्थनाको ठुकरा दे किन्तु फैसला शम्सुद्दीन खांके पक्षमें हुआ। इससे दोनोके बीच गांठ पड गयी। फैसलेके बाद भी

फ्रेजरने इनके विरुद्ध सरकारको लिखा और नवाब अमीनउद्दीनखाँको सलाह दी कि वह कलकत्ता जाकर प्रयत्न करें। उसकी सलाह मानकर अमीनुद्दीन खाँ सितम्बर १८३४ में कलकत्ता गये। गालिबने भी उन्हें अपने परिचितोंके नाम परिचयपत्र दिये। इन प्रयत्नोंके फलस्वरूप पहिला हुक्म मंसूख हो गया और लोहारू दोनों भाइयोंको पुनः मिल गया। इससे शम्सुद्दीनखाँ और फ्रेजरकी अनबन शत्रुतामें परिणत हो गयी। इस फ़ैसलेसे गालिबको भी खुशी हुई। वह इस मामलेमें बराबर दोनों भाइयोंके साथ रहे।

फ्रेजरका कत्ल और शम्सुद्दीनखाँको फांसी

२२ मार्च १८३५ को फ्रेजरने शामका खाना राजा किशनगढ़के यहाँ दरियागंजमें खाया। वहाँसे वापिस होनेमें देर हो गयी। फ्रेजर बाड़ा हिन्दूरावमें एक कोठीमें रहते थे। जब रात ग्यारहके लगभग वह अपने मकानको लौट रहे थे तो मकानसे थोड़ी दूर पहिले किसीने उन्हें गोली मार दी। उस समय तो हत्यारा बच निकला लेकिन फौरन तमाम नाके बन्द कर दिये गये। जांच होने लगी। पुलिसने शम्सुद्दीनखांके दारोगा शिकार करीमखांको गिरफ्तार किया। बादमें नवाबका एक और नौकर वनायलखां भी पकड़ा गया। करीमखांके बयानपर मेवाती अनिया सिकन्दराबादमें पकड़ा गया और सरकारी गवाह बन गया। उसके बयानपर नवाब देहली बुलाये गये और पुलिसके पहरेमें रखे गये। बादमें मुकदमा चला और १८ अक्टूबर १८३५को गुरुवारके दिन प्रातःकाल कश्मीरी दरवाजेके बाहर उन्हें २५ सालकी आयुमें फांसी दी गयी।*

---

*इस जमानेमें जान लारेंस दिल्लीमें मजिस्ट्रेट थे और उन्होंने पता लगाकर वनायलखांको नवाबकी कोठीमें गिरफ्तार किया था। यह लारेंस ही बादमें लार्ड लारेंस हो गये जिनकी जीवनी बासवर्थ स्मिथने लिखी है। इस जीवनीमें क़त्लकी घटनापर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। इसके आधारपर स्व० मौलाना अब्दुलकलाम आज़ादने लिखा है—"स्मिथके

नवाब शम्सुद्दीनखाँकी फाँसी होने पर गालिबको आन्तरिक मन्तोप

बयानसे मालूम होता है कि लारेसको कोठीके भीतरी भागमे एक ढोल मिला था, इससे कागजके पुर्जे निकले थे। उन्हे जब जोडकर पढा गया तो यह इबारत निकली—'तुम जानते हो कि मैने तुम्हे देहली क्यो भेजा है ? बार-बार लिख चुका हूँ, अब ताखीर न करना।' बसायलखाँपर लारेस-को शुबहा इसलिए हुआ था कि उसने एक सुरग घोडेको, जो मेहनमे बँधा था, बीमार जाहिर किया था मगर जब लारेसने तोबडा उठाकर मुँहसे लगा दिया तो वह फौरन खाने लगा। नीज उसके सुमो पर भी गैरमामूली निशानात मिले थे। नवाब जमीर मिर्जा कहते थे कि खत के पुर्जे तहखानेसे मिले थे।

"नन्दकुमारके बाद यह दूसरी फाँसी थी जो एक हिन्दुस्तानी रईसके लिए अग्रेजी कानूनको तजवीज करनी पडी। चूँकि शुमाली हिन्दमे इस वक्त तक कोई वाकआ ऐसा नही हुआ था इसलिए हुकूमतको गैरमामूली एहतियातोसे काम लेना पडा। कलकत्तासे रेजीडेण्ट देहलीको लिखा गया था कि इस बारेमे शाहे देहलीसे एक फर्मान हासिल करना चाहिए। नीज उलमाए शहरका भी एक महजर तैयार कराना चाहिए। सुम्सियतके साथ यह बात अवामको दिखानी चाहिए कि अहकामे शरअकी रूसे भी फ्रेजरका कस्सास जरूरी है और इस बाबमे अग्रेजी फैसला फैसलएशरअ-के खिलाफ नही है। बादशाहने बडी कोशिश करके बाज उलमाको, जो किलेसे बाबस्ता थे, इसपर आमादा किया कि तहरीर पर दस्तखत करदे और महजरकी बिना पर खुद भी एक शक्का लिखकर रेजीडेण्टके हवाले कर दिया। यह शक्का और महजर तमाम मुल्कमे शाया किया गया था और रेजीडेण्टो और पोलीटिकल एजेण्टोमे जरिये तमाम रियासतोके दर-बारोमे पहुँचाया गया था।

"नवाब जमीर मिर्जा कहते थे कि जब शम्सुद्दीनको फाँसीके लिए ले

हुआ क्योंकि उनका एक प्रधान शत्रु सदाके लिए समाप्त हो गया। 'ग़ालिब' के जो पत्र उन्होंने लिखे उनमें यह सन्तोष स्पष्ट व्यक्त हुआ है।

जा रहे थे तो उन्होंने रास्तेमें कुंजड़ेकी दुकानपर करेमू देखे। जो अफ़सर पालकीके साथ था उससे कहा—"मेरा जी चाहता है करेमू खाऊँ।" उसने पालकी रुकवाई और करेमू खरीदकर सामने रख दिये। फिर जब पालकी चली तो वह खाते जाते थे और छिलके बाहर फेंकते जाते थे।

"नवाब अमीरुद्दीन मरहूम कहते थे कि जब देहलीसे तलबी हुई और मालूम हुआ कि उन पर पूरी तरह शुबहा हो चुका है तो उनके खान्दान के तमाम आदमी देहली जानेके मुख़ालिफ़ थे। यह कहते थे कि रातोंरात निकलकर सिक्खोंके इलाक़ेमें पहुँच जायें। एक पुराना ऊँटनी सवार अहमदबख़्शके ज़मानेका बड़ा वफ़ादार आदमी था। वह पिछले पहर आया और कहने लगा—तुम्हारे वालिद कहते थे कि तुम्हारे बुजुर्ग ख़ुरासानके मुल्कसे आये थे। मेरी ऊँटनी सौ कोससे इधर दम लेनेवाली नहीं। मेरे कपड़े पहिन लो और हमयानी कमरसे बाँधकर निकल चलो। फिरंगियो पर भरोसा न रक्खो। वह तुम्हें कभी नहीं छोड़ेंगे।

"मगर शम्सुद्दीनको अपने ख़ान्दान और अपने अमीराना अलायक़का ग़र्रा था। वह समझते थे कि मेरे ख़िलाफ़ कुछ होनेवाला नहीं। दस सवार साथ लेकर पालकीमें रवाना हो गये। जब शहरके करीब पहुँचे तो एक सवारको आगे भेजवा दिया। रेज़ीडेण्ट और हुक्काम मौके पर मौजूद थे। कर्नल स्किनरने (जिसकी इनसे गाढ़ी दोस्ती थी) आगे बढ़कर कहा कि नवाब साहब हथियार हवाले कर दीजिए और साहब कलाँ बहादुर (रेज़ीडेण्ट) पर भरोसा रखिए। यह आपके लिए जो कुछ कर सकेंगे, करेंगे। उन्होंने तलवार हवाले कर दी। इस पर मजिस्ट्रेट आगे बढ़ा और कहा—आप सरकारके हुक्मसे गिरफ़्तार किये जाते हैं। इस वक्तसे अपनेको क़ैदी तसव्वुर कीजिए।

"अब इनकी आँखें खुली लेकिन वक्त निकल चुका था। फिर जब

नवाव शम्सुद्दीनकी फाँसीके वाद फीरोजपुर-झुर्काकी रियासत ज़ब्त कर ली गयी और मिर्जाकी पेंशन जो वहाँसे मिलती थी, अब सीधे दिल्ली कलेक्टरीसे मिलने लगी। सुअवसर देखकर मिर्जाने फिर एक विस्तृत प्रार्थनापत्र, अग्रेज सरकारकी सेवामे, नवावकी ज़ब्त जायदादसे पूरा हक पानेके लिए, पेश किया। १८ जून १८३६को पश्चिमोत्तर प्रदेशके लेफ्टिनेण्ट गवर्नरने फैसला किया कि जो ६२॥) मासिक मिलते है वही ठीक है और भविष्यमें भी वह इससे ज्यादा पानेके अधिकारी नही है। इसपर उन्होने गवर्नर-जेनरलके पास अपील की। पर वहाँसे भी यही फैसला कायम रहा। सब ओरसे निराश हो मिर्जाने १४ नवम्बर १८३६ को फिर दर्खास्त दी कि मेरा मुकदमा सदर दीवानी अदालत कलकत्ताके सामने रखा जाय और यदि यह सम्भव न हो तो निर्णयके लिए डाइरेक्टरोके पास विलायत भेजा जाय। ५ दिसम्बर १८३६ को उन्हे उत्तर मिला कि मुकद्दमेके सब कागज़ात विलायत भेज दिये जायँगे और वे १० मई १८३७ को 'लावेली एलायस' नामक जहाजकी डाकसे विलायत भेज दिये गये।

सीधी पेन्शन और नया प्रार्थनापत्र

इससे गालिबको बडी खुशी हुई और उन्होने एक फारसी कता भी लिखा और आशान्वित होकर पुन दर्खास्त दी कि मई १८०६ से आजतक जितना हमें दस हजारके हिसाबसे कम मिला है और जो दो लाख तीन हज़ार होता है, वह उस २ लाख ६० हज़ार की रकममेंसे दे दी जाय जो नवाब शम्सुद्दीनने अपनी फाँसीके पूर्व अग्रेज़ी खजानेमें जमा कराई थी। दूसरे हमे ३ हज़ार सालाना पेंशनका एप्रिल १८३५ तक का बकाया उस जायदादसे दिलवाया जाय जो नवाब फीरोज़पुर छोडकर मरे है और तीसरे जब तक डाइरेक्टरोका फैसला

अन्तिम निर्णय

मौत सामने आ गयी तो सिपाहीज़ादा था, जवाँमर्दाना तैयार हो गया।"

—'नक्शे आज़ाद' (२६४–२६७)

विलायतसे नहीं आ जाता इन्हें तीन हजार सालाना नियमित रूपसे मिलता रहे। पर ग़ालिबको मानव प्रकृतिका अच्छा ज्ञान नहीं था, वह समझते थे कि अंग्रेज खुशामदसे शायद मेरे पक्षमें फिरे आ जाते हैं। बहरहाल ये सब आवेदन-निवेदन निरर्थक हुए और १८४२ के आरम्भमें विलायतसे अन्तिम फैसला भी आ गया कि जो निर्णय हिन्दुस्तानमें हो चुका है वही ठीक है। पर वाह रे मिर्ज़ाकी आशावादिता—इतने पर भी उन्होंने हिम्मत न हारी और २९ जुलाई १८४२ को इस फैसलेके विरुद्ध एक अपील, मेमोरियलके रूपमें, महारानी विक्टोरियाके पास गवर्नर-जेनरलके जरिये भेजी। पर इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला और १८४४में वह बिल्कुल निराश और पस्त हो गये।

यहाँ यह ख्याल रखना चाहिए कि मुकदमा इन्होंने १८२८ में दायर किया था और यह अन्तिम फैसला १८४४में, १६ साल बाद, हुआ। उन जमानेमें, जब यातायातके साधन दुर्लभ थे, उनका कितना खर्च इसपर पड़ा होगा। जो कुछ उनके पास था वह भी इस मुकदमे में समाप्त हो गया। महाजनोंके हजारों रुपये कर्ज हो गये जो उन्होंने इसी विश्वासपर लिये थे कि मुकदमेके फैसलेसे हमें एक बड़ी रकम मिल जायगी। १८३५ में ही इनपर ४०–५० हजारका कर्ज हो गया था। निर्णय विरुद्ध होनेसे कर्जके बोझसे ऐसे दबे कि जिन्दगी भर उभर एवं उबर नहीं सके। जिन्दगी क़र्ज चुकाते-चुकाते बीती फिर भी न चुक सका। कठिनाइयोंके कारण गृहस्थ जीवन पहलेसे ही दुःखद था, अब तो उसमें बड़ी जड़ता और निराशा आ गयी और उन्होंने भाग्यके आगे कन्धा डाल दिया।

प्रार्थनापत्रमें जिन पाँच बातोंके लिए प्रार्थना की गयी थी उनमें पहिली तीन पूर्णतः अस्वीकृत हो गयी, चौथी फीरोजपुर-झुर्काकी जब्तीसे स्वयं पूरी हो गयी और इन्हें पेंशन दिल्ली कलेक्टरीसे सीधे मिलने लगी। रही पाँचवीं बात सो उसमें अंग्रेजोंको कोई विशेष असुविधा न दीख पड़ी इसलिए इन्हें तमाम सरकारी दरबारोंमें कुर्सी, सप्तवस्त्री खिलअत और

[illegible] लगी
[illegible] गिर गया था,
[illegible] ([illegible]) मिला। जो
[illegible] भी उसम और कुछ तो
[illegible] सरकारी दरबारोंमें
[illegible] खिलअत पानेका अधिकार
[illegible]

गालिबकी जीवन-भर अंग्रेजोंपर बड़ी आस्था रही इसलिए उन्होंने जीवनका इतना लम्बा समय इस मुकदमेमें लगा दिया। उनका ध्यान मुख्यत इसी ओर था। पर ऐसा नहीं कि गालिबने और जगहसे सहायता पानेके प्रयत्न न किये हों।

सलीम और जफर

फ्रेजरकी हत्याके कुछ पहिलेसे मिर्जा शाही दरबारमें प्रवेश पानेके लिए प्रयत्नशील थे। यह वह जमाना था जब अकबरशाह द्वितीय दिल्लीके तख्तपर थे, बहादुरशाह 'जफर' युवराज थे। जफरकी मानसिक उलझनोंके कारण अकबरशाह उनकी जगह शाहजादा सलीमको युवराज बनाना चाहते थे। १८३४में उसने इसके लिए काफी कोशिश की। गालिब बड़ी उधेड़बुनमें थे कि किसका साथ दिया जाय। उन्होंने हिसाब लगाया—'जफर' पर 'जौक'का असर है, वह उनका शिष्य है इसलिए अगर सलीमको युवराज पद मिल जाय और वह आगे चलकर बादशाह हो तो मेरे लिए सुअवसर आ सकता है। इसलिए वह पहिले बादशाह और सलीमकी ओर झुके। उन्होंने 'शह व शहजादा'की तारीफमें एक कसीदा लिखा जिसमें सलीमकी प्रशसा इन शब्दोंमें की—

ज़हे मुनासबते तबअ शाहज़ादा सलीम।
व फ़ैज़े तर्बियते पादशाहे हफ्त अक़लीम।

पर अकबरशाहकी एक न चली और गालिबके अनुमानके विरुद्ध

इसके बाद अकबरशाहने ग़ालिबको दरबारमें कोई जगह न दी। १८३७में अकबरशाहकी मृत्यु हो गयी। बहादुरशाह 'ज़फ़र' गद्दीपर बिठाये गये। पता नहीं, 'ज़फ़र'को ग़ालिबकी इन बातोंका कुछ ख़्याल था या नहीं पर ग़ालिब खुद उनके दरबारमें दाख़िल थे और 'ज़फ़र'की शानमें कसीदे भी हों उन्होंने उनके अपनी कसीदोंमें अपने पद के लिए बार-बार इसकी प्रार्थना की है।

इधर दिल्लीमें अकबरशाहकी मृत्यु हुई, बहादुरशाह गद्दीपर बैठे, उधर लखनऊमें अवध-नरेश नसीरुद्दीन हैदरका देहान्त हो गया और आसफ़ुद्दौलाकी लखनऊकी ओर दृष्टि गयी पर कहीं नहीं मिली। उन्होंने अमजदअलीशाहकी तारीफ़में भी कसीदा लिखकर भेजा पर शायद वह दरबारमें पढ़ा ही नहीं गया। इन कसीदोंमें भी स्तुति एवं प्रशंसाके बाद अपनी विवशताका रोना रोया है—

वा मन कि नाबे नाज़ न को वाँ नदाश्तम।
यककर्द बद कि औरां ज़फ़ा कर्द रोज़गार।

और भी—

गुफ़्तम बअक़्ले कुल के नदानम बग ए मन,
हुक्मे दवामे हब्स चरा कर्द रोज़गार।
गुफ़्त ऐ मिताअ: मोहनः ज़ागो ज़ग़न नये,
कौरा गिरफ़्तो बाज़ रिहाकर्द रोज़गार।
तू बुलबुल! हमी के बदाम आमदी तरा,
अन्दर क़फ़स ज़बह् नव्राकर्द रोज़गार।

सचमुच ग़ालिबके लिए यह समय बड़ी कठिनाइयों एवं मुसीबतोंका था। पर सब तरफ़से निराश होनेका एक अच्छा परिणाम भी हुआ कि 'मयख़ानए आर्ज़ू' इनका ध्यान काव्य और साहित्यकी ओर अधिकाधिक खिंचता गया। निराशासे भरी ज़िन्दगीके रेगिस्तानमें वही एक पुण्योद्यान था जहाँ चन्द लमहे शान्ति एवं

ठण्डकमे वीन मरते थे। ज्यो-ज्यो नवावी एव जागीरदारीके सपने मिटते गये त्यो-त्यो काव्य, जो पहिले मनोरजन एव दिलवहलावकी चीज था, जीवन-निधि-सा होता गया। १८३५मे उन्होने फारसी पद्य-गद्यका सकलन 'मयखानए आर्जू'के नाममे तैयार किया। १८३७मे इसका अन्तिम अश लिखा गया। राय छजमलके हाथकी लिखी इसकी एक प्रतिलिपि खुदावख्श लाइब्रेरी पटनामे मौजूद है। जैसे भूपाली प्रतिसे उनकी उर्दू शायरीके वालपनपर प्रकाश पडता है वैसे ही इस पुस्तकमें उनकी प्रथम चालीस सालकी फारसी शायरीकी झलक दिखाई देती है। इसमे पद्य और गद्य दोनो है। वादमे इसके नस्र (गद्य) को अलग करके और दूसरे कुछ पत्र जोडकर मिर्जा अलीवख्शने 'पच आहग' वनाया।

इन निराशाकी घडियोमे इनका सम्बन्ध सरसय्यद अहमद खाँ और उनके भाई सय्यद मुहम्मदखाँसे वढता गया। इन दोनो भाइयोके छापेखाने 'सय्यदुत्तावअ'मे ही इनका उर्दू (रेखता) दीवान अक्तूवर १८४१मे निकला। फारसी दीवान ४ साल वाद प्रकाशित हुआ। इससे इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी।

पर अभी तक जागीरदारीके सपने पूरे तौरपर न टूटे थे। रस्सी जल गयी थी पर ऐंठन वाकी थी। १८४२ ई० मे सरकारने दिल्ली कालेजका नूतन सगठन और प्रवन्ध किया। उस समय मि० टामसन भारत-सरकारके सेक्रेटरी थे।

प्रोफेसरीसे इन्कार

यही वादमें पश्चिमोत्तर प्रदेशके लेफ्टिनेण्ट गवर्नर हो गये थे और मिर्जा गालिवके हितैपियोमें थे। वह कालेजके प्रोफेसरोके चुनावके लिए दिल्ली आये। उस समय तक वहाँ अरवीकी शिक्षाका तो अच्छा प्रवन्ध था और मौ० ममलूकअली अरवीके प्रधान शिक्षक थे जो अपने विषयके अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे पर फारसीकी शिक्षाका कोई सन्तोषजनक प्रवन्ध न था। टामसनने इच्छा प्रकट की कि जैसे अरवीकी शिक्षाके लिए योग्य अध्यापक है वैसे ही फारसीकी शिक्षा देनेके लिए भी एक विद्वान् अध्यापक

रखा जाय। इस मुआइनेके समय सदरस्सदूर मुफ्ती सदरुद्दीनख़ाँ 'आजुर्दा' भी मौजूद थे। उन्होंने कहा—दिल्लीमें तीन साहब फ़ारसीके उस्ताद माने जाते हैं। १ मिर्ज़ा असदउल्लाख़ाँ 'ग़ालिब', २ हकीम मोमिनख़ाँ 'मोमिन' और ३ शेख इमामबख्श 'सहबाई'। टामस साहबने प्रोफेसरीके लिए सबसे पहिले मिर्ज़ा ग़ालिबको बुलवाया। अगले दिन वह पालकीपर सवार होकर उनके डेरेपर पहुँचे और पालकीसे उतरकर दरवाजेके पास इस प्रतीक्षामें रुक गये कि अभी कोई साहब स्वागत एवं सम्मर्थनाके लिए आते हैं। जब देर हो गयी, साहबने जमादारसे देरका कारण पूछा। जमादारने आकर मिर्ज़ासे दरियाफ्त किया। मिर्ज़ाने कहला दिया कि चूँकि साहब परम्परानुसार मेरा स्वागत करने बाहर नहीं आये इसलिए मैं अन्दर नहीं आया। इसपर टामसन साहब स्वयं बाहर निकल आये और बोले—"जब आप दरबारमें बहैसियत एक रईस या कविके तशरीफ़ लावेंगे तब आपका स्वागत-सत्कार किया जायगा लेकिन इस समय आप नौकरीके लिए आये हैं इसलिए आपका स्वागत करने कोई नहीं आया।" मिर्ज़ाने कहा—"मैं तो सरकारी नौकरी इसलिए करना चाहता हूँ कि ख़ान्दानी प्रतिष्ठामें वृद्धि हो, न कि जो पहिलेसे है उसमें भी कमी आ जाय और बुज़ुर्गोंकी प्रतिष्ठा भी खो बैठूँ।" टामसन साहबने, नियमोंके कारण, विवशता प्रकट की तब ग़ालिबने कहा—'ऐसी मुलाज़िमतको मेरा दूरसे ही सलाम है' और कहारोंसे कहा—वापिस लौट चलो।* बादमें टामसन साहबने दूसरा प्रबन्ध किया।†

---

* 'आबेहयात' (आज़ाद) पृ० ५०७–५०८।

† इसके बाद टामसनने हकीम मोमिनको बुलवाया। उन्होंने कहा कि जो वेतन (१०० रु० मासिक) ममलूकअलीको मिलता है उससे कम न लूँगा। साहब ४०) मासिकसे ज्यादा देनेको तैयार नहीं थे। इसलिए उन्होंने भी इन्कार कर दिया। इमामबख्शकी जीविकाका कोई साधन

मिर्ज़ाके इस रवैयेसे उनके स्वभावके एक पहलूपर प्रकाश पडता है। इस समय वह बडे अर्थकष्टमे थे फिर भी उन्होने निरर्थक वातपर नौकरी छोड दी। आश्चर्य तो यह है कि जन्मभर सरकारी ओहदेदारो एव अंग्रेज़ अफसरोकी चापलूसी एव अत्युक्तिभरी स्तुतिमे ही वीता(जैसा कि उनके लिखे कसीदोसे प्रकट है) पर ज़रा-सी और सारहीन वातपर वह अड गये। इससे यह भी ज्ञात होता है कि इस समय उनमे हीनताका भाव (इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स) वहुत वढा हुआ था और वह तुनुकमिजाज और क्षणिक भावनाओकी आंधीमे उड जानेवाले हो गये थे।

इधर चिन्ताएँ वढती गयी, जीवनकी दुश्वारियाँ वढती गयी, उधर वेकारी, शेरोसखुनके सिवा कोई दूसरा काम नही। स्वभावत निठल्लेपनकी घडियाँ दूभर होने लगी। चिन्ताओसे पलायनमे इनकी सहायक एक तो थी शराव, अव जुएकी आदत भी लग गयी। उन्हे शुरूसे शतरज और चौसर खेलने की आदत थी। अक्सर मित्र-मण्डली जमा होती और खेल-तमाशेमे वक्त कटता। कभी-कभी वाजी वदकर खेलते थे। गदरके पहिले उन्हे वडा अर्थकष्ट था। सिर्फ सरकारी वृत्ति और किलेके पचास रुपये थे। पर आदतें रईसोकी थी इसलिए सदा ऋणभारसे दवे रहते थे। इस ज़मानेकी दिल्लीके रईसज़ादो और चांदनी चौकके जौहरियोके वच्चोने मनोरजनके जो साधन ग्रहण कर रखे थे उनमे एक जुआ भी था। गजीफा आम तौरपर खेला जाता था। इनके साथ उठते-वैठते मिर्ज़ाको भी लत लग गयी। धीरे-धीरे नियमित जुआवाज़ी शुरू हो गयी। जुएके अड्डेवालेको सदा कुछ न कुछ मिलता है फिर चाहे कोई जीते या हारे। इससे दिल वहलता था,

जुएकी लत

न होनेके कारण उन्होने यह कार्य स्वीकार कर लिया। वादमे उन्हे पचास मिलने लगे।—मरहूमे देह्ली कालेज (मौ० अव्दुलहक) पृ० १५१–१५३।

वक्त कटता था और कुछ न कुछ आमदनी भी हो जाती थी। आजाद लिखते हैं—"यह खुद भी खेलते थे और चूंकि अच्छे खिलाडी थे इसलिए इसमें भी कुछ न कुछ मार ही लेते थे।"

अंग्रेजी कानूनके अनुसार जुआ जुर्म था पर रईसोंके दीवानखानोंपर पुलिस उतना ध्यान न देती थी जैसे शहरोंमें होनेवाले ब्रिजपर आज भी ध्यान नही दिया जाता। कोतवाल एवं बड़े अफसर रईसोंसे मिलते-जुलते रहते और परिचयके कारण भी ज्यादा सख्ती न करते थे। गालिबकी जान-पहिचान भी कोतवाल तथा दूसरे अधिकारियोंसे थी इसलिए इनके खिलाफ न तो किसी तरहका सुबहा किया जाता था, न कानूनी कार्रवाइयोंका अन्देशा था।

पर सन् १८४५ के लगभग आगरासे बदलकर एक नया कोतवाल, फैजुलहसन, आया। इनको काव्यसे कोई अनुराग न था इसलिए गालिबपर मेहरबानी करनेकी कोई बात उसके लिए न हो सकती थी। फिर यह सख्त आदमी

गिरफ्तारी

था। आते ही इसने सख्तीसे जांच शुरू की और जासूस लगा दिये। कई दोस्तोंने मिर्जाको चेतावनी दी कि जुआ बन्द करो पर वह लोभ एवं अहंकारसे अन्धे हो रहे थे, उन्होने पर्वा न की। वह समझते थे कि मेरे विरुद्ध कोई कार्रवाई नही हो सकती। एक दिन कोतवालने छापा मारा। और लोग तो पिछवाडेसे निकल भागे, मिर्जा धर लिये गये। मिर्जाकी गिरफ्तारीके पूर्व चन्द जौहरी पकडे गये थे पर रुपया खर्च करके बच गये थे, मुकदमे तककी नौबत न आई थी। मिर्जाके पास रुपया कहाँ था? हाँ, मित्र थे। उन्होने बादशाह तकसे सिफ़ारिश कराई किन्तु कुछ नतीजा न निकला। तब घरमें बैठ रहे। जब लोगोंको मिर्जाकी रिहाईकी तरफसे निराशा हो गयी, न केवल दोस्तो और साथ उठने-बैठने वालोंने बल्कि अजीजोंने भी एक दम आँखें फेर ली और इस बातमें लज्जाका अनुभव करने लगे कि मिर्जाके मित्र या सम्बन्धी समझे जायें। मौ० अबुलकलाम

आज़ाद लिखते है—"इस बाबमे लोहारूके खान्दानका जो तर्जअमल रहा वह निहायत अफसोसनाक था। इस खान्दानका कोई फर्द न तो इस जमानेमे मिर्जासे मिला और न किसी तरहकी अयानत की। इतना ही नही बल्कि जब आगराके एक अखबारने मिर्ज़ाका ज़िक्र करते हुए उन्हे खान्दान लोहारूका रिश्तेदार जाहिर किया तो यह बात उन लोगोको बहुत बुरी लगी और उसका सशोधन कराके लिखवाया गया मिर्ज़ा साहबसे खान्दान लोहारूका कोई नस्बी ताल्लुक नही है, महज दूरका सबबी ताल्लुक है।"★ इन बातोका भी मिर्ज़ापर बडा प्रभाव पडा। मित्रोमे केवल नवाब मुस्तफाखाँ 'शेफ्ता'ने हर कदमपर इनका साथ दिया। खबर मिलते ही वह एक-एक हाकिमसे जाकर मिले और मिर्ज़ाकी रिहाईकी कोशिश की। फिर जब मुकदमा चला और बादमे उसकी अपील की गयी तब भी उसका तमाम खर्च खुद उठाया। जबतक मिर्ज़ा कैद रहे हर दूसरे दिन जाकर उनसे मिलते थे।

अज़ीज़ो और दोस्तोकी तोताचश्मी

इस मामलेमे मिर्जाका दोष भी कुछ कम न था। मित्रोकी चेतावनीके बावजूद वह न सँभले। इसके पूर्व भी एक बार इस जुर्ममे मिर्जाको १०० रु० जुर्माना और जुर्माना न देनेपर चार मास कैदकी सजा हुई थी और यह चन्द दिनो बाद जुर्माना अदा करके छूटे थे। इसपर भी सावधान न हुए। दोबारा १८४७ मे जुएके जुर्ममे गिरफ्तार हुए। गिरफ्तारीकी घटना भी दिलचस्प है। कोतवालने बडी होशयारीसे छापा मारा। मकान घेर लेनेके बाद इत्तिला करवाई कि जनानी सवारियाँ आई है। इस कारण किसीने आपत्ति नही की। अन्दर जानेपर भेद खुला। लोगोने विरोध किया। इसपर पुलिसने भी सख्ती की। मिर्ज़ा जुआखाना चलानेके जुर्ममे गिरफ्तार हुए। मुकदमा

सज़ा

★ नक्शे आजाद पृ० २८२–२८३।

कुँवर वज़ीर अलीख़ाँ मजिस्ट्रेटकी अदालतमें पेश हुआ। वहाँ सज़ा हुई और अपीलमें भी बनी रही। ६ मास कठोर कारावास और दो सौ जुर्मानाका दण्ड मिला। जुर्माना न देनेपर ६ मास और। जुर्मानाके अलावा ५०) अधिक देनेपर श्रमसे मुक्ति।†

जेलमें

जेलमें खाना-कपड़ा घरसे जाता था। जो चाहे जब मिल सकता था फिर भी इस सज़ा और क़ैदने इनके हृदयपर गहरी चोट लगी। 'यादगारे ग़ालिब' में मौलाना हालीने इनका एक ख़त उद्धृत किया है जिससे इनकी मनोदशाका पता लगता है। इसमें वह लिखते हैं —

"मैं हर एक काम ख़ुदाकी तरफ़से समझता हूँ और ख़ुदासे लड़ा नहीं जा सकता। जो कुछ गुज़रा उसके नंग[1] से आज़ाद और जो कुछ गुज़रनेवाला है उसपर राज़ी हूँ। मगर आरज़ू करना आईने अबूदियत[2] के ख़िलाफ़ नहीं है। मेरी यह आरज़ू है कि अब दुनियामें न रहूँ और रहूँ तो हिन्दोस्तानमें न रहूँ। रूम है, मिस्र है, ईरान है, बग़दाद है। यह भी जाने दो, ख़ुद काबा आज़ादोंकी जाएपनाह[3] आस्तानए रहमतुल आलमीन[4], दिलदारोंकी तकियागाह[5] है। देखिए वह वक़्त कब आयेगा कि दरमांदगी[6] की क़ैदसे, जो इस गुज़री हुई क़ैदसे ज़्यादा जानफ़र्सा[7] है, नजात[8] पाऊँ और बग़ैर इसके कोई मंज़िले मक़सूद क़रार दूँ, सरब सेहरा निकल जाऊँ। यह है जो मुझपर गुज़रा और यह है जिसका मैं आरज़ूमन्द हूँ।"

---

† 'देहलीका आख़री साँस' पृ० १७४ तथा अहसनुल अख़बार बम्बई २ जुलाई १८४७।

१ बदनामी, लज्जा, २ उपासना-सिद्धान्त, ३. आश्रयस्थान, ४. संसार पर दया करनेवाले (ईश्वर) का स्थान, ५ रसिकोंका आश्रय, ६ हीनता, बेकारी, विवशता, ७ प्राणलेवा, ८ मुक्ति।

३ मास बाद ही दिल्लीके सिविलसर्जन डा० रासकी सिफारिश पर छोड दिये गये। पर इस कैदका इनपर गहरा प्रभाव पडा। इस कालमे जो 'तरकीव वन्द'[१] उन्होने फारसीमे लिखी है उनमे

गहरा प्रभाव

गहरी व्यथा, जीवित हाड-मास वाली व्यथाका चित्र है। इन दिनो इनका अर्थकष्ट सीमापर पहुँच गया था। सच पूछें तो कलकत्तासे लौटनेके बाद इनकी आर्थिक स्थिति बराबर खराब ही होती गयी थी। २०–२५ सालसे बराबर तगीमे गुजर कर रहे थे। दिलमे होता था कि किसी राजा-रईसकी मुलाजमत कर लें पर स्वय आगे बढकर हाथ नही फैला सकते थे। चाहते थे कि कोई बुलावे तो जाऊँ। जो १८३५ मे इनपर पाँच हजारकी डिग्री हुई थी तभी उनपर ४०–५० हजार कर्ज था। नासिखने इन्हे लिखा कि 'आज दकनमे हुन वरस रहा है। हैदराबादमे महाराज चन्दूलाल अहले कमाल[२] का कद्रदाँ मौजूद है। अगर आप वहाँ चले जायँ तो आपके सब दलिद्दर दूर हो जायँ।' मिर्जाने जवाब दिया—'पहिले तो कर्ज अदा किये बगैर यहाँसे हिलना मुहाल है फिर अगर वहाँ जाऊँ भी तो चन्दूलाल गरीब मेरी क्या कद्र करेगा? उसे मेरे तर्जेसखुन[३] की हवा तक नही लगी और उसके कान इस आवाज से आशना नही। जहाँ फारसीमें कतील और उर्दूमे शाहनसीर उस्ताद माने जाते हो वहाँ गालिब और नासिखको कौन पूछता है। मजीदवराँ[१४] वह अस्सी सालका बुड्ढा खुद कब्रमे पाँव लटकाये बैठा है, जबतक मैं हैदराबाद पहुँचूँ वह आप अदमाबाद पहुँच चुका होगा।''

---

१ तरकीबबन्द– नज्मका एक प्रकार जिसमे कई बन्द होते है और हर बन्दमे पाँच-सात शेर होते है। हर बद भिन्न रदीफ-काफिएमे होता है और हर बन्दके खात्मेपर एक नया शेर लाते है जिसका रदीफ-काफिया अलग ही होता है, २ गुणियो, ३ काव्य-प्रणाली। ४ इसके अतिरिक्त।

पर स्थिति बहुत बिगड़नेपर किसी रियासतकी मुलाज़मतकी बात बार-बार इनके मनमें आती थी। करीब-करीब इसके लिए तैयार हो गये थे कि जेलको इस सज़ाने जो बदनामी हुई उसने हिम्मत पस्त कर दी। 'तुफ़्ता' को एक पत्रमें लिखते हैं—

"सरकारे अंग्रेज़ीमें बड़ा पाया रखता था। रईसज़ादोंमें गिना जाता था। पूरा खिलअत पाता था अब बदनाम हो गया हूँ और एक बड़ा धब्बा लग गया है। किसी रियासतमें दख़ल कर नहीं सकता। मगर हाँ, उस्ताद या पीर या मद्दाह बनकर गुज़ारेका सामान पैदा करूँ।"

इस कैदने रईसज़ादा बनने और लोहारू वंशके साथ सम्बन्ध रखने तथा ऊपरी ठाट-बाटके सपने समाप्त कर दिये। इससे वह अपनी उस निधि पर दिन-दिन अधिकाधिक निर्भर करते गये जो उनमें भरी पड़ी थी।

संयोगवश और कैदसे छूटनेके थोड़े दिनों बाद ही कुछ मित्रोंकी मध्यस्थतासे दिल्ली दरबारसे इनका सम्बन्ध हो गया। इन दिनों मौलाना नसीरुद्दीन उर्फ़ मियाँ काले साहब बहादुर

क़िलेकी नौकरी

'ज़फ़र' के पीर थे। वह ग़ालिबके मित्रों और शुभैषियोंमें थे। शाही हकीम एहसानउल्लाख़ाँ भी मिर्ज़ाके प्रशंसकोंमें थे। इन लोगोंने सिफ़ारिश की। बहादुरशाहने मंज़ूर कर लिया कि मिर्ज़ा तैमूरी वंशका इतिहास फ़ारसी भाषामें लिखें। ४ जुलाई १८५० को यह बादशाहके सामने पेश किये गये। बादशाह ज़फ़रने नजमुद्दौला दबीरुलमुल्क निज़ाम जंगकी उपाधि प्रदान की और ६ पारचे तथा तीन रत्नका खिलअत दिया। पचास रुपये मासिक वृत्ति नियत हुई और मिर्ज़ा किलेके मुलाज़िम हो गये। *

---

* उस समय किलेकी परम्परा थी कि सालमें दो बार वेतन मिलता था। एक तो पचास रुपये मासिक, फिर ६-६ महीनेमें मिले तो उसका

राजकीय इतिहासकार होनेके चन्द साल वाद ही, १८५४ ई०मे, युवराज फतहुल्मुल्क मिर्ज़ा मुहम्मद सुलतान गुलाम फखरुद्दीन 'रम्ज' उर्फ मिर्ज़ा फखरू इनके शागिर्द हो गये। यहाँ यह बात भी याद रखने योग्य है कि युवराजने गालिबके पुराने दुश्मन स्व० नवाव शम्सउद्दीन खाँकी विधवासे शादी की थी।* इसलिए अन्दाज़ होता है कि उस समय गालिब काव्य-जगत्मे प्रतिष्ठाके शिखरपर रहे होगे। तभी युवराजने शम्सउद्दीनसे मिर्जाके विरोध भावको भुला दिया होगा। जो हो, शिष्य होनेपर युवराजने ४००) सालानाकी वृत्ति उन्हे दी।

युवराजके गुरु

परिणाम यह होता था कि महाजनके सूदमे ही काफी रकम कट जाती थी। गालिवने पहली छमाही किसी तरह काटी पर जनवरी १८५१ मे दर्खास्त पेश की कि रोजानाकी जरूरतोका क्या करूँ, उन्हे इतने दिनोके लिए स्थगित तो कर नही सकता फलत महाजनोसे कर्ज़ लेता हूँ और सूदमे तनखाहका काफी हिस्सा निकल जाता है। पहली छमाहीके वेतनका एक तिहाई इसीमे चला गया—

आपका बदा और फिरूँ नगा।
आपका नौकर और खाऊँ उधार।
मेरी तनखाह कीजिए माह बमाह।
ता न हो मुझको जिन्दगी दुश्वार।
तुम सलामत रहो हज़ार बरस।
हर बरसके हो दिन पचास हज़ार।

इस प्रार्थना पत्रके बाद इन्हे वेतन हर मासमे मिलने लगा।

* कमाले दाग पृ० ४६ तथा आसारे गालिब (शेख मु० इकराम आई सी एस) पृष्ठ ११६।

शाही इतिहासकार होनेसे इन्हें कुछ तसल्ली हुई थी कि १८५२ ई०में जब उस इतिहासका पहिला भाग (मेह्रनीमरोज़) पूरा हुआ, मोमिनकी मृत्यु हो गयी जिससे इन्हें बड़ी चोट लगी। किन्तु सबसे ज्यादा तकलीफ़ इन्हें इसी साल, १८ एप्रिल १८५२को, नवाब मिर्ज़ा ज़ैनुल-आब्दीन 'आरिफ़' की मृत्युसे हुई। 'आरिफ़' ग़ालिबकी बीवीके भांजे थे। ग़ालिब उन्हें बेटे-सा मानते थे। उनकी प्रतिभाके क़ायल थे। उन्हें उनसे बड़ी उम्मीदें थीं। वह छोटी उम्रसे ही शेर कहने लगे थे। उनके देहावसानने मिर्ज़ाको बुढ़ापेमें गहरी चोट लगी। उनकी व्यथापूर्ण वाणी फूटी—

मोमिन एवं आरिफ़की मृत्यु

हाँ, ऐ फ़लक पीरेजवाँ था अभी आरिफ़,
क्या तेरा बिगड़ता जो न मरता कोई दिन और।

बादमें आरिफ़के दोनों बेटों (बाक़र अलीख़ाँ और हुसैन अलीख़ाँ) को लाकर अपने पास रखा और उन्हें अपने बच्चोंसे ज्यादा मानकर बड़े लाड-प्यारसे पाला।

'ग़ालिब' दरबारमें कभी-कभी जाया करते थे और उनकी आव-भगत भी होती थी, पर उन्हें वह दर्जा प्राप्त नहीं था जो 'ज़ौक़' को था। 'ज़ौक़' ज़फरके उस्ताद थे। स्वभावतः उनकी इज़्ज़त ज़्यादा थी। उनके साथ ग़ालिबकी नोक-झोंक चलती ही रहती थी। दिसम्बर १८५१में ज़फरके पुत्र जवाँबख़्तकी शादी धूमधामसे हुई। इस अवसरपर मिर्ज़ा ग़ालिबने निम्नलिखित सेहरा लिखकर बादशाहकी खिदमतमें पेश किया—

ज़ौक़से छेड़छाड़

ख़ुश हो ऐ बख़्त[1]! कि है आज तेरे सर सेहरा,
बाँध शहज़ादः जवाँबख़्तके सर पर सेहरा।

---

१ भाग्य।

क्या ही इस चाँदसे मुखड़ेपै भला लगता है,
है तेरे हुस्ने दिल अफ़रोज़[1] का ज़ेवर सेहरा।
नाव भर कर ही पिरोये गये होंगे मोती,
वर्ना क्यों लाये है कश्तीमें लगाकर सेहरा।
सात दरियाके फ़राहम[2] किये होंगे मोती,
तब बना होगा इस अन्दाज़का गज़ भर सेहरा।
जीमें इतरायें न मोती कि हमीं है यक चीज़,
चाहिए फूलोंका भी एक मुकर्रर[3] सेहरा।
हम सख़ुन-फ़ह्म है गालिबके तरफदार नहीं,
देखें इस सेहरेसे कह दे कोई बढ़कर सेहरा।

जब शेख इब्राहीम 'जौक' बादशाहके पास पहुँचे तो बादशाहने 'गालिब' का लिखा हुआ सेहरा उनको दिया और कहा कि उस्ताद, इसे देखिए। उन्होने पढा और स्वभावके अनुसार कहा—"पीर मुर्शिद दुरुस्त ३।" बादशाहने कहा, उस्ताद तुम भी एक सेहरा अभी लिख दो और ज़रा मक़तेका भी ख्याल रखना। (यानी उस सेहरेसे बढकर हो)। ज़ौक वही बैठ गये और यह सेहरा लिखा —

ऐ जवाँबख़्त! मुबारक तुझे सर पर सेहरा।
आज है यम्नो[4] सआदत[5] का तेरे सर सेहरा।
ता बने[6] और बनी[7] में रहे इख़लास[8] बहम[9],
गूँधिए सूरये इख़लास[10] को पढ़कर सेहरा।

---

१ हृदयको प्रकाशित करनेवाला सौन्दर्य, २ एकत्र, ३ दूसरा। ४ बरकत, ५ प्रताप, ६ दूल्हा, ७ दुल्हन, ८ प्रेम, ९ परस्पर, १० प्रेम एव सौष्ठव सम्बन्धी कुरान-शरीफका एक अश।

धूम है गुल्शने आफ़ाक़[1] में इस सेहरेकी,
गाये मुरग़ाने नवासग[2] न क्योंकर सेहरा।
फिरती खुशबूसे है इतराई हुई बादे बहार[3],
अल्ला अल्लाह रे फूलोंका मुअत्तर[4] सेहरा।
रूनुमाई[5] में तुझे दे महो-खुरशीद[6] फ़लक[7],
खोल दे मुँहको जो तू मुँहसे उठाकर सेहरा।
दुरें खुशआब[8] मज़ामींसे बनाकर लाया,
वास्ते तेरे तेरा 'ज़ौक़' सनागर[9] सेहरा।
जिसको दावा है सखुनका यह सुनादे उसको,
देख इस तरहसे कहते हैं सखुनवर[10] सेहरा।

इस सेहरेकी बड़ी धूम मची। मिर्ज़ा ग़ालिब इस घटनासे बड़े परीशान हुए। कहाँ उन्होंने बादशाहको खुश करनेके लिए सेहरा लिखा था, कहाँ परिणाम उलटा हुआ। तब उन्होंने क्षमा-प्रार्थनाके रूपमें यह किता लिखा —

मंज़ूर है गुज़ारिशे अहवाल वाक़ई[11],
अपना बयान हुस्न तबीयत नहीं मुझे[12]।
सौ पुश्तसे है पेशए आबा[13] सिपहगिरी,
कुछ शायरी ज़रीय-ए-इज्ज़त नहीं मुझे।

---

१ संसारके उद्यान २ संगीत-निपुण पक्षी, ३ वासन्ती वायु, ४ सुगन्धित, ५ मुँह दिखाई, ६ चाँद-सूरज, ७ आकाश, ८ अच्छे पानीदार मोती, ९ प्रशंसक, १० श्रेष्ठ कवि, ११ सच्ची बातको निवेदन कर देना आवश्यक है, १२ अपनी कथा कहना वैसे मेरे स्वभावमें नहीं, १३ पूर्वजोंका पेशा।

आज़ादरौ[1] हूँ और मेरा मुस्लिक[2] है सुल्हकुन[3],
हरगिज़ कभी किसीसे अदावत नहीं मुझे।
क्या कम है यह शरफ़[4] कि ज़फ़रका ग़ुलाम हूँ,
माना कि जाह[5] ओ मन्सब[6] सरवत[7] नहीं मुझे।
उस्तादे शह[8] से हो मुझे पुरख़ाशका[9] ख़याल,
यह ताब यह मजाल यह ताक़त नहीं मुझे।
सेहरा लिखा गया ज़िरहे इम्तिसाले अम्र[10],
देखा कि चारा[11] ग़ैर इताअत[12] नहीं मुझे।
मक़तेमें आ पड़ी है सख़ुन गुस्तराना[13] बात,
मक़सूद[14] इससे क़तअ-मुहब्बत[15] नहीं मुझे।
रूए सख़ुन[16] किसीकी तरफ़ हो तो रूसियाह[17],
सौदा[18] नहीं जुनूँ[18] नहीं वहशत[18] नहीं मुझे।
क़िस्मत बुरी सही पै तबीयत बुरी नहीं,
है शुक्रकी जगह कि शिकायत नहीं मुझे।
सादिक़[19] हूँ अपने क़ौलमें 'ग़ालिब' ख़ुदा गवाह,
कहता हूँ सच कि झूठकी आदत नहीं मुझे।

---

१ स्वतन्त्र विचारवाला, २ स्वभाव, ३ मैत्रीपरक, शान्तिपरक, ४ सम्मान, ५ इज़्ज़त, ६ ओहदा, ७ दौलत, ८ बादशाहके उस्ताद यानी ज़ौक़, ९ झगड़े, १० बादशाहके आदेशके पालनके रूपमें, ११ इलाज, १२ ताबेदारी, १३ काव्योचित अतिशयोक्ति, १४ अभीष्ट, १५ प्रेमको तोड़ना, १६ यह कविता किसीको लक्ष्य करके लिखी गयी हो तो, १७ काला मुँह, १८ उन्माद और पागलपन, १९ सच्चा।

बहरहाल जबतक ज़ौक़ रहे, दरबारमें गालिब उभर नहीं पाये। १६ अक्तूबर १८५४ को ज़ौक़की मृत्यु हो गयी। ज़ौक़के बाद बादशाह ज़फ़रने भी मिर्ज़ा गालिबसे इस्लाह लेनी शुरू की। ज़फ़रके सबसे छोटे शहज़ादे मीरज़ा ख़िज्र सुल्तानने भी इनकी शागिर्दी इख्तियार की। सम्भवतः इसी साल नवाब वाजिद अलीशाह अवध-नरेशकी ओरसे भी पाँच सौ सालाना मिलने लगा। इससे इनकी स्थिति काफ़ी हद तक सुधर गयी पर यह अल्पकालिक रही क्योंकि दो ही साल बाद, १० जुलाई १८५६ को, मिर्ज़ा फ़ख़रूकी मृत्यु हो गयी। उधर ११ फ़रवरी १८५६ को अंग्रेज़ोंने वाजिद अलीशाहको गद्दीसे उतारकर कलकत्ता भेज दिया जहाँ वह मटियाबुर्जमें नज़रबन्द कर दिये गये। मई १८५७ में गदर हो गया और मीरज़ा ख़िज्र सुलतान हुमायूँके मक़बरेमें गिरफ्तार कर लिये गये और दिल्लीके बाहर मेजर हडसनकी गोलीके शिकार हुए। ज़फ़रपर बाग़ियोंकी मदद करनेके जुर्ममें मुक़दमा चला और वह अक्तूबर १८५८ में रंगून भेज दिये गये जहाँ ७ नवम्बर १८६२ को उनकी मृत्यु हुई।

चन्दरोज़ा ख़ुशहाली

ऊपर लिखा जा चुका है कि १८५४ के अन्तिमांशमें ज़ौक़की मृत्यु हुई और उनके बाद ही ग़ालिबको ज़फ़रका गुरु होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुश्किलसे २–३ साल उन्होंने बादशाहके काव्यका संशोधन किया होगा। मोमिन और ज़ौक़की मृत्युके बाद उर्दू काव्यकी दुनियामें यही मशाल रह गये। इसलिए बहादुरशाहने इन्हें गुरु तो बनाया पर दिलसे वह कभी इनके अनुयायी न बन सके। कुछ लोग कहते हैं कि ज़फ़रका बहुत-सा कलाम ग़ालिबका ही लिखा है, बादशाहकी एक लाइन है तो इनकी चार। मु० हु० आज़ाद और हालीने भी ऐसे ही शुबहे किये हैं पर दोनोंका काव्य ही इस झूठका सबसे बड़ा उत्तर है। बहादुरशाह 'ज़फ़र'का रंग और है, ग़ालिबका रंग और। ज़फ़रकी ज़बान सरल और साफ़-सुथरी है, उनमें उलझाव नहीं है

बहादुरशाह एवं ग़ालिब

जब गालिब किसी बातको सीधे ढगसे कहना बहुत कम जानते है। ज़फरकी ज़बान इस देशकी ज़बान है, उनकी उर्दू सचमुच उर्दू है जब मिर्ज़ा गालिब की ज़बान और विचारपर फारसीयतकी ऐसी छाप है कि उर्दू उभर नही पाती बल्कि यह कहिए कि यह उर्दू भी एक प्रकारकी फारसी है। मिर्जा अपनी फारसीदानीके लिए प्रसिद्ध थे और फारसीके सर्वोत्तम साहित्य-कारोमें माने जाते थे। १८५३–५४ मे जब बहादुरशाहके शिया होनेकी शोहरत हुई तो बादशाहने गालिबसे ही दमअ उल्बातिल नामक एक फारसी मस्नवी लिखवाकर छपवाई।

जहाँ बहादुरशाहने गालिबके विस्तृत भाषा-ज्ञानसे कुछ-न-कुछ लाभ उठाया वहाँ बहादुरशाहकी जीवन-शैली एव रहस्यमय दार्शनिक विचारो-से गालिब भी कुछ-न-कुछ प्रभावित हुए। फारसी परम्पराके कारण मिर्ज़ाको तसव्वुफसे थोडी-बहुत दिलचस्पी तो थी ही बहादुरशाहकी सगतिसे उसमें वृद्धि ही हुई और उनके काव्यमे सूफियाना खयाल ज्यादा आने लगे।

यह ठीक है कि दरबारमे गालिबको जौकका दर्जा कभी न मिला, पर यह भी ठीक है कि दरबार शाहीमे अपनी तबीयतदारी एव जद्दतके कारण मिर्जाकी जफरसे बडी बेतकल्लुफी थी। अपनी हाजिर जवाबी और हास्यप्रियताके कारण भी वह इस स्थितिको पानेमे सफल हुए थे।

गालिब एव बहादुरशाहके वर्णनमे हालीने कई लतीफे लिखे हैं। उनसे तथा उस कालमे लिखे कई शेरोंसे मिर्जाकी हास्यप्रियताकी कल्पना होती है। एक बार जब रमजान गुजर गया और मिर्जा किलेमे गये तो बादशाहने पूछा—

एक रोज़ा नहीं

"मिर्जा! तुमने कितने रोजे रखे?" मिर्जाने अर्ज़ किया—"पीरो मुर्शिद! एक नही रखा!" और निम्नलिखित किता पढा—

इफ़्तारे सौमकी कुछ अगर दस्तगाह हो।
उस शख़्सको ज़रूर है रोज़ा रखा करे।
जिस पास रोज़ा खोलके खानेको कुछ न हो,
रोज़ा अगर न खावे तो नाचार क्या करे।

फिर एक रुबाई भी पेश की—

सामाने ख़ूर व ख़ाब कहाँसे लाऊँ?
आरामके असबाब कहाँसे लाऊँ?
रोज़ा मेरा ईमान है 'ग़ालिब' लेकिन,
ख़सख़ान व बरफ़ाब कहाँसे लाऊँ?

दुनियादारी एवं व्यावहारिकता

लाल क़िला एवं बहादुरशाहके साथ ग़ालिबका सम्पर्क तो हुआ पर मिर्जाकी तेज निगाहने भांप लिया कि यह सल्तनत ज्यादा दिन चलनेवाली नहीं है। मिर्जाकी अधिकारियों एवं अंग्रेजोंमें पैठ थी। यह देख रहे थे कि अंग्रेजोंकी ताक़त बढ़ रही है। वे बादशाहत खतम करनेपर तुले हुए थे पर एकाएक इस भयसे परिवर्तन नहीं करते थे कि कहीं भारतकी जनता बिगड़ न जाय। १८३७ में जब बहादुरशाह गद्दीपर बैठे तभी उनसे कहा गया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनीपर बादशाहके जो अधिकार हैं उन्हें छोड़ दो लेकिन वृद्ध बहादुरशाह कमजोर होनेपर भी ऐसा करनेको तैयार न हुआ। बादमें जब अंग्रेजोंकी ताक़त बहुत बढ़ गयी तब १८५४ में यह फैसला हुआ कि बहादुरशाहके बाद शाही खान्दान क़िलेसे रहनेकी जगह कुतुबके पास रहे। इसी बातपर रेजीडेण्ट एवं नवाब ज़ीनतमहलकी बड़ी झड़प हुई परन्तु अंग्रेज अब शक्तिमान थे, उन्हें किसीकी भावनाओंकी क्या परवाह थी इसलिए निर्णय ज्यों-का-त्यों रहा और दो साल बाद यह भी तय हो गया कि बहादुरशाहके उत्तराधिकारीको बहादुरशाहसे कम

पेशन मिलेगी, दूसरे यह कि उसकी उपाधि बादशाह नही बल्कि शाहजादा होगी। मतलब बादशाहत बहादुरशाहके साथ ही खत्म हो जायगी।

मिर्ज़ाने देखा कि बादशाहत तो खत्म हो रही है, इसलिए अक्लमन्दी-की बात यह है कि अपना भविष्य अग्रेज़ोके साथ सम्बद्ध करना चाहिए। उनको इस देशकी मिट्टीके प्रति कोई आकर्षण न था इसलिए जिस बातसे उन्हें अग्रेजोका विरोधी होना चाहिए था उसी कारण वह, उलटे, उनकी ओर खिंचते गये। उन्होने देखा, अग्रेज़ोका विरोध निरर्थक है। वह दुनिया-दार और व्यावहारिक आदमी थे। उन्होने महारानी विक्टोरियाकी प्रशसा-में एक फारसी कसीदा लिखा और लार्ड केनिंगके जरिये विलायत भेजवाया। पर साथमे वह स्वार्थ भी लगा था जो इनके जीवनमे सदा लगा रहा और जिसके कारण यह कभी निरपेक्ष न हो सके। कसीदेके साथ एक निवेदन था कि रूम व ईरानके बादशाह कवियोपर बडी-बडी इनायतें करते है। अगर महारानी भी मुझे खिताब, खिलअत एव पेशनसे गौर-वान्वित करें तो कोई आश्चर्य नही।" इस खतका जवाब १८५७ की जनवरीके अन्तमे गालिबको लदनसे मिला कि विचारके बाद खिताब एव खिलअतके बारेमे आज्ञा प्रचारित होगी।

अब क्या था, मिर्ज़ा फूले न समाये। आशाओके काल्पनिक महल बनाते रहे कि ११ मईको गदर सिरपर आ गया।

गदरके अनेक चित्र इनके पत्रोमे, तथा इनकी पुस्तक 'दस्तबू' मे मिलते है। इस समय इनकी मनोवृत्ति अस्थिर थी। यह निर्णय न कर पाते थे कि किस पक्षमे रहे। सोचते थे, पता नही ऊँट किस करवट बैठे। इसलिए किलेसे भी

गदर

थोडा सम्बन्ध बनाये रखते थे। 'दस्तबू'मे उन घटनाओका जिक्र है जो गदरके समय इनके आगे गुज़री। इस समय यह बल्लीमारामे रहते थे। इसी मुहल्लेमें शरीफखानी वशके प्रसिद्ध हकीम लोग रहते थे जो पटियाला सरकारमे मुलाज़िम थे। महाराज पटियालाने अग्रेज़ोसे कहकर इस मुहल्लेके

सिरेपर दीवार खिंचवा दी ताकि बाहरका आदमी अन्दर न जाने पाये और अपने आदमियोंका पहरा बैठा दिया कि कोई फौजी गोरा लोगोंको तंग न कर सके। पर लोग इतने भयभीत थे कि कूचाबन्दीसे बाहर जाकर पानी भी न ला सके। प्याससे लोगोंके ओंठोंपर जान थी। वह तो कहिए, पानी बरसा और लोगोंने चादरें तान-तानकर घर भरके बर्तन भर लिये। काली सेनाने दिल्लीमें खूब लूट-मार की, कितने ही अंग्रेजोंको मार दिया जिसका मिर्ज़ाको बराबर अफसोस रहा।

कत्ल व ग़ारतके बाद बागियोंने दिल्लीका रुख किया। इस समय बादशाह उनकी आज्ञा माननेको विवश था। मिर्ज़ाने शाहको 'गिरफ्ते सिपाह' लिखा है। दिल्लीसे अंग्रेजी शासन उठने और दोबारा स्थापित होनेमें चार मास चार दिन लगे पर इनकी हालत मिर्ज़ाने केवल ५–६ पृष्ठोंमें लिखी है। उनमें भी अपनी एवं अपने अज़ीज़ोंकी मुसीबतोंका ज़िक्र है। ऐसा जान पड़ता है कि मिर्ज़ाने इस समयकी घटनाएँ विस्तारसे लिखी होंगी पर अंग्रेजोंकी विजय एवं बहादुरशाहके निर्वासनके बाद उनका प्रकाशन उचित न समझ बहुत-सा अंश निकाल दिया होगा।

उधर फसाद शुरू होते ही मिर्ज़ाकी बीवीने, उनसे पूछे बिना, अपने सब जेवर और क़ीमती कपड़े मियाँ काले साहबके मकानपर भेज दिये कि

चोटपर चोट

वहाँ सुरक्षित रहेंगे पर बात उलटी हुई। काले साहबका मकान भी लुटा और उसके साथ ग़ालिबका सामान भी लुट गया।

चूँकि इस समय राज मुसलमानोंका था इसलिए अंग्रेज़ोंने दिल्ली-विजयके बाद उनपर विशेष ध्यान दिया और उनको खूब सताया। बहुतसे

हिन्दू मित्रोंकी सहायता

लोग प्राण-भयसे भाग गये। इनमें मिर्ज़ाके भी अनेक मित्र थे। इसलिए गदरके दिनोंमें उनकी हालत बहुत खराब हो गयी। घरसे बाहर बहुत कम निकलते थे। खाने-पीनेकी भी मुश्किल थी। ऐसे वक्त उनके कई

हिन्दू मित्रोने उनकी बडी सहायता की । मुशी हरगोपाल 'तुफ्ता' मेरठमे बराबर रुपये भेजते रहे, लाला महेशदास इनकी मदिराका प्रबन्ध करते रहे। मुशी हीरा सिह दर्द, प० शिवराम एव उनके पुत्र बालमकुन्दने भी इनकी मदद की । मिर्जाने अपने पत्रोमे इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की है ।

यद्यपि पटियालाके सिपाही आस-पासके मकानोकी रक्षामे तैनात थे और एक दीवार बना दी गयी थी पर ५ अक्टूबरको (१८ सितम्बरको दिल्लीपर अग्रेजोका दोबारा अधिकार हो गया था) कुछ गोरे, सिपाहियोके मना करनेपर भी, दीवार फाँदकर मिर्ज़ाके मुहल्लेमे आ गये और मिर्जाके घरमे घुसे। उन्होने माल-असबाबको हाथ नही लगाया पर मिर्जा, आरिफके दो बच्चो और चन्द और लोगोको पकड ले गये और कुतुबउद्दीन सौदागरकी हवेलीमे कर्नल ब्राउनके सामने पेश किया । उनकी हास्यप्रियता और एक मित्रकी सिफारिशने रक्षा की । बात यह हुई कि जब गोरे मिर्जाको गिरफ्तार करके ले गये तो अग्रेज सार्जेण्टने इनकी अनोखी सज-धज देखकर पूछा—'क्या तुम मुसलमान हो ?' मिर्ज़ाने हँसकर जवाब दिया कि 'मुसलमान तो हूँ पर आधा ।' वह इनके जवाबसे चकित हुआ । पूछा—'आधा मुसलमान कैसे ?' मिर्जा बोले—"साहब, शराब पीता हूँ, हूँम (सुअर) नही खाता ।"

मुसलमान हूँ पर आधा

जब कर्नलके सामने पेश किये गये इन्होने महारानी विक्टोरियासे अपने पत्र-व्यवहारकी बात बताई और अपनी वफादारीका विश्वास दिलाया । कर्नलने पूछा—"तुम देहलीकी लडाईके समय पहाडी (रिज) पर क्यो नही आये जहाँ अग्रेजी फौजे और उनके मददगार जमा हो रहे थे ?"

मिर्जाने कहा—"तिलगे दरवाजेसे बाहर आदमीको निकलने नही देते थे । मै क्यो कर आता ? अगर कोई फरेब करके, कोई बात करके निकल जाता, जब पहाडीके करीब गोलीके रेंजमे पहुचता तो पहरेवाला गोली मार देता । यह भी माना कि तिलगे बाहर जाने देते, गोरा पहरेदार भी गोली न मारता पर मेरी सूरत देखिए और मेरा हाल मालूम कीजिए ।

बूढ़ा हूँ, पाँवसे अपाहिज, कानोंसे बहरा, न लड़ाईके लायक़, न मश्विरतके क़ाबिल। हाँ, दुआ करता हूँ सो वहाँ भी दुआ करता रहा।"

कर्नल साहब हँसे और मिर्ज़ाको उनके नौकरों एवं घरवालोंके साथ, घर जानेकी इजाज़त दे दी।

मिर्ज़ा तो बच गये पर इनके भाई मिर्ज़ा यूसुफ इतने भाग्यशाली न थे। पहिले ज़िक्र किया जा चुका है कि वह ३० सालकी उम्रमें ही विक्षिप्त हो गये थे और गालिबके मकानसे दूर, फराश-खानेके करीब, एक दूसरे मकानमें अलग रहते थे। जितनी पेंशन गालिबको सरकारी खजानेसे मिलती थी उतनी ही मिर्ज़ा यूसुफ़के लिए भी नियत थी। उनकी बीवी, बच्चे भी साथ-साथ रहते थे पर जब देहलीपर पुनः अंग्रेज़ोंका अधिकार हुआ तो गोरोंने चुन-चुनकर बदला लेना शुरू किया। इस बेइज्ज़ती और अत्याचारसे बचनेके लिए यूसुफकी बीवी, बच्चों-सहित, इन्हें अकेले छोड़, जयपुर चली गयी थी। घरपर इनके पास एक बूढ़ी नौकरानी और एक बूढ़ा दरबान रह गये। मिर्ज़ाको भी सूचना मिली किन्तु बेबसीके कारण कुछ कर न सके।

मिर्ज़ा यूसुफका अन्त

३० सितम्बरको, जब ग़ालिबको अपना दरवाज़ा बन्द किये हुए पन्द्रह-सोलह दिन हो रहे थे, उन्हें सूचना मिली कि सैनिक मिर्ज़ा यूसुफके घर आये और सब कुछ ले गये लेकिन उन्हें और बूढ़े नौकरोंको जिन्दा छोड़ गये।* मिर्ज़ा ग़ालिब लिखते हैं कि १९ अक्टूबरको, सुबहके वक्त, मिर्ज़ा यूसुफका बूढ़ा दरबान खबर लाया कि मिर्ज़ा यूसुफ, पाँच दिन निरन्तर ज्वरग्रस्त रहनेके बाद कल रात गुज़र गये।

---

* गालिबके एक निकट सम्बन्धी मिर्ज़ा मुईनउद्दीनने लिखा है कि यूसुफ गोलीकी आवाज़ सुनकर, यह देखने कि क्या हो रहा है, घरसे बाहर आये और मारे गये।—गदरकी सुबह-शाम पृष्ठ ८८।

इस समय शहरकी हालत भयानक थी। २–४ आदमियोका मिलकर, किसी लाशको दफन करनेके लिए, कब्रिस्तान तक ले जाना सम्भव न था। कफनके लिए कपडे भी न मिलते थे। खैर, साथियोने मदद की। मिर्ज़ाका एक नौकर और पटियालाका एक सिपाही उनके साथ गये। कफनके लिए दो-तीन सफेद चादरे मिर्ज़ाने अपने पाससे दी। इन लोगोने गलीके सिरेपर तहव्वरखाँकी मस्जिदकी† सेहनमे गड्ढा खोदा और शवको उसमें उतारकर मिट्टी डाल दी।

इस समय मिर्जा गालिबकी हालत दयनीय थी। आमदनीके जरिये बद, जान बचानेकी फिक्र, भाईकी मौत। एक आतक सबपर छाया हुआ।

उस ज़मानेकी हालत

जिन्दगी भी क्या जिन्दगी थी। जो जीवित थे, मरे हुओसे बदतर थे। किसीकी सुरक्षा न थी। गोरे जिसकी इज्जत-आबरू चाहते ले लेते थे, जिसे चाहते मार देते, उनपर प्रतिहिंसाका भूत सवार था। हकीम महमूद खाँ का पटियाला महाराजसे सम्बन्ध होनेके कारण, गालिबका मुहल्ला कुछ सुरक्षित था। बहुत-से लोगोने भागकर हकीम साहबके यहाँ शरण ली थी। २ फरवरी १८५८ को हाकिम शहर चद सिपाहियोके साथ गालिबके मुहल्लेमें आया और हकीम महमूदखाँको, साठ आदमियो-सहित, पकड ले गया। हकीम साहब एव उनके कुछ साथी ३ दिन बाद, कुछ लोग एक हफ्ते बाद रिहा कर दिये

---

† मालिक राम साहब लिखते हैं—फर्राशखानेसे खारी बावलीकी तरफ जायें तो यह मस्जिद 'नया बाँस'के पास उलटे हाथको पडती है। इसके निर्माणकर्ता तहव्वरखाँ ताश्कन्दी मुहम्मदशाहके राज्यकालमे शाहजहाँपुरके ज़मीदार थे। वर्तमान मस्जिद नई बनी है। अब इसकी कुर्सी ऊँची है और सेहनके नीचे बाज़ारमें दुकानें है।

—ज़िक्रे गालिब, फुटनोट पृष्ठ ९६–९७।

गये। हकीम साहब * छूटकर घरमें नहीं बैठे, हमदर्दके लिए दौड़े और बेगुनाहोंके सुबूत दिये जिनसे एप्रिल तक बाकी लोग भी रिहा कर दिये गये।

---

*इन्हीं हकीम महमूदखांकी मृत्यु पर हालीने एक मर्सिया लिखा था जिसके कुछ अंश यहां उद्धृत है—

वह ज़माना जब कि था दिल्लीमें यक महशर बपा।
नफ़्सी-नफ़्सी का था जब चारों तरफ़ गुल पड रहा।
अपने-अपने हालमें छोटा-बडा था मुब्तिला।
बापसे फर्ज़न्द और भाईसे भाई था जुदा।
मौजज़न था जबकि दरियाए अताबे ज़ुलजलाल।
बागियोंके ज़ुल्मका दुनिया पे नाज़िल था वबाल।

× × ×

ऐसे नाज़ुक वक़्तपर मर्दानगी उसने जो की
अह्ले इन्साफ़ उसको भूले है न भूलेंगे कभी।
ख़िल्क़तमें जिन मुलज़िमोंको उसने समझा बेख़ता।
मार्शल लामें सबूत उनकी सफाईका दिया।
चैनसे बैठा न जबतक होगया इक-इक रिहा।
जो कि थे नादार की उनकी अयानत बर्मला।
ज़र दिया खाना दिया कपडा दिया बिस्तर दिया।
बे ठिकानोंको ठिकाना बेघरोंको घर दिया।

इस जमानेमे मबको अपनी-अपनी पडी थी। जिमका जहाँ जगह मिली वही भाग खडा हुआ। मिर्जाने 'दस्तबू' एव अपने रुक्को तथा पत्रोमे अपने दोम्तो तथा परिचितोकी हालत बयान की है। जब शहर फतह हुआ उमी हफ्ते जियाउद्दीन और नवाब अमीनउद्दीन, अपने परिवार एव चद आदमियोके साथ अपनी जागीर लोहारू जानेके लिए रवाना हुए लेकिन अभी महरौलीमें ही थे कि लुटेरे सिपाहियोने आ घेरा और बदनपर जो कपडे थे उन्हे छोड सब कुछ ले गये। दिल्लीका घर भी पूर्णत लुट गया। मुजफ्फरउद्दीन हैदरखाँ और जुलफिकारउद्दीन हैदरखाँ (हुसेन मिर्जा) पर जो गुजरी वह इससे भी व्यथाजनक है। वे शहरके अन्य प्रतिष्ठित लोगोकी तरह अपनी अट्टालिकाएँ छोड जान बचाकर भागे। उनके घर भी बुरी तरह लुटे। फिर किमीने मकानके परदो और सायबानोमे आग लगा दी जिससे सारा घर जलकर राख हो गया। उन लोगोके यहाँ मिर्जाका काव्य एकत्र होता रहता था, वह भी इसीमे नष्ट हो गया। मिर्जाके एक खतमें इम घटनाकी ओर इशारा है—

मिर्जाके दोस्तो एव परिचितोकी हालत

"भाई जियाउद्दीनखाँ साहब और नाजिर हुसेन मिर्जा साहब हिन्दी फारसी नजम व नसरके मस्विदात मुझसे लेकर अपने पास जमा किया करते थे। सो इन दोनो घरोपर झाड़ू फिर गयी। न किताब रही न असबाब रहा।"*

नवाब मुस्तफाखाँ 'शेफ्ता' को गदरके बाद मात साल कैदका हुक्म हुआ था। वह एक प्रतिष्ठित जागीरदार और उर्दू-फारसीके समर्थ कवि

*१८५७ ई० मे मिर्जाने अपने उर्दू कलामका एक नुस्खा रामपुर भेजा था, वह सुरक्षित रहा और उसकी नकलोसे ही १८६१ में वर्तमान उर्दू दीवान तैयार हुआ। लेकिन उसे भेजनेके बाद भी तो गालिबने कुछ न कुछ लिखा ही होगा, वह सब नष्ट हो गया।

थे। उर्दू कवियोंके सम्बन्धमें इनका लिखा फारसी भाषाका ग्रन्थ 'गुलशन बेखार' प्रसिद्ध है। गालिब साहबने भी इसकी प्रशंसा की है। शेफ्ता गालिब के प्रशंसकोंमें थे और मुसीबतके जमानेमें बराबर उनकी मदद करते रहे।

शेफ्ता

इसलिए इनकी कैदसे भी गालिबके दिलपर चोट लगी। खैर, अपीलमें वह छूट गये। इससे गालिबको जो खुशी हुई वह इसीसे समझी जा सकती है कि उस बुरी अवस्थामें भी डाकगाड़ीमें बैठकर मेरठ गये, उनसे मिले, चार दिन रहे, तब वापिस आये।

मौलाना मुफ्ती सदरउद्दीन आजुर्दा फारसीके उच्चकोटिके कवि और अरबीके धाकड़ विद्वान् थे। गदरके पहिले दिल्लीमें सदरस्सदूर थे। वह

मुफ्ती सदरउद्दीन

भी पकड़े गये। मुकदमा पेश हुआ। जानबख्शी का हुक्म हुआ पर नौकरी मौकूफ, जायदाद जब्त। निराश लाहौर गये। फिनांशल कमिश्नर एवं लै० गवर्नरने कृपा करके आधी जायदाद वापिस करा दी।

गालिबकी जिन्दगीमें मौ० फजलहकका बड़ा हाथ था। उन्होंने उन्हें 'बेदिल'की नकलसे हटाकर काव्यके सही रास्तेपर लगाया। ये गिरफ्तार

मौ० फजलहक

ही नहीं हुए, आजन्म निर्वासित भी किये गये। रंगूनमें रखे गये। इनके दूसरे बेटे गुलाम गौस 'बेखबर' ने अपील की जिससे बहुत दिनों बाद—१८६१ मे—रिहाईका हुक्म हुआ पर रिहाईका हुक्म रंगून पहुँचनेके पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गयी।

मतलब यह कि गदर क्या आया मिर्जाका जीवनाकाश काली घटाओं-से घिर गया। घरमें जो कुछ था, वह खतम हो गया, यार-दोस्त गिरफ्तार

असीम कष्टोंकी घटाएँ

और दूर हो गये, आमदनीके सब रास्ते बंद। किलेकी तनखाह तो पहिले ही बंद हो गयी थी क्योंकि वहाँ तो देशी फौजका डेरा था। इतना ही बहुत था कि उन लोगों-

ने इनको सताया नही अन्यथा अग्रेजोका 'वजीफाखार' कहकर मौतके घाट उतार देते तो उन्हे कौन रोकनेवाला था। अग्रेजोकी तरफमे जो खान्दानी पेशन मिलती थी वह भी वद हो गयी क्योकि दिल्लीपर देशी फौजका कब्जा था, अग्रेजी दफ्तर ही कहाँ रह गया था। इस कष्टके समय नवाब जियाउद्दीन अहमदने मिर्जाकी बीवी उमराव बेगमको पचास रुपये माहवार नियत कर दिया। यह प्रकारान्तरसे मिर्जाकी ही मदद थी। बेगमको यह वजीफा उनकी मृत्यु तक मिलता रहा।

रामपुरसे सम्बन्ध

गदरसे थोडे ही अर्से पहिले मिर्जाका दरवार रामपुरसे सम्वन्ध हो गया था। थोडा-बहुत सम्वन्ध तो बहुत पहिलेसे था क्योकि जब बचपनमे नवाब मुहम्मद यूसुफअलीखाँ शिक्षाके लिए दिल्ली आये तो उन्होने गालिबसे फारसी पढी थी पर बादमे यह सिलसिला टूट गया था। जब १८५५ ई० मे वह गद्दी पर बैठे तो मिर्ज़ाने किता लिखकर भेजा पर परिणाम कुछ न निकला।* नवाबने ध्यान नही दिया। बादमे जब गालिबके हितैषी और मित्र मौ० फजलहक खैराबादी रामपुरमे थे उन्होने मिर्ज़ाको तैयार किया कि वह नवाबके पास कसीदा भेजें। मिर्ज़ाने कसीदा भेजा। मौ० फज़लहकने भी सिफारिश की। इसके उत्तरमे नवाबने ५ फरवरी १८५७ को एक खतमे चद शेर इस्लाहके लिए मिर्ज़ाके पास भेजे§। तबसे उनका दरबार रामपुरमे नियमित सम्वन्ध हो गया। जान पडता है कि नवाब साहबने इस प्रारम्भिक कलाममे यूसुफ तखल्लुस किया था पर मिर्ज़ाके सुझावपर 'नाजिम' पसन्द किया।

पर इनकी कोई मासिक वृत्ति नही बँधी थी। वैसे नवाब बीच बीचमे रुपये भेजते रहते थे। पहिले ही पत्रके साथ ढाई सौ भेजे थे।

---

*मकातीबे गालिब पृ० ३।

§मकातीबे गालिब पृ० १२०।

पेंशनकी चिन्ता

यह सम्बन्ध हुए थोड़े ही दिन हुए थे कि तूफ़ान आया और गदरमें सब व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। आँधी आई और चली गयी तब इन्हें पेंशनकी चिन्ता हुई। ग़ालिबका ख़्याल था कि शान्ति स्थापित होते ही मेरी पेंशन बहाल हो जायगी। जब न हुई तो वही चापलूसीवाला ढंग इख़्तियार किया। महारानी विक्टोरिया तथा उच्चाधिकारियोंकी प्रशंसामें क़सीदे लिखकर दिल्लीके अधिकारियोंकी मार्फ़त भेजे किन्तु १७ मार्च १८५७को कमिश्नर दिल्लीने यह लिखकर उन्हें वापिस भेज दिया कि इनमें कोरी प्रशंसा एवं स्तुतिके सिवा कुछ नहीं है। जब इनके कुछ मास बाद, अक्टूबरमें, दस्तंबू छपी तो मिर्ज़ाने जिल्द लगवाकर २ विलायत और ४ प्रतियाँ हिन्दुस्तानमें उच्चाधिकारियोंको भेंट की। नतीजा शिक्षा-विभाग पश्चिमोत्तर प्रदेशने बड़ी प्रशंसा की और मि० मैकलियाड फ़िनांशल कमिश्नरने ख़ुद लिखकर कमिश्नर दिल्लीकी मार्फ़त यह किताब मिर्ज़ासे मँगवाई। यह सब तो हुआ पर अधिकारियोंका दिल इनकी ओरसे साफ़ न हुआ। जनवरी १८६०में मेरठमें बड़ा दरबार हुआ। अन्य दरबारी बुलाये गये पर इन्हें निमन्त्रण नहीं दिया गया। फिर जब गवर्नर जेनरलका कैम्प मेरठसे दिल्ली आया और मिर्ज़ाने चीफ़ सेक्रेटरीके सामने मुलाक़ातके लिए अपना टिकट भेजवाया तो वहाँसे जवाब मिला कि गदरके दिनोंमें तुम बाग़ियोंसे रब्त-ज़ब्त रखते थे।* अब गवर्नमेण्टसे क्यों मिलना चाहते हो। लार्ड कैनिंगकी तारीफ़में जो क़सीदा लिखा था वह भी वापिस कर दिया गया कि अब ये चीज़ें हमारे पास न भेजा करो।†

---

* ग़दरमें इनका सम्बन्ध बहादुरशाहसे छूटा न था। आगराके अख़बार 'आफ़ताब आलिमताब'में छपा था कि १२ जुलाई १८५७को मिर्ज़ा नौशा (ग़ालिब) ने बहादुरशाहकी तारीफ़में क़सीदा पढ़ा था। श्रीमालिकरामने इसे १८ जुलाई लिखा है।

† ग़ालिबनामा १४५–४६।

इस समय इनकी हालत बहुत खराब थी। यहाँ तक कि घरके कपड़े-लत्ते बेचकर दिन कट रहे थे। एक पत्रमे निराशापूर्वक लिखते है—

"५३ मासका पेंशन। तकर्रुर इसका बतजवीज लार्ड लेक व बमज्री गवर्नमेण्ट—और फिर न मिला है, न मिलेगा। खैर, एहतमाल है मिलनेका। अलीका बन्दा हूँ। उसकी कसम कभी झूठ नही खाता। इस वक्त कल्लूके‡ पास एक रुपया सात आने बाकी है। बाद इसके न कही कर्ज़की उम्मीद है, न कोई जिस रेहन व बयके काबिल।"

इन निराशाजनक स्थितिमे लाचार होकर इन्होने दिल्लीसे बाहर चले जानेका निर्णय किया। नवाब अमीनुद्दीन अहमदखाँ तथा ज़ियाउद्दीन अहमदखाँ एव उनकी माँ बेगम जान साहबाने इस शर्तपर इनके प्रस्तावको स्वीकार किया कि उमराव बेगम और बच्चे लोहारू चले जायँ। इस निर्णयकी सूचना नवाब अलाउद्दीन अहमदखाको, जो उस समय लोहारूमे थे, देते हुए लिखते है—

"अपना मकसूद तुम्हारे वालिद माजिदसे कह चुका हूँ। खुलासा यह कि मेरी बीबी और बच्चोको, कि तुम्हारी कौमके है, मुझसे ले लो कि मै इस बोझका मोतहमिल हो नही सकता। मेरा कस्द सियाहतका है। पेंशन अगर खुल जायगा तो वह अपने सर्फमे लाया करूँगा। जहाँ जी लगा वहाँ रह गया। जहाँसे दिल उखडा चल दिया।"

निराशामे बीवी-बच्चे बोझ मालूम होते थे और सब मुसीबते उन्हीकी वजहसे आती मालूम पडती थी और इच्छा भी होती थी कि अकेले—

'रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।'*

खैर, तय यह हुआ कि बीवी बच्चे लोहारू जायँ और यह पटियाला जाकर रहे। इस बीच इन्होने महाराज अलवर एव पटियालाकी तारीफमे

‡ कल्लू गालिबका वफादार सेवक था जिसे वह बहुत मानते थे।

* जिक्रे गालिब, पृष्ठ १०१।

कसीदे लिखे और मदद चाही। पटियालाके प्रतिष्ठित नागरिक महमूदखाँके यह पड़ोसी थे। इस वक्त एक जगह रह रहे थे। हकीम महमूदखाँके दो भाई हकीम मुर्तजाखाँ और हकीम गुलाम अल्लाखाँ पटियाला-नरेश महाराज नरेन्द्रसिंहकी सेवामें थे। उनकी इच्छा भी थी कि ग़ालिब कुछ दिन वहाँ आकर रहें। पर जब कसीदेके जवाबमें कोई अनुकूल उत्तर न मिला तब इन्होंने वहाँ जानेका विचार त्याग दिया।

रामपुरसे मासिक वृत्ति

इधरसे निराश होकर ग़ालिबने नवाब रामपुरसे दर्ख़ास्त की कि मेरा कोई नियमित वज़ीफ़ा तय कर दिया जाय। नवाबने १६ जुलाई १८५९ को उत्तर दिया कि आपको १००) मासिक वेतन पहुँचता रहेगा।† नवाब रामपुर (यूसुफ़ अलीखाँ) ने मिर्ज़ाको कई बार रामपुर निमन्त्रित किया। दिल्लीपर अंग्रेजोंका कब्ज़ा होते ही इन्होंने रामपुर जानेका आश्वासन दिया था पर इन्हें सरकारी पेंशनकी उम्मीद अब भी लगी थी इसलिए दिल्ली छोड़ते न बनती थी। नवाब रामपुरने दूसरी बार २५ नवम्बर १८५८को बुलाया तो इन्होंने जवाब दिया—"मेरे हाज़िर होनेको जो इरशाद होता है, मैं वहां न आऊँगा तो कहाँ जाऊँगा। पेंशनके वसूलका ज़माना करीब आया है। उसे मुल्तवी छोड़कर क्यों चला आऊँ? सुना जाता है और यकीन भी आता है कि आगाज़ साल ५९ ईस्वी यह क़िस्सा अंजाम पाये। जिसको रुपया मिलना है उसको रुपया, जिसको जवाब मिलना है उसको जवाब मिल जाये।"*

जनवरी १८५९ भी आया और चला गया। तब नवाबने २ फ़रवरी और १३ एप्रिलको पुनः निमन्त्रित किया जिसके उत्तरमें इन्होंने लिखा—

---

† मकातीबे ग़ालिब, ८२, उर्दू—ए—मोअल्ला १२०।

*मकातीबे ग़ालिब पृ० १२।

"पहले खतमे यह अर्ज किया है कि मजमूआ पेशनदारोकी मिमिल मुस्तव है और हनोज सदरको रवाना नही हुई । नवाव गवर्नर जेनरल लार्ड केनिंग बहादुरने कलकत्तासे मेरी पेंशनके कवागज़ तलव किये और यह कागज़ फेहरिस्तमेसे अलग होकर लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बहादुर पजावकी खिदमतमे इरसाल हुए । वहाँसे कलकत्ता भेजे जायँगे । फिर वहाँसे हुक्म मजूरी पजाव होता हुआ यहाँ आयेगा और यहाँ मुझको रुपया मिल जायगा । आज रुपया मिला, कल मैने आपसे सवारी और बारे बरदारी माँगी । आज सवारी और बारबरदारी पहुँची और कल मैने रामपुरकी राह ली ।"

कैसी दृढ आशा एव निष्ठा थी इस आदमीको अग्रेजोकी न्यायप्रियता-में । पर निराश तो होना ही था । १८६० के शुरूमे जब गवर्नर जेनरलने इनसे मुलाकात करनेसे इन्कार कर दिया तब इनकी नीद टूटी और जब अन्तिम उत्तर मिल गया तब इनकी आँखें खुली । इस बीच दिसम्बर १८५९में पुन नवाब रामपुर इन्हे निमन्त्रित कर चुके थे । इसलिए अग्रेज़ो-से निराश होकर १९ जनवरी १८६० को यह रामपुरके लिए रवाना हुए और २७ जनवरीको वहाँ पहुँच गये ।§

रामपुरमे

रामपुरमे इनका खूब सत्कार हुआ । नवाव साहबने अपनी खास कोठी ठहरनेके लिए दी । पर गालिबने गलती यह की कि आरिफके दोनो बच्चो (बाकरअली और हुसेन अली) को साथ ले गये । इस भयसे कि कही बच्चे कीमती सामानको नुकसान न पहुँचायें इन्होने स्वय दूसरा स्थान देनेकी प्रार्थना की । इसपर चार दिन बाद राजद्वारा मुहल्लेमे एक बडा मकान इन्हे रहनेको दिया गया । शुरूमे खाना भी दोनो वक्त सरकारसे आता रहा पर बादमे सौ रुपया मासिक इसके लिए तय हो गया । अर्थात्

§ उर्दूए-मोअल्ला पृ० १७० ।

दिल्लीमें रहूँ तो सौ, रामपुरमें रहूँ तो दो सौ। रामपुरकी जलवायु भी इनके अनुकूल थी और यह गर्मी और बरसातमें वहीं रहना चाहते थे पर बच्चोंने लौटनेकी ज़िद की। इन्हें अच्छा न लगा कि उन्हें अकेले भेजूँ इसलिए खुद भी लौटना पड़ा। १७ मार्च १८६० को चलकर २४ मार्चको दिल्ली पहुँच गये।

रामपुर जानेसे इनका सम्बन्ध रामपुर दरबारसे सुदृढ़ हो गया। इनके कहनेपर नवाब रामपुरने, समय-समयपर अंग्रेज अफ़सरोंसे भी इनकी सिफ़ारिश की। उधर रामपुरसे दिल्ली लौटते समय मिर्ज़ा मुरादाबाद ठहरे। मालूम होनेपर सर सैयद अहमदख़ाँ इन्हें सरायसे अपने घर ले गये। इस मुलाक़ातका परिणाम मिर्ज़ाके लिए बहुत अच्छा हुआ। सरसैयदकी अंग्रेजोंमें बड़ी पहुँच थी। उन्होंने मिर्ज़ाकी पेंशनकी बहालीके लिए कोशिश की *। उनकी सिफ़ारिशसे इनकी पेंशन बहाल हो गयी और दिल्ली लौटनेके बाद इन्हें पेंशनकी पाई-पाई जो बाकी थी, मिल गयी।

पेंशनकी बहाली

पेंशन मिलनेसे टूटी हुई आशाएँ फिर हरी हुईं। इन्होंने दरबार और खिलअतकी बहालीके लिए भी कोशिशें कीं। १ जून १८६२ को §दरख़ास्त दी कि "मुझे लार्ड विलियम बेंटिकके अहदमें दरबारका, और लार्ड एलनबराके अहदमें खिलअत व सिरत्नका ऐजाज हासिल था। चाहिए तो यह था कि उम्र बढ़नेके साथ इस इज्जत व तौकीरमें इजाफ़ा होता, मगर अब कि मेरी उम्र ६७ बरस है, इसके बरखिलाफ़ वह पहला दरबार और खिल्अत भी छिन गया है। मैं गदरके दिनोंमें भी वफ़ादार रहा। पेंशनका इजरा ही मेरी बेगुनाहीका सबसे बड़ा सबूत है। फिर

---

* स्व० मौ० अबुल कलाम आजाद'. 'अलहिलाल' १७ जून १९१४।

§ज़िक्रे गालिब पृ० ११४।

न मालूम मुझसे दरबारका हक क्यो छीन लिया गया है। पस मेरे मआमिलानकी तफतीश की जाय और अगर यह साबित हो जाय कि मै बेकसूर हूँ तो मेरा दरबार और दूसरे ऐजाज बहाल किये जायँ।"

३ मार्च १८६३ ई० को दरबार एव खिलअतकी बहाली भी हो गयी। २३ मार्च १८६३ को सर राबर्ट माण्टगोमरी, ले० गवर्नर पजाबने इन्हें खिलअत दी।*

खिलअतकी बहाली

---

*मौ० अबुलकलाम 'आजाद' लिखते है—"खलीफा मुहम्मद हुसेन मरहूम (पटियाला) ने मुझसे दिल्लीके एक दरबार बादे-गदरका जिक्र किया था जिसमे वह शरीक हुए थे और मिर्जा गालिबको देखा था। मिर्जा साहब पर जोफमे चलना दुश्वार था। दो शख्स दोनो तरफ सहारा देकर उन्हे ले० गवर्नरके पास लाये। उनके हाथमे जरअफशा कागज था जिसपर एक रुबाई दर्ज थी। जब रूबरू पहुँचे तो कहा—कानोसे बहरा हो गया हूँ, इरशादे मुबारक सुन नही सकता। आँखोकी बसारत जवाब दे रही है, जमाले मुबारक देख नही सकता। फिक्रे शेरकी ताकत नही कि कसीदा लिखकर खिदमते दौलतखाही बजा लेता।

रस्मे अस्त कि मालिकाने तहरीर।
आजाद कुनिंद बन्दए मीर।

इस इज्ज व खिस्तगीमे एक रुबाई अर्ज करके दिलकी हसरत निकाली है, उम्मीदवारे कबूलियत हूँ।" यह कहकर रुबाई पढी है। कागज बतौर नजर हाथोपर रखके पेश किया। ले० गवर्नरने रुबाई लेकर खुशनूदीका इजहार किया और बहुत जोरसे पुकारकर कहा—आपका कदीम ऐजाज बहाल हुआ। आप हुजूर गवर्नर जेनरलके दरबारमे भी बदस्तूर खिलअत पायेगे। फिर अपने हाथमे सरपेच बाँध दिया और मीर मुशीने खिलअतके बकीय ऐजाज अता किये।" शायद इसमे इसी दरबारका जिक्र है।

—नक्शे आजाद पृ० ३०५।

नई दरख़्वास्त

१८६५ के आरम्भमें उन्होंने अंग्रेज़ सरकारकी सेवामें पुनः निवेदन किया कि (१) मुझे महारानीका राजकवि (शायरे दरबार) नियुक्त किया जाय, (२) दरबारमें पहिलेसे ऊँची जगह दी जाय, और (३) मेरी किताब दस्तंबू हुकूमत अपने ख़र्चसे प्रकाशित करे।

बहुत जाँचके बाद ६ जनवरी १८६६ को यह निर्णय हुआ कि मिर्ज़ाको दरबारी शायर तो नहीं बनाया जा सकता, हाँ, गवर्नर-जेनरलको इसपर कोई आपत्ति नहीं कि ले० गवर्नर पंजाब उन्हें ख़िल्अत दें या दरबारमें पहिलेसे ऊँची जगह दें।

नवाब यूसुफ़ द्वारा आदर

जिन्दगीमें ग़ालिबकी जैसी इज़्ज़त नवाब मुहम्मद यूसुफ़ अलीख़ाँ नवाब रामपुरने की, दूसरेने न की। वह सज्जनताकी मूर्ति थे। ग़ालिब यद्यपि उनकी नौकरीमें थे फिर भी उनके साथ मित्र एवं गुरु-रूपमें व्यवहार करते थे। जैसा ग़ालिबके पत्रोंसे भी प्रकट है, मासिक वृत्तिके अलावा भी, समय-समयपर उनकी सहायता करते रहते थे। वह स्वयं बहुत अच्छे कवि थे और उनके कलामका अध्ययन करनेपर मालूम होता है कि उनपर ग़ालिबकी चिन्ता-धाराका काफ़ी प्रभाव पड़ा था। यह भी सम्भव है कि ग़ालिबने अपने संशोधनोंमें उनपर अपनी छाप डाल दी हो। निम्नलिखित शेरोंमें वही जद्दत और शोख़ी है—

रुख़सते अर्ज़ेहाल क्या माँगूँ।
कह न बैठें कहीं कि रुख़सत हो।

× ×

सच्चे हैं अपने वादेके आते वो ख़्वाबमें,
'नाज़िम' मुझीको नींद न आई तमाम रात।

× ×

न मालूम मुझसे दरबारका हक क्यो छीन लिया गया है। पस मेरे मआ-मिलातकी तफतीश की जाय और अगर यह साबित हो जाय कि मै बेकसूर हूँ तो मेरा दरबार और दूसरे ऐजाज बहाल किये जायँ।"

खिलअतकी बहाली

३ मार्च १८६३ ई० को दरबार एव खिलअतकी बहाली भी हो गयी। २३ मार्च १८६३ को सर राबर्ट माण्ट-गोमरी, ले० गवर्नर पजावने इन्हे खिलअत दी।*

---

*मौ० अबुलकलाम 'आजाद' लिखते है—"खलीफा मुहम्मद हुसेन मरहूम (पटियाला) ने मुझसे दिल्लीके एक दरबार वादे-गदरका जिक्र किया था जिसमे वह शरीक हुए थे और मिर्जा गालिबको देखा था। मिर्जा साहब पर जोफमे चलना दुश्वार था। दो शख्स दोनो तरफ सहारा देकर उन्हे ले० गवर्नरके पास लाये। उनके हाथमे जरअफशा कागज था जिसपर एक रुबाई दर्ज थी। जब रूबरू पहुँचे तो कहा—कानोसे बहरा हो गया हूँ, इरशादे मुबारक सुन नही सकता। आँखोकी बसारत जवाब दे रही है, जमाले मुबारक देख नही सकता। फिक्रे शेरकी ताकत नही कि कसीदा लिखकर खिदमते दौलतखाही बजा लेता।

रस्मे अस्त कि मालिकाने तहरीर।
आजाद कुनिंद बन्दए मीर।

इस इज्ज व खिस्तगीमे एक रुबाई अर्ज करके दिलकी हसरत निकाली है, उम्मीदवारे कबूलियत हूँ।" यह कहकर रुबाई पढी है। कागज बतौर नजर हाथोपर रखके पेश किया। ले० गवर्नरने रुबाई लेकर खुशनूदीका इजहार किया और बहुत जोरसे पुकारकर कहा—आपका कदीम ऐजाज बहाल हुआ। आप हुजूर गवर्नर जेनरलके दरबारमे भी बदस्तूर खिलअत पायेंगे। फिर अपने हाथसे सरपेच बाँध दिया और मीर मुशीने खिलअतके बकीय ऐजाज अता किये।" शायद इनमे इसी दरबारका जिक्र है।

—नक्शे आजाद पृ० ३०५।

इनके साथ था, रात बिता दी। बुढ़ापा, दुर्बलता, दिसम्बरकी कड़ाकेकी सर्दी, ऊपर वर्षा, पासमें पर्याप्त कपड़े नहीं, बीमार पड़ गये। अगली सुबह मौ० मुहम्मद हसनखाँ, सदरस्सदूर, को खबर मिली तो वह इन्हें अपने यहाँ उठवा ले गये और उनकी यथोचित चिकित्सा और परिचर्याकी व्यवस्था की। यहीं नवाब शेफ्तासे भेंट हुई जो रामपुर जा रहे थे। शेफ्ताने रामपुर पहुँचकर नवाबसे ज़िक्र किया। उन्होंने तुरन्त एक खास आदमी-द्वारा मिर्ज़ाको खत भेजा कि 'अगर तबीयत ज्यादा खराब हो और आप पूरी सेहत हो जानेतक मुरादाबाद ठहरनेका इरादा रखते हों तो रामपुर तशरीफ़ ले आइए। यहाँ चिकित्साका उपयुक्त प्रबन्ध हो जायगा।'

परन्तु नवाबका पत्र पहुँचनेके पूर्व ही, तबीयत सँभलनेपर, वह रवाना हो चुके थे और ८ जनवरी १८६६ को दिल्ली पहुँच गये।

रामपुरमें इनका आदर-सत्कार तो खूब हुआ पर जिस मतलबसे यह रामपुर गये थे वह पूरा न हुआ। बात यह थी कि जो कर्ज़ इनपर चढ़ गया था उससे मुक्ति तभी हो सकती थी जब कहींसे एक मुश्त बड़ी रकम मिलती। रामपुरके अलावा कहीं औरसे इन्हें उम्मीद न थी। इसीलिए रामपुर गये थे जैसा कि 'तुफ्ता' को रामपुरसे लिखे इनके एक पत्रके निम्नलिखित अंशसे प्रकट होता है।*

"मैं नस्रकी दाद और नज़्मका सिला माँगने नहीं आया। भीख माँगने आया हूँ। रोटी अपनी गिरहसे नहीं खाता, सरकारसे मिलती है। वक़्ते-रुख़सत मेरी किस्मत और मनइमकी हिम्मत। नवाब साहब अज़रुए सूरत रूहे मुजस्सिम और एतबारे अख़्लाक आयते रहमत हैं, खज़ानए फ़ैज़के तहवीलदार हैं। जो शख़्स दफ़्तरे अज़लसे कुछ लिखवा लाया है उसके पटनेमें देर नहीं लगती। एक लाख कई हज़ार रुपये साल गल्लेका

---

*उर्दू-ए-मुअल्ला पृ० ७१।

शग़ले शाहिदो मतरिबसे काम रख नाज़िम,
किसे ख़बर है कि अंजामेकार क्या होगा ?

× ×

किस किसका करूँ रश्क कि इस राहे-गुज़रमें
हर ज़र्रा मुझे दीदए-बीना नज़र आया।

× ×

शबिस्तानोंमें रहो, बाग़ोंमे खेलो, मुझको क्यो पूछो,
कि रातें किस तरह कटती है दिन क्योंकर गुजरते है ?

× ×

जिसको मजूर है आलमका परीशा रखना,
उसको क्या काम पडा है कि सॅवारे गेसू।

× ×

२१ एप्रिल १८६५ को नवाब मुहम्मद यूसुफ अलीख़ांका कर्कट रोग (सर्तान) से देहान्त हो गया। इनको काफी चोट लगी। नवाब यूसुफ़-

रामपुरकी दूसरी यात्रा

अलीख़ांकी जगह उनके ज्येष्ठ पुत्र नवाब कलब-अली गद्दीपर बैठे। उनसे मिलनेके लिए ७ अक्तूबर १८६५ को, दिल्लीसे चलकर १२ अक्तूबरको यह रामपुर पहुँचे। दोनो बच्चे इस बार भी साथ थे। अपने पिताकी भाँति ही कलबअलीख़ाँने उनका सम्मान किया। जर्नेली कोठी ठहरनेके लिए दी गयी। २२ दिसम्बर को बच्चे लौट गये। २८ दिसम्बरको मिर्जा भी दिल्लीके लिए रवाना हुए। उन दिनो काफी वर्षा हो गयी थी, रामगगा बढी हुई थी; दरियापर किश्तियोका अस्थायी पुल था। ज्योही इनकी पालकी नदीके उस पार पहुँची है कि एक जोरके रेलेमे वह पुल बह गया। अब यह हालत हुई कि साथी नौकर, सामान एक किनारेपर रह गये और यह अकेले दूसरे किनारे। गिरते-पडते मुश्किलसे मुरादाबादकी सरायमे पहुँचे और एक कम्बलमे, जो

इनके साथ था, रात बिता दी। बुढ़ापा, दुर्बलता, दिसम्बरकी कड़ाकेकी सर्दी, उसपर वर्षा, पासमें पर्याप्त कपड़े नहीं, बीमार पड़ गये। अगली सुबह मौ० मुहम्मद हसनखाँ, सदरुस्सुदूर, को खबर मिली तो वह इन्हें अपने यहाँ उठवा ले गये और उनकी यथोचित चिकित्सा और परिचर्याकी व्यवस्था की। यहीं नवाब शेफ्तासे भेंट हुई जो रामपुर जा रहे थे। शेफ्ताने रामपुर पहुँचकर नवाबसे जिक्र किया। उन्होंने तुरन्त एक खास आदमी-द्वारा मिर्जाको खत भेजा कि 'अगर तबीयत ज्यादा खराब हो और आप पूरी सेहत हो जानेतक मुरादाबाद ठहरनेका इरादा रखते हों तो रामपुर तशरीफ़ ले आइए। यहाँ चिकित्साका उपयुक्त प्रबन्ध हो जायगा।'

परन्तु नवाबका पत्र पहुँचनेके पूर्व ही, तबीयत सँभलनेपर, वह रवाना हो चुके थे और ८ जनवरी १८६६ को दिल्ली पहुँच गये।

रामपुरमें इनका आदर-सत्कार तो खूब हुआ पर जिस मतलबसे यह रामपुर गये थे वह पूरा न हुआ। बात यह थी कि जो कर्ज इनपर चढ़ गया था उससे मुक्ति तभी हो सकती थी जब कहींसे एक मुश्त बड़ी रकम मिलती। रामपुरके अलावा कहीं औरसे इन्हें उम्मीद न थी। इसीलिए रामपुर गये थे जैसा कि 'तुफ्ता' को रामपुरसे लिखे इनके एक पत्रके निम्नलिखित अंशसे प्रकट होता है।*

"मैं नस्रकी दाद और नज़मका सिला माँगने नहीं आया। भीख माँगने आया हूँ। रोटी अपनी गिरहसे नहीं खाता, सरकारसे मिलती है। बख्ते-रुखसत मेरी किस्मत और मनइमकी हिम्मत। नवाब साहब अज़रूए सूरत रूहे मुजस्सिम और एतबारे अख्लाक आयते रहमत हैं, खज़ानए फ़ैज़के तहवीलदार हैं। जो शख्स दफ्तरे अज़लसे कुछ लिखवा लाया है उसके पटनेमें देर नहीं लगती। एक लाख कई हजार रुपये साल गल्लेका

---

*उर्दू-ए-मुअल्ला पृ० ७१।

महसूल माफ कर दिया। एक अहलकारपर साठ हजारका मुहासबा माफ किया और बीस हजार रुपया नकद दिया। मुंशी नवलकिशोर साहबकी अर्जी पेश हुई, खुलासा अर्जीका सुन लिया। वास्ते मुंशी साहबके कुछ अतिया, बतकरीबे शादिए सबिया तजवीज हो रहा है। मिकदार मुझपर नही खुली।"

'मकातीबे गालिब' की भूमिकामे जनाब इम्तियाज़ अलीख़ाँ अर्शी लिखते है कि "नवाबने रामपुर पहुँचनेके बाद इन्हे एक हजार रुपये सिंहासनारोहणके इनामके रूपमे प्रदान किये और विदाईके समय दो सौ मार्ग-व्ययके लिए दिये।" इनकी अर्थाकाक्षा इतनी बढी-चढी थी कि इस ओससे प्यास क्या बुझती। तुफ्ताको दिल्लीसे लिखते है—

निराशा

"लो साहब, खिचडी खाई दिन बहलाये। कपडे फाटे घरको आये। ८ जनवरी दोशंबेके दिन गजबे इलाहीकी तरह अपने घरपर नाज़िल हुआ।"

जान पडता है, बादमे, इनके सम्बन्ध नवाब कलबअलीखाँसे बिगड गये। अपनी अहकारवृत्तिका प्रदर्शन करते हुए मिर्ज़ाने किसी खतमे हिन्दुस्तानी फारसीनवीसोके विरुद्ध व्यग्य किया था जिसका नवाबपर बहुत बुरा असर पडा। इसके बाद मिर्जाने बहुत यत्न किये कि पूर्ववत् सम्बन्ध हो जाय पर अभाग्य-वश सफलता न मिली।

प्रसिद्धि

पर इन कठिनाइयो और मुसीबतोके बीच भी, गदरके बाद इनकी प्रसिद्धि चारो ओर फैलती ही गयी। रामपुर दरबारने तो इनकी कद्र की ही पर इनके प्रशसक केवल रामपुरमे नही बल्कि हिन्दुस्तान भरमे थे। बगालमे मैसूरके शाही खानदानके शाहजादा बशीरुद्दीन (नवाब अब्दुल लतीफके भाई), डिपुटी कलक्टर खाँबहादुर अब्दुलगफूर खाँ 'नस्साख', सूरतमे मीर गुलाम बाबा खाँ, लोहारूमे नवाब लोहारूके साहबज़ादे मिर्ज़ा अलाउद्दीन खाँ और

भाई नवाब ज़ियाउद्दीनख़ाँ ग़ालिबके प्रशंसकों एवं शागिर्दोंमें थे। इलाहाबादके ख़ाँबहादुर मुंशी गुलाम ग़ौस 'बेख़बर' 'क़ातए बुरहान' के मामलेमें मिर्ज़ाके साथ न थे लेकिन इनकी काव्य प्रतिभाके क़ायल थे। पंजाबमें तो इनकी पुस्तक 'दस्तंबू' बहुत लोकप्रिय हुई और वहाँसे उर्दू रुक़्क़ोंकी बड़ी माँग थी। लोग इनके दर्शनोंको आने लगे थे।

इस ज़मानेमें शाह ग़ौस कलन्दर नामक एक विद्वान् सूफ़ीसे भी इनकी मित्रता हो गयी थी। यह शाह साहब भी मिर्ज़ासे मिलने गये थे। शाह

शाह ग़ौससे घनिष्टता

साहबकी किताब 'तज़किरा-ए-ग़ौसिय' में ग़ालिबकी कई मुलाक़ातोंका ज़िक्र है और उससे ग़ालिबके जीवन एवं स्वभावपर विशेष प्रकाश पड़ता है।

इस तज़किरेमें शाह साहब लिखते हैं—

"एक रोज़ हम मिर्ज़ा नौशाके मकानपर गये। निहायत हुस्ने एख़लाक़से मिले। लबेफ़र्श तक आकर ले गये और हमारा हाल दरियाफ़्त किया। हमने कहा—मिर्ज़ा साहब, हमको आपकी एक ग़ज़ल बहुत ही पसन्द है। बलख़ुसूस यह शेर—

तू न क़ातिल हो कोई और ही हो,
तेरे कूचे की शहादत ही सही।

कहा—साहब! यह शेर मेरा नहीं, किसी उस्तादका है। फ़िलहक़ीक़त निहायत ही अच्छा है। उसदिनसे मिर्ज़ा साहबने यह दस्तूर कर लिया कि तीसरे दिन ज़ीनतुल मसाजिदमें हमसे मिलनेको आते और एक ख़्वान खानेका साथ लाते। हरचंद हमने उज़्र किया कि यह तकलीफ़ न कीजिए मगर वह कब मानते थे। हमने खानेके लिए कहा तो कहने लगे कि मैं इस क़ाबिल नहीं हूँ, मयख़्वार रूसियाह, गुनहगार मुझको आपके साथ खाते हुए शर्म आती है। हमने बहुत इसरार किया तो अलग तश्तरीमें लेकर खाया। उनके मिज़ाजमें कस्रे नफ़्सी और फ़र्दतनी थी।"

इसी किताबमे लिखा है—"एक रोजका जिक्र है कि मिर्ज़ा रजबअली बेग 'सरूर' मुसन्निफ 'फिसानए अजायब' लखनऊसे आये। मिर्ज़ा नौशासे मिले। अस्नाए गुफ्तगूमे पूछा—मिर्ज़ासाहब, उर्दू जबान किस किताबकी उम्दा है ?' कहा—'चार दरवेशकी।' मियां रज्जबअली बोले—'फिसानए अजायबकी कैसी है ?' मिर्ज़ा बेसाख्ता कह उठे—'अजी लाहौल बिला कूवत! इसमे लुत्फेजबान कहाँ,—एक तुकबदी और भठियारखाना जमा है।" इस वक्त तक मिर्ज़ा नौशाको यह खबर न थी कि यही मियाँ सरूर है। जब चले गये तब हाल मालूम हुआ। बहुत अफसोस किया और कहा कि 'जालिमो! पहिलेसे क्यो न कहा ?' दूसरे दिन मिर्ज़ा नौशा हमारे पास आये, यह किस्सा सुनाया और कहा कि यह अमर मुझसे नादानिस्तगीमे हो गया है, आइए आज उसके मकानपर चले और कलकी मुकाफात कर आयें। हम उनके हमराह हो लिये और मियाँ सरूरके फरूदगाहपर पहुँचे। मिजाजपुर्सीके बाद मिर्ज़ासाहबने इबारत आराईका जिक्र छेडा और हमारी तरफ मुखातिब होकर बोले—'जनाब मौलवी साहब! रातमे मैने 'फिसाना अजायब'को बगौर देखा तो उसकी खूबिए-इबारत और रगीनीका क्या बयान करूँ। निहायत ही फसीह व बलीग इबारत है। मेरे कयासमे तो न ऐसी उम्दा नस्र पहिले हुई, न आगे होगी और क्योकर हो ? इसका मुसन्निफ अपना जवाब नही रखता। गर्ज इस किस्मकी बहुत-सी बाते बनाई। अपनी खाकसारी और उनकी तारीफ करके मियाँ सरूरको निहायत मसरूर किया। दूसरे दिन उनकी दावत की और हमको भी बुलाया। उस वक्त भी 'सरूर' की बहुत तारीफ की। मिर्ज़ासाहबका मजहब यह था कि दिलआजारी बडा गुनाह है।

उर्दू किस किताबकी अच्छी है ?

"एक दिन हमने मिर्ज़ा गालिबसे पूछा कि तुमको किसीसे मुहब्बत भी है। कहा कि हाँ, हजरत अली मुर्तजा से। फिर हमसे पूछा कि आपको ? हमने कहा कि वाह साहब, आप तो मुगल बच्च होकर अली-

मुर्तजाका दम भरें और हम उनकी औलाद कहलायें और मुहब्बत न रखें, क्या यह बात आपके कयासमें आ सकती है ?"*

× × ×

जहाँ एक ओर इनकी प्रसिद्धि होती गयी और इनके प्रशंसकों एवं अनुयायियोंकी संख्या बढ़ती गयी वहाँ उत्कर्ष कालमें अनेक संघर्ष एवं विरोध भी हुए। १८५८ के बादका समय इनके उत्कर्षका मध्याह्न था। आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी तो बुरी भी न थी। दिल्लीमें शान्ति स्थापित हो गयी थी पर वह पुराना रंग अब न था। एक सन्नाटा-सा था, दोस्त अहबाब बिखर गये थे। गदरके दिनोंका आत्म-चरित 'दस्तंबू' को खतम कर चुके थे। किताबें और अन्य वस्तुएँ पहले ही नष्ट हो चुकी या लुट चुकी थीं। इसलिए एकान्तमें मिर्जा फारसी एवं अरबी शब्दों एवं धातुओंपर विचार किया करते थे। इस समय उनके पास दो ही अच्छी किताबें थी—'बुरहान क़ातअ' जो फ़ारसीका शब्दकोश था, दूसरी दसातीर जिसके लेखक मुहम्मद हुसेनके पूर्वज तब्रेजसे आये थे, यद्यपि वह स्वयं हिन्दुस्तानमें पैदा हुए थे इसीसे वह तब्रेजी कहलाते थे। पड़े-पड़े इन्होंने बुरहान क़ातअका गहरा अध्ययन करना शुरू किया। उसमें उन्हें अनेक त्रुटियाँ दिखाई पड़ीं, शब्दोंके अर्थ एवं धातुओंकी गलतियाँ मिलीं, तरीका बयान अक्सर भोंडा एवं कोशविद्याके विरुद्ध पाया। जो त्रुटियाँ दिखाई पड़ीं, उन्हें यह लिखते गये। एक किताब बन गयी जिसका नाम 'क़ातअ बुरहान' रखा गया। § यह १८५९ के आरंभमें लिखी गयी और १८६१

'बुरहान क़ातअ' का संघर्ष

---

* 'आसारे ग़ालिब' (शेख मुहम्मद इकराम) पृ० १६४–१६५

§ साहब आलम मारहरवीको पत्रमें लिखते हैं—"इस दरमांदगीके दिनोंमें 'बुरहान क़ातअ' मेरे पास थी। इसको मैं देखा करता था। हजारहा लुगत गलत, हजारहा बयान गलत, इबारत पोच' मैंने सौ दो सौ लुग़तके अगलात लिखकर एक मजमूआ बनाया है और 'क़ातअ बुरहान' इसका नाम रखा है।"

अक्तूबरके बाद छपी। ★ इसके ३–४ साल बाद मिर्ज़ाने दूसरा एडीशन दुरफ्शे कावियानीके° नामसे छपवाया जिसकी एक प्रति बृटिश म्यूज़ियमके पुस्तकालयमें मौजूद है। इस पुस्तकमें मिर्ज़ाकी स्वतन्त्र मेधा एवं विवेचना शक्तिके दर्शन होते हैं। यह परम्परा या अगलोंके लिखेके सामने सिर न झुकाते थे बल्कि हर वस्तुकी समीक्षा करते थे। तुफ्ताको लिखा भी था—"यह न समझा करो कि अगले जो लिख गये वह सब हक़ है। क्या आगे अहमक नहीं पैदा होते थे ?"

विरोधका बवण्डर

'क़ातअ-बुरहान'के छपते ही एक तहलका मच गया। साहित्यकी भूमि मल्ल-भूमि बन गयी। उसके प्रकाशित होते ही पक्ष-विपक्षमें किताबें छपने लगीं। विरोधमें ज़्यादा निकलीं। सबसे पहिली किताब सैयद सआदत अली (भू० पू० मीरमुंशी राजपूताना रेज़ीडेंसी) की 'मोहरिक क़ातअ बुरहान' थी। यह फ़ारसीमें ही लिखी गयी थी। ९६ पृष्ठोंकी थी और अहमदी दिलहाई छापाख़ाना शाहदरामें छपी थी। उसके जवाबमें ३ पुस्तिकाएँ निकलीं—१ दाफ़ए हज़ियाँ (फ़ारसी), २ लतायफ़ ग़ैबी (उर्दू), ३ सवालाते अब्दुल-करीम (उर्दू)। 'दाफ़ए हज़ियाँ' के लेखक मौ० नजफ़अली ख़ाँ थे। यह २८ पृष्ठोंकी एक पुस्तिका है और १८६५ में अकमलुल मताबअ देहलीसे छपी थी। नजफ़अली झज्झरके काज़ी ख़ान्दानमेंसे थे और सैयद मुहम्मद अज़ीज़उद्दीनके पुत्र थे। इनकी गणना उस कालके अरबी-फ़ारसीके विद्वानोंमें की जाती है। दूसरी पुस्तक 'लतायफ़ ग़ैबी' के लेखक मियादाद

★ मौलाना अल्ताफ़हुसेन हालीके कथनानुसार १८६० में पहिली बार और १८६१ में दुरफ्शे कावयानीके नामसे दूसरी बार छपी।

° ईरानमें काव नामका एक लुहार था जिसने अपने झण्डेमें अपनी धौंकनी बाँधी थी और जिसके द्वारा उसने जनताको एकत्र करके कियानी राज्यको नष्ट किया था। सामान्य अर्थ विद्रोहका झण्डा।

सां नस्साह् थे। यह ४१ पृष्ठोंकी पुस्तिका है। खोजसे मालूम हुआ है कि यह स्वयं ग़ालिबकी लिखी हुई है। यह १८६८ में अकमलुल मताबअमें छपी थी और मूल्य ८) प्रति था। तीसरी रसालाने अब्दुलकरीम जरासी (८ पृष्ठ की) पुस्तिका है। §

चौथी किताब जो इस सम्बन्धमें लिखी गयी 'सातअ बुरहान' (फ़ारसी) है। इनके लेखक मीरज़ा रहीम बेग 'रहीम' मेरठी थे। यह १७४ पृष्ठोंकी पुस्तक है और १८६७ ई० में मतबा हाशमी मेरठमें छपी थी। रहीम बेग विद्वान् और उर्दू-फ़ारसीके कवि थे। इस पुस्तक 'सातअ बुरहान' के जवाबमें ग़ालिबने स्वयं १६ पृष्ठोंका 'नामये ग़ालिब' लिखा जो अगस्त १८६५ में मतबा मोहम्मदी देहलीमें छपा। मिर्ज़ाने इसकी ५ प्रतियाँ नवाब रामपुरको भेजी थी। १० एवं १७ अक्तूबर १८६५ के अवध अख़बारमें भी इसका प्रकाशन हुआ था।

'क़ातअ बुरहान'के जवाबमें दो पुस्तकें और लिखी गयी—

१ क़ातअ-उल-क़ातअ'—ले० अमीन उद्दीन 'अमीन'। यह १८६५ में लिखी गयी और १८६७ में मतबा मुस्तफ़ाई देहलीमें छपी। इसमें २६८ पृष्ठ हैं। सच पूछें तो क़ातअ बुरहानके जवाबमें लिखी यही पहिली किताब है। 'मोहरिक़ क़ातअ बुरहान'में भी इसका हवाला दिया गया है।

२ मवय्यदे बुरहान—ले० आग़ा अहमदअली 'अहमद' (अध्यापक फ़ारसी, मदरसा आलिया, कलकत्ता)। इनके पूर्वज इस्फ़हांके रहनेवाले थे। यह बड़ा विवेचनापूर्ण ग्रन्थ है। इसमें ४६८ पृष्ठ हैं तथा ७ पृष्ठोंकी

---

§ उर्दू मासिक 'आजकल' (फरवरी १९५३) में श्री मालिकरामने लिखा है कि यह पुस्तक भी ग़ालिबकी ही लिखी है। कमसे कम उसकी रचनामें उनका हाथ तो स्पष्ट है।

शुद्धि-तालिका है। टाइपमे मतबा मजहरुल अजायब कलकत्तामे १८६६मे छपा था।

मिर्जाने ३४ पृष्ठोमे एक पुस्तिका 'तेगेतेज' नामसे लिखी थी। इसमे १७ अध्याय है। १ से १६ अध्याय तकमे एक-एक आपत्ति मौ०अहमदअली पर की है और उनकी आपत्तियोके जवाब भी दिये हैं। अन्तिम अध्यायमे 'बुरहान कातअ'पर नये एतराज है। यह पुस्तक १८६७ मे छपी थी। इसकी भाषा बडी कटु है। सैयद सआदतअली तथा उनके कातए बुरहानके बारेमे, गालिब इस पुस्तकमे, लिखते है—"एक मर्द बेमग्ज, मआउज्जेहन[1], न फारसीदां न अरबीखांने मेरी निगारिश[2] (कातअ बुरहान) की तरदीदमे एक किताब बनाई और छपवाई और 'मोहरिक कातअ' उसका नाम रखा।"*

'तेगेतेज'

तेगेतेजमे कातअ बुरहानके सभी विरोधियोपर नुक्ताचीनी है और मवय्यदे बुरहानकी आपत्तियोके जवाब भी है पर मुख्यत यह मिर्जाअहमदअली का जवाब है। इसमे वह मिर्जा अहमदअलीकी निस्बत लिखते हैं—"अर-

* गालिब एक उर्दू पत्रमे मुशी हबीबुल्लाखांको लिखते है—"अहा हा! 'मोहरिक कातअ'का नुस्खा तुम्हारे पास पहुँचा। कामे कि ख्वास्तम जखुदाशुद मयस्सरम। मै इस खुराफातका जवाब क्या लिखता। मगर सखुनफहम[3] दोस्तोको गुस्सा आ गया। एक साहबने फारसीमे उसके अयूब[4] जाहिर किये, दो तालिबइल्मोने[5] उर्दूमे दो रिसाले जुदा-जुदा लिखे। दाना[6] हो और मुसिफ[7] हो। फर्कको देखकर जानोगे कि मोअल्लिफ[8] इसका अहमक है और जब वह अहमक दाफए हजियां, सवालात अब्दुल करीम और लतायफ गैबीको पढकर मुतनब्बा[10] न हुआ और मोहरिकको धो न डाला तो मालूम हुआ कि बेहया भी है।

१ प्रतिभाहीन, २ रचना, ३. साहित्य-पारखी, ४ दोष, ५ शिष्यो, ६ चतुर, ७ न्यायी, ८ प्रणेता, ९ मूर्ख, १० सावधान।

चीयतमें अमीनउद्दीनसे बढ़कर, फ़ारसीयतमें बराबर, फहश व नासज़ागोईमें पमनर जितने अल्फ़ाज़[1] तज़्लील[2]के हैं चुन-चुनकर मेरे वास्ते इस्तेमाल किये और यह न समझा कि गालिब अगर आलिम नहीं, शायर नहीं, आखिर शराफ़त व अमारत[3]में एक पाया रखता है, साहबे इज़्ज़तोशान है, आली खान्दान है। उमराए हिन्द, रऊसाए हिन्द, महाराजगाने हिन्द सब उनको जानते हैं, रईसज़ादगाने सरकारे अंग्रेज़ीमें गिना जाता है, बादशाह की सरकारसे नजमुद्दौलाका खिताब है, गवर्नमेण्टके दफ्तरमें 'ख़ाँ साहब बिसियार मेह्रबान दोस्तान' अल्काब है, जिसको गवर्नमेण्ट ख़ाँ साहब लिखती हैं उसको सिर्फ़ और कुत्ता और गधा क्योंकर लिखूँ। फिलहक़ीक़त यह तज़लील बफ़हवामें जर्बुल गुलाम अहानतुल्मौला गवर्नमेण्ट बहादुरकी तौहीन और वज़ीए व शरीफे हिन्दको मुख़ालफ़त है। मेरा क्या बिगड़ा? मौलवीने अपना पाजीपन ज़ाहिर किया, मैंने मोअल्लिम अमीन बेदीनको शैतानके हवाले किया और अहमदअलीके अलफ़ाज़ मज़मूनमें फ़तअ नज़र किया और उनके मतालिबे इल्मीका जवाब अपने जिम्मे लिया।"

'तेग़ेतेज़'के अलावा मिर्ज़ाने एक तीस शेरका फ़ारसी क़िता मौ० मुहम्मदअलीके नाम लिखकर भेजा जिसमें उनकी किताबपर प्रभावोत्पादक ढगसे व्यग किये हैं। यह अहमदअली ढाकाके रहनेवाले थे पर ईरानी नस्लका दावा करते थे। कितेमें इसपर भी व्यग है—

हर कि बीनी बाज़बाने मूलिदे ख़ुद आश्नास्त,
साज़े नुत्क़े मौतने अजदाद बेजा करदः अस्त।

ख़्वाजारा अज़ इस्फ़हानी-बूदने आबा च सूद,
ख़ालिक़श दर किश्वरे बंगाला पैदा कर्दः अस्त।

---

१ शब्द (लफ्ज़का बहुवचन)। २. ज़िल्लत, अपमान। ३ अमीरी।

इन बातोसे समझमे आ सकता है कि गालिबकी आलोचनासे साहित्य-जगत्में कितनी बडी हलचल उठ खडी हुई थी। मिर्जा न केवल बुरहाने

विरोधका कारण

कातअके विरोधी थे वरन् किसी भी हिन्दुस्तानी फरहगनवीसके कायल न थे। जो लोग इन कोशकारोके भक्त थे उनका विरोध करना मिर्जाको आवश्यक-सा लगता था। इतने विरोधका कारण यह था कि मिर्ज़ाकी शैली चुटीले व्यग्यो और कटूक्तियोसे भरी हुई थी। जगह-जगह प्रतिद्वन्द्वी लेखकका मजाक उडाया गया है। इससे बुरहाने क़ातअके पक्षपाती आग-बबूला हो गये। जैमा कि ऐसे तर्कप्रधान साहित्यिक सघर्षोमे प्राय होता है, दोनो पक्षोमे गलतियाँ थी। बुरहाने कातअमे गलतियाँ थी तो 'कातअ बुरहान' भी गलतियोसे अछूती न थी। मिर्जाका यह कथन भी कितना हास्यास्पद था कि ईरानी नस्लका होनेपर भी बगालमे पैदा होनेवाले अहमदअलीको भाषाविद् (अहलेज़बान) न माना जाय और परदादाके बाद ईरानका मुँह भी न देखनेवाले गालिबको फारमीभाषातत्त्वज्ञ माना जाय।

मिर्ज़ाके इस कितेके जवाबमे मौ० अहमदअलीने खुद किता लिखा और एक शागिर्द मौ० अब्दुल समद 'फिदा' सिलहटीके नामसे छपाया

हगामए दिलआशोब

जिसके जवाबमे गालिबके दो शागिर्द सैयद मु० बाकरअली 'बाकर' और ख्वाजा मैयद फखर-उद्दीन 'सुखन'ने लिखे। बादमे चारो किते 'हगामए दिलआशोब'के नामसे ११ एप्रिल १८६७को आरा (बिहार) के मुशी सन्तप्रसादके छापेखानेमे छपे।

अब्दुल समद 'वफा' (या अहमद अली)ने इन दोनो कितोका जवाब

'तेगेतेजतर'

लिखा और पहिले चारोके साथ इमे मिलाकर 'तेगेतेजतर' के नामसे १८६७मे छपवाया।

इसके बाद मुशी जवाहर सिंह 'जौहर' लखनऊने एक किता लिखा जिसमे अहमद अलीका समर्थन एव गालिबका विरोध था। इसपर बाकर

एव मुश्ताकने जोहर और तिश्ना दोनोंने मिलोकर एक-एक जवाब लिखा। उधर मीर आगा अलीशम्सने 'अवध अखबार' (२५ जून १८६७)में मिर्जाके कई शेरोंपर एतराज किया।* इनका भी जवाब नाजुकने उर्दू गद्य और बाकरने फारसी गद्यमें लिखा। मुशी मुहम्मद अमीन 'दमीर' उन्नावीने गालिबके पक्षमें एक किता 'अवध अखबार'में छपवाया। इनका संकलन करके 'हगामए दिल आशोब' हिस्सा दोयमके नामसे मतलए गमादने बागसे छपवाया।

पर इन सबमें बेबुनियाद बातें ज्यादा थीं—कवि-कल्पना थी। मिर्जा गालिबने जो एतराज 'तेगेतेज' मे किये थे उनका जवाब किसीने न दिया। अहमदअलीने 'शमशीर तेजतर' मे यह यत्न किया। यह ग्रन्थ १८६८मे छपा। इसके कुछ समय बाद तो गालिबका देहान्त ही हो गया।

'शमशीर तेजतर'

जिन्दगी भर कर्जदारोंने इनका पिण्ड नही छूटा। बच्चे जितने हुए मर गये। आरिफको बेटेकी तरह पाला वह भी मर गया। पारिवारिक जीवन कभी सुखी एव प्रेममय नही रहा। मानसिक सन्तुलनकी कमीने जमानेकी शिकायत हमेशा रही। इसका दुख ही बना रहा कि समाजने कभी हमारी योग्यता और प्रतिभाकी सच्ची कद्रदानी न की। फिर शराब जो किशोरावस्थामें मुँह लगी वह कभी न छूटी। गदरके जमानेमें अर्थ-कष्ट, उसके बाद पेन्शनकी बन्दी, खिलअत एवं दरबार बन्दीके दुखसे परीशान रहे। जब इनसे कुछ फुर्सत मिली तो 'कातअ बुरहान' के हगामेने इनके दिलमे ऐसी

शरीरका निरन्तर ह्रास

---

* श्री मालिकरामने अपनी पुस्तक 'जिक्रे गालिब' मे लिखा है कि लखनऊकी दो वेश्याओं—कमरी जान मुख्तरी उर्फ़ मन्नू तथा उमराव जान जोहरा उर्फ़ बी छुट्टन—ने भी, जो सुशिक्षित कवयित्रियाँ और शम्सकी शागिर्द थी, इस साहित्यिक-विवादमे भाग लिया था।

इन बातोसे समझमे आ सकता है कि गालिबकी आलोचनासे साहित्य-जगत्मे कितनी बडी हलचल उठ खडी हुई थी। मिर्जा न केवल बुरहाने कातअके विरोधी थे वरन् किसी भी हिन्दुस्तानी फरहगनवीसके कायल न थे। जो लोग इन कोशकारोके भक्त थे उनका विरोध करना मिर्ज़ाको आवश्यक-सा लगता था। इतने विरोधका कारण यह था कि मिर्जाकी शैली चुटीले व्यग्यो और कटूक्तियोसे भरी हुई थी। जगह-जगह प्रतिद्वन्द्वी लेखकका मजाक उडाया गया है। इससे बुरहाने क़ातअके पक्षपाती आग-बबूला हो गये। जैसा कि ऐसे तर्कप्रधान साहित्यिक सघर्षोमे प्राय होता है, दोनो पक्षोमे गलतियाँ थी। बुरहाने कातअमे गलतियाँ थी तो 'कातअ बुरहान' भी गलतियोसे अछूती न थी। मिर्जाका यह कथन भी कितना हास्यास्पद था कि ईरानी नस्लका होनेपर भी बगालमे पैदा होनेवाले अहमदअलीको भाषाविद् (अहलेज़बान) न माना जाय और परदादाके बाद ईरानका मुँह भी न देखनेवाले गालिबको फारसीभाषातत्त्वज्ञ माना जाय।

विरोधका कारण

मिर्ज़ाके इस कितेके जवाबमे मौ० अहमदअलीने खुद किता लिखा और एक शागिर्द मौ० अब्दुल समद 'फिदा' सिलहटीके नामसे छपाया जिसके जवाबमे गालिबके दो शागिर्द सैयद मु० बाकरअली 'बाकर' और ख्वाजा सैयद फखरउद्दीन 'सुखन'ने लिखे। बादमे चारो किते 'हगामए दिलआशोब'के नाममे ११ एप्रिल १८६७को आरा (बिहार) के मुशी सन्तप्रसादके छापेखानेमे छपे।

हगामए दिलआशोब

अब्दुल समद 'वफा' (या अहमद अली)ने इन दोनो कितोका जवाब लिखा और पहिले चारोके साथ इसे मिलाकर 'तेगेतेज़तर' के नामसे १८६७मे छपवाया।

'तेगेतेज़तर'

इसके बाद मुशी जवाहर सिंह 'जौहर' लखनऊने एक किता लिखा जिसमे अहमद अलीका समर्थन एव गालिबका विरोध था। इसपर बाकर

एक ख़तमें नवाब अनवरउद्दौला 'शफ़क़' को लिखते हैं —

"न तप न गर्मी, न अमराज़ न फ़ालिज न लक़वा, इन सबसे बदतर एक नुक्स पुर कुदूरत यानी एकावारका मर्ज़। मुख़्तसर यह कि सरसे पाँव तक बारह फोड़े, हर फोड़ेपर एक ज़ख़्म, हर ज़ख़्मपर एक ग़ार। हर रोज़ बेमुबालगा तेरह फाये और पावभर मरहम दरकार। नौ-दस महीने बेखुर्दो-ख़ाब[1] रहा और शबो-रोज़[2] बेताब[3]। रातें यों गुज़र रही हैं कि अगर कभी आँख लग गयी, दो घड़ी ग़ाफ़िल रहा हूँगा कि एक आध फोड़ेमें टीस उठी, जाग उठा, तड़पा किया, फिर सो गया, फिर होशियार हो गया।"

नवम्बर १८६३में क़ाज़ी अब्दुलजमीलको एक ख़तमें लिखते हैं— "जितना ख़ून बदनमें था, बेमुबालगा आधा उसमेंसे पीप होकर निकल गया।"

फोड़ोंसे मुक्ति मिली तो १८६३में फ़त्क़ (अण्डवृद्धि, आँत उतरने) की शिकायत हुई।

लम्बी बीमारी

इन शारीरिक व्याधियोंमें पारिवारिक सौख्य एवं दाम्पत्य स्नेहके-अभावने ज़िन्दगीको स्वादहीन कर दिया था। जीनेकी भी इच्छा नहीं रह गयी थी। मृत्युकी आकांक्षा करने लगे थे। जून १८६३के एक पत्रमें लिखते हैं —

"सन् १२७७ हिजरीमें मेरा न मरना सिर्फ़ तकज़ीबके वास्ते था। हर रोज़ मर्गे-नौ[4]का मज़ा चखता हूँ। रूह मेरी अब जिस्ममें इस तरह घबराती है जिस तरह तायर[5] क़फ़स[6]में। कोई शग़ल, कोई इख़्तिलात[7], कोई जल्सा, कोई मजमा पसन्द नहीं। किताबसे नफ़रत, शेरसे नफ़रत, जिस्मसे नफ़रत, रूहसे नफ़रत। जो कुछ लिखा है बेमुबालगा और बयाने वाक़अ है।"

---

१ खाने-पीने और नींदसे लाचार, २ रात-दिन, ३ बेचैन, ४ नवमरण, ५ पक्षी, ६ पिंजड़ा, ७ प्रेम-व्यवहार।

उत्तेजना पैदा की कि वेचैन रखा। इन लगातार मुसीवतोमे इनका स्वास्थ्य गिरता ही गया। खाना-पीना बहुत कम हो गया। वहरे हो गये। दृष्टि-शक्ति कम होती गयी। कब्जकी शिकायत पहिलेसे थी ही। मई १८५८मे कोलजका आक्रमण पहिली वार हुआ और वीच-वीचमे वरावर होता रहा। १८६१मे इतने दुर्वल थे कि नवाव रामपुर मु० यूसुफ खाँने अपने मझले पुत्र हैदरअली खांका निकाह किया और उसमे उन्हे निमन्त्रित किया, पर वीमारी एव दुर्वलताके कारण वहाँ न जा सके।

दिन-दिन तन्दुरुस्ती खराव होती जा रही थी। एक न एक रोग लगे रहते थे। जीवनके उत्तर कालमे खून भी खराव हो गया। इसके कारण

चर्मरोगसे कष्ट

चर्मरोग प्राय होते रहते थे। इस चर्मरोगसे उन्हे वडी तकलीफ उठानी पडी। एक फोडा वैठता या पकता कि दूसरा तैयार हो जाता। वरसो तक यह सिलसिला रहा। इनके पत्रोको पढनेसे उस समयकी इनकी तकलीफोका कुछ अन्दाज किया जा सकता है। ३ मई १८६३के एक पत्रमे लिखते है —

"छटा महीना है कि सीधे हाथमे एक फुसीने फोडेकी सूरत पैदा की। फोडा पककर फूटा और फूटकर एक जख्म और जख्म एक गार वन गया। हिन्दुस्तानी जर्राहोका इलाज रहा। विगडता गया। दो महीनेसे काले डाक्टरका इलाज है। सलाइयाँ दौड रही है, उस्तरेसे गोश्त कट रहा है। वीस दिनसे इफाका[1] की सूरत नजर आती है।"

पर यह 'इफाका' भी अस्थायी था। एक फोडा अच्छा होता कि दूसरे निकल आते। १६ अगस्त १८६३के पत्रमे 'तुफ्ता' को लिखते है —

"एक वरससे अवारिज़े फिसादे खून[2] मे मुब्तला हूँ। वदन फोडोकी कसरतसे सर्दचिरागाँ हो गया। ताकतने जवाव दे दिया। दिन-रात लेटा रहता हूँ।"

---

१ लाभ, २ रक्तदोषके रोग।

सबब था कि उठनेमें दिक्कत होती थी। आँखोंमें नूर[1] मौजूद था, कानकी समाअत[2] में कुछ सकल[3] आ चला था।"

इस समय उनकी उम्र लगभग सत्तर सालकी थी। स्वास्थ्य गिरता ही गया। "चलना-फिरना मौकूफ हो गया था, अक्सर औकात पलँगपर पड़े रहते थे, गिज़ा कुछ न रही थी।"*

भोजनके विषयमें तो खुद ही ४ दिसम्बर १८६६को मौ० हबीबुल्ला खाँ 'ज़का'को एक पत्रमें लिखते हैं —

"इस महीने यानी रजबकी आठवीं तारीख़से बहत्तरवाँ वर्ष शुरू हुआ। गिज़ा सुबहको सात बादामका शीरा क़न्दके शर्बतके साथ, दोपहरको सेर भर गोश्तका गाढ़ा पानी, क़रीब शाम कभी-कभी तीन तले हुए कबाब, छ घड़ी रात गये पाँच रुपये भर शराबे ख़ानासाज़ और इसी क़दर अर्क़-शीर। ऐसावके ज़ोफ़का यह हाल कि उठ नहीं सकता और अगर दोनों हाथ टेककर, चारपाया बनकर, उठता हूँ तो पिण्डलियाँ लर्ज़ती हैं… दिन भरमें दस-बारह बार और इसी क़दर रात भरमें, पेशाबकी हाजत होती है। हाजती पलँगके पास लगी रहती है, उठा, पेशाब किया और पड़ रहा। असबाबे ह्यातमेंसे यह बात है कि शबको बदख्वाब नहीं होता। बे तवक्कुफ़ नींद आ जाती है। एक सौ साठ रुपयेकी आमद, तीन सौ का खर्च। हर महीनेमें एक सौ चालीस रुपयेका घाटा, कहो ज़िन्दगी दुश्वार है या नहीं।"†

'अज़ीज़' द्वारा लिखित विवरण

इन्हीं दिनोंकी बात है कि ख़्वाजा अज़ीज़ लखनवी कश्मीर जाते वक्त रास्तेमें इनसे मिले थे। उस मिलनका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन उन्होंने किया है :—

---

१ प्रकाश, २. श्रवण, ३ भारीपन, दोष।

* यादगारे ग़ालिब (हाली)।

† उर्दू-ए-मुअल्ला पृ० ३२।

वीमारी इतनी बढी कि १८६४ ई०के शुरूमे कही-कही इनकी मृत्युका समाचार भी फैल गया। यही वात १८६७ ई०मे भी हुई। फरवरी १८६४के पत्रमें यह अनवरउद्दौलाको लिखते हैं—"आपकी पुर्सिशके कुर्वान जाऊँ कि जवतक मेरा मरना न सुना, मेरी खवर न ली।"

जीवनके आखिरी सालोंमे यह वरावर वीमार रहे। एक वीमारी अच्छी होती कि दूसरी हो जाती। कमज़ोरी वेहद वढती गयी। १२ मई १८६६को मौ० हवीवउल्लाखाँ 'जका'को लिखते हैं—

"मेरे मुहिव, मेरे महवूव! तुमको मेरी खवर भी है? आगे नातवाँ[1] था, अव नीमजान[2] हूँ। आगे वहरा था, अव अंधा हुआ चाहता हूँ। रामपुरके सफरका रहे आवर्द है। रे'श[3] व ज़ोफे वसर[4], जहाँ चार सतरे लिखी उँगलियाँ टेढी हो गयी, हुरूफ सूझनेसे रह गये। इकहत्तर वरस जिया, वहुत जिया।। अव ज़िन्दगी वरसोकी नही, महीनो और दिनोकी है।★

१८६६ में गालिब कैसे थे इसकी जानकारी उस कालके कई लेखक छोड गये हैं। इसी साल (१८६६मे) 'जल्वए खिज्र'के लेखक सैयद फर्जन्द अहमद विलग्रामी मिर्जासे मिलने दिल्ली आये। उनकी पुस्तक मे गालिवके कई चित्र मिलते है जिनसे प्रामाणिक सूचनाएँ मिलती है। वह लिखते है —

विलग्रामीका चित्र

"हजरतका लिवास उस वक्त यह था—पाजामा सियाह वूटेदार—कलीदार नेफा सुर्ख टूलका, वदनमे मिर्जई, सर खुला हुआ, रग सुर्ख व सफेद, मुँहपर दाढी दो अँगुल। आँखे वडी, कान वडे, कद लम्वा, विलायती सूरत, पाँवकी उँगलियाँ वसवव कसरते शरावके मोटी होकर ऐंठ गयी थीं और यही

१ दुर्वल, क्षीण, २ अर्द्धप्राण, मृतप्राय, ३ अगकम्प, ४ दृष्टिक्षीणता।
★उर्दू-ए-मोअल्ला, पृ० २८।

आये थे। अब इजाजत चाहते हैं।' कहने लगे—"आपकी गायत[1] इस तकलीफसे यह थी कि मेरी सूरत और कैफीयत मुलाहिजा फर्मायें। जोफ़[2] की हालत देखी कि उठना-बैठना दुश्वार है, बसारत[3] की हालत देखी कि आदमीको पहचानता नहीं हूँ, समाअत[4] की कैफीयत मुलाहिजा की कि कोई कितना चीखे, मुझे खबर नहीं होती। गजल पढ़नेका अन्दाज मुलाहिजा किया, कलाम सुना। अब एक बात बाक़ी रह गयी है कि मैं क्या खाता हूँ। इसको भी मुलाहिजा करते जाइए।" इतनेमें खाना आया। दो फुल्के और तश्तरीमें भुना हुआ गोश्त जिसमें कुछ मेवा भी पड़ा हुआ था। फुल्केका बारीक पर्त लेकर दो-चार नेवाले बमुश्किल खाये और खाना बढ़ा दिया। तअज्जुब होता है कि इन मिकदारे खूराकपर क्योंकर बसर करते हैं।"

इन दिनों आर्थिक चिन्ताएँ भी बढ़ रही थीं। जानते थे, जिन्दगीका चिराग बुझने ही वाला है इसलिए चेष्टामें थे कि मिर्जा बाकरअली व हुसेन अली खाँके वज़ीफ़े रामपुर दरबारसे नियत हो जायें। बाकरअलीकी शादी तो पहिले ही हो चुकी थी, हुसेन अलीकी मँगनी भी तय हो चुकी थी, हाँ शादी न हुई थी। ससुराल वाले शादीके लिए जल्दी कर रहे थे। इनके पास तो रोजके खर्चेके लिए ही कुछ न था। कर्ज भी न मिलता था। इसलिए विवश नवाब रामपुर-की खिदमतमें अर्ज किया कि आप कुछ रकम इनाअत फर्माएँ ताकि यह काम सरजाम पाये और बूढ़े फकीरकी, बिरादरीमें, शर्म रह जाये। मिर्ज़ा-से पूछा गया कि कितना रुपया चाहिए। मिर्जाने लिखा कि बाकरअलीखाँ की शादीपर ढाई हज़ार खर्च आये थे। ढाई हजारमें शादी अच्छी हो जायगी लेकिन यह भी साथ अर्ज करता हूँ कि मेरा हक्के खिदमत इतना नहीं कि इस कदर माँग सकूँ। जो कुछ दोगे उसमें शादी कर दूँगा।"

आर्थिक चिन्ताएँ

---

१ उद्देश्य, २ दुर्बलता, ३ दृष्टिशक्ति, ४ श्रवणशक्ति।

"मिर्जा साहबका मकान पुख्ता था। एक बडा फाटक था जिसकी बगलमे एक कमरा और कमरेमे एक चारपाई बिछी हुई थी। उसपर नहीफ-उल जुस्म[1] आदमी गदुमी रग, अस्सी बयासी सालका ज़ईफुल उम्र लेटा हुआ—एक मुजल्लिद किताब सीनेपर रखे, आँखें गडाये हुए पढ रहा था। यह मिर्जा गालिब देहलवी है।

"हमने सलाम किया लेकिन बहरे इस कदर थे कि उनके कान तक आवाज न गयी। आखिर खडे-खडे वापिस आनेका कस्द किया कि गालिब-ने चारपाईकी पट्टीके सहारेसे करवट बदली और हमारी तरफ देखा। हमने सलाम किया। बमुश्किल चारपाईसे उतरकर फर्शपर बैठे। हमको अपने पास बिठाया। कलमदान व कागज़ सामने रख दिया और कहा—आँखोसे किसी कदर सूझता भी है लेकिन कानोसे बिलकुल सुनाई नही देता। जो कुछ मै पूछूँ उसका जवाब लिख दो। नामोनिशान पूछा। जब हमने नाम-पता लिखा तो कहा—मुझसे मिलनेके लिए आये हो तो जरूर कुछ न कुछ कहते होगे, कुछ अपना कलाम भी सुनाओ। हमने कहा—हम तो आपका कलाम ज़बाने-मुबारकसे सुननेकी गर्ज़से आये थे। बहुत देरतक अपना कलाम सुनाया किये। फिर इसरार किया कि तुम भी कुछ सुनाओ। हमने यह मतला सुनाया—

महे मिस्रअस्त दाग अज़ रश्के महताबे कि मन दारम।
ज़ुलेखा कोरशद अज़ हसरते ख्वाबे कि मन दारम।

अजब लुत्फ और मजेसे इस मतलेको दुहराया और हदसे ज्यादा तारीफ की। फिर आदमीसे कहा—खाना लाओ। हम समझे बख्याल मेहमानवाजी तकलीफ कर रहे है। लिख दिया कि हम सिर्फ थोडी देरके लिए देहली उतर पडे थे। रेलका वक्त बिलकुल करीब है और बग्घी सरायमे खडी है, असबाब बँधा हुआ रखा है। पाबरकाब आपसे मिलने

---

१ क्षीणकाय।

लाये थे। अब इजाजत चाहते हैं।' कहने लगे—"आपकी ग़ायत[1] इस तकलीफ़से यह थी कि मेरी सूरत और कैफ़ीयत मुलाहिज़ा फ़र्मायें। ज़ोफ़[2] की हालत देखी कि उठना-बैठना दुश्वार है, बसारत[3] की हालत देखी कि आदमीको पहचानता नहीं हूँ, समाअत[4] की कैफ़ीयत मुलाहिज़ा की कि कोई कितना चीख़े, मुझे ख़बर नहीं होती। गज़ल पढ़नेका अन्दाज़ मुलाहिज़ा किया, कलाम सुना। अब एक बात बाक़ी रह गयी है कि मैं क्या खाता हूँ। इसको भी मुलाहिज़ा करते जाइए।" इतनेमें खाना आया। दो फुल्के और तश्तरीमें भुना हुआ गोश्त जिसमें कुछ मेवा भी पड़ा हुआ था। फुल्केका बारीक पर्त लेकर दो-चार निवाले बमुश्किल खाये और खाना बढ़ा दिया। तअज्जुब होता है कि इस मिक़दारे ख़ूराकपर क्योंकर बसर करते हैं।"

आर्थिक चिन्ताएँ

इन दिनों आर्थिक चिन्ताएँ भी बढ़ रही थीं। जानते थे, जिन्दगीका चिराग़ बुझने ही वाला है इसलिए चेष्टामें थे कि मिर्ज़ा बाक़रअली व हुसेन अली खाँके वज़ीफ़े रामपुर दरबारसे नियत हो जायँ। बाक़रअलीकी शादी तो पहिले ही हो चुकी थी, हुसेन अलीकी मँगनी भी तय हो चुकी थी, हाँ शादी न हुई थी। ससुराल वाले शादीके लिए जल्दी कर रहे थे। इनके पास तो रोज़के खर्चेके लिए ही कुछ न था। क़र्ज़ भी न मिलता था। इसलिए विवश नवाब रामपुर-की ख़िदमतमें अर्ज़ किया कि आप कुछ रक़म इनाअत फ़र्माएँ ताकि यह काम सरंजाम पाये और बूढ़े फ़क़ीरकी, बिरादरीमें, शर्म रह जाये। मिर्ज़ा-से पूछा गया कि कितना रुपया चाहिए। मिर्ज़ाने लिखा कि बाक़रअलीखाँ की शादीपर ढाई हज़ार खर्च आये थे। ढाई हज़ारमें शादी अच्छी हो जायगी लेकिन यह भी साथ अर्ज़ करता हूँ कि मेरा हक़े ख़िदमत इतना नहीं कि इस क़दर माँग सकूँ। जो कुछ दोगे उसमें शादी कर दूँगा।"—

---

१ उद्देश्य, २ दुर्बलता, ३ दृष्टिशक्ति, ४. श्रवणशक्ति।

पर पता नही क्या कारण हुआ कि यह उम्मीद पूरी न हुई। शादी तो टल ही गयी, पर कर्ज़दारोने इनको बहुत तग किया और नालिशकी धमकियाँ दी। इसलिए हुसेनअलीखाँकी शादीकी माँग भूलकर नवाबसे फिर निवेदन किया कि ऋण-दाताओंसे तो गला छुडा दें। १६ नवम्बर १८६८ के पत्रमे नवाबसाहबको लिखते हैं—

"हाल मेरा तबाह होते-होते अब यह नौबत पहुँची कि अबकी तनखाह से ५४ रुपये बचे। मिनजुमलन आठ सौ रुपये हो तो मेरी आबरू बचती है। नाचार हुसेन अलीखाँकी शादी और उसके नामकी तनखाहसे किता नज़र की। अब इस बाबमे अर्ज़ करूँ क्या मजाल? कभी न कहूँगा। आठसौ रुपये मुझको और दीजिए। शादी कैसी? मेरी आबरू बच जाय तो गनीमत है।"

इस प्रार्थनापत्रके जवाबमे रामपुर दरबारकी ओरसे नवाब मिर्ज़ाखाँ 'दाग' ने मिर्ज़ाको लिखा कि 'हुज़ूरने तुम्हारे कर्जके अदा करनेकी नवेद की है और मिकदार कर्ज पूछी है।" मिर्ज़ा गालिबने दोबारा कर्जका परिमाण लिखा और नवाब साहबको भी याद दिलाई लेकिन कोई आदेश इस सम्बन्धमें न निकला और मिर्ज़ाकी यह इच्छा भी अपूर्ण ही रही।

रामपुर दरबारसे निराशा

इस प्रकार एक ओर आर्थिक चिन्ताएँ और परीशानियाँ, दूसरी ओर दिन-दिन बढती हुई कमज़ोरी, बिलकुल निढाल हो गये। इस जमानेमे कही बाहर न जाते थे, दिन-रात पलँगपर पडे रहते थे। कोई विशेष व्यक्ति आ जाता तो मुश्किलसे उठ बैठते थे अन्यथा लेटे रहते थे। लिख-कर बातचीत करते थे पर बादमे कलम पकडने और लिखनेमे अँगुलियोंमे तकलीफ होने लगी तो खतोका लिखना भी बन्द कर दिया। अगर कोई मिलनेवाला आ जाता तो बाहरके दोस्तोके खतोका जवाब बोलकर उससे लिखवा देते। फरवरी १८६७ में देहलीके दो अखबारो (अकमलुल

अख़बार और अशरफ़ुल अख़बार) में वक्तव्य छपवाया कि 'जहाँतक हो सका मैंने दोस्तोंकी ख़िदमत की, उनके ख़तोंका जवाब देता रहा और अशआर पर इस्लाह देनेमें दरेग़ नहीं किया लेकिन अब मेरी सेहत इतनी गिर गयी है कि किसी तरह इस मेहनतको मुतहम्मिल[1] नहीं हो सकती। इसलिए दोस्त-अहबाबसे दर्ख़ास्त है कि मुझे ख़तोंके जवाब और अश-आरकी इस्लाहसे मुआफ़ रखें।' फिर भी ख़त आते रहे और वह अन्त तक जवाब लिखवाते रहे।

मानसिक उलझनों, शारीरिक कष्टों और आर्थिक चिन्ताओंके कारण जीवनके अन्तिम वर्षोंमें वह प्रायः मृत्युकी आकांक्षा किया करते थे। हर साल अपनी मृत्यु-तिथि निकालते। पर विनोद वृत्ति अन्त तक बनी रही। एक बार जब मृत्यु-तिथिका ज़िक्र एक शिष्यसे किया तो उसने कहा—"इंशा अल्ला, यह तारीख़ भी ग़लत साबित होगी।" इसपर मिर्ज़ा बोले—"देखो साहब! तुम ऐसी फ़ाल मुँहसे न निकालो। अगर यह तारीख़ ग़लत साबित हुई तो मैं सिर फोड़कर मर जाऊँगा।"

मृत्युकी आकांक्षा

एक बार दिल्लीमें महामारी फैली। मीर मेहदीहसन 'मजरूह'ने अपने ख़तमें इसका ज़िक्र किया तो उसके जवाबमें लिखते हैं—"भई कैसी वबा? जब एक सत्तर बरसके बुड्ढे और सत्तर बरसकी बुढ़ियाको न मार सकी।"

धीरे-धीरे पर निश्चित गतिसे मौत तो निकट आती ही जा रही थी। अन्तिम दिनोंमें अक्सर अपना यह मिसरा पढ़ा करते थे—

ऐ मर्गे नागहाँ! तुझे क्या इन्तज़ार है?

और बार-बार दोहराते—

दमे वापसीं बर सरे राह है,
अज़ीज़ो! अब अल्ला ही अल्लाह है।

---

१ बोझ उठाने योग्य, समर्थ।

कभी-कभी यह सोच-सोचकर और दुखी हो जाते थे कि उनके बाद उनके आश्रितोका क्या होगा। ऐसे समय दिलको समझाते कि बीवीके सम्बन्धी उसे भूखो न मरने देंगे। नवाब अमीनउद्दीनखाँ, लोहारु-नरेशको एक पत्रमे लिखा—

वह करुणाजनक पत्र!

"मेरी जौजा[1] तुम्हारी बहिन, मेरे बच्चे तुम्हारे बच्चे है। खुद जो मेरी हकीकी भतीजी है उसकी औलाद भी तुम्हारी औलाद है। न तुम्हारे वास्ते बल्कि इन बेकसोके वास्ते तुम्हारा दुआगो हूँ और तुम्हारी सलामती चाहता हूँ। तमन्ना यह है और इशा अल्ला ऐसा ही होगा कि तुम जीते रहो और मै तुम दोनो (अमीनउद्दीन व जियाउद्दीन) के सामने मर जाऊँ ताकि अगर इस काफलेको रोटी न दोगे तो चने दोगे। अगर चने भी न दोगे और बात न पूछोगे तो मेरी बलासे। मै तो मुआफिक अपने तसव्वुरके इन गमजदोके गममें न उलझूँगा।"

अन्तकाल

मृत्युके कई दिन पहिलेसे बेहोशीके दौरे आने लगे थे। कई-कई घण्टोके बाद कुछ देरके लिए होश आता, फिर बेहोश हो जाते। देहावसानसे एक रोज़ पहिलेकी दो घटनाएँ स्मरणीय है। लम्बी बेहोशीके बाद कुछ होश आया था। 'हाली' गये तो पहिचाना। नवाब अलाउद्दीन खाँने लोहारुसे हाल पुछवाया था। उनको जवाब लिखवाया—"मेरा हाल मुझसे क्या पूछते हो। एकाध रोजमे हमसायोसे पूछना।" इसी रोज कुछ खानेको माँगा। खाना आया तो नौकरसे कहा कि मीरज़ा जीवन-बेग (मिर्ज़ा बाकरअलीखाँकी सबसे बडी लडकी) को बुलाओ। यह प्राय उन्हींके पास खेला करती थी पर उस समय अन्दर चली गयी थी। कल्लू मुलाज़िम बुलाने अन्तःपुरमे गया तो वह सो रही थी।

---

१ स्त्री।

उमरों माँ बुग्गा बेगमने कहा—'लो कहते हैं, जोड़ी ज्याती है, भेजती हूँ।' कल्लूने जाकर यही बात कह दी। ग़ालिब बोले—'बहुत अच्छा। जब वह आवेगी, हम खाना खायेंगे।' पर इसके बाद ही चारपाईपर गिर पड़कर बेहोश हो गये। हकीम महमूद खाँ और हकीम अहसन-उल्लाखाँको ख़बर दी गयी। उन्होंने आकर जाँच की और बतलाया—दिमाग़पर फ़ालिज गिरा है। बहुत यत्न किया गया पर सब बेकार हुआ। फिर उन्हें होश न आया और इसी हालतमें अगले दिन, १५ फ़रवरी १८६९ ई०, दोपहर ढले, इनका दम टूट गया। एक ऐसी प्रतिभाका अन्त हो गया जिसने इस देशमें फ़ारसी काव्यको उच्चता प्रदान की और उर्दू गद्य-पद्यको परम्पराकी शृङ्खलाओंसे मुक्त कर एक नये साँचेमें ढाला।

अन्तिम क्रिया

मृत्युके बाद इनके मित्रोंमें इस बातको लेकर मतभेद हुआ कि शीया या सुन्नी किस विधिसे इनका मृतक संस्कार हो। ग़ालिब शीया थे, इसमें किसीको सन्देहकी गुंजाइश न थी पर नवाब ज़ियाउद्दीन और हकीम महमूदख़ाँने सुन्नी विधिसे ही सब क्रिया-कर्म कराया और जिस लोहारू ख़ान्दानने १८४७ ई०में समाचार-पत्रोंमें छपवाया था कि ग़ालिबसे हमारा बहुत दूरका सम्बन्ध है, उसी ख़ान्दानके नवाब ज़ियाउद्दीनने सम्पूर्ण मृतक संस्कार करवाया और इनके शवको गौरवके साथ अपने वंशके क़ब्रिस्तान (जो चौंसठ खम्भाके पास है) में अपने चचाके पास जगह दी।

इनकी मृत्युपर बहुतोंने मर्सिये लिखे जिनमें हाली, मजरूह और सालिकके मर्सिये मशहूर हैं। इनके समाधिस्तम्भपर मजरूहका निम्न-लिखित क़िता खुदा हुआ है—

या हय्यि या क़य्यूम
रश्के उर्फ़ी व फख़्रे तालिब मर्द
असदुल्ला ख़ाने ग़ालिब मर्द

कल मै गमो अन्दोहमें बाखातिरे महजूँ
था तुर्बते उस्ताद पै बैठा हुआ गमनाक
देखा तो मुझे फिक्रमें तारीखकी 'मजरूह'
हातिफ़ने कहा—'गजे मआनी है तहेख़ाक।'*

मिर्ज़ाकी मृत्युका उनकी पत्नी तथा अन्य आश्रितोपर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसकी कल्पना मात्र की जा सकती है। मिर्ज़ाकी ज़िन्दगी ज़्यादातर दु खोमे बीती। पारिवारिक सुखके लिए वह सदा तरसते ही रहे। सात बच्चे हुए—पुत्र और पुत्रियाँ। पर कोई पन्द्रह महीनेमे ज़्यादा न जिया। पत्नीसे भी वह हार्दिक सौख्य न मिला जो जीवनकी दम घोटने-वाली घाटियोके बीच चलते हुए मनुष्यको बल प्रदान करता है। इनकी पत्नी उमराव बेगम नवाब इलाही बख्श खाँ 'मारूफ' की छोटी कन्या थी। बड़ी कन्या बुनियादी बेगम शर्फुद्दौला नवाब फैज़उल्ला खाँ (पुत्र नवाब कासिम जान, जिनके भाई आरिफजानके पुत्र नवाब अहमदबख्श एव इलाहीबख्श थे) के पुत्र नवाब गुलाम हुसेन मसरूरसे ब्याही थी। नवाब गुलाम हुसेनको बुनियादी बेगमसे दो पुत्र हुए—जैनुल आब्दीन खाँ और हैदर हुसेन खाँ। जब मिर्ज़ाका अपना कोई बच्चा न जिया तो उन्होने जैनुल आब्दीन खाँको गोद लिया। यह बड़े अच्छे कवि थे और 'आरिफ' उपनाम रखते थे। गालिब आरिफको बेहद प्यार करते थे और उन्हे *'राहते रूहे नातवाँ'* (*दुर्बल आत्माकी शान्ति*) कहते थे। दुर्भाग्यवश वह भी भरी जवानी (३६ सालकी आयु) मे नकसीर फूटने और उससे अत्यधिक खून जानेसे, १८५२ ई० मे मर गये। गालिबके दिलपर ऐसी चोट लगी कि ज़िन्दगी

पारिवारिक सुखके लिए तड़पते ही रहे

पत्नी एव पोषित बच्चे

* १२८५ हिजरी।

में उनका दिल फिर कभी न उभरा। इस घटनासे व्यथित होकर उन्होंने जो ग़ज़ल लिखी उसमें उनकी वेदना ही साकार हो गयी है। कुछ शेर देखिए —

लाजिम था कि देखो मेरा रस्ता कोई दिन और।
तनहा गये क्यों अब रहो तनहा कोई दिन और।
आये हो कल और आज ही कहते हो कि जाऊँ,
माना कि नहीं आजसे अच्छा कोई दिन और।
जाते हुए कहते हो क़यामतको मिलेंगे,
क्या ख़ूब ? क़यामतका है गोया कोई दिन और।

इन आरिफ़साहबकी दो शादियाँ हुई थी। पहिला ब्याह नवाब शम्सुद्दीन ख़ाँ की सगी बहिन नवाब बेगमसे हुआ था। शादीके दो वर्ष बाद उनकाँ बच्चा पैदा होनेसे प्रसूतिकालमें ही उनकी मृत्यु हो गयी। दूसरा विवाह मिर्ज़ा मुहम्मद अली बेग बुखाराईकी कन्या बुस्ती बेगम उर्फ़ नवाब दूल्हनसे हुआ। इस ब्याहसे उन्हें दो पुत्र हुए—बाक़र अली ख़ाँ और हुसेन अली ख़ाँ। बुस्ती बेगमकी मृत्यु आरिफ़की मृत्युके ३–४ मास पूर्व वृक्क-वेदना—दर्दे गुर्दासे हुई। आरिफ़ इस बीवीको बहुत चाहते थे और इसकी मृत्युसे उन-पर जो चोट लगी वह भी उनके असामयिक निधनका कारण थी। माँकी मृत्युपर दोनों बच्चे अपनी दादी बुनियादी बेगमके पास रहने लगे। पर आरिफ़के मरनेपर ग़ालिब उनके छोटे लड़के हुसेन अली ख़ाँ (जो केवल दो वर्षके थे) को ले आये और तबसे अपने पास रखा। बादमें बुनियादी बेगमकी भी मृत्यु हो गयी और आरिफ़के बड़े पुत्र बाक़र अली ख़ाँ भी मिर्ज़ाके पास आ गये। इन दोनों बच्चोंका ग़ालिब बड़ा दुलार करते थे।

बाक़र अली जब १७ सालके हुए, मिर्ज़ाने उनकी शादी नवाब ज़िया-उद्दीन अहमदकी पुत्री मोअज़्ज़म ज़मानी बेगम उर्फ़ बुग्गा बेगमके साथ (जो १२ सालकी थी) कर दी। यह बुग्गा बेगम दीर्घजीवी हुई और

१० मई १९४५को ९३ वर्षकी आयुमे मरी। इनके पांच सन्ताने हुईं—पांचो लडकियां। वडी नवाव वेगम ९ वर्षकी आयुमे ही चल वसी। इसके वाद सुलतान वेगम १८६५मे पैदा हुई। इन्हे गालिव वेहद चाहते थे और प्यारसे 'जीवन वेग' कहते थे। मृत्युके पूर्व होश आनेपर, साथ खानेके लिए इन्हीका स्मरण किया था। वादमे इनकी शादी नवाव जियाउद्दीन अहमद खांके पोते मीरजा शुजाउद्दीन अहमद खां 'तावां'के साथ हुई। इन्होने भी लम्बी उम्र पाई और ८९ वर्षकी उम्रमे, अभी कुछ समय पहिले (२९ मार्च १९५४ ई०) इनकी मृत्यु दिल्लीमे हुई है। तीसरी फातिमा सुलतान वेगमकी शादी मीरजा वशीरुद्दीन अहमद खांसे हुई थी। चौथी रविया वेगम डेढ सालकी उम्रमे ही मर गयी थी। पांचवी और सबसे छोटी रकिया सुलतान बेगम उर्फ मच्छन है जिनकी शादी कर्नल जेड अहमदसे हुई। यह शायद अब भी जिन्दा है।

वाक़र अली और उनकी सन्तति

मिर्जा वाकरअली फारसी एव उर्दू दोनोमे कविता करते थे। फारसी मे 'वाकर' एव उर्दूमे 'कामिल' उपनाम था। पहिले अलवरमे नौकर हुए। वादमे नौकरी छोडकर दिल्लीमे ही आ रहे और घोडोका व्यापार करने लगे। भरी जवानीमे, जव सिर्फ साढे अट्ठाईस सालके थे, क्षय रोगसे, २५ मई १८७६ ई० को इनका देहावसान हो गया।

हुसेनअली

हुसेन अली खां १८५० ई०मे पैदा हुए थे। जैसा पहिले लिखा जा चुका है, गालिव इन्हे वहुत चाहते थे। इनकी शादी गालिवके जीवन-काल-मे ही तय हो चुकी थी, पर रुपयेका प्रवन्ध न हो सकनेके कारण न हो सकी। वादमे खुरशीद वेगम या हुस्ने-जहां वेगमसे हुई।*

*लोहारूवाले नवाव अहमद वख्श खांके छोटे भाई ये नवीवख्श। इनके पोते मिर्जा अकवर अलीने जेनरल सर डेविड आक्टर लूनीकी कन्यासे

यह भी उर्दू फ़ारसीमें कविता करते थे और रामपुरमें मुलाज़िम हो गये थे। बादमें नौकरी छोड़ दिल्ली आ गये। बड़े भाईकी मृत्युका ऐसा सदमा हुआ कि स्वयं बीमार रहने लगे और ७ सितम्बर १८८० को ३० सालकी उमरमें चल बसे।

उमराव बेगम

मिर्ज़ाकी मृत्युके बाद उनकी विधवा उमराव बेगमपर जो विपत्तियाँ आई होंगी, उनकी कल्पना की जा सकती है। अंग्रेज़ी सरकारसे मिलने-वाली पेन्शन, रामपुरका वज़ीफ़ा सब बन्द हो गया। ऋणदाताओंके तक़ाज़ेसे अन्ततक ग़ालिब परेशान रहे। अब वह बोझ भी उनपर पड़ा। हम पहिले लिख चुके हैं कि मृत्युके समय मिर्ज़ापर ८००) क़र्ज़ थे जिनके लिए उन्होंने रामपुर दरबारसे प्रार्थना की थी, पर अभीतक उसका कुछ न हुआ। १ अगस्त १८६९को उमराव बेगमने नवाब रामपुरको निम्नलिखित पत्र भेजा —

"जनाब आली! जिस रोज़से मिर्ज़ा असद उल्ला ख़ाँने वफ़ात पाई है तो यह आजिज़ बेवा इस क़दर मसायब[1] में गिरफ़्तार है कि तहरीरके बाहर है। अव्वल तो यह मुसीबत है कि मिर्ज़ा साहब मरहूम आठ सौ रुपयेके क़र्ज़दार मरे, दूसरी मुसीबत यह है कि पेन्शन सरकार अंग्रेज़ी मस्दूद[2] हुई। तीसरी यह कि तनख़ाह सौ रुपये माहवार जो आप अज़राहे क़द्र-दानीके मिर्ज़ा मरहूमको इरसाल फ़र्माते[3] थे, वह भी एक लख़्त मौक़ूफ़ हुई। अब तक क़र्ज़ लेकर औक़ात बसर की। अब क़र्ज़ भी नहीं मिलता।

विवाह किया था। यह आक्टर लूनीकी वैध कन्या न थी। लूनीने मुबारक बेगम नामक एक स्त्रीको रख लिया था। उसीसे ख़ुरशीद बेगमका जन्म हुआ था। मुबारक बेगमकी बनवाई हुई लाल मस्जिद हौज़क़ाज़ीके पास, सिरकी वालानमें, थानेके सन्निकट है—लाल पत्थरकी बनी हुई।

—ज़िक्रे ग़ालिब पृष्ठ १४१

१ कष्ट, २ निरुद्ध, बन्द, ३ भेजते थे।

नौबत फाकाकशीकी पहुँची । अब दुआगोकी यह तमन्ना है कि ऐसी परवरिश मुश्त जईफा[1] की हो जाये कि मिर्ज़ा मरहूम हक्के अबादसे बरी हो जायें कि यह सख्त अज़ाब है । अगर हुजूर सूरते अदाए कर्ज फरमावें तो कमाले सवाबे अज़ीम[2] होगा । पेन्शन मेरी दस रुपये अंग्रेज करता है* बशर्ते कि मैं कचहरीमें हाज़िर हूँ और जाना मेरा कचहरीमे हर्गिज न होगा, गो फ़ाको ही मर जाऊँ । क्या मैं अपने बाप और चचा और शौहरका नाम रोशन करूँ । और जो इज्जत और रियासत मेरे चचा-की और हुर्मत मेरे वालिदकी और शौहरकी आगे खासोआमके थी, हुजूर-पर सब रोशन है ।"

इस करुणाजनक अर्जीपर भी नवाब रामपुरका दिल न पसीजा । २ सितम्बर १८६९को बेचारी विधवाने दोबारा लिखा । इसपर ९ सितम्बर-को नवाब मिर्ज़ा 'दाग'को हुक्म हुआ कि जाँच करके रिपोर्ट करें । ३० अक्तूबरको नवाबने हुक्म दिया कि उमराव बेगमको ६००) की हुण्डी भेजी जाय ।

पता नही चलता कि यह ६००) की हुण्डी किस हिसाबसे भेजी गयी, न यही पता चलता है कि वह भेजी भी गयी या नही और भेजी भी गयी तो उमराव बेगमको मिली या नही । इन दुःखकी घडियोमे उमराव बेगम-के चचेरे भाई और मिर्जाके शिष्य नवाब ज़ियाउद्दीन खांने मदद की और २५) या ५०) मासिक वृत्ति भी नियत कर दी जो उन्हे मृत्युतक मिलती

---

१ वृद्धा, २ परम पुण्य ।

* उमराव बेगमने अंग्रेज़ोके यहाँ दर्खास्त दी थी कि मिर्ज़ा साहबकी पेन्शन हुसेन अली खांके नाम कर दी जाय । डिप्टी कमिश्नरने इसकी सिफारिश की पर कमिश्नरने आदेश दिया कि ऐसा नही हो सकता, हाँ, बेवाको १०) माहवार वज़ीफा मिल सकता है, बशर्ते कि वह कचहरीमे हाजिर हो । बेगम गालिबने यह शर्त कबूल न की ।

रही। नवाब ज़ियाउद्दीन आजीवन और जीवनान्तर भी ग़ालिबके सहायक रहे। जब ग़दरमें पेन्शन बन्द हो गयी थी तब भी ५०) माहवार उमराव बेगमको देते रहे।

पर उमराव बेगम वैधव्यका दुःख झेलनेके लिए ज़्यादा दिन ज़िन्दा न रहीं और पतिकी मृत्युके ठीक एक वर्ष बाद—बर्सीके दिन—४ फ़रवरी १८७० को, १०-११ बजे दिनके समय, परलोकगामिनी हुईं।

ग़ालिबका जीवन : रहन-सहन, स्वभाव और आचरण

गालिब एक ईरानी रईसजादा थे। रईसजादाकी तरह पले, बढे। फिर उनकी शादी भी लोहारू खान्दानमे हुई। चचा, ससुर सभीकी ज़िन्दगी रईसाना जिन्दगी थी। उसका असर इनपर भी पडा। इन्होने कठिनाइयो और मुसीबतोके बीच भी ऊपर टीमटामकी जिन्दगी बनाये रखनेकी सदा कोशिश की। बचपनकी लगी आदते मुश्किलसे छूटती है। कुछ प्रयत्न और सत्सगसे छूट गयी, कुछ बनी रही। ऐशोइशरतकी ज़िन्दगी जो किशोरावस्थामें उभरी, जवानीमे उसकी डोर कट गयी। उसके कटनेका दु ख इनको बराबर बना रहा। कभी तृप्ति प्राप्त नही हुई। उस ज़मानेके रईसोकी बाहरी टीमटाम, जिन्दादिली, शेरोसुखनका शौक, यारबाशी, उदारता, ऐंठ पर उसके साथ ही जीहुज़ूरी—मतलब एक मिटती हुई रईसी सभ्यताके सब गुण-दोष इनमे थे।

ईरानी चेहरा, गोरा, लम्बा कद, सुडौल एकहरा बदन, ऊँची नाक, कपोलकी हड्डियाँ उभरी हुई, चौडा माथा, घनी उठी पलकोके बीच झाँकते दीर्घ नयन, ससारकी कहानी सुननेको उत्सुक लम्बे कान, अपनी सुनानेको

व्यक्तित्व

उत्सुक मानो बोल ही पडेगे ऐसे ओठ—अपनी चुप्पीमे भी बोल बोल पडनेवाले, बुढापेमे भी फूटती देहकी कान्ति जो इशारा करती है कि जवानीके सौन्दर्यमे न जाने क्या नशा रहा होगा। सुन्दर गौर वर्ण, समस्त जिन्दादिलीके साथ जीवित,

इसी दुनियाके आदमी, इन्सान और इंसानके गुण-दोषोंको गलेसे लगाये—यह थे मिर्जा या मीरजा ग़ालिब।

बचपन दुलारमें पला। पर दुलारकी घड़ियाँ टूटती गयीं। टूटीं और मिलीं। मिलीं और टूटीं। पिता गये। चचा आये। चचा गये। यार-दोस्त आये। उनका हुजूम बढ़ा। मजलिसें जमीं। प्यारमें लालपनेका नर्त्तन हुआ—ऐसा नर्त्तन जिसने जिन्दगीको अपने आलिंगनमें दबोच लिया। जवानीमें तो उसने गौरवर्णमें एक चम्पई कान्ति पैदा की। खूनमें दौड़ी। रगोंमें उछली। दिलमें गर्मी पैदा की। पर बुढ़ापेमें खूनको पानी कर गयी, पाँवकी उँगलियोंमें सूजन बनकर उभरी, हाथकी उँगलियोंमें अदाके साथ ऐंठी। हाज़मेको उड़ा ले गयी। फिर जिस्मपर फूट-फूटकर निकली।

प्रौढ़ावस्था आई, बुढ़ापा आया पर उनकी जद्दत न गयी। बहुत दिनों तक दाढ़ी मुँडाते रहे। जब देखा, बाल खिचड़ी हो रहे हैं और स्याहीपर सफेदी चढ़ती ही जाती है तो दाढ़ी मुँडाना बन्द कर दिया। दो-ढाई अंगुलकी दाढ़ी रखने लगे। अक्सर जो दाढ़ी रखते हैं वे सिरके बाल भी बढ़ाते हैं। इनके जमानेमें भी यही तरीका था। पर इनका ढब निराला था। दाढ़ी रखी तो सिर मुड़ा लिया। इस तरह परम्परासे कुछ भिन्नता रखी।

रईसजादा थे और जन्म भर अपनेको वैसा ही समझते रहे। इसलिए वस्त्र-विन्यासका बड़ा ध्यान रखते थे। जब घरपर होते, प्रायः पाजामा

वस्त्र-विन्यास और भोजन

और अंगरखा पहिनते थे। सिरपर कामदानी की हुई मलमलकी गोल टोपी लगाते थे। जाड़ोंमें गर्म कपड़ेका कलीदार पाजामा और मिर्ज़ई। बाहर जाते तो अक्सर चूड़ीदार या तंग मोहड़ीका पाजामा, कुर्ता, सदरी या चपकन और ऊपर क़ीमती लबादा होता था। पाँवमें जूती और हाथमें मूठदार, लम्बी छड़ी। ज्यादा ठण्ड होती तो एक छोटा शाल भी

एकान्तमें या दो-एक खास दोस्तोंकी उपस्थितिमें, पीते थे। कहीं ज्यादा न पी लें, इसलिए जिस सन्दूकमें बोतलें रखते थे उसकी चाबी इनके वफा-दार सेवक कल्लू दारोगाके पास रहती थी और उसे ताकीद कर रखा था कि रातको कभी नशे या सुरूरमें मैं ज्यादा पीना चाहूँ और माँगूँ तो मेरा कहा न मानना और तलब करने पर भी कुंजी न देना। लोगोंके पूछनेपर कि यों नाम करनेमें क्या फायदा, छोड़ ही न दें, 'जौक' का शेर पढ़ते थे—

छुटती नहीं है मुँह से यह काफिर लगी हुई।

जैसा कि जीवन-रेखामें लिखा जा चुका है, गालिबका असल वतन आगरा था पर किशोरावस्थामें ही वह दिल्ली आ गये थे। कुछ दिन तो

निवास

ससुरालमें रहे, फिर अलग रहने लगे। पर ससुरालमें या अलग, जिन्दगीका ज्यादा हिस्सा दिल्लीकी 'गली कासिमजान' में ही बीता। सच पूछें तो इस गलीके चप्पे-चप्पेसे उनकी जिन्दगी जुड़ी हुई है। ५०-५५ वर्ष दिल्लीमें रहे जिसका अधिकांश इसी गलीमें बीता। यह गली चाँदनी चौकसे मुड़कर बल्लीमारान के अन्दर जाने पर शम्शी दवाखाना और हकीम शरीफखाँकी मस्जिदके बीच पड़ती है। इसी गलीमें गालिबके चचाका ब्याह कासिमजान (जिनके नामपर यह गली है) के भाई आरिफजानकी बेटीसे हुआ था और बादमें गालिब खुद दूल्हा बने आरिफजानकी पोती, और लोहारूके नवाबकी भतीजी, उमराव बेगम को ब्याहने इसी गलीमें आये। और साठ साल बाद जब बूढ़े शायरका जनाजा निकला तो इसी गलीसे गुजरा। इस गलीके कई मकानोंमें वह रहे। जनाब हमीद अहमदखाँने ठीक ही लिखा है—"गलीके पहले सिरेसे चलकर इस सिरे तक आइए तो गोया आपने गालिबके शबाबसे लेकर वफात तककी तमाम मंजिलें तय कर लीं।"*

---

* अहवाले गालिब, पृ० ७८-७९।

वैसे समय-समयपर दिल्लीके और मुहल्लोंमें भी रहे पर अधिक उम्र इसी गलीमें गुजरी। ×

सदा किरायेके मकानोंमें रहे, अपना न बनवा सके। ऐसा मकान ज्यादा पसन्द करते थे जिसमें बैठकखाना और अन्तःपुर अलग-अलग हों और उनके दरवाजे भी अलग हों जिससे यार-दोस्त बेखिझक आ-जा सकें। नौकर ४-४, ५-५ रखते थे। बुरेसे बुरे दिनोंमें भी तीनसे कम न रहे। यात्रामें भी २-३ साथ रखते थे। इनके पुराने नौकरोंमें मदारी या मदारखाँ, कल्लू और कल्यान बड़े वफादार रहे। कल्लू तो अन्त तक साथ रहा। वह चौदह सालकी उम्रमें मिर्ज़ाके पास आया था और उनके परिवारका ही हो गया था। वह पांवकी आहटसे पहिचान लेता कि लड़कियाँ हैं, बहुएँ हैं या बुढ़िया हैं।

नौकर

फ़ारसी साहित्यमें मिर्ज़ाको बड़ी अभिरुचि थी। फारसी काव्यका अध्ययन बराबर किया करते थे। काव्यके अतिरिक्त उपन्यास, आख्यान और कथा-साहित्यमें ज्यादा दिलचस्पी थी। दास्ताने अमीर हमज़ा और बोस्ताने ख़यालको बड़ी रुचिसे पढ़ते थे। दिनको किताब, रातको शराब यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा।*

अध्ययन

× शुरूमें इसी कासिमजानकी गलीमें, ससुरालमें, आकर रहे। फिर जामा मस्जिदके निकट मकान लिया। उसके बाद फाटक हबशख़ाँमें शोब्रान बेगकी हवेलीमें जाकर रहे। कलकत्तासे वापिस आनेपर खारी बावलीमें नवाब अब्दुर्रहमान ख़ाँ की हवेलीमें रहे। फिर गली कासिमजानमें पहुँचे।

—ज़िक्रे गालिब पृ० २०६

*मीर 'मजरूह' को गालिब, अपने एक पत्रमें, लिखते हैं—'मौलाना ग़ालिब इन दिनों बहुत खुश हैं। पचास साठ जुज़ोंकी किताब अमीर

किताबे खरीदते न थे। किसीसे ले लेते और पढकर लौटा देते थे। स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि जो कुछ एक बार पढ लेते, भूलते न थे। बीच-बीचमे अखबार भी देखते रहते थे। पत्र-लेखन-कलामे तो उस्ताद ही थे। अन्तिम जीवन तक मित्रो एव स्नेहियोको पत्र लिखते रहे। इनके पत्र क्या है, साहित्यकी अमूल्य निधि है। उनका ऐतिहासिक मूल्य और महत्त्व भी है। उनके जीवनके विविध अङ्गोपर इन पत्रोसे बडा प्रकाश पडा है। मालिकरामने ठीक ही लिखा है—

पत्र-लेखन

"ये खुतूत लिखनेवालेकी जिन्दगी और करदारका आईना है। इनके एक-एक लफ्जमें एक जिन्दा शख्सीयत बोल रही है। यही इनकी इन्फरादी खुसूसियत है।"

इन पत्रोकी विशेषता उनकी शैली है। यो मालूम होता है, कोई सामने बैठा बाते कर रहा हो। वह तहरीर (लेखक) को तकरीर (वक्तृता) बनानेकी चेष्टा करते थे।* इसीलिए लम्बे विशेषण या सिर-नामे उनमे नही मिलते। झट मतलब पर आ जाते है—गोया आपसे बात कर रहे है।

हमजाकी दास्तानकी, और इसी कदर को एक जिल्द बोस्ताने खयालकी आ गयी है। सत्रह बोतलें बादए नाबकी तोशकखानेमे मौजूद है। दिन-भर किताब देखा करते है, रातभर शराब पिया करते है—

फसे कीं मुरादश मयस्सर बुग्रद।
अगर जम न बाशद सिकन्दर बुग्रद।

—उर्दू-ए मोअल्ला, पृ० १२४

* १८२८ मे कलकत्तासे मौ० मुहम्मद अलीखाँ सदर अमीन बाँदाको लिखा था—"मै चाहता हूँ, तहरीर तकरीरसे कम न हो।"

—कुल्लियाते नस्र १६६

पत्रका जवाब ज़रूर देते थे। अक्सर तीसरे पहरका वक्त इसमें जाता था। ग़दरके दिनोंमें जब सब तरफ़से कटकर घरकी चार दीवारोंमें बन्द हो गये थे तब तो मित्रोंको पत्र लिखना ही समय काटनेका एक मात्र साधन रह गया था। उर्दू-ए-मोअल्ला (५९) में 'तुफ्ता'के नाम लिखे एक पत्रसे जान पड़ता है कि ग़दरके दिनोंमें पत्रलेखनकी उनके जीवनमें क्या महत्ता थी —

"मैं इस तनहाईमें सिर्फ़ ख़तोंके भरोसे जीता हूँ। यानी जिसका ख़त आया मैंने जाना कि वह शख़्स तशरीफ़ लाया। ख़ुदाका एहसान है कि कोई दिन ऐसा नहीं होता जो अतराफ़ व जवानिबसे दो-चार ख़त नहीं आ रहते हों। बल्कि ऐसा भी दिन होता है कि दो-चार डाकका हरकारा ख़त लाता है। मेरी दिल-लगी हो जाती है। दिन उनके पढ़ने और जवाब लिखनेमें गुज़र जाता है।"

इनके पत्रोंकी हस्तलिपि काफी अच्छी है। बहुत ज़रूरी ख़त गुम न हो जायें इसलिए उन्हें बैरंग भेजते थे और मित्रोंको भी यही लिखते कि बैरंग भेज दिया करें।

काव्य-रचना

काव्य-रचनाके लिए उन्होंने कभी किसीको अपना उस्ताद नहीं बनाया और मीरकी भाँति, बिना किसीसे इस्लाह लिये, अपनी कल्पना एवं चिन्तनके बल पर खड़े हुए। अर्थ-गाम्भीर्यको काव्यकी आत्मा मानते थे। कहा करते कि शायरी मानी-आफरीनी है, क़ाफ़िया पैमाई नहीं। इनकी ग़ज़लें लम्बी नहीं। अक्सर बिना क़ाग़ज़-क़लमके शेर बनाते जाते और याद कर लिया करते थे। फिर बादमें लिखते एवं संशोधन करते। मौलाना हाली लिखते हैं —

"फ़िक्रेशेरका यह तरीक़ा था कि अक्सर रातको आलमे सरख़ुशीमें फ़िक्र किया करते थे और जब कोई शेर अंजाम हो जाता था तो कमर-बन्दमें एक गिरह लगा लेते थे। इस तरह आठ-आठ, दस-दस गिरहें लगा-

कर सो रहते थे और दूसरे दिन सिर्फ याद पर सोच-सोचकर तमाम अशआर कलमबद कर लेते थे।"★

खास-खास मुशायरोंमे भी शरीक होते थे। आवाज बुलन्द और मधुर थी। बहुत अच्छा पढते थे। बादशाह ज़फरने इनका क़सीदा सुनकर कहा था—"मीरजा, तुम पढते खूब हो।" मौलाना हालीने इनकी शेर-खानीकी प्रशसा करते हुए लिखा है —"शेर पढनेका अन्दाज भी, खासकर मुशायरोंमे, हदसे ज्यादा दिलकश व मोअस्सर था। एक मुशायरेमे मिर्जाने अपना फारसी कसीदा दरिया गरेस्तन और तनहा गरेस्तन, जो जनाब इमाम हुसेनकी मन ... उन्होने लिखा था, पढा। सुना है कि मजलिसे मुशायरा बज ... गयी थी। जबतक कसीदा पढा गया लोग बराबर ...

जो कुछ ... दिया करते थे ... बहुत कम रखते थे। ... हुई इन ... ऐं आजतक भी सगहीत

विनो ... अग थे। ... एव हास्य-का कोई म ... विषयक ... तन रूपसे आगे करेंगे

मिर्जा ... शिष्ट एव मित्रपरायण ... मिलते थे। ... मिलता उसे ... रहती थी ...

शि ... मित्र ... बे—७ ... खुशीमे ...

★

†

उनके मित्रोंका दायरा बहुत बड़ा था। उनमें हर जाति, धर्म और प्रान्तके लोग थे। किसी मित्रको कष्टमें देखते तो इनका हृदय रो पड़ता था। उसका दुःख दूर करनेके लिए जो कुछ सम्भव होता करते। स्वयं न कर पाते तो दूसरोंसे सिफ़ारिश करते। इनके पत्रोंमें मित्रोंके प्रति सहानुभूति एवं चिन्ताके झरने बहते हुए दिखाई देते हैं। उन्हें कष्टमें देख ही नहीं सकते थे, दिल कचोटने लगता था। देखिए, भरतपुर-नरेशकी मृत्युकी खबर सुनकर, उनसे सम्बन्धित या उनके आश्रित स्नेहियोंकी जीविका का क्रम अस्त-व्यस्त हो जानेकी चिन्ता करते हुए 'तुफ़्ता'को लिखते हैं —

"भाई, आज मुझको बड़ी तश्वीश[1] है और यह ख़त मैं तुमको कमाल सासीमगी[2] में लिखता हूँ। जिस दिन मेरा ख़त पहुँचे अगर वक़्त डाक-का हो तो उसी वक़्त जवाब लिखकर रवाना करो वास्ते ख़ुदाके न मुख़्तसर[3] न सरसरी बल्कि मुफ़स्सल[4] जो कुछ वाक़आ हुआ हो और जो सूरत हो मुझको लिखो और जल्द लिखो कि मुझपर ख़्वाबो ख़ोर[5] हराम है। कल शामको मैंने सुना, आज सुबह किले नहीं गया और यह ख़त लिखकर भेज रहे एहतियातन[6] बैरंग रवाना किया। तुम भी इसका जवाब बैरंग रवाना करना ज़्यादा क्या लिखूँ कि परेशान हूँ।"

मीर मेंहदी मजरूहको लिखते हैं—

"ऐ मीर मेंहदी, तू दरमादा व आजिज़[7] पानीपतमें पड़ा रहे, मीर साहब वहाँ पड़े हुए दिल्ली देखनेको तरसा करें, सरफ़राज़ हुसेन नौकरी ढूँढ़ता फिरे और मैं इन ग़महाय जाँ गुदाज़[8] की ताब लाऊँ? मक़दूर[9] होता तो दिखा देता कि मैंने क्या किया?"*

---

१ चिन्ता, घबराहट, २ अत्यन्त व्याकुलता, ३ संक्षिप्त, ४ ब्यौरे-वार, ५ नींद और भोजन, ६ सावधानीके लिए, ७ निराश्रित और बेबस, ८ प्राणवेधक दुःखों, ९ सामर्थ्य।

*उर्दूए-मोअल्ला, ११८।

कर गो रहते थे और दूसरे दिन सिर्फ याद पर सोच-सोचकर तमाम अशआर कलमबद कर लेते थे।"*

खास-खास मुशायरोमे भी शरीक होते थे। आवाज़ बुलन्द और मधुर थी। बहुत अच्छा पढते थे। बादशाह ज़फरने इनका कसीदा सुनकर कहा था—"मीरज़ा, तुम पढते खूब हो।" मौलाना हालीने इनकी शेर-खानीकी प्रशसा करते हुए लिखा है —"शेर पढनेका अन्दाज़ भी, खासकर मुशायरोमे, हदसे ज्यादा दिलकश व मोअस्सर था। एक मुशायरेमे मिर्ज़ाने अपना फारसी कसीदा दरिया गरेस्तन और तनहा गरेस्तन, जो जनाब इमाम हुसेनकी मनकबतमे उन्होने लिखा था, पढा। सुना है कि मजलिसे मुशायरा बज़्मे अज़ा बन गयी थी। जबतक कसीदा पढा गया लोग बराबर रोते रहे।"†

जो कुछ लिखते, मित्रोको भेज दिया करते थे। प्रतिलिपि बहुत कम रखते थे। इसीलिए दूर-दूर तक बिखरी हुई इनकी सब रचनाएँ आजतक भी सग्रहीत न हो सकी।

विनोद एव हास्य उनके जीवनके अग थे। विनोद, व्यग एव हास्य-का कोई मौका वह चूकते न थे। इस विषयकी चर्चा हम स्वतत्र रूपसे आगे करेंगे। वार्तालाप-परायण थे।

मिर्ज़ाके विषयमे पहिली बात तो यह है कि वह अत्यन्त शिष्ट एव मित्रपरायण थे। जो कोई उनसे मिलने आता उससे खुले दिल मिलते थे।

शिष्टता एव मित्रपरायणता

इसलिए जो आदमी एक बार इनसे मिलता उसे सदा इनसे मिलनेकी इच्छा बनी रहती थी। मित्रोके प्रति अत्यन्त वफादार थे—उनकी खुशीमें खुश, उनके दु खमे दुखी। मित्रोको देखकर बाग-बाग हो जाते थे।

---

* यादगारे गालिब हाली, पृ० ५८-५९।

† यादगारे गालिब, पृ० ५६–५७।

उनके मित्रोंका दायरा बहुत बड़ा था। उनमें हर जाति, धर्म और प्रान्तके लोग थे। किसी मित्रको कष्टमें देखते तो इनका हृदय रो पड़ता था। उसका दुःख दूर करनेके लिए जो कुछ सम्भव होता करते। स्वयं न कर पाते तो दूसरोंसे सिफ़ारिश करते। इनके पत्रोंमें मित्रोंके प्रति सहानुभूति एवं चिन्ताके झरने बहते हुए दिखाई देते हैं। उन्हें कष्टमें देख ही नहीं सकते थे, दिल कचोटने लगता था। देखिए, भरतपुर-नरेशकी मृत्युकी खबर सुनकर, उनसे सम्बन्धित या उनके आश्रित स्नेहियोंकी जीविका का क्रम अस्त-व्यस्त हो जानेकी चिन्ता करते हुए 'तुफ़्ता'को लिखते हैं —

"भाई, आज मुझको बड़ी तश्वीश[1] है और यह ख़त मैं तुमको कमाल आशीमगी[2] में लिखता हूँ। जिस दिन मेरा ख़त पहुँचे अगर वक्त डाकका हो तो उसी वक्त जवाब लिखकर रवाना करो वास्ते ख़ुदाके न मुख़्तसर[3] न सरसरी बल्कि मुफ़स्सल[4] जो कुछ वाक़अ हुआ हो और जो सूरत हो मुझको लिखो और जल्द लिखो कि मुझपर ख़्वाबो ख़ोर[5] हराम है। कल शामको मैंने सुना, आज सुबह किले नहीं गया और यह ख़त लिखकर अज रहे एहतियात[6] बैरंग रवाना किया। तुम भी इसका जवाब बैरंग रवाना करना ज़्यादा क्या लिखूँ कि परीशान हूँ।"

मीर मेहदी मजरूहको लिखते हैं—

"ऐ मीर मेंहदी, तू दरमादा व आजिज़[7] पानीपतमें पड़ा रहे, मीर साहब वहाँ पड़े हुए दिल्ली देखनेको तरसा करें, सरफ़राज़ हुसेन नौकरी ढूँढ़ता फिरे और मैं इन ग़महाय जाँ गुदाज़[8] को ताब लाऊँ? मक़दूर[9] होता तो दिखा देता कि मैंने क्या किया?"*

---

१. चिन्ता, घबराहट, २ अत्यन्त व्याकुलता, ३ संक्षिप्त, ४ ब्यौरेवार, ५ नींद और भोजन, ६ सावधानीके लिए, ७ निराश्रित और बेबस, ८ प्राणवेधक दुःखो, ९ सामर्थ्य।

*उर्दूए-मोअल्ला, ११८।

यूसुफ मिर्जाको लिखते हैं—

"यहाँ अगनिया[1] और अमरा[2] के अज़वाज[3] व औलाद भीक माँगते फिरे और मैं देखूँ। बस, मुसीबतकी ताव लानेको जिगर चाहिए।"§

हृदयमे रस था, इसलिए प्रेम छलका पडता था। मित्रो क्या शागिर्दों-से भी बहुत प्रेम करते थे। उनको इस्लाह ही नही देते थे, सशोधनोका कारण भी लिखते थे। बच्चोपर जान देते थे।

आमदनी कम थी। खुद कष्टमें रहते थे फिर भी पीडितोके प्रति बडे उदार थे। कोई भिखारी इनके दरवाज़ेसे खाली हाथ नही लौटता था।

उदारता

उनके मकानके आगे अन्धे लँगडे-लूले अक्सर पडे रहते थे। उनकी मदद करते रहते थे। एकबार खिलअत मिली। चपरासी इनाम लेने आये। घरमे पैसे नही थे। चुपकेसे गये, खिलअत बेच आये और चपरासियोको अच्छा इनाम दिया।

इस उदार दृष्टिके बावजूद आत्माभिमानी थे—'मीर' जैसे तो नही, जिन्होने दुनियाकी हर नामत अपने सम्मानके लिए ठुकराई, फिर भी

आत्माभिमान

अपनी इज्जत-आबरूका बडा ख्याल रखते थे। शहरके अनेक सभ्रान्त लोगोसे परिचय था पर जो इनके यहाँ न आता, उसके यहाँ न जाते थे। कैसी गरीबी हो बाजारमें बिना पालकी या हवादारके नही निकलते थे। कलकत्ता जाते हुए जब लखनऊ ठहरे थे तो आगामीरसे इसीलिए नही मिले कि उसने उठकर इनका स्वागत करनेकी शर्त मजूर न की। इसी प्रकार कष्टके दिनोमें भी देहली कालेजकी अध्यापकी इसलिए ठुकरा दी कि जब टामसन साहबसे मिलने गये तो इनकी अगवानी करने कोई नही आया।

---

१ धनाढय, २ अमीर, ३ स्त्रियाँ।'

§ उर्दूए मोअल्ला २५५।

इन घटनाओंकी विस्तृत चर्चा हम उनकी जीवनीमें कर चुके हैं। एक शेरमें कहा है कि उपासनामें भी मैं इतना स्वाधीन और आत्माभिमानी रहा हूँ कि यदि काबेका दरवाज़ा मेरे आगमनपर खुला न मिला तो उलटे पांव लौट आये—

> बन्दगीमें भी वह आज़ाद व ख़ुदबीं हैं कि हम,
> उलटे फिर आये दरेकाबा अगर वा न हुआ।

वैसे वह शीया मुसल्मान थे पर मज़हबकी भावनाओंमें बहुत उदार और स्वतन्त्रचेता थे। इनकी मृत्युके बाद ही आगरासे प्रकाशित होनेवाले

धार्मिक औदार्य

मासिक पत्र 'अख़्बारे बालगोविन्द' के मार्च १८६९ के अंकमें इनकी मृत्युपर जो सम्पादकीय लेख छपा था और जो शायद इनके सम्बन्धमें लिखा सबसे पुराना और पहिला लेख है, उससे तो एक नई बात यह मालूम होती है कि यह बहुत पहिले चुपचाप 'फ्रीमेसन' हो गये थे और लोगोंके बहुत पूछनेपर भी उसकी गोपनीयताकी अन्ततक रक्षा करते रहे। बहरहाल वह जो भी रहे हों, इतना तो तय है कि मज़हबकी दासता उन्होंने कभी स्वीकार नहीं की। इनके मित्रोंमें हर जाति, धर्म और श्रेणीके लोग थे।

सच्चे एवं उत्कृष्ट काव्यके प्रेमी थे पर भरतीकी रचनाओंके निन्दक भी। औरोंकी तरह, परम्परा निभानेके लिए, हर शेर पर दाद देना

दूसरे कवियोंके प्रशंसक

इनके स्वभाव एवं प्रज्ञाके प्रतिकूल था। बुरे शेरको बर्दाश्त न कर सकते थे। हाँ, जो शेर वाक़ई अच्छा होता और इनके दिलमें चुभ जाता उसकी प्रशंसा खुले दिल से करते थे।

उन्नीसवीं शतीमें मेरठमें एक नामी शायर सैय्यद अहमद हसन गुज़रे हैं। फ़ारसीमें 'फुरक़ानी' और उर्दूमें 'शाक़ी' एवं 'बाक़ी' तख़ल्लुस करते थे। इनके पिता सय्यद किफ़ायतअली भी 'तनहा' के नामसे शायरी करते

थे। १८६२ से १८६८ तक वह दिल्ली कमिश्नरीमे मीर मुशी रहे। उस समय 'फुरकानी' भी पिताके साथ दिल्ली रहते थे। इस वक्त गालिबसे उनका परिचय हुआ। एक बारकी बात है कि 'फुरकानी' ने गालिबको अपना यह कसीदा सुनाया—

शद वक्त कि दर तुर्रए सबुल शिकन उफ्तद।
बा गर्रए गुलज़ाला च दर मक्तरन उफ्तद।

जब उन्होने यह मतला सुना, भावविभोर होकर, कमज़ोरीमे भी कोशिश करके उठ खडे हुए, कविका माथा चूम लिया और उपस्थित लोगोंसे कहा—"यह सय्यद अहमद हसन गालिब ज़िन्दा है, असदउल्लाखाँ गालिब मुर्दा है। सब लोगोको इनसे फायदा उठाना चाहिए, मेरे पास आनेकी ज़रूरत नही।" बादमें फुरकानीको बहुत मानने लगे थे।

मौलाना हालीने भी 'यादगारे गालिब' मे ऐसी कई घटनाओकी चर्चा की है। ज़िन्दगी भर 'ज़ौक' से इनकी छेडछाड चलती रही। पर एक दिन जब यार-दोस्त बैठे थे और यह शतरज खेलनेमे तल्लीन थे, मुशी गुलाम अली नामके एक व्यक्तिने 'ज़ौक' का निम्नलिखित शेर किसी दूसरे उपस्थित मित्रको सुनाया—

अब तो घबराके यह कहते है कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे।

मिर्ज़ाके कानमे भनक पड गयी। फौरन शतरज छोड दी और गुलाम-अली खाँसे कहा—"भैया, तुमने क्या पढा?" उन्होने शेर सुनाया। पूछा—किसका शेर है? उत्तर मिला—ज़ौकका। सुनकर चकित हुए। उनसे बार-बार शेर पढवाते थे और सिर धुनते थे। अपने उर्दू खतोमें इस शेरका जगह-जगह ज़िक्र किया है।

इसी तरह जब एक बार मोमिनका यह शेर सुना—

तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।

तो बड़ी तारीफ़ की और कहा—"काश, मोमिनख़ाँ मेरा सारा दीवान ले लेता और सिर्फ़ यह शेर मुझको दे देता।" अपने पत्रोंमें इस शेरकी बार-बार चर्चा की है।

एक बार देखा गया कि नवाब मिर्ज़ा 'दाग़'के निम्नलिखित शेरको बार-बार पढ़ते थे और झूमते थे—

रुख़े रोशन[1]के आगे शमा[2] रखकर वह यह कहते हैं,
उधर जाता है देखें या इधर परवाना[3] आता है।

अच्छा शेर यदि शागिर्दोंका होता तो भी तारीफ़ करनेसे न चूकते थे। वह स्वयं काव्यके अच्छे पारखी थे। शेरफ़हमी उनमें बहुत थी। कैसा ही मज़मून हो, एक सरसरी नज़रमें उनकी तह तक पहुँच जाते थे। नवाब मुस्तफ़ाख़ाने 'गुलशने बेख़ार'में मिर्ज़ाकी सुख़नफ़हमीकी बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने हालीसे एक घटनाका ज़िक्र किया था जिससे मिर्ज़ाकी शेरफ़हमीपर प्रकाश पड़ता है। मौलाना आज़ुर्दाने 'दूर नहीं' 'हूर नहीं' इस ज़मीनमें ग़ज़ल लिखी थी। उसमें इत्तिफ़ाक़से मतला बहुत अच्छा निकल आया था। मौलानाने अपनी ग़ज़ल दोस्तोंको सुनाकर उनसे कहा—अगर्चे बहर दूसरी है मगर इस रदीफ़ व क़ाफ़ियेमें नज़ीरीकी भी एक ग़ज़ल है जिसका मतला है—

इश्क़ असियानस्त अगर मस्तूर नेस्त।
कुश्तए जुर्मे ज़बाँ मग़फ़ूर नेस्त।

---

१ प्रकाशमण्डित आनन, २ मोमबत्ती (दीपक), ३ पतंग।

अगर नजीरी हिन्दी होता और हमारी गजलकी ज़मीनमे उर्दू गज़ल लिखता तो उसका मतला इस तरह होता—

इश्क़ असियॉ है अगर मख़्फ़ी व मस्तूर नहीं।
कुश्तए ज़ुर्मे जबॉ नाजी व मगफ़ूर नहीं॥

आओ आज मिर्ज़ा गालिबके यहाँ चलें और बिना लेखकका नाम बताये अपना और नज़ीरीके मतलेका यही उर्दू तर्जुमा मिर्ज़ाको सुनायें और पूछें कि कौन-सा मतला अच्छा है। चूँकि नज़ीरीका मतला उर्दू तर्जुमेमें बहुत पस्त हो गया था, सबको यकीन था कि मिर्ज़ा नज़ीरीके मतलेको नापसन्द करेंगे और मौ० आज़ुर्दाके मतलेको तर्जीह देंगे। पर जब नज़ीरीके मतलेका यही उर्दू तर्जुमा पढा गया कि मिर्ज़ा सुनकर सिर धुनने लगे और इस कदर तारीफ की कि मौलाना आज़ुर्दाने अपना मतला नही पढा।"★ इसी प्रकार काव्यके पारखियोकी भी बडी इज्ज़त करते थे। मौ० हाली लिखते हैं—

"मुशी नबीबख्श 'हकीर' तखल्लुस, जो एक ज़मानेमे कोलमे सर-रिश्तेदार थे और जिनकी सुखनफहमी और सुखनसजीकी बडे-बडे लोगोसे तारीफ सुनी गयी है, कही वह दिल्ली आये है और मिर्ज़ाके मकानपर ठहरे है। उनकी निस्बत हरगोपाल तुफ्ताको एक फारसी खतमे लिखते है जिसका तात्पर्य यह है—'खुदाने मेरी बेकसी और तनहाईपर रहम किया और एक ऐसे शख्सको मेरे पास भेजा जो मेरे जख्मोका मरहम और मेरे दर्दका दर्मा[1] अपने साथ लाया और जिसने मेरी अंधेरी रातको रोशन कर दिया। उसने अपनी बातोसे एक ऐसी शमा रोशन की जिसकी रोशनीमे मैने अपने कलामकी खूबी जो तीराबख्ती[2] के अँधेरेमे खुद मेरी निगाहसे मख्फी[3] थी, देखी। मै हैरान हूँ कि इस फर्दानए यगाना[4] यानी मुशी नबीबख्शको किस

★ हाली यादगारे गालिब, पृ० ६२।

१ इलाज, उपचार, २ दुर्भाग्य ३ प्रच्छन्न, ४ अद्वितीय व्यक्ति।

दर्जेकी सुखनफ़हमी और सुखनसंजी इनायत हुई है। हालाँ कि मैं शेर कहता हूँ और शेर कहना जानता हूँ, मगर जबतक मैंने इन बुजुर्गवारको नहीं देखा, यह नहीं समझा कि सुखनफ़हमी क्या चीज है और सुखनफहम किसको कहते हैं ? मशहूर है कि खुदाने हुस्नके दो हिस्से किये, आधा यूसुफको दिया और आधा तमाम बनी नूअ इन्सांको। कुछ ताज्जुब नहीं कि फ़हमे सखुन और जौकमानीके भी दो हिस्से किये गये हों और आधा मुंशी नवीवख्शके और आधा तमाम दुनियाके हिस्सेमें आया हो। गो जमाना और आस्मान मेरा कैसा ही मुख़ालिफ़ हो, मैं इन शख्सकी दोस्ती-की बदौलत जमानेकी दुश्मनीसे वेफ़िक्र हूँ और इन नामतपर दुनियासे क़ानअ।"

मिर्जाका पारिवारिक जीवन कभी सुखी नहीं रहा। यह रिन्दाना तबीयतके आदमी थे। इनको बीवी ऐसी मिली जो एक राजवंशकी परम्प-राओंमें पली थी—धार्मिक निष्ठा, व्रत-पूजा, नमाजरोजा रखनेवाली, परहेजगार। मिर्जा धर्मके क्षेत्रमें स्वच्छन्द, वह परम्पराओंका आग्रहपूर्वक पालन करनेवाली। यहाँ तक कि खाने-पीनेके बर्तन भी दोनोंके अलग थे। फिर भी बीवी इनका बड़ा ख्याल रखती थी। हाँ, दोनोंमें वह हार्दिक सौख्य न था, जो जीवनके अन्धकारमें किरन बनकर फूटता है। इस सम्बन्धमें हम आगे स्वतन्त्र रूपसे लिखेंगे। बहरहाल, यह एक तथ्य है कि उनका पारिवारिक जीवन न केवल सुखी नहीं था, वरन् एक सीमातक दु:खदायी था।

पारिवारिक जीवन

न केवल काव्य बल्कि जीवनमें भी मिर्जा मौलिकता एवं नवीन्यके प्रति सदा आकर्षणका अनुभव करते रहे। अपनी यात्राके सिलसिलेमें बनारस और कलकत्ता दोनोंपर वह रीझ गये थे। वह हर पुरानी बातको केवल उसके पुरानी होनेके कारण माननेसे इनकार करते थे और कहा करते थे कि क्या पुरानोंमें गधे नहीं होते थे। अंग्रेजी सभ्यता एवं

मौलिकता एवं नवीनता के प्रति आकर्षण

शासनके प्रति उनमे एक रुझान थी, क्योंकि उसमें सुव्यवस्था थी और अनिश्चितताओंसे भरे अध्यायका उससे अन्त हो जाता था। जब सर सैयद अहमद खाँने बडे परिश्रम एव लगनसे 'आईने-अकबरी' का सम्पादन किया तब मिर्ज़ाने यही कहा था कि उनसे अच्छे कानूनोंके मौजूद रहते इस कार्य-मे माथा-पच्ची करना फिज़ूल है। यह चीज़ उनके जीवन एव काव्यमें सर्वत्र दिखाई देती है—नवीनता एव व्यवस्थाके प्रति आकर्षण। इसे वह जीवनका चिह्न समझते थे। इस धारणापर ही उनके समस्त जीवन एव काव्यकी उठान है।

ग़ालिब : दाम्पत्य जीवन

यह बात पहिले लिखी जा चुकी है कि ग़ालिबका दाम्पत्य जीवन कभी सुखी नहीं रहा। वह दुःखकी एक लम्बी कहानी है जिसमें नायक और नायिका दोनों हाहाकारसे भरे, चिरपिपासित, वेदनाओंका भार ढोते हुए जिन्दगीके दिन पूरा कर रहे हैं। निश्चय ही इस तथ्यने ग़ालिबके जीवन और उनके दृष्टिकोणपर गहरा प्रभाव डाला। दो दिल, सभ्य जीवन एकत्र हुए पर एकत्र होकर भी एकत्र न हो सके। मानो एकत्र हुए हों सिर्फ टकरानेके लिए। युगोंका साहचर्य जहाँ स्वप्नोंकी एक मोह-निशाकी सृष्टि न कर सका, लम्बा दाम्पत्य जहाँ एक दूसरेके लिए करुणाकी स्रोतस्विनी दिलोंकी मरुभूमिमें न फूटी, जहाँ दिल एक दूसरेके लिए कभी न तड़पे, कभी न रोये, कभी जहाँ अपनी भूलोंपर अनुतापके अश्रुबिन्दु न झरे, कभी जहाँ मौन आलिंगनका बाहुपाश नहीं बँधा जिसमें सब कुत्सा और वितण्डाका अन्त हो जाता है, कभी जहाँ हृदयने हृदय नहीं बोले—अपने सामने बैठकर, ज़बान और तर्ककी भाषामें नहीं, आत्मार्पणकी भाषामें, क्षणभर अपना सब कुछ भूल जानेकी भाषामें, 'मैं' और 'तू' नहीं 'हम' की भाषामें ऐसा लम्बा दाम्पत्य जीवन था ग़ालिबका—नारकीय यन्त्रणाओंकी लम्बी शृंखलामें बँधा हुआ जहाँ दोनोंको बन्धनकी अनुभूति तो थी पर बन्धनको वह बाहुपाश बनानेकी चेष्टा नहीं थी जो दो प्राणोंको एक कर देता है और जहाँ जिन्दगी अपनी नहीं दूसरोंकी हो जाती है, जहाँ इन्सान अपने लिए उतना नहीं जीता जितना दूसरोंके लिए जीता है।

टकरानेके लिए मिलन

बहरहाल यह एक सत्य है कि ग़ालिबका दाम्पत्य जीवन दुःखपूर्ण था।

अनायास सवाल उठता है कि क्यो ऐसा हुआ ? उर्दूका एक बहुत बडा शायर, भारतमे फारसीयतका नेता, भावनाओके वेगमे दृढ रहनेवाला, और अपने युगकी चिन्तनशीलता एव बौद्धिकताका प्रतिनिधि गालिब एक औरतकी जिन्दगीको क्यो ऐसी न बना सका कि उनके शायराना एहसास उसके दिलको भी छूते, उसकी जिन्दगीमे भी कभी बहार आती,—बहार न सही, उसके एकाध झोके ही सही।

१७९९ मे दिल्लीके एक शरीफ प्रतिष्ठित और प्रभावशाली घरानेमे एक लडकी पैदा हुई। उसके पिता नवाब इलाहीबख्शका जीवन वैभव एव सुखकी प्रतिमूर्त्ति था—राजकुमारोके सुख-भोगसे पूर्ण। किसी चीजकी कमी नही। युवाकालमे इलाहीबख्शका जीवन इस तरहका था कि वह 'शहजादए गुलफाम'[1] के नामसे प्रसिद्ध थे। इससे कल्पना की जा सकती है कि उस लडकी, उमराव बेगमका बचपन किस प्रकार बीता होगा, उसका पालन-पोषण किस प्रकार हुआ होगा और किन सुखो और दुलारोमे पली होगी। वह जमाना ऐसा था कि शरीफोमे बेटियाँ कम उम्रमे ब्याह दी जाती थी। उनके अपने निर्वाचनका तो सवाल ही नही था। उमरावकी शादी सिर्फ ग्यारह सालकी आयुमें, ८ अगस्त १८१० ई० को आगराके एक रईसजादा असदउल्लाखाँसे कर दी गयी।

उमरावका बचपन

जिस रईसजादे असदउल्लासे उमरावकी शादी हुई उसकी उम्र भी कच्ची—सिर्फ तेरह सालकी थी। यद्यपि उसे वह सुख नसीब न हुआ था जो उमरावको बचपनमे प्राप्त था, पर उसका बचपन भी बडे प्यार-दुलारमे बीता। बाप तो अक्सर बाहर रहते थे और यह छोटे ही थे कि मर गये परन्तु चचाने, जो एक उच्चाधिकारी थे, इन्हें अपनी ही सन्तान मानकर पाला। वह भी कुछ समय बाद दुनियासे चले गये। ननिहाल

१ कुसुमकोमल राजकुमार।

वैभवपूर्ण था, किसी प्रकारका अभाव न था। वहाँ रहे। बड़े आराम और आसाइशकी ज़िन्दगी थी। इस तरह हम देखते हैं कि उमराव और असदउल्ला, पति और पत्नी, दोनोंका बचपन आराम और आसाइशमें बीता।

एक अन्तर

पर एक अन्तर था। लड़कियोंकी रुचियाँ तो अन्तःपुरकी सीमामें खिलती थीं। उन्हें बातचीतका सलीक़ा, उठने बैठनेका ढंग और घर-गृहस्थीकी बातें सिखाई जाती थीं। उमरावके माँ-बाप थे। उनकी छायामें वह पली, बढ़ी। किन्तु असदउल्लाके ऊपर कोई देख-रेख करनेवाला, उनके जीवनको दिशा और मोड़ देनेवाला न था। बाप तो दूर ही दूर रहे, चचा भी जल्दी ही संसारसे प्रयाण कर गये। नानी और माँका दुलार मिला। पर बाहर कोई बड़ा-बूढ़ा देख-रेख करनेवाला न होनेसे कच्ची उम्रमें ही मौज-मज़ाकी आदत पड़ गयी। यार-दोस्त जुट गये। और बचपन उस नियन्त्रण और प्रशिक्षणसे छूटकर बह चला जिससे भावी जीवन बनता है। मुग़ल सभ्यताके उस पतन कालमें, जब वातावरण तमसाच्छन्न हो रहा था और अँधेरा गहरा होता जा रहा था, रईसज़ादोंकी ज़िन्दगी यों भी एक बँधे ढर्रे पर चलती थी। वह, बचपनमें ही ताक-झाँक, चूमाचाटी, गप-शप, सैर-सपाटेकी ज़िन्दगी बन जाती थी। असदउल्लाकी या ग़ालिबके जीवनके सम्बन्धमें यह बात बहुत ध्यान रखनेकी है। अनियन्त्रित, अभाव का नाम न जाननेवाले, उत्तम संस्कारोंसे हीन, यारबाशीके बचपनमें उस चिर-पिपासाकी नींव पड़ी जिसने भोगवादी भावनाओंको ग़ालिबमें सदा प्रबल रखा और कभी उन्हें अन्त स्थ नहीं होने दिया।

जब लड़कीके घरवालोंने पतिके रूपमें ग़ालिबको पसन्द किया तो सोचा, अच्छे खान्दानका लड़का है, देखनेमें सुन्दर, गोरा-चिट्टा, मृदु-भाषी, आगे चलकर अपने बड़ोंकी तरह फ़ौजी नौकरीमें नाम कमायेगा, खाने-पीनेकी कोई तकलीफ़ लड़कीको न रहेगी। एक शरीफ़ घराना,

खूबसूरत शौहर, हर तरहकी आसूदगी लडकीको मिल रही है, और क्या चाहिए। यह बात भी थी कि गालिबकी चाची लडकी उमरावकी सगी फूफी थी। इसलिए ख्याल था कि लडकी जाने-पहचाने, एक तरहसे अपने ही, घरमे जा रही है। पर सब कुछ होकर भी वह आशा पूरी न हुई। असदउल्लाने जीविकोपार्जनकी ओर या कोई अच्छा पद प्राप्त करके एक औसत गृहस्थका तृप्त जीवन बितानेकी ओर कभी ध्यान न दिया। बचपनकी स्वच्छन्दता ज़िन्दगी भर बनी रही। विवाहित जीवनके चन्द साल किसी कदर बेफिक्रीमे बीते पर ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, गृहस्थ जीवनसे निश्चिन्तता समाप्त होती गयी। बेकारी और शेरखानी जिन्दगीपर छाती गयी। ज्यो-ज्यो उम्रमें बढते गये, आर्थिक एव दैनिक जीवनकी मुसीबतें बढती ही गयी। यहाँ तक कि २४ सालके बाद तो उमरावके जीवनसे सुखके सपने सदाके लिए विदा हो गये।

अपना सोचा कहाँ होता है ?

कुछ पत्नियाँ ऐसी होती है जो चरण पकडकर सिरपर चढ जाती है, पतिकी कमज़ोरियोसे व्यथित होकर भी वे जानती हैं कि जो मिल गया है बुरा-भला उसे ही लेकर अपनी दुनिया बनानी है। वे धीरजसे काम लेती है और अपने स्नेह, सेवा और निष्ठासे धीरे-धीरे पति-हृदयपर अधिकार कर लेती हैं। दूसरी वे होती है जिनका अहकार चुटीला होकर जिन्दगीकी सतहपर आ जाता है, आँखोमे विकृत पतिके लिए उपेक्षा, दिलमे अपनी किस्मत फूट जानेकी रह-रहकर उमड पडनेवाली अनुभूति, ज़बानमें अन्दरके दर्दकी तीक्ष्णता भर जाती है। जो बात पत्नीके लिए कही गयी है वही पतिके लिए भी है। समझदार, सहृदय पति पुरानी ज़िन्दगी और सपनोको भूलकर शान्तिके लिए ही सही, जो लक्ष्मी मिली उसे ही सहेजने-सँवारनेकी कोशिश करते है।

दिलोंके बीच खाई बढ़ती गयी

दूसरे दिल्फेंक और अभागे उसे लात मारकर, अपने और उसके बीच एक ऐसी दीवार खड़ी कर लेते हैं जो उम्र बढ़नेके साथ-साथ टूटनेकी जगह और दृढ़ होती जाती है। दुर्भाग्य कि ग़ालिब और उमराव दोनो इन दूसरी टाइपके पति-पत्नी निकले। दोनोमें गहरी अहवृत्ति थी। कोई किसीके आगे झुकनेको तैयार नही। उमराव जरा झुककर ग़ालिब पर ग़ालिब हो सकती थीं पर उन्हें एक नवाबकी लड़की होनेकी चेतना थी और उनका अहकार उन्हें ऐसा करनेकी इजाज़त न दे सकता था। ग़ालिब-की सगी बहिनके पोते नवाब नसरुल्मुल्कने लिखा है—

"बचपनमें जब मैं अपनी वाल्दा मरहूमा[1] के साथ उनके हां जाया करता था तो दादी (बेगम ग़ालिब) मुझको एक दुअन्नी दिया करती थी। अजीब बात यह है कि इन दोनो मियां बीवीमें हमेशा अनबन रही। बीवियां इस खान्दानकी निहायत मोहज्जब व शाइस्ता[2] मगर कमाल दर्जा मग़रूर व मुतकब्बर[3] थी। "

उमरावका अहकार एक ओर, ग़ालिबका दूसरी ओर। मिलनेकी जगह दोनो टकराते गये, टकराते गये और कटते गये, कटते गये और टकराते गये।

दूसरी औरतका आकर्षण

जब घरमे दिलकी छाया न प्राप्त न हो, जब पत्नी जीवनके आशीर्वादकी जगह जीवनका बोझ बन जाये, उसमे प्रेम और मृदुलताके आश्वासनके स्थानपर विष-बुझी वाणीके बाण झरने लगें पुरुष घरसे बाहर भागता है। ग़ालिब पर तो बचपनसे ही स्वच्छन्दताके सस्कार प्रधान थे, अब जो दोनोंके दिल फट गये तो वह बाज़ारू औरतोकी ओर झुके। इसी सिलसिलेमें एक गायिका (डोमनी) पर बेतरह आसक्त हो गये। वह भी इनको प्यार करने लगी। इससे उमरावके दिलपर क्या

---

१. स्वर्गीया मां, २. सभ्य और शिष्ट, ३ अहकारी।

बीती होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है। उसके जीवनकी धारा कटकर बिलकुल अलग हो गयी। कई सालो तक गालिब और उनकी इस प्रियतमाका प्रेम-व्यापार चलता रहा। फिर जान पडता है उसकी मृत्यु हो गयी। उस वक्त यह २०-२२ के पट्ठे थे। उन्होने उसकी मृत्युपर जो शोकपूर्ण रचना की है उससे इनकी गहरी लगावटका पता चलता है। यह रचना प्रबल भावावेगसे पूर्ण है। देखिए इसके कुछ शेर —

तेरे दिलमें गर न था आशोबे गमका[1] हौसला,
तूने फिर क्यों की थी मेरी गमगुसारी[2] हाय हाय।
उम्र भरका तूने पैमाने वफ़ा[3] बाँधा तो क्या?
उम्रको भी तो नहीं है पायदारी[4] हाय हाय।
ज़ह्र लगती है मुझे आबोहवाए ज़िन्दगी,
यानी तुझसे थी उसे नासाज़गारी हाय हाय।
शर्मे-रुसवाईसे जा छुपना नक़ाबे-ख़ाक[5] में,
ख़त्म है उल्फ़तकी तुझपर पर्दादारी हाय हाय[6]।
किस तरह काटे कोई शबहाय तारे बर्शगाल[7],
है नज़र खूकर्दए[8] अख़्तरशुमारी[9] हाय हाय।
गोश महजूर पयाम[10] व चश्म महरूमे जमाल[11],
एक दिल तिसपर य' नाउम्मीदवारी हाय हाय।

---

१ दुःख और मुसीबतकी हलचल, २ महानुभूति, हमदर्दी, ३ निष्ठाकी शपथ, वफादारीकी कसम, ४ स्थिरता, ५ मिट्टीके पर्देमे, तुम बदनामीके डरसे मिट्टीके पर्देमे जा छिपी, ६ इस प्रकार प्रेमको छिपानेकी कलाकी सीमा तुमपे समाप्त है, ७ वर्षाकी अँधेरी रातें, ८ अभ्यस्त, ९ तारे गिनकर, १० सन्देशसे रहित कान, ११ दर्शनसे बिछुरी आँखें।

इश्क़ने पकड़ा न था ग़ालिब अभी वहशतका[1] रंग,
रह गया था दिलमें जो कुछ ज़ौक़ख्वारी[2] हाय हाय ।

इंसान मरे हुएको एक दिन तो भूल ही जाता है—कबतक कोई किसी को याद रखता है पर घरमें बीवीसे दिल न लगनेके कारण ग़ालिबको इन माशूक़ाकी याद युगों तक रही। फिर वैसा आँधीवाला प्रेम उनको ज़िन्दगीमें न आया। घटनाके चालीस-बयालीस वर्ष बाद भी अपने एक प्रिय मिर्ज़ा हातिम अली 'मेह्र'की प्रियतमाकी मृत्यु पर जो पत्र उन्होंने लिखा था, उससे मालूम होता है उस बुढ़ौतीमें भी जवानीकी इन प्रियतमासे बिछुड़नेकी कसक उनमें थी :—

"मुग़ल बच्चे भी गजबके होते हैं। जिसपर मरते हैं उसको मार रखते हैं। मैं भी मुग़ल बच्चा हूँ। उम्र भर एक सितमपेशा डोमनीको मैंने भी मार रखा है। खुदा इन दोनोंको बख्शे और हम तुम दोनोंको भी कि ज़ख्मे मर्गे दोस्त[3] खाये हुए हैं, मग़फ़रत[4] करे। चालीस बयालीस बरसका यह वाकआ है, बावजूदकि[5] यह कूचा[6] छुट गया, इस फ़नमें बेगाना महज़[7] हो गया हूँ, लेकिन अब भी कभी-कभी वह अदाएँ याद आती हैं। उसका मरना ज़िन्दगी भर न भूलूँगा।"

मतलब यह कि मियाँ बीवीमें जो खाई थी वह इस घटनासे स्थायी हो गयी। अगर आमदनी काफ़ी होती यानी ग़ालिब कमाऊ होते तो दिलका

उमरावकी गूढ़ वेदना

दयार सूना ही सही, जीवनकी बाह्य आवश्यकताएँ तो पूरी होती रहतीं और ज़िन्दगी एक ढर्रेपर तो चल सकती। किन्तु उमरावकी क़िस्मतमें वह भी न था। शादीके चौदह वर्ष बाद जो कुछ घरमें था वह भी बिकने लगा। ग़ालिबने

---

१ पागलपन, २ बदनामीकी उत्कण्ठा, ३ प्रियमरणका घाव, ४ क्षमा, ५ यद्यपि, ६ गली, ७ बिलकुल अपरिचित।

शायरी, मित्र-मण्डली और अपनी हास्यप्रियतामे अपने दु खको निमग्न कर दिया था, शराब भी गमको भुलानेमे उनकी सहायता करती थी, पर बेचारी उमराव अपने दु खको कहाँ भुलाती। इसलिए वह दूर-दूर होती गयी एकान्तप्रिय होती गयी और परम्परागत अर्थमे धर्मनिष्ठ होती गयी।

यह अभिशप्त जीवन कदाचित् कुछ शीतल हो उठता यदि दाम्पत्य सुख-स्नेहके अभावमे भी एकाध बच्चे होते। पर यहाँ भी दोनो अभागे

सन्तानके अभावकी व्यथा

रहे। बच्चे तो सात हुए, पर बरस-सवा बरससे से ज्यादा एक न जिया। माँकी जिन्दगी और तन-मनकी गर्मी बच्चोको पेटमे रख-रखकर जन्म देने और फिर कलेजेके टुकडोंके एकके बाद एक मौतके भयानक पजो द्वारा छीन लिये जानेके गममे ही खत्म हो गयी। उस माँकी निराशा भरे जीवनकी कल्पना भी अत्यन्त व्यथाजनक है जिसे पतिका प्रेम न मिला, उसके अभावमे सन्तानकी किल-कारियाँ न मिली या मिली तो यो कि उनका मिलना न मिलनेसे भी अधिक कसक और करक पैदा करनेवाला, फिर दैनिक जीवनकी निश्चिन्तता भी नही, कही हार्दिक सहानुभूतिका एक शब्द नही, एक बात नही। उलटे पतिके व्यग और भोडी हँसीकी चोट।

नही कहता कि सन्तानहीनताका गम गालिबको कुछ कम रहा होगा। कोई प्यारा बच्चा जी गया होता तो शायद उसके माध्यमसे दोनो कुछ नजदीक आते पर दुर्भाग्यकी सीमा थी कि एक न जिया। यहाँ तक कि गालिबने बडी सालीके बडे लडके यानी बीवीके भाजे आरिफको गोद लिया तो वह भी दाग दे गया और मिर्जा तथा उमराव दोनोको समुद्रमे डूबते हुएको जो तिनके का सहारा मिला था, वह भी छिन गया। दोनो छटपटा कर रह गये। गालिबको इस घटनाने बेतरह प्रभावित किया जैसा आरिफकी मृत्युपर लिखी उनकी शोकपूर्ण रचनामे विदित होता है —

जाते हुए कहते है, क़यामतको मिलेंगे,
क्या खूब क़यामतका है गोया कोई दिन और।

सन्तान प्राय पति-पत्नीके उखड़ते, उचटने, टूटने दिलोंको जोड़ देती है, पर यहाँ तो दोनोंका सारा निजी जीवन, गृह-जीवन एक ऐसा रेगिस्तान बनकर रह गया दिखाई देता है जिसमें एक हरित भूमिखण्ड नहीं है—चटियल, पथराई हुई धरती पथराये कलेजेमें पथराई उमगें और पथराई लालसें लिये ताक रही है।

कभी-कभी निराशाएँ और विपत्तियाँ भी हृदयोंको नजदीक लाती है। पर ऐसा प्राय तभी होता है जब दोनोंके अन्तरमें कही सहानुभूतिका सोता, भले मुँह बन्द किये, पड़ा हो या कमसे कम दूसरे प्रबल आकर्षण एव प्रवृत्तियाँ न हो, पर यहाँ यह बात भी न थी। ग़ालिबकी प्रकृति उड़नछू थी—वह बन्धनोंमें बँधकर रहनेवाले न थे। उधर बीबी गम्भीर, कुछ अहकारी, चोट खाई हुई, कम बोलनेवाली और बन्धन एव परम्पराके प्रति आसक्त। ग़ालिबको पत्नीमें कभी वह गहरा आकर्षण न मिला जो जीवनको सोहागका वह वरदान देता है जिसपर सौ-सौ स्वर्ग निछावर किये जा सकते है। वह शादीको सदा जजाल और फन्दा ही समझते रहे। फ़ारसी क़िनेमें उनके भाव स्पष्ट हो गये है—

दूरी पैदा करनेवाली निराशा

व आदमज़न व शैता तौक़े लानत,
सुपुर्दन्द अज़ रहे तकरीमो तज़लील।
वलेकिन दर असीरी तौक़े आदम,
गिरातर आमद अज़ तौक़े अज़ाज़ील।

शादी उस समय हुई थी जब जिन्दगी यारबाशीमें बीतती थी—उन्मुक्त थे। दुनियाके मजे सामने थे। स्वभावत. विवाहका बन्धन रुचा नही।

'उर्दू-ए-मुअल्ला' (पृ० २९५) में नवाब अलाउद्दीन अहमद ख़ाँको लिखे गये पत्रमें अपनी शादीके विषयपर लिखते हैं—

"एक वेडी (यानी वीवी) मेरे पाँवमे डाल दी और दिल्ली शहरको जिन्दान मुकर्रर किया और मुझे इस जिन्दानमे डाल दिया।"

इससे जान पडता है कि शुरूसे ही इन्होने वीवीको वेडी समझ लिया था और विवाहसे कभी खुश न रहे —

आर्ज़ूए ख़ाना आबादीने वीरा तर किया,
क्या करूँ गर सायए दीवार सैलाबी करे।

मैं कह चुका हूँ कि दोनोके स्वभाव भिन्न थे—एक गम्भीर, दूसरा ठिठोलिया। एक लजाधुर, दूसरा दिलफेंक। प्रोफेसर हमीद अहमदने ठीक

खोखले हास्यके पीछे भयानक चेहरा

ही लिखा है कि "वह खोखला हास्य, जिसके पीछे गरीवी, अनिश्चितता और फाक़ामस्तीका भयानक चेहरा हो, उस वीवीके लिए कोई अर्थ नही रखता था जिसे अपने मान-मर्यादाको बनाये रखनेके लिए न जाने क्या-क्या कष्ट सहन करना पडता था।" वेचारी शायरीको लेकर क्या करती, उसे तो एक शौकीन एव खर्चीले पर वेकार शौहरकी घर-गृहस्थीको चलाना पडता था। गालिवको हँसी-दिल्लगी, छेडछाडका जो लपका था, वह अन्दर ही अन्दर दुखी उमरावके दिलमे व्यगके विषैले तीरकी तरह चुभता था। उनकी यह आदत उमरावके लिए वोझ हो गयी। उधर वुढापेतक गालिवकी वह आदत न गयी।

इन वातोका परिणाम यह हुआ कि फटे दिल और फटते ही गये। दोनोने नियतिके आगे कन्धा डाल दिया था और कभी दुखते दिलोपर

नोक-झोंक

मरहम लगानेकी चेष्टा भी न की। वल्कि मामला इतना तूल पकड गया कि दोनो एक साथ रहते हुए भी अलग-अलग वैठ रहे। अपने जीवनके उत्तरकालमें गालिव प्राय सारा वक्त अपने वैठकखानेमे ही गुज़ारते और सिर्फ एकवार लाठी टेकते-टेकते अन्दर जाते थे। इसके पूर्व जीवनमे भी उनका ज्यादा समय वाहर

या घरके पुरुप-कक्षमें ही बीतता था। अन्दर जाते तब भी कुछ न कुछ व्यंग्य उनके मुँहसे निकल ही जाता था। वह आजाद तबीयत, पूर्णत इसी दुनियाके आदमी थे जबकि पत्नी कुछ संस्कार-वश, कुछ इनके कारण दुखी हो, अपने पिताके पद-चिह्नोंपर चलनेवाली, नमाजरोजाकी पाबन्द और परहेजगार थी। इसलिए दोनोंमें अक्सर नोक-झोंक हो जाती थी। गालिब बीबीको 'हजरत मूसाकी बहिन' कहते थे और ज्यादा बिगडते तो यहांतक कह जाते थे कि 'मेरा तो नाकमे दम कर दिया है।' वह (मिर्जा बाकरअली खाँकी पत्नी जमानी बेगम उर्फ बुग्गा बेगम§) के सामने ये बातें होती थी। इससे उमराव बेगम बडी दुखी हो जाती थीं। वह चुप रह जाती और बहूसे कहती—"बेटी, तू तो बच्चा है। बुड्ढेकी बातोंका ख्याल न किया कर। बुड्ढा तो दीवाना हो गया है।"

बुग्गा बेगमने कई ऐसी घटनाओंका जिक्र किया है* जिनसे इस स्थितिपर विशेष प्रकाश पडता है। वह कहती है—

"मिर्जा पिछले पहर हवाखोरीको जाया करते थे। एक रोज़ अस्र[1] के बाद वह वापिस आये। मैं और मेरी सास अस्रकी नमाज पढ रही थी। दोनो भी उसी तख्तपर। नुक्कड पर हो बैठे। जब हमने सलाम फेरा तो कहने लगे—"वाह वा! खूब! बहूको भी अपना-सा कर लिया। कुम्हारी घूँटका कीडा अपने घर ले जाती है तो चालीस दिनमें उसे अपना-सा करके निकाल देती है।"

"बरसातके दिन थे। मेंह बहुत बरसने लगा। पोतो (बाकर एव हुसेन) ने खाना खाया और चले गये। नियाज़अली (मुलाजिम) भी

---

§ १० मई १९४५ को ९३ सालकी उम्रमें इनकी मृत्यु हो गयी।

*'अहवाले गालिब' में प्रो० हमीद अहमदखांके लेख (पृ० ७८-८७ एवं २६६-२७६)।

१ गोधूलि वेला, सूर्यास्तके पूर्व।

चला गया। (मिर्ज़ा साहब) बैठे बीवीसे बाते करते थे। मै यो बैठी थी, गावतकियेके कोनेसे लगी हुई। कहने लगे—"एक बीवी, दूसरा मैं। तीसरा आंखोमे ठीकरा! बहू, मैं और मेरी बीवी बैठे हैं, तुम क्यो बैठी हो ?"★ इसपर मेरी सास बोली—"ऐ तोबा! बुड्ढा तो दीवाना है। उसे तो ठट्ठेके लिए कोई चाहिए। अब बहू ही मिल गयी।"

मै पीछे किसी अध्यायमे लिख आया हूँ कि एकबार मकान बदलनेके सिलसिलेमे गालिबने उमराव बेगमको मकान देखने भेजा। देखकर आनेपर पूछा—"कहो, मकान पसन्द आया ?" बेगमने जवाब दिया—"उस घरमे तो लोग बला बताते हैं।" गालिबने कहा—"मगर क्या दुनियामे तुमसे भी बढकर कोई बला है ?"

एक बार अन्दर गये और किसीसे पूछा कि बेगम क्या कर रही हैं। उसने कहा—"नमाज़ पढ रही हैं।" कुढकर बोले—"जब आओ नमाज़! अरे इसने तो घरको फतहपुरीकी मस्जिद बना दिया।"

इनके अनेक पत्र भी ऐसे मिलते है जिनसे यह बात प्रमाणित होती है कि जिन्दगीमे कभी बीवीसे खुश नही रहे। बल्कि गृहजीवनके कटु अनुभवोने विवाहित जीवनके प्रति इनके दृष्टिकोणको ही विकृत कर दिया था। जब एक पत्नीके मरनेपर किसीको विवाहके लिए सन्नद्ध देखते तो इन्हे हैरत होती थी। दूसरी पत्नीकी मृत्युपर तीसरीसे शादी करनेके लिए तैयार उमराव सिंहके बारेमे १९ दिसम्बर १८५८के पत्रमे लिखते है—

" अल्ला-अल्ला! एक वह है कि दो बार उनकी बेडियां कट

★ हमीदा सुलताननने, जिनका बुग्गा बेगमसे काफी नजदीकी सम्बन्ध था, इस घटनाका वर्णन यो किया है—" ऐ है बीवी, देखो कितना प्यारा मौसिम है। कैसी जुनूँअंगेज़ हवाएँ चल रही है। इस वक्त पै तुम हो और मैं हूँ। यह बहू तो दोमे तीसरा, आंखोमे ठीकरा बनी बैठी है ।"

चुकी हैं और एक हम हैं कि एक ऊपर पचास बरसने जो फाँसीका फन्दा गलेमें पड़ा है, न फन्दा ही टूटता है, न दम ही निकलता है।"

एक और पत्रमें लिखा है—"ताहुल[1] मेरी मौत है। मैं कभी उसकी गिरफ़्तारीसे खुश नहीं रहा। पटियाला जानेमें मेरी खुशी और जिल्लत[2] थी। अगर्चे मुझको दौलते तनहाई[3] मयस्सर[4] आ जाती लेकिन इस तनहाई चन्दरोजा[5] और तजरीदे मुस्तआर[6] की क्या खुशी ? "*

अक्सर कहा करते थे—'जन न ख्वाहद अगरश दुख्तरे क़ैसर बदिहन्द।'

इनके उर्दू-फ़ारसी काव्यमें ऐसी अनेक रचनाएँ§ हैं जिनसे इनकी बार-बार पुष्टि होती है।

विश्व-साहित्यमें पारिवारिक जीवन, दाम्पत्य जीवनके दुःखकी छाया बड़ी लम्बी है। सुक़रात, सादी, शेक्सपियर, टाल्सटाय जैसे दर्जनों नाम

---

१ पत्नी, २ हीनता और अपमान, ३ एकान्त-धन, ४ प्राप्त, ५ क्षणिक एकान्त, ६ माँगी हुई स्त्री-विहीनता।

*नादिराते गालिब (१२९-१३०)

§फ़ारसीकी दो रुबाइयोंमें इसकी झलक देखिए—

ऐ आँकि बराह क़ाबा रूयेदारी,
दामन कि गुज़ीद आर्ज़ूए दारी,
चूँ शूनऽकि तुन्द मयख़रामी दानम,
दर ख़ाना ज़ने सतीज़' ख़ूएदारी।

और—

आँ मर्द कि ज़न गिरफ़्त दाना नबूद,
अज़ गुस्सा फरागतश हमाना नबूद,
दारद जहाँ ख़ाना व ज़न नेस्त दर्द,
नाज़म बख़ुदा चरा तवाना न बूद।

गिनाये जा सकते है। अक्सर कवि और कलाकार इतने आत्मकेन्द्रित होते है कि एक ओर उनका व्यक्तित्व और अह तथा दूसरी ओर ससारकी वास्तविकताओसे भागकर कल्पनाकी आनन्द-वाटिकामें विचरण करनेकी वृत्ति गार्हस्थ्य जीवनके ब्यौरोके प्रति न्याय करनेमे बाधक होती है। पर गालिब तो कल्पना-प्रधान नही, बुद्धिप्रधान, चिन्ताशील कवि माना जाता है। उसने अपनी बीवीके प्रति ऐसा क्यो किया, इसीकी विवेचना हम करते रहे हैं। बचपनसे ही स्वच्छन्दताके सस्कार, सासारिक भोगविलासके प्रति आकर्षण, इस दुनियाके बाहरकी वस्तुओपर अनास्थाका गालिबके जीवनमे बहुत बडा भाग है पर दाम्पत्य जीवनकी असफलताने उनके जीवन और काव्यपर जो प्रभाव डाला है वह सर्वप्रधान है। इस दु खने परम्परागत आस्थाओको टुकडे-टुकडे कर दिया है और एक ससारीको और अधिक ससारी, एक स्वच्छन्द आत्माको और स्वच्छन्द तथा निर्बन्ध कर दिया है। यदि उनका दाम्पत्यजीवन सुखी होता, उसमे उपेक्षाके कण्टकवनकी जगह मादक आकर्षणोकी शय्या बिछी होती तो वही जिन्दगी ऐसे फूलोसे भर जाती जहां कांटे भी स्नेहकी अँगुलियोसे मृदुल होते है,—और जहां दुनियाके जहरीले दश अमृतके फौआरे उगलते है।

ग़ालिबका जीवन : हाज़िरजवाबी तथा व्यंग-विनोद वृत्ति

मिर्ज़ा ग़ालिबकी अधिकाश ज़िन्दगी कठिनाइयोंमें बीती—यद्यपि कुछ हदतक वे कठिनाइयाँ खुद उनकी पैदा की हुई थी। रईसजदगीकी अहवृत्ति उन्हें अपनी शक्तिसे अधिक खर्च करने और एक उच्चतर रहन-सहन ग्रहण करनेको विवश करती थी। आमदनी कम, खर्च ज्यादा था। इस प्रकार बाहर कठिनाइयाँ, महाजनोका क़र्ज और तक़ाजा, साहित्यमें विरोधियोंसे सघर्ष, इनपर अनमेल बीबीके कारण घरमे वह स्वाद नही जो मानव-जीवनका एक प्रसाद और आशीर्वाद है। इन प्रतिकूलताओंके बीच, स्वभावत वह आत्मविश्वासके बलपर जिन्दगीका सफ़र पूरा करते रहे। कुछ तो उनमें जन्मजात उत्फुल्लता और विनोदवृत्ति थी, कुछ प्रतिकूल वातावरणमें रक्षा-कवच रूपमे उभर आई थी। इस प्रतिकूल एव कठोर परिस्थितिके कारण ही उनके विनोदमें तीव्र एव प्रच्छन्न व्यगोका स्पर्श है। काव्य एव जीवन दोनोंमें तीक्ष्ण व्यग—'सरकाज़म'—का स्वर हमें मिलता है। मिर्ज़ाका सारा जीवन ही ऐसे लतीफ़ोंसे भरा हुआ है जिनमें उनके मज़ाक़ और नश्तर-सी चुभनेवाली उनकी व्यग-वृत्तिके दर्शन होते हैं। अन्दरसे दुखी पर ऊपरसे चुहल और खुशीसे भरे हुए ग़ालिबके जीवनका यह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यहाँ चन्द घटनाएँ लिखी जाती हैं जिनमे उनकी हाज़िरजवाबी—'विट'-विनोदवृत्ति तथा प्रच्छन्न-व्यग-कलापर प्रकाश पडता है।

लखनऊकी एक गोष्ठीमे, जिसमे सयोगवश मिर्ज़ा मौजूद थे, लखनऊ एव दिल्लीकी जबानपर बात चल पडी। एक सज्जनने मिर्ज़ासे कहा कि जिस अवसरपर दिल्लीवाले 'अपने तई' बोलते है वहाँ लखनऊके लोग 'आपको' बोलते हैं। आपकी रायमे शुद्ध 'आपको' है या 'आपके तई ?' मिर्ज़ाने कहा—"फसीह (शुद्ध) तो वही मालूम होता है जो आप बोलते है, मगर इसमे दिक्कत यह है कि मस्लन आपकी ही निस्वत यह अर्ज़ करूँ कि मै तो 'आपको' कुत्तेसे भी बदतर समझता हूँ, तो सख्त मुश्किल वाकअ होगी। मै तो अपनी निस्वत कहूँगा और आप—मुमकिन है कि अपनी निस्वत समझ जायें।" उपस्थित सब लोग इसे सुनकर फडक उठे कि क्या जवाब दिया है और कैसा प्रच्छन्न व्यग किया है। फिर अपने-अपने स्थानपर 'आपको' और 'अपने तई' दोनाके उपयोगका, प्रकारान्तरसे, समर्थन भी है।

लखनऊ एव दिल्लीकी जबान

× ×

शब्दोंके सम्बन्धमें मिर्ज़ाका एक और लतीफा भी मशहूर है। दिल्लीमे 'रथ'को कुछ लोग स्त्रीलिंग, कुछ पुल्लिग बोलते है। किसीने मिर्ज़ासे पूछा कि "हज़रत रथ मोअन्नस[1] है या मुज़क्कर[2] ?" वह बोले—"भैया! जब रथमे औरतें बैठी हो तो मोअन्नस कहो, जब मर्द बैठे हो तो मुजक्कर समझो।"

पुल्लिग या स्त्रीलिंग ?

× ×

गालिबके जमानेमे हज़रत मुहम्मद नसीरुद्दीन उर्फ मियाँ काले साहब अपनी विद्वत्ता एव उच्चाचरणके लिए प्रसिद्ध थे। वह बहादुर शाहके शेख

१ स्त्रीलिंग, २ पुल्लिग।

एवं मौलाना फ़ख़रुद्दीन कादमसिराके पोते थे। इन्हींके कारण जिन्होंने मिर्जाका सम्बन्ध स्थापित हुआ था। मिर्जासे बड़ी मुहब्बत रखते थे। जीवन-रेखा अध्यायमें हम बता चुके हैं कि जिस प्रकार मिर्जा जुएके अभियोगमें पकड़ लिये गये थे। जब मिर्जा जेलसे छूटे तो काले साहब उन्हें अपने घर ले गये और अरसे तक वहाँ रखा। उनके आराम-आसाइशकी सब सुविधाएँ कर दी। एक रोज़ मिर्जा काले साहबके पास बैठे थे कि किसीने आकर क़ैदसे छूटनेकी मुबारकबाद दी। मिर्ज़ा कब चूकनेवाले थे, झट बोल उठे—"कौन भड़ुआ क़ैदसे छूटा है? पहिले गोरेकी क़ैदमें था, अब कालेकी क़ैदमें हूँ।"

गोरेकी क़ैद बनाम कालेकी क़ैद

× ×

हाजिरजवाबी और विनोद वृत्तिके कारण ही अनेक बार कठिनाइयों एवं विपत्तियोंसे छूट जाते थे। यहाँ एक घटना दी जाती है।

ग़दरके दिनोंकी बात है। उन दिनों अंग्रेज़ सभी मुसलमानोंको शुबहेकी निगाहसे देखते थे। दिल्ली मुसलमानोंसे खाली हो गयी थी। पर गालिब और कुछ दूसरे लोग चुपचाप अपने घरोंमें पड़े रहे। एक दिन कुछ गोरे इन्हें भी पकड़कर कर्नल ब्राउनके पास ले गये। उस वक़्त 'कुलाह' (ऊँची टोपी) इनके सिरपर थी। अजीब वेशभूषा थी। कर्नलने मिर्जाकी यह धज देखी तो पूछा कि "वेल टुम मुसलमान?"

"आधा मुसलमान हूँ"

मिर्जाने कहा—"आधा।"

कर्नलने पूछा—"इसका क्या मटलब है?"

मिर्जा बोले—"शराब पीता हूँ, सुअर नहीं खाता।"

कर्नल सुनकर हँसने लगा और इन्हें घर लौटनेकी इजाज़त दे दी।

× ×

गदरके वाद जब पेन्शन बन्द हो गयी थी और दरबारमे जानेका दरवाज़ा भी बन्द था, लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पंजाबके मीर मुशी प० मोतीलाल एक बार

बाग़ी कैसे गिना गया ?

इनसे मिलने आये। मिर्ज़ाने उनसे कहा—"तमाम उम्रमे एक दिन शराब न पी हो तो काफिर, और एक दफा नमाज पढी हो तो गुनहगार[1]। फिर मै नही जानता कि सरकारने किस तरह मुझे बागी मुसलमानोमें शुमार[2] किया ?"

× × ×

जब रामपुरके नवाब यूसुफअलीखांका देहान्त हो गया और नये नवाब कलबअलीखां गद्दीपर बैठे तो मातमपुर्सी और नये नवाबके प्रति

ख़ुदा या आप ?

सम्मान-प्रदर्शनके लिए मिर्ज़ा रामपुर गये थे। चंद दिनो बाद नवाब कलबअली लेफ्टिनेण्ट गवर्नरसे मिलने बरेली जा रहे थे। रवानगीके वक्त, परम्परानुसार, मिर्ज़ासे कहा—"खुदाके सुपुर्द।" मिर्ज़ा झट बोल उठे—"हज़रत! खुदा ने तो मुझे आपके सुपुर्द किया है। आप फिर उलटा मुझको खुदाके सुपुर्द करते हैं।" सुनकर लोग हँस पडे।

× × ×

जब मिर्ज़ाके खिलाफ तूफान उठ खडा हुआ था तब बहुतसे विरोधी अश्लील बातें एव गालियां लिखकर खतोमे भेजते थे। इस तरहके खत

गाली देनेकी भी कला होती है

अक्सर गुमनाम होते थे। इसी ज़मानेकी बात है। मौलाना हाली मिलने उनके यहां गये थे। वह लिखते है —" मिर्ज़ा साहब खाना खा रहे थे। चिट्ठीरसांने एक लिफाफा लाकर दिया। लिफाफेकी बेरब्ती[3] और कातिब[4] के नामकी अजनबीयतसे उनको यकीन हो गया कि यह किसी मुखालिफ[5] का वैसा ही गुमनाम खत है जैसे पहिले आ चुके हैं।

---

१ अपराधी, २ गणना, ३ अस्तव्यस्तता, ४ लेखक, ५ विरोधी।

लिफ़ाफ़ा मुझको दिया कि इसको खोलकर पढो। मै खुद देखता हूँ तो फ़िलहक़ीकत[1] सारा ख़त फहस व दुश्नाम[2] से भरा हुआ था। पूछा, किसका खत है ? और क्या लिखा है ?' मुझे उसके इज़हार[3] मे ता'मुल[4] हुआ। फौरन मेरे हाथसे लिफाफा छीनकर अव्वलसे आख़िर तक पढा। इसमें एक जगह माँकी गाली भी लिखी थी। मुसकराकर कहने लगे कि 'इस उल्लूको गाली देनी भी नही आती। बुड्ढे या अधेड आदमी को बेटोकी गाली देते है ताकि उसको गैरत[5] आये। जवानको जोरूकी गाली देते है क्योकि उसको जोरूसे ज्यादा ताल्लुक होता है। बच्चेको माँकी गाली देते हैं कि वह माँके बराबर किसीसे मानूस[6] नही होता। यह जो बहत्तर बरसके बुड्ढेको माँकी गाली देता है, इससे ज्यादा कौन बेवकूफ़ होगा ?"

× ×

तुम सौदाई हो !

एक गोष्ठीमें मिर्ज़ा मीरतकीकी तारीफ़ कर रहे थे। शेख इब्राहीम 'ज़ौक' भी मौजूद थे। ज़ौक़ और मिर्ज़ामें अक्सर छेड़-छाड चलती रहती थी। ज़ौक कुछ 'टस' करीनेके आदमी थे। ग़ालिब जो कहते उसे काटनेकी ही नीयत उनकी रहती थी। ग़ालिब द्वारा मीरकी तारीफ सुनकर उन्होंने 'सौदा' को मीरसे श्रेष्ठ बताया। मिर्ज़ाने झट चोट की—"मैं तो तुमको मीरी समझता था मगर अब मालूम हुआ कि आप सौदाई हैं।!"*

× ×

---

१ वास्तवमें, २ गाली-गलौज, ३ कथन, अभिव्यक्ति, ४ संकोच, ५. शर्म, ६ हिला हुआ, प्रेमी।

* यहाँ मीरी और सौदाई दोनोंमे श्लेष है। मीरीका एक अर्थ है मीरका समर्थक, दूसरा है नेता, आगे आनेवाला। इसी प्रकार 'सौदाई'का एक अर्थ है 'सौदा' का अनुयायी, दूसरा अर्थ है—पागल।

गदरके बाद जब पेन्शन बन्द हो गयी थी और दरबारमे जानेका दरवाज़ा भी बन्द था, लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पजाबके मीर मुशी प० मोतीलाल एक बार

बागी कैसे गिना गया ?

इनसे मिलने आये। मिर्ज़ाने उनसे कहा—"तमाम उम्रमे एक दिन शराब न पी हो तो काफिर, और एक दफा नमाज़ पढी हो तो गुनहगार[1]। फिर मै नही जानता कि सरकारने किस तरह मुझे बागी मुसलमानोमें शुमार[2] किया ?"

× × ×

जब रामपुरके नवाब यूसुफअलीखांका देहान्त हो गया और नये नवाब कलबअलीखां गद्दीपर बैठे तो मातमपुर्सी और नये नवाबके प्रति

ख़ुदा या आप ?

सम्मान-प्रदर्शनके लिए मिर्ज़ा रामपुर गये थे। चद दिनो बाद नवाब कलबअली लेफ्टिनेण्ट गवर्नरसे मिलने बरेली जा रहे थे। रवानगीके वक्त, परम्परानुसार, मिर्ज़ासे कहा—"ख़ुदाके सुपुर्द।" मिर्ज़ा झट बोल उठे—"हज़रत! ख़ुदा ने तो मुझे आपके सुपुर्द किया है। आप फिर उलटा मुझको ख़ुदाके सुपुर्द करते हैं।" सुनकर लोग हँस पडे।

× × ×

जब मिर्ज़ाके खिलाफ तूफान उठ खडा हुआ था तब बहुतसे विरोधी अश्लील बातें एव गालियां लिखकर खतोमें भेजते थे। इस तरहके खत

गाली देनेकी भी कला होती है

अक्सर गुमनाम होते थे। इसी ज़मानेकी बात है। मौलाना हाली मिलने उनके यहां गये थे। वह लिखते है—" मिर्ज़ा साहब खाना खा रहे थे। चिट्ठीरसांने एक लिफाफा लाकर दिया। लिफाफेकी बेरब्ती[3] और कातिब[4]के नामकी अजनबीयतसे उनको यकीन हो गया कि यह किसी मुखालिफ[5]का वैसा ही गुमनाम खत है जैसे पहिले आ चुके हैं।

१ अपराधी, २ गणना, ३ अस्तव्यस्तता, ४ लेखक, ५ विरोधी।

लिफ़ाफ़ा मुझको दिया कि इसको खोलकर पढ़ो। मैं खुद देखता हूँ तो "फिलहक़ीकत[1] सारा ख़त फ़हश व दुश्नाम[2] से भरा हुआ था। पूछा, किनका ख़त है? और क्या लिखा है?' मुझे उसके इज़हार[3] में ता'मुल[4] हुआ। फ़ौरन मेरे हाथसे लिफ़ाफ़ा छीनकर अव्वलसे आखिर तक पढ़ा। इसमें एक जगह मॉंकी गाली भी लिखी थी। मुसकराकर कहने लगे कि 'इस उल्लूको गाली देनी भी नहीं आती। बुड्ढे या अधेड़ आदमीको बेटीकी गाली देते हैं ताकि उसको ग़ैरत[5] आये। जवानको जोरूकी गाली देते हैं क्योंकि उसको जोरूसे ज्यादा ताल्लुक होता है। बच्चेको मॉंकी गाली देते हैं कि वह मॉंके बराबर किसीसे मानूस[6] नहीं होता। यह ' ' जो बहत्तर बरसके बुड्ढेको मॉंकी गाली देता है, उससे ज्यादा कौन बेवक़ूफ़ होगा?"

× ×

एक गोष्ठीमें मिर्ज़ा मीरतक़ीकी तारीफ़ कर रहे थे। शेख़ इब्राहीम 'ज़ौक़' भी मौजूद थे। ज़ौक़ और मिर्ज़ामें अक्सर छेड़-छाड़ चलती रहती थी। ज़ौक़ कुछ 'ठस' क़रीनेके आदमी थे। ग़ालिब जो कहते उसे काटनेकी ही नीयत उनकी रहती थी। ग़ालिब द्वारा मीरकी तारीफ़ सुनकर उन्होंने 'सौदा' को मीरसे श्रेष्ठ बताया। मिर्ज़ाने झट चोट की—"मैं तो तुमको मीरी समझता था मगर अब मालूम हुआ कि आप सौदाई हैं।!"*

तुम सौदाई हो!

× ×

---

१ वास्तवमें, २ गाली-गलौज, ३ कथन, अभिव्यक्ति, ४ संकोच, ५ शर्म, ६ हिला हुआ, प्रेमी।

* यहॉं मीरी और सौदाई दोनोंमें श्लेष है। मीरीका एक अर्थ है मीरका समर्थक, दूसरा है नेता, आगे आनेवाला। इसी प्रकार 'सौदाई' का एक अर्थ है 'सौदा' का अनुयायी, दूसरा अर्थ है—पागल।

मिर्जाके बैठकखानेके पास ही एक छोटी-सी अँधेरी कोठरी थी, जिसका दरवाजा इतना छोटा था कि उसमेंसे झुककर जाना पडता था।

शैतानकी कोठरी

उसमें सदा फ़र्श बिछा रहता और गर्मी एव लूके मौसिममे मिर्ज़ा दिनके दस बजेसे शाम चार बजे तक वहां रहते थे। एक दिन जब गर्मीके दिन थे और रमज़ानका महीना चल रहा था, मौ० आजुर्दा ठीक दोपहरके वक्त मिर्ज़ासे मिलने आ गये। उस वक्त मिर्ज़ा इसी कोठरीमे थे और किसी दोस्तके साथ चौसर या शतरज खेल रहे थे। मौलाना वही पहुँच गये और रमज़ानके महीनेमें उन लोगोको चौसर खेलता हुआ देखकर कहने लगे—"हमने हदीस[1] में पढा था कि रमज़ानके महीनेमे शैतान मुकय्यद[2] रहता है मगर आज इस हदीसकी सेहत[3] में तरद्दुद[4] पैदा हो गया।"

मिर्ज़ाने कहा—"किबला हदीस बिलकुल सही है। मगर आपको मालूम रहे कि वह जगह जहां शैतान मुकय्यद रहता है, यही कोठरी तो है।"

× ×

पहिले लिखा ही जा चुका है कि आम इन्हें निहायत पसन्द थे। आमोके सम्बन्धमे इनके कई लतीफे मशहूर हैं। एक रोजकी बात है कि

आमोपर नाम

बादशाह बहादुरशाह, आमोंके मौसिममे, महताब बागमें टहल रहे थे। उस वक्त अन्य मुसाहिबोके अलावा मिर्ज़ा भी मौजूद थे। आमके पेड रग-बिरगके खूबसूरत आमोसे लद रहे थे। यहांके आम बादशाह, राजकुमारो और बेगमोके सिवा किसीको न मिल सकते थे। मिर्ज़ा बार-बार आमोकी तरफ टकटकी लगाते। जब कई बार बादशाहने उन्हे ऐसा करते देखा तो पूछा—"मिर्ज़ा,

---

१ पैगम्बर मुहम्मद द्वारा फरमाई बातोका सकलन, २ बन्दी, ३ शुद्धता, ४ शका, भ्रम।

इतने ध्यानसे क्या देखते हो ?" मिर्ज़ाने हाथ बांधकर कहा—"पीरो मुर्शिद, यह जो किसी बुजुर्गने कहा है—

वरसरे दाना बनविश्ता अयॉ,
कि ईं फलॉं इब्न फलॉं इब्न फलॉं ।

वही देख रहा हूं कि किसी दानेपर मेरा और मेरे बाप-दादाका नाम भी लिखा है या नहीं ?"

बादशाह मुसकराये और उसी रोज़ एक बहंगी चुने आमोंको मिर्ज़ाको भेजवा दी ।

× ×

बेशक गधा नहीं खाता !

मिर्ज़ाके एक दोस्त थे हकीम रज़ीउद्दीन खाँ । उन्हें आम अच्छे नहीं लगते थे । एक दिनकी बात है कि वह मिर्ज़ाके साथ उनके मकानपर बरामदेमें बैठे थे । एक गधेवाला अपने गधे लिये हुए गलीसे गुजरा । गलीमें आमके छिलके पडे थे । गधेने सूंघकर छोड दिया । हकीम साहबने कहा—"देखिए, आम ऐसी चीज़ है जिसे गधा भी नहीं खाता ।"

मिर्ज़ाने कहा—"बेशक, गधा नहीं खाता ।"

× ×

पीडामें भी विनोद

बीमारीके दिनोंकी बात है । शामका वक़्त था । मिर्ज़ा पलंगपर लेटे दर्दसे कराह रहे थे । उस वक़्त उनके प्रिय शिष्य मीर मेहदी मजरूह बैठे थे । मिर्ज़ाको कराहता देख मजरूह पाँव दाबने लगे । मिर्ज़ाने कहा—"भई, तू सय्यदज़ादा है, मुझे क्यों गुनहगार करता है ?" मजरूहने न माना और कहा कि 'आपको ऐसा ही खयाल है तो पैर दाबनेकी उज्रत दे दीजिएगा ।'

मिर्ज़ाने कहा—"हाँ, इसका मुजायक़ा नहीं ।"

जब मजरूह पैर दाब चुके, उन्होंने उज्रत माँगी ।

मिर्ज़ाने कहा—"भैया! कैसी उज्रत? तुमने मेरे पाँव दावे, मैंने तुम्हारे पैसे दावे। हिसाब बराबर हो गया!"

× ×

किशोरावस्थामें जो शराब उनके मुँह लगी वह अखीर दमतक न छूटी। यद्यपि अपनी इस दुर्बलतापर मन ही मन वह लज्जित थे पर जब कोई शराबपर आक्षेप करता तो उसे ऐसा जवाब देते कि बोलती बन्द हो जाती। शराब की निस्बत उनकी विनोद-व्यगपूर्ण बातें प्रसिद्ध हो गयी हैं। एक बारकी बात है कि एक व्यक्तिने इनके सामने शराबकी बडी बुराई की और कहा कि शराब पीना महान् पाप है।

शराबीको और क्या चाहिए?

गालिबने बडी गम्भीरतासे पूछा—"अच्छा, कोई पिये तो उसका क्या होता है?"

उसने कहा—"छोटी-सी बात यह है कि शराब पीनेवालेकी दुआ कबूल नही होती।"

मिर्जा बोले—"भई, जिसे शराब मयस्सर है उसको और क्या चाहिए जिसके लिए दुआ माँगे?"

× ×

जाडेका मौसिम था। एक दिन नवाब मुस्तफा खाँ मिर्ज़ाके घर पहुँचे। मिर्ज़ाने उनके आगे शराबका गिलास भरकर रख दिया। वह उनका मुँह ताकने लगे। मिर्ज़ाने कहा—"नोश फर्माइए।" चूँकि उन्होने शराब पीनी छोड दी थी, इसलिए बोले—"मैंने तो तोबा[1] कर ली है।"

जाडेमे भी?

मिर्जाने आश्चर्यसे पूछा—"है! क्या जाडेमे भी?"

× ×

१ किसी धर्म-विरुद्ध वस्तुको ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा।

धोखेमें नजात मिल गयी !

एक महाशय भूपालसे दिल्ली घूमनेके लिए आये थे। वह मिर्ज़ासे भी मिले। कट्टर आदमी थे, धार्मिक सिद्धान्तों और परम्पराओंके माननेवाले थे। जब वह पहुँचे मिर्ज़ा सागर व मीना[1] सामने रखे बैठे थे। पी रहे थे। आगन्तुकको मालूम न था कि मिर्ज़ा शराब पीते हैं। उन्होंने शराबका शीशा शर्बतका गिलास समझकर हाथमें उठा लिया। इसपर पास बैठे दूसरे व्यक्तिने कहा—"जनाब, यह शराब है।" हज़रतने तुरन्त गिलास रख दिया और कहा—"मैंने तो शर्बतके धोखेमें उठा लिया था।"

मिर्ज़ाने मुसकराकर उनकी तरफ देखा और कहा—"ज़हे नसीब[2]! धोखेमें नजात[3] हो गयी।"

× ×

वहाँ कौन पकड़ेगा ?

मिर्ज़ाकी एक बहिन बीमार थी। वह उनका हाल पूछने गये। बहिन बोली—"भैया, अब तो चला-चलीका वक्त है। खैर, उसका क्या ? पर क़र्ज़का फ़िक्र व अफ़सोस है कि गर्दनपर लिये जाती हूँ।" मिर्ज़ाने कहा—"भला, यह भी कोई फ़िक्रकी बात है ? ख़ुदाके यहाँ मुफ़्ती सदरुद्दीन ख़ाँ बैठे हैं जो डिगरी इजरा करके पकड़वा बुलायेंगे ?"

× ×

मेरे पीपलके पत्ते क्यों न खा लिये

एक दिन मिर्ज़ाके एक शिष्यने उनसे आकर कहा—"हज़रत, आज मैं अमीर ख़ुसरोके मकबरेपर गया था। वहाँ एक खिरनीका पेड़ है। मैंने खूब खिरनियाँ खाईं। खिरनियोंका खाना था कि मेरा ज़मीर रोशन हो गया।" (लोगोंका ऐसा विश्वास था कि वहाँकी खिरनियाँ खानेसे योग्यता बढ़ जाती है)। मिर्ज़ा बोले—"अरे मियाँ! तीन कोस नाहक

---

१ प्याला और सुराही, २ भाग्यकी बात है, ३ मुक्ति।

गये। मेरे पिछवाडेके पीपलकी पत्तियाँ खा लेते तो इससे भी ज्यादा फायदा होता।"

× ×

पूर्वजोकी छोडी हुई सम्पत्ति जब मिर्जाके खर्चीले और उदार स्वभावके कारण खत्म हो गयी तो रुपयेकी तगी सदा रहने लगी। यहाँ तक कि

चीलके घोसलेमे मास कहाँ ?

कभी-कभी पासमे एक टका न होता। बच्चे गिडगिडाकर रह जाते और उन्हे पैसे न मिलते। एक दिन हुसेन अलीखाँ खेलता हुआ इनके पास आया और कहा—"दादा जान ! मिठाई लूँगा।" इन्होने उत्तर दिया—"बेटे पैसे नही है।" वह सन्दूकची खोलकर पैसे इधर-उधर टटोलने लगा। पर वहाँ क्या था ? इन्होने झट यह शेर कहा—

दिरमो दाम अपने पास कहाँ !
चीलके घोंसलेमें माँस कहाँ !

× ×

रमज़ानका महीना था। नवाब हुसेन मिर्जाके यहाँ बैठे थे। मिर्जा तो रोजा-नमाज कुछ रखते न थे। उन्होने पान मँगवाकर खाये। वहाँ

शैतान गालिब है

एक धर्मनिष्ठ मुसलमान मौजूद थे। उन्होने आश्चर्यसे पूछा—"किवला ! आप रोज़ा नही रखते ?"

मिर्जाने मुसकराकर उत्तर दिया—"शैतान गालिब है।"†

× ×

---

† श्लिष्ट पद है। एक अर्थ यह कि मै शैतानके वशमे हूँ। दूसरा यह कि गालिब खुद शैतान है।

किसी दुकानदारने उधार ली गयी शराबके दाम वसूल न होनेपर मुक़दमा चला दिया। मुक़दमेकी सुनवाई मुफ़्ती सदरुद्दीनकी अदालतमें हुई। आरोप सुनाया गया। इनको उज्रदारीमें

क़र्ज़की शराब

क्या कहना था, शराब तो उधार मँगवाई ही थी और दाम भी चुकते न कर पाये थे। इसलिए कहते क्या? आरोप सुनकर सिर्फ़ यह शेर पढ़ दिया—

> क़र्ज़की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ,
> रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन

मुफ्ती साहबने वादीको अपने पाससे रुपये दे दिये और मिर्ज़ाको छोड दिया।

× ×

यह बात पहिले लिखी जा चुकी है कि इनका पारिवारिक जीवन सुखी न था। इसलिए अन्दरकी खीझ एवं व्यंग्य-वृत्ति दोनोंके मिश्रणसे कभी-कभी बडी कठोर बातें लिख या कह जाते थे। इनके शिष्योंमें एक उमराव सिंह था।

पत्नी या फाँसीका फन्दा?

उनकी दूसरी पत्नी मर गयी जिसके नन्हें-नन्हें बच्चे थे। किसी परिचितने उनका हाल लिखा और यह भी कि इन नन्हें बच्चोंके लिए बेचारा तीसरी शादी न करे तो क्या करे? बच्चोंकी पर्वरिश कैसे हो?" मिर्ज़ाने उसके जवाबमें लिखा—"उमराव सिंहके हालपर उसके वास्ते रहम और अपने वास्ते रश्क आता है। अल्ला-अल्ला! एक वह हैं कि दो-दो बार उनकी बेडियाँ कट चुकी हैं और एक हम हैं कि एक ऊपर पचास बरससे जो फाँसीका फन्दा गलेमें पडा है तो न फन्दा ही टूटता है, न दम ही निकलता है। उसको समझाओ कि भई तेरे बच्चोंको मैं पाल लूँगा, तू क्यों बलामें फँसता है?"

× ×

गये। मेरे पिछवाडेके पीपलकी पत्तियाँ खा लेते तो इससे भी ज़्यादा फायदा होता।"

× ×

पूर्वजोकी छोडी हुई सम्पत्ति जब मिर्ज़ाके खर्चीले और उदार स्वभावके कारण खत्म हो गयी तो रुपयेकी तगी सदा रहने लगी। यहाँ तक कि कभी-कभी पासमे एक टका न होता। बच्चे गिडगिडाकर रह जाते और उन्हे पैसे न मिलते। एक दिन हुसेन अलीखाँ खेलता हुआ इनके पास आया और कहा—"दादा जान! मिठाई लूँगा।" इन्होने उत्तर दिया—"बेटे पैसे नही हैं।" वह सन्दूकची खोलकर पैसे इधर-उधर टटोलने लगा। पर वहाँ क्या था? इन्होने झट यह शेर कहा—

चीलके घोसलेमे मास कहाँ?

दिरमो दाम अपने पास कहाँ!
चीलके घोंसलेमें मॉस कहाँ!

× ×

रमज़ानका महीना था। नवाब हुसेन मिर्ज़ाके यहाँ बैठे थे। मिर्ज़ा तो रोज़ा-नमाज़ कुछ रखते न थे। उन्होने पान मँगवाकर खाये। वहाँ एक धर्मनिष्ठ मुसलमान मौजूद थे। उन्होने आश्चर्यसे पूछा—"किबला! आप रोज़ा नही रखते?"

शैतान गालिब है

मिर्ज़ाने मुसकराकर उत्तर दिया—"शैतान गालिब है।"†

× ×

---

† श्लिष्ट पद है। एक अर्थ यह कि मै शैतानके वशमे हूँ। दूसरा यह कि गालिब खुद शैतान है।

किसी दुकानदारने उधार ली गयी शराबके दाम वसूल न होनेपर मुक़दमा चला दिया। मुक़दमेकी सुनवाई मुफ़्ती सदरुद्दीनकी अदालतमें

क़र्ज़की शराब

हुई। आरोप सुनाया गया। इनको उज़्रदारीमें क्या कहना था, शराब तो उधार मँगवाई ही थी और दाम भी चुकते न कर पाये थे। इसलिए कहते क्या? आरोप सुनकर सिर्फ़ यह शेर पढ़ दिया—

क़र्ज़की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ,
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन

मुफ़्ती साहबने वादीको अपने पाससे रुपये दे दिये और मिर्ज़ाको छोड़ दिया।

× ×

यह बात पहिले लिखी जा चुकी है कि इनका पारिवारिक जीवन सुखी न था। इसलिए अन्दरकी खीझ एवं व्यंग्य-वृत्ति दोनोंके मिश्रणसे

पत्नी या फांसीका फन्दा?

कभी-कभी बड़ी कठोर बातें लिख या कह जाते थे। इनके शिष्योंमें एक उमराव सिंह था। उसकी दूसरी पत्नी मर गयी जिसके नन्हें-नन्हे बच्चे थे। किसी परिचितने उसका हाल लिखा और यह भी कि इन नन्हें बच्चोंके लिए बेचारा तीसरी शादी न करे तो क्या करे? बच्चोंकी पर्वरिश कैसे हो?" मिर्ज़ाने उसके जवाबमें लिखा—"उमराव सिंहके हालपर उसके वास्ते रहम और अपने वास्ते रश्क आता है। अल्ला-अल्ला! एक वह हैं कि दो-दो बार उनकी बेड़ियाँ कट चुकी हैं और एक हम हैं कि एक ऊपर पचास बरससे जो फाँसीका फन्दा गलेमें पड़ा है तो न फन्दा ही टूटता है, न दम ही निकलता है। उसको समझाओ कि भई तेरे बच्चोंको मैं पाल लूँगा, तू क्यों बलामें फँसता है?"

× ×

जाडेका मौसिम था। तोतेका पिंजरा सामने रखा था। सर्द हवा चल रही थी। तोता सर्दीके कारण परोमे मुँह छिपाये बैठा था। मिर्ज़ाने देखा और उनकी अन्दरकी जलन बाहर निकली। बोले—"मियाँ मिट्ठू! न तुम्हारे जोरू, न बच्चे। तुम किस फिक्रमे यो सर झुकाये हुए बैठे हो?"

मियाँ तोते! तुम्हे क्या फ़िक्र है?

× ×

इसी तरह एकबारकी बात है कि जिस मकानमे रह रहे थे उसमे कई त्रुटियाँ थी इसलिए तकलीफ थी। मकान बदलना चाहते थे। एक दिन खुद एक मकान देखकर आये। उसका बैठकखाना तो पसन्द आ गया पर जल्दीमे अन्तःपुरवाला हिस्सा न देख सके। फिर यह भी बात रही होगी कि मेरे उस हिस्सेके देखनेसे क्या फायदा? जिसे वहाँ रहना है वह खुद देखे और पसन्द करे। इसलिए बाहरी हिस्सा देखनेके बाद जब लौटे तो बीबीसे ज़िक्र किया और अन्दरका हिस्सा देखनेके लिए खुद उन्हें भेजा। वह गयी और देखकर आई तो उनसे पूछा—"पसन्द है या नापसन्द?" बीबीने कहा—"उसमें तो लोग बला बताते हैं।"

आपसे बढकर भी बला है!

मिर्ज़ा कब चूकने वाले थे। बोले—"क्या दुनियामे आपसे बढकर भी कोई बला है?"

इस प्रकार हम देखते है कि उनके हास्य और व्यंग्यमें भी गहरा विष है। यह विष उनके जीवनका एक अंग है जिसकी समीक्षा हम स्वतन्त्र रूपसे, आगे, करेंगे।

ग़ालिब : जीवन एवं काव्यकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जब ग़ालिब पैदा हुए, दिल्लीकी बादशाहतके अन्तिम दिन थे। औरंग-ज़ेबके बाद मुग़ल साम्राज्यका जो पतन आरम्भ हुआ था, वह अपनी परा-

साम्राज्योंकी श्मशान-भूमि

काष्ठाको पहुँच गया था। 'मीर' के ज़मानेमें निराशा और आत्मपलायनके कारण मुहम्मद-शाह इत्यादि आकण्ठ विलासके पंकमें धँस गये थे। राज-काजकी ओर कोई ध्यान न देता था। दरबार षड्यन्त्रोंका एक अड्डा बन गया था। यद्यपि ग़ालिबके जीवन-कालके अन्तिम तीनों मुग़ल सम्राट् मानवके रूपमें बहुत भले थे, पर शासनका शीराज़ा बिखर चुका था। मुग़लोंकी प्यारी दिल्लीका यौवन-वसन्त बीत चुका था, यह ख़िज़ाँके दिन थे। लुटी, भूलुण्ठिता, अपमानित दिल्ली बेबस थी और अपने वर्तमान पर अतीतके भयानक अट्टहासको सुनकर सिहर-सिहर उठती थी। पर इस लुटी, खोई, वंचिता भिखारिणीमें न जाने कैसा जीवन था कि बार-बार खोकर, लुटकर, पददलिता होकर भी वह उठ खड़ी होती थी। उसके खण्डित सौन्दर्यमें भी न जाने कैसा जादू था कि मिटकर भी नहीं मिटता था। जैसे इतिहासके खण्डहर आकर्षित करते हैं वैसे ही वह आकर्षित करता था। अगणित साम्राज्योंकी श्मशानभूमि दिल्ली मृत्युके आलिंगन-पाशमें कितने राजाओं, नवाबों, सरदारोंको कस-कसकर छोड़ देती थी, वे निर्जीव होकर गिर पड़ते थे तब दूसरे उनका स्थान ग्रहण कर लेते थे।

गालिबके जन्मके पूर्व वह अनेक बार लुट चुकी थी। बगाल, अवध, रुहेलखण्ड, राजस्थान, हैदराबाद, महाराष्ट्र, पजाबके सूबे तथा राज्य बहुत कुछ स्वतन्त्र हो चुके थे। बगाल-विहारमे तो ईस्ट इण्डिया कम्पनीके पाँव अच्छी तरह जम चुके थे, पश्चिमका बनिया देशमे पूर्व द्वारसे आकर दूरतक फैल चुका था, मद्रास तथा बम्बईके राजमार्गपर ब्रिटिश राजपुरुषके चरणोकी धमक दूर-दूरतक सुनाई पडती थी। अब वह अपना वणिक्का छद्मवेश बहुत-कुछ उतार चुका था और अपने अन्त रूप शासक वेशमे दिखाई पडने लगा था। अब वह शासन-व्यवस्थामे हस्तक्षेप करने लगा था। लोग कुढते थे, खीझते थे, पर उसकी अदा और उसके दाँवपर टूट पडते थे। सारे देशमे अराजकताकी स्थिति थी, कोई व्यापक शासकीय बन्धन तो था नही, नैतिक बन्धन भी टूट गया था। आज जो दोस्त बनता, दोस्तीकी शपथ लेता, कुरान माथेसे लगाकर साथ देनेका आश्वासन देता, वही मौका मिलते कलेजेमे कटार भोक देता। किसीपर किसीका विश्वास न था। स्वार्थ-लिप्सा अब नगी होकर नाचने लगी थी। नृपतिगण शासन एव प्रजापालनका कार्य भूल चुके थे और विलासी तथा लुटेरे हो रहे थे। लूटके कार्यमें, स्थिति और समयके अनुसार, कभी मित्रता होती, कभी शत्रुता। बेटा बाप और भाई भाईको क्षण-क्षण भरमे भूल जाता था।

राज-मार्गपर बढते ब्रिटिश चरण

नैतिक विशृखलता

बादशाह बादशाह तो थे पर सामन्तोके अत्याचारसे प्रजाकी रक्षा न कर सकते थे। बार-बार लुटकर दिल्ली श्री-हीन हो चुकी थी, उसमे कोई आर्थिक स्थिरता न थी। सैनिको एव राजकर्मचारियोको नियमित वेतन नही मिल पाता था। इससे वे भी लूटपाट करके काम चलाते थे और बादशाहका नियन्त्रण स्वीकार न करते थे। कौन किसके साथ है, इसका कुछ पता न चलता था। रोज जोड-तोड, नये सौदे होते रहते थे।

दिल्लीकी बादशाहत अन्तिम साँस ले रही थी। अकबर बादशाह

वज़ीर और अमीर-उमरावके हाथकी कठपुतली बनकर जीता था। वे उसे अपने मतलबके लिए रखते थे और मतलब हल न होनेपर साँठ-गाँठकर बदल देते, मरवा देते या अपदस्थ कर देते। उसे बनाये इसलिए रखते थे कि देवताके आडमें ही पुजारी धन-सञ्चय कर सकता है। इस पतन-कालमें भी दिल्लीके बादशाहका जनतामें सम्मान अक्षय था। इसलिए उसे ख़त्म करते न बनता था।

ग़ालिबके जन्मकालमें शाह आलम द्वितीय (पहिलेके शाहज़ादा अली गौहर) तख़्तपर थे। इस अभागे बादशाहकी सारी ज़िन्दगी एक दु:खद कहानी है। पिता आलमगीर द्वितीय (१७५४-१७५९) की मृत्यु* के बाद उसे १२ सालतक तो बिहारमें ही, तख़्तसे दूर रहना पड़ा। उस समय दिल्लीकी हालत ऐसी अनिश्चित और भयानक थी कि उसे उधर बढ़नेका ही साहस न हुआ। बापकी मृत्युके बाद १७६१में पानीपतकी लड़ाईमें मराठोंकी भयानक पराजय एवं उसके बाद अब्दाली द्वारा दिल्ली-की लूटने स्थिति बहुत बदल दी थी। इसलिए उनका बड़ा बेटा अली गौहर (बादका शाह आलम) दूर-दूर मारा-मारा फिरता रहा। उसका बहुत समय इलाहाबाद और बिहारमें बीता। वह तख़्तसे दूर असहाय फिर रहा था, उधर अंग्रेज बढ़े आ रहे थे। उसे यह बात खलती थी। पटनामें रहते उसने मीर क़ासिमको बंगालका नवाब बनाया जिसे पहिले तो अंग्रेज़ो-ने स्वीकार किया, किन्तु बादमें मीर क़ासिमकी स्वतन्त्र नीतिसे चिढ़कर उसे बंगालसे निकाल दिया। शाह आलम, मीर क़ासिम एवं अवधके नवाब

बेताजो-तख़्त शाह आलम

---

* मृत्यु क्या कहूँ, वस्तुतः इसे इमादुद्दौलाने क़त्ल करा दिया था। बड़ा नमाज़ी पर परले सिरेका विलासी था। इसे बुढ़ौतीमें भी नई-नई शादियाँ करनेकी झक थी। ६० सालकी उम्रमें, जब इसे चक्कर आते थे, इसने एक नवोढासे विवाह किया।

वजीर शुजाउद्दौलाने अंग्रेजोके विरुद्ध लडनेके लिए आपसमे गठबन्धन किया। १७६४मे, वक्सरकी लडाईमे, तीनोकी पराजय हुई और शाह आलम नजरबन्द कर लिया गया। अंग्रेज उसे शतरजकी मुहर बनाना चाहते थे, इसलिए उन्होने सन्धि कर ली। १६ अगस्त १७६५को, कुछ सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए वे बादशाहसे इलाहाबादमे मिले, जहाँ उसे इन दिनो रखा गया था। बादशाह (शाह आलम) ने उन्हें बगाल, बिहार और उडीसाकी दीवानी दे दी। अंग्रेजोने बादशाहको ६ लाख वार्षिक देना स्वीकार किया। १७६५ से १७७१ ई० तक वह अंग्रेजोंके सरक्षणमें रहा, पर अपनी अपमानजनक स्थितिसे अन्दर ही अन्दर वह बडा असन्तुष्ट था। वह बराबर दिल्ली जानेके लिए अधीर था और तदर्थ प्रयत्न कर रहा था। अन्तमे उसकी इच्छा पूरी हुई। मराठो, विशेपत माधवराव सिन्धियाकी सहायतासे २५ दिसम्बर १७७१को उसने बादशाहके रूपमे दिल्लीमें प्रवेश किया।

अंग्रेजोके सरक्षणमे

दिल्लीमें क्या था ! कोरा सिंहासन था, लुटे महल थे, दरोदीवारसे हसरत टपकती थी। स्थिति अत्यन्त निराशाजनक थी। खजाना खाली था, शाही परिवारको जब-तब भूखो मरनेकी नौबत आ जाती। कोई बिना मतलब हल हुए सहायता करनेको तैयार न था। सबको लक्ष्मीकी भूख थी और उसी चीजका अभाव था। मरहठे सहायता करनेको तैयार थे परन्तु उसके बदले ४० लाख रुपये एव कुछ प्रदेश चाहते थे। सौदा पक्का न होते देख उन्होने दिल्लीको घेर लिया। विवश होकर सम्राट्ने कोरा एव इलाहाबादके इलाके उन्हे सौंप दिये।

दिल्लीमे

यह सब करनेपर भी उसकी चिन्ता कम न हुई। सच पूछें तो उसे जीवनभर कठिनाइयोसे छुट्टी न मिली। दरबार षड्यन्त्रोका अड्डा बन गया था। दिल्लीपर मराठोका आतक था। उधर बादशाहके पूर्व सहायक अवधके नवाब शुजाउद्दौला भी अंग्रेजोंसे मिल गये थे। सहारनपुरकी ओर

जाब्ताखांके पुत्र गुलाम कादिर रुहेलाकी शक्ति तेजीसे बढ रही थी। उसने सिक्खोंसे साठ-गांठ करके दोआबेके कई शाही क्षेत्रोंपर कब्ज़ा कर लिया। बादमें तो उसने शाह आलम और उसके छोटे-छोटे बच्चोंपर वह भयकर अत्याचार किये कि इतिहास लज्जित है। उसने

अकल्पनीय यन्त्रणाओंका जीवन

बादशाहको सिंहासनसे उतार दिया, उसकी आंखें निकाल लीं, बेगमोंको अपमानित किया, महलको लूटा। बच्चे भूख-प्याससे तडप-तडपकर मर गये पर उसने पानी न दिया। शाह आलमको, राजकुमारो सहित, जलती ईंटोपर खडा किया। यह वही गुलाम कादिर था जिसने कुरान छूकर शाह आलमके प्रति वफादारीकी शपथ ली थी। पर उस युगमे लोगो विशेषत दरबारियोंमें, चरित्र का स्तर बिल्कुल ही गिर गया था। निराश होकर बादशाहने महादाजी सिंधियासे सहायताकी प्रार्थना की। महादाजी तुरन्त आये और गुलाम क़ादिर* तथा उसके धूर्त्त साथी मजूरअलीको गिरफ़्तार करके मरवा दिया और सम्राट्का उद्धार किया। तबसे शाह आलम बराबर महादाजीको बेटेकी तरह मानता था और उनपर भरोसा रखता था। गुलाम क़ादिर द्वारा आंखें निकाल लिये जानेके बाद जो वेदनापूर्ण फारसी ग़ज़ल उसने लिखी थी उसमें स्पष्ट कहा है—"माधोजी सिंधिया फर्जन्दे जिगरबन्दे मन अस्त।" महादाजी भी उसकी बडी इज्जत करते थे। १७९४ में महादाजीका देहान्त हो गया। उनके बाद दौलतराव

---

*मराठा सेना पकडकर उसे मथुरा, जहाँ महादाजी उस समय ठहरे हुए थे, ले जा रही थी। रास्तेमें उसने सिपाहियोको दुर्वचन कहे तो सिपाहियोंने उसकी आंखें फोड डाली, अग-प्रत्यग काट डाले और बादमें रास्तेके एक वृक्षपर टांगकर ३ मार्च १७८९ को उसे फांसी दे दी। सिंधियाकी आज्ञासे उसका मस्तकहीन शरीर शाह आलमके पास दिल्ली भेजा गया।

सिंधियाने दिल्लीको अपने अधिकार और सरक्षणमे ले लिया। १८०३मे अग्रेज़ोके सेनापति लार्ड लेकने दिल्ली ले ली किन्तु शाह आलमको बादशाह बनाये रखा। १९ नवम्बर १८०६ को शाह आलमकी मृत्यु हो गयी। उस समय ग़ालिब सिर्फ नौ सालके थे।

शाह आलम अन्तिम मुगलोमे काफी योग्य था। अरबी, फारसी, तुर्की, सस्कृत तथा हिन्दी भलीभाँति जानता था। उर्दू, फारसी, हिन्दी और पजाबीमे कविता करता था जैसा कि रामपुरसे प्रकाशित उसके काव्य-सग्रह 'नादिराते शाही' से प्रकट होता है। जीन ला इत्यादि अग्रेज़ोने, जो उसके सम्पर्कमे आये, उसके गुणोकी प्रशसा की है पर उसकी योग्यता किसी काम न आई। ज़मानेने उसका साथ नही दिया और सारा जीवन कठिनाइयो एव मुसीबतोमे ही बीता।

शाह आलमके बाद अकबर शाह द्वितीय गद्दीपर बैठा। इसमें न बाप-की योग्यता थी, न साहित्यिक प्रतिभा। हाँ, वह सीधा-सादा, भलामानस

अकबर द्वितीय

था। अग्रेज़ जान चुके थे कि दिल्लीका बादशाह नाममात्रका बादशाह है, उसकी अपनी कोई ताकत नही है इसलिए उसकी अधीनता स्वीकार करनेको तैयार न थे, ज्यादासे-ज्यादा बराबरीका दर्ज़ा देनेको राज़ी थे। अकबरशाह द्वितीय नाम-मात्रका सम्राट् रहा। उसे पेंशन मिलती रही। वस्तुत बादशाहकी उपाधि एक सम्मानकी निशानी मात्र रह गयी थी। जबतक महादाजी सिंधिया जीवित रहे, दिल्लीपर अग्रेज़ोका प्रभाव बढने न पाया। वह एक प्रबल योद्धा ही नही थे, कुशल राजनीतिज्ञ, सहृदय एव गुणी पुरुष भी थे। किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसे भी वह जानते-समझते थे। उनके मरते ही अग्रेज़ोका प्रभाव बढने लगा। अब कोई उनका प्रतिद्वन्द्वी न रह गया था। जैसा मै कह चुका हूँ कि अकबर द्वितीय व्यक्तिगत रूपसे सीधा और भला था पर उसमे शाहआलमकी-सी शासन-क्षमता न थी। शाह आलम आप-दाओकी गोदमें पला था, जीवनके उत्थान-पतनसे गुज़रा था, कठिनाइयो

एव मुसीवतोंके बीच बढा था, उसमें सूझ-बूझ थी, ऊँच-नीच समझनेकी ताक़त थी पर अकवर द्वितीय दरवार एव अन्त पुरकी पतनशील प्रवृत्तियोंसे पूर्ण वातावरणमें पला था। उसने राज-कार्यमें जरा भी दिलचस्पी न ली, सारा काम वेगमोंपर छोड दिया। उसकी माँ कुदसिया वेगम बडी चतुर महिला थी। वह उसकी पत्नी मुमताजमहलके साथ सारा राज-कार्य देखती। अंग्रेज रेज़ीडेण्ट तकसे वातें करनेकी जरूरत पडती तो वे ही, बीचमें पर्दा डालकर वातें करती थी।

सच पूछें तो वादशाह अंग्रेजोंका वज़ीफ़ाख़ार मात्र रह गया था। जनतामें वादशाहकी इज्जत थी इसलिए ऊपरसे दिखानेके लिए वह उसे

सबसे प्रिय पुत्र तथा भृत्यकी बढ़ती हुई शक्ति

वादशाह वनाये हुए थे पर उसे महत्त्व देनेको तैयार न थे। जमाना वदल गया था। कलके वनिये आजके शासक थे। यहाँ तक कि अव घरेलू एव किलेके राजकीय मामलोंमें भी अंग्रेज हस्तक्षेप करने लगे थे। युवराजके निर्वाचनके लिए भी उनकी स्वीकृति आवश्यक हो गयी थी। मुमताजमहल अपने सबसे छोटे राजकुमार मिर्ज़ा जहाँगीरको युवराज वनाना चाहती थी पर अंग्रेज उसे युवराजके रूपमें माननेको तैयार न थे, वे ज्येष्ठ पुत्र अबुलज़फरको युवराज वनाना चाहते थे। इस समस्याको लेकर वादशाह और अंग्रेजोंमें सघर्ष भी हो गया। अकवरशाहके स्वाभिमानको गहरी चोट लगी। इसलिए यह शान्तिप्रिय वादशाह भी अपनी ऐसी हीन स्थिति माननेको तैयार न हुआ। उसने अंग्रेजोंके मतको उपेक्षा करके मिर्ज़ा जहाँगीरके अभिषेककी घोषणा भी कर दी। ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि अंग्रेजोंकी शक्ति वहुत वढ गयी थी किन्तु उन्हें जनमतका भय था और चूँकि जनतामें दिल्लीका वादशाह तत्कालीन भारतीय शक्तिका प्रतीक मानकर पूजा जाता था इसलिए इच्छा न होते हुए भी अंग्रेजोंको वादशाहका विशेष सम्मान करना पडता था। वास्तविक तथ्य जो हो पर काग़ज़पर दिल्लीका वादशाह एक स्वतन्त्र सम्राट् था। वह

अवतक गवर्नर जेनरलको 'सवसे प्रिय पुत्र तथा भृत्य' लिखा करता था। अग्रेजोको यह वात खटकती थी। अकवरशाहने लार्ड मिण्टोको इसी प्रकार सम्वोधित करते हुए मिर्जा जहाँगीरको ही युवराज वनाने तथा उसके अभिषेकोत्सवकी सूचना दी। एक स्वतन्त्र शासकके रूपमे उसे ऐसा करनेका पूर्ण अधिकार था। पर वह अग्रेजोका पेंशनर या वजीफाखार भी था इसलिए उसके इस अधिकारपर अग्रेज़ोकी स्वीकृतिकी बन्दिश थी। लार्ड मिण्टोने वादशाहके दावेको स्वीकार नही किया, इस प्रकारके पत्रको भविष्यमे स्वीकार करनेमे असमर्थता प्रकट की और दिल्लीके रेज़ीडेण्टको ऐसे समारोहमे सम्मिलित होनेसे मना कर दिया। उन्होने रेज़ीडेण्टके ज़रिये यह सन्देशा भी भेज दिया कि वक्त आ गया है कि मुगल वादशाह तथा अग्रेज़ सरकारके मध्य जो वास्तविक वैधानिक सम्बन्ध है उसका निर्णय हो जाना चाहिए।

अग्रेजोके साथ सघर्ष

वादशाहने अपने प्रनिनिधि शाह हाजीके द्वारा कलकत्ता वडे लाटके पास खिलअत भेजी जिसे लेनेसे उसने इन्कार कर दिया। यही नही भविष्यमे मुगल वादशाहके किसी प्रतिनिधिको राजदूतके रूपमे स्वीकार करनेमे भी असमर्थता प्रकट कर दी। इससे वादशाह और वेगमोको वडा दुख और चिन्ता हुई। आपसमें सलाह हुई, बेगमोने सोचकर एक राह निकाली। उन्होने राजा प्राणकृष्ण नामके एक आदमीको, रेज़ीडेण्टकी बिना जानकारीके, कलकत्ता होते हुए विलायत सम्राट्के दरवारमे मुगल राजदूतके रूपमें भेजनेकी व्यवस्था की पर राजा प्राणकृष्णके कलकत्ता पहुँचते-पहुँचते वात खुल गयी। लार्ड मिण्टोने इस आदमीकी मुहर तथा इंगलैण्डके वादशाहके नाम लिखा प्रत्ययपत्र छिनवा लिया।

कुदसिया बेगमको अग्रेज़ोका यह व्यवहार वहुत चुभा। वह चुप वैठनेवाली महिला न थी। अपने पति शाह आलमके जमानेमे उन्होने वडे-वडे उतार-चढाव देखे थे। वह बेटे मिर्ज़ा जहाँगीरके साथ स्वय

लखनऊ गये एव वहाँके नवाब वजीर या अवधके बादशाहसे अंग्रेजोंके विरुद्ध सहायता माँगी। सहायता न मिल सकी और परिणाम उलटा हुआ। लार्ड मिण्टोको इस गुप्त यात्रा और कुदसिया बेगमके प्रयत्नका पता चल गया। उन्होंने बादशाहकी वृत्तिकी वृद्धि तबतकके लिए रोक दी जबतक वह इन सब कार्योंके लिए खेद न प्रकट करें।

बादशाहकी मर्यादाका सवाल

इस प्रकार बादशाहकी मर्यादा और अधिकारका प्रश्न, जो शाह आलमके समयमें ही उठ खडा हुआ था, अकबर द्वितीयके समयमें भी बना रहा, बल्कि और जटिल हो गया। बार-बार यही सवाल उठता था कि इस देशमे सम्राट्की स्थिति सर्वोपरि है या नहीं। इसे लेकर अकबर शाह द्वितीय और अंग्रेज गवर्नर जेनरलके बीच बराबर खींचातानी चलती रही। जब लार्ड हेस्टिंग्ज दिल्ली आये और बादशाहसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की तब अकबर शाह द्वितीयने कहला भेजा कि मैं उनसे तभी मिल सकता हूँ जब कि वह एक प्रजाके रूपमें मुझसे मिलें और 'नजर' पेश करें। लार्ड हेस्टिंग्जने इसे स्वीकार न किया। वह 'नजर' देनेको तैयार न हुए क्योंकि इससे सम्राट्के प्रति उनकी अधीनता प्रकट होती थी। दोनो पक्ष, इस प्रश्न पर, तने ही रहे इसलिए भेंट न हो सकी। हेस्टिंग्जके बाद, १८२६ ई० में लार्ड एमहर्स्ट जब दिल्ली आये तब फिर वही पुराना सवाल उठा। उस समय सर चार्ल्स मेटकाफ़ दिल्लीके रेजीडेण्ट थे। उन्होंने दौड-धूप और बीच-बिचाव करके एक सूरत निकाली। तब लार्ड एमहर्स्ट दरबारमें गये और सिंहासनकी दाहिनी ओर बैठे। नज़रकी शर्त न रखी गयी थी। चलते समय बादशाहने उन्हें एक मोतीकी माला भेंटमें दी और दरवाज़े तक पहुँचाने आये। फिर जब जवाबी मुलाक़ातके लिए बादशाह रेजीडेंसी गये तो लार्ड एमहर्स्टने उनका जोरदार स्वागत किया और उन्हें कुछ सामग्री भेंटमें दी।

इस प्रकार बादशाहको अपने पहिलेके रुखको छोडकर नीचे आना पडा। दोनो पहिली बार समान स्थितिमे मिले। कोई चारा न था, कोई शक्ति न थी कि वह अपनी स्वाधीनता एव स्वतन्त्र वृत्तिकी रक्षा कर सकता। उसने यह भी सोचा कि ऐसा करनेसे हमारी वृत्ति (अलाउन्स) की वृद्धि किये जानेके मार्गमे जो अडचनें आ गयी है वे दूर हो जायँगी। पर उसकी यह आशा भी फलवती न हुई। अग्रेज दिल्लीकी दुर्बलता एवं विवशतासे पूर्णत परिचित हो चुके थे और उसका लाभ उठा रहे थे। इससे बादशाहको बडी निराशा, दु ख तथा खीझ हुई और १८३१ मे जब लार्ड वेंटिक आये और मुलाकातका सवाल उठा तो बादशाहने मिलनेसे इनकार कर दिया। अब बादशाहको अनुभव हुआ कि कम्पनी-सरकारसे बातचीत व्यर्थ है। वह इस नतीजेपर पहुँचा कि कम्पनी-सरकारके विरुद्ध इग्लैण्डके सम्राट्से अपील करनेके सिवा दूसरा चारा नही है। सौभाग्यसे उसे इस कार्यके लिए एक योग्य आदमी मिल गये। बगालमें इस समय राममोहन रायका प्रभाव बढ रहा था। बादशाह एवं बेगमोने उनसे सम्बन्ध स्थापित किया। उन्हे 'राजा'की उपाधि प्रदान की और इग्लैण्डके सम्राट्के दरबारमें उन्हें मुगल राजदूत बनाकर भेजनेका निश्चय हुआ। राजा राममोहन रायने इस कार्यको स्वीकार किया। सम्राट् विलियमको दिये जानेवाला मेमोरियल (स्मृति-पत्र) तैयार किया गया। सबने उसे पसन्द किया। कम्पनी-सरकारके बीच बडी सनसनी फैली। उन लोगोने हर तरहसे इसका विरोध किया, अडगे डाले, पर इस बार बादशाह अपनी तेजस्विनी माँ एवं पत्नीके कारण जरा भी विचलित न हुआ। अडचनोके बावजूद राजा राममोहन रायने समयपर विलायतके लिए प्रस्थान किया। विलायत पहुँचकर उन्होने जिस अधिकृत ढगसे बात की और अपना पक्ष उपस्थित किया उससे कम्पनीके डाइरेक्टर

इग्लैण्डके सम्राट्को स्मृतिपत्र

राजा राममोहन राय द्वारा बादशाहका प्रतिनिधित्व

तो क्रुद्ध हुए परन्तु सम्राट्-सरकारपर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। बोर्ड आफ कण्ट्रोलके अध्यक्ष सर चार्ल्स ग्राण्ट तो बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने राजा राममोहन रायके पदको स्वीकार किया और उनका स्मृतिपत्र विलियम चतुर्थके सामने उपस्थित कर दिया। सम्राट् तथा उनके मन्त्रियों-पर भी काफी असर पड़ा, क्योंकि यह स्मृतिपत्र बड़े ही अच्छे ढगपर तैयार किया गया था और इसमें कम्पनी-सरकारके विरुद्ध, तथ्योंके आधार-पर, अनेक आरोप थे। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें आरोप ही नही थे, ऐसे उचित सुझाव भी थे, जिनमे दोनों पक्षोंका सम्मान सुरक्षित रहता था।

नियतिका उलटा चक्र

पर नियतिका चक्र किसी और दिशामें चल रहा था। सम्राट्-सरकार-द्वारा स्मृतिपत्रपर कुछ निर्णय होनेके पूर्व, विलायतमें ही राजा राममोहन रायकी मृत्यु हो गयी। कम्पनीके डाइरेक्टरोंमें अनेक प्रभावशाली लोग थे। वे सब इस स्मृति-पत्रके विरुद्ध थे और उसकी बातोंको असत्य बताते थे। सम्राट् तथा उनके मन्त्रियोंका रुख अनुकूल था पर राजा राममोहन रायकी मृत्युके बाद उस प्रश्नपर बोलने और अपना पक्ष सिद्ध करनेवाला कोई न रह गया और बातें जहाँकी तहाँ रह गयी।

हास्यजनक स्थिति

इस परिस्थितिका उलटा परिणाम हुआ। कम्पनी-सरकार और चिढ गयी। जब नया रेज़ीडेण्ट हाकिंस दिल्ली आया तो उसने बादशाह एव किलेपर होनेवाले व्ययमें और कमी कर दी। नज़र देनेका वक़्त आया तो नज़र देनेका विरोध किया और देना स्वीकार भी किया तो एक हाथसे नज़र दी। उसने बेगमो के स्वागतमें खड़ा होनेसे भी इनकार किया। इससे स्पष्ट है कि बादशाहकी स्थिति हास्यजनक थी। वह एक परम्पराको बनाये रखनेकी स्थिति थी—एक ऐसी परम्पराको, जिसके सचालनकी शक्ति उसमें न रह गयी हो। यह स्थिति पूर्णत' अंग्रेज़ोंके ऊपर निर्भर थी। अंग्रेज़ इस परम्पराको केवल

इसलिए जारी रखे हुए थे कि शक्तिहीन होते हुए भी, प्रजाके बीच दिल्लीश्वरकी बडी प्रतिष्ठा थी। वे बादशाहकी वास्तविक दुर्बलताको जानते थे, इसलिए उसकी बातोकी ज़्यादा परवाह नही करते थे।

अन्तमे अकबर बादशाह निराश, अपनी भग्न लालसाओके साथ ही इस ससारसे चले गये।

अब स्थिति यह थी कि समस्त दिल्ली, असलमे कम्पनीके शासनमे थी। उसीके अफसर थे, अदालतें थी, पुलिस थी, प्रबन्ध था। केवल किले-

क़िलेकी हालत

के अन्दर सम्राट्की हुकूमत थी। पर किलेके अन्दर भी हालत अच्छी न थी। खजाना खाली था। सैनिकोको वेतन देनेका उपाय न था। बेगमे और अन्य आश्रितजन मुश्किलसे पेट भर पाते थे। प्रजामे दो वर्ग थे, बहुतसे उच्च वर्गके लोग, जिनका ऐश्वर्य समाप्त हो रहा था, अग्रेज़ोके विरुद्ध थे। दूसरे ऐसे थे, जो इस विषयमे निरन्तरकी कठिनाइयोके कारण उदासीन हो गये थे और कौन जाता है, कौन आता है, इसमे उनकी कोई खास दिलचस्पी नही रह गयी थी। उनके लिए सब बराबर था। इसी ज़मानेमे विलियम फ्रेज़रकी हत्यासे दिल्लीमे सनसनी फैल गयी। हम इस घटनाका वर्णन गालिबकी ज़िन्दगीमे विस्तारके साथ कर चुके है। इसलिए यहाँ दोहराना व्यर्थ समझते हैं।

बहादुर शाह 'जफर' के ज़मानेमे भी वही परम्परा चलती रही जो उनके पिताके समयमे चलती थी। वह १८३७ ई० मे गद्दीपर बैठे, जब गालिब प्रौढ यौवनकालमे थे और उनके जीवन और काव्यका एक निश्चित ढाँचा बन चुका था। बहादुर शाह एक साधु प्रकृतिके बादशाह थे। दिलके भले, सादगीपसन्द, पवित्र जीवनके अभ्यासी और धार्मिक मामलोमे अत्यन्त उदार। इतने उदार कि उन्होने खुद कहा है —

गये वहदतकी हमको मस्ती है,
बुतपरस्ती ख़ुदापरस्ती है।

ऐसे उदार, शराबसे दूर रहनेवाले, खाने-पीनेके शौकीन, शेरो-शायरीमें वक्त बितानेवाले, झगडे-झझटसे दूर रहनेवाले, शान्तिके प्रेमी। सच पूछें तो अन्तिम तीनों मुग़ल सम्राट् निजी चरित्र, स्वाभिमान, धार्मिक औदार्य, सज्जनता, शिष्टतामें बहुत ऊँचे थे। अंग्रेजों और युरोपीय यात्रियोंने भी उनकी प्रशसा की है। उनकी ऊपरी शान-शौक़त वही थी, जो मुग़ल साम्राज्यके वैभवकालमें थी। उन्हें शाही परम्पराओंका पालन करना पडता था। यद्यपि अन्तिम मुग़ल सम्राटोंकी शासन-सीमा क़िलेके छोटे-से क्षेत्रमें ही सीमित थी, पर क़िलेमें राजवशके सम्बन्धियों—सलातीन—की भरमार थी। इनका और इनके कुटुम्बियोंका पालन सम्राट्को ही करना पडता था। दान, भेंट, उपहारकी परम्परा पुरानी ही थी। ख़िलअत उसी तरह दी जाती थी। परिणाम यह हुआ कि आमदनी कम और ख़र्च ज्यादा होनेके कारण आर्थिक सघर्ष बढता गया। ऊपरी टीम-टामके बावजूद अन्दरसे वे खोखले होते गये। १८५७के गदरके साथ अवध और दिल्ली दोनोंकी आशिक स्वतन्त्रता भी समाप्त हो गयी। अवधके अन्तिम बादशाह वाजिदअली शाह और दिल्लीके अन्तिम ताजदार बहादुर शाहकी अन्तिम घडियाँ वतन और साथियोंसे दूर मटियाबुर्ज और रगूनकी कोठरियोंमें बीतीं। दोनो कवि, गुणी, रसिक, धर्मनिष्ठ और योग्य थे, पर जिस धरतीपर खडे थे, वही धसक गयी और वे भू-गर्भमें समा गये।

सम्राट्की ऊपरसे भरी पर अन्दरसे खोखली ज़िन्दगी

ग़ालिबके जीवन-काल (१७९७–१८६९ ई०) में मुग़ल साम्राज्यका अन्त हो गया। उनके समयमें अन्तिम तीन मुग़ल सम्राट् हुए—१ शाह आलम द्वितीय (१७५९–१८०६), २ अकबर द्वितीय (१८०६–१८३७)

तथा ३ बहादुरशाह (जफर) द्वितीय (१८३७–१८५७)। मतलब यह कि गालिबका बचपन शाह आलमके अन्तिम कालमे पनपा, उनकी जवानी अकबर द्वितीयके कालमे गुजरी और प्रौढावस्था तथा वार्द्धक्य बहादुर शाहके जमानेमे और उसके बाद भी चलता रहा। तीनो अच्छे थे, पर शासन-क्षमताकी दृष्टिसे अशक्त और साधनहीन थे। इनके कालमें मुगल-साम्राज्य कहानी बनकर रह गया था और अन्तमे वह कहानी भी खत्म हो गयी।

कहानी खत्म हो गयी

इस प्रकार हम देखते है कि गालिबके जन्मके समय दिल्ली सल्तनतकी जडें टूट चुकी थी, बल्कि तना भी खोखला होने लगा था। उनके जीवन-कालमे जितने भी बादशाह हुए, नामके बादशाह थे। दिल्ली शहरमे भी उनका शासन न चलता था। वहाँ भी कम्पनीका इन्तज़ाम था। बादशाह वस्तुत किलेमे घिरे हुए, कहनेको स्वतन्त्र पर वस्तुत सम्मानित बन्दी मात्र थे। वे पिंजरबद्ध पछी थे। इन बादशाहोको अपना मतलब निकालनेके लिए कभी मराठे, कभी अंग्रेज संरक्षण एव पेन्शन देते रहे। देशकी अवस्था बिलकुल अनिश्चित और निराशाजनक थी। जनता बार-बार सामन्तो एव युद्ध-पिपासु सरदारो द्वारा लूटी जाती थी। कभी अफगान, कभी मराठे, कभी अंग्रेज, कभी सिख, कभी राजपूत सिर उठाते और कुछ न कुछ हडप लेते। रोज़ लूट-खसोट, झगडे, युद्ध और भाग्य-परिवर्तन होते रहते थे। कलका बादशाह आजका भिखारी था। दक्षिणके मराठोने एक सार्वभौम राज्य स्थापित करनेके लिए जो प्रयत्न किये, मध्यवर्ती अनक सफलताओ-विफलताओके बाद, १८१८मे पेशवाईके साथ ही उसका भी अन्त हो गया। उसके बाद उस स्वप्नको पूर्ण करनेका कार्य अंग्रेज़ोने अपने हाथमे ले लिया।

गालिबके जीवनकालकी राजनीतिक स्थिति

लेनपूलने ठीक ही लिखा है—"जैसे किसी राजाकी मृत देहको युग-

युगान्तर तक एकान्तमें ताज पहिनाकर, शस्त्र धारण कराके पूर्ण प्रभावशाली बना-सजाकर रखा जाय, किन्तु प्रकृतिकी एक फूंकमें वह धूलिमात् हो जाय, यही हालत मुगल साम्राज्यकी थी।"

सजा हुआ मुर्दा

सच पूछें तो मुगल-साम्राज्यके ह्रासके बीज उसके वैभवकालमें ही पड गये थे। मुगल आरामतलबी, यारबाशी, उत्फुल्लता और जीवनके नाना भोगोंके अभिलाषी थे। वैभव एव विलासका जीवन था। मुगल सम्राटोंके इर्द-गिर्द अनेक जागीरदार, सरदार वा मसबदार इकट्ठे हो गये थे। इस प्रकार एक सामन्तशाहीकी सृष्टि हुई थी। उन्होने समाजको भी सामन्ती ढांचेमें ढालनेका प्रयत्न किया। सम्राट् स्वय एक प्रधान जागीरदार होता था। उसके बाद सरदारो या मसबदारोंका स्थान था जो राज्यके प्रधान पदोंपर नियुक्त होते थे। जिसको जैसा मंसब मिलता, समाजमें उसका उतना ही आदर होता था। इन मुगल सरदारो एव मसबदारोंका जीवन भी प्राय भोग-विलाससे पूर्ण होता। राज्यकी बहुत बडी आय उनको प्राप्त होती थी। उनका जीवन बाहुल्यका जीवन था। वे भी बडे-बडे महलोंमें रहते, सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनते, अनेक हरम और रखेलियां रखते और शराब, रागरग एव कामलिप्सासे पूर्ण जीवन बिताते थे। इस प्रकार एक उच्चवर्ग बन गया, जो मुगल साम्राज्यके ह्रासके दिनोंमें उसका ही विनाशक बन गया।

मुगलकालीन सामाजिक अवस्था

उच्चवर्गोंके बाद एक मध्यवर्ग था जिसमें छोटे सरकारी कर्मचारी, सौदागर और महाजन इत्यादि थे। इनके पास सामान्यत धन तो होता था पर वे ऊपरसे अपना जीवन सीधा-सादा और आडम्बरहीन रखते थे, क्योंकि उन्हें सदा डर लगा रहता था कि लालची सूबे और सरदार उनका धन लूट या छीन न लें।

निम्न वर्ग सबसे बडा था। इसमें मजदूर, किसान और दुकानदार

इत्यादि थे। इनका जीवन बडा कष्टमय था। मज़दूरी कम मिलती थी, उनसे जबरन काम कराया जाता या बेगार लिया जाता था। लूट-पाट, या लडाई-झगडोंके कारण निश्चिन्तता न थी कि वे खेती और लघु उद्योग-धन्धोकी उन्नति कर पाते। उनकी स्थिति विषम थी।

ज्यो-ज्यो मुगल साम्राज्यकी केन्द्रीय सत्ता क्षीण होती गयी, इन तीनो वर्गोंका भी अधिकाधिक पतन होता गया। औरगज़ेबमे दृढता थी, चरित्र था, लगन थी, यद्यपि सूझ-बूझ न थी। वह कठिनाइयोमे भी अडिग रहा। पर उसके बाद जो आये, वह चारो ओरके विरोध एव तूफानमे ठहरने लायक न थे। अधिकाश परीशानियोसे घबराकर सुरा-सुन्दरी द्वारा अपना गम गलत करनेवाले थे। सम्राटोकी देखादेखी सामन्तोमे भी विलासिता आई। जब मुगल भारतमे पहिले आये थे, एक परिश्रमी जाति थे। पर बादमे धन, विलास एव वैभव-बाहुल्यने उनका चरित्र गिरा दिया। रनिवासोकी भीडमे षड्यन्त्रोको फूलने-फलनेके लिए अनुकूल भूमि प्राप्त हुई। सर यदुनाथ सरकारने ठीक ही लिखा है कि "जब सुकाल होता तब भी खेतीकी सारी आय मुगल सामन्तोकी जेबोमे जाती थी और यह धन उन्हे उस विलासिताके लिए प्रोत्साहित करता जिसकी कल्पना फारस या मध्य एशियामे कोई राजा भी नही कर सकता था।"

मुगलोका पतन

फिर देशमे अच्छी शिक्षाका कोई प्रबन्ध न था। मुगलोने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया। इसीलिए उनमे उच्च बौद्धिक शक्तियोका अभाव रहा और वे राजनीतिज्ञ एव नेता उत्पन्न करनेमे बिलकुल असफल रहे। मुगल सरदारो एव सामन्तोके पुत्रोके लिए अच्छी शिक्षाकी कोई ठीक व्यवस्था न होनेके कारण वे आवारागर्दी करते, हिजडो एव खूबसूरत लौंडियोसे घिरे रहते, उनके चोचलोपर मुग्ध होते, जीवनारम्भसे ही वे शराब-कबाब और औरतके मज़ोमे पड जाते। विलासिताकी जोकें उनका खून पी जाती। फिर अपने

रईसज़ादोकी हालत

सामाजिक महत्त्व एवं अहंकारके कारण वे जन-जीवनसे भी कटे-अत जीवनकी विस्तृत पाठशाला भी उनको शिक्षा देने एवं गढ़नेमे थी। दरबारोंमें षड्यन्त्र चला ही करते, इसलिए ज़रा ही बड़ा दलबन्दियों एवं गुटोंमें बँट जाते थे।

राजासे लेकर सामान्य अधिकारीतक प्रत्येक कृपाके लिए रिश्वत लेता था। इससे शासनमें भ्रष्टाचार बहुत बढ गया था। मन्त्री एवं सम्राट्के निकट रहनेवाले अधिकारी खूब धन बटोरते थे, सामन्त लूट-पाट करते थे और प्रजा दिन-दिन ग़रीब होती जा रही थी। शासनके प्रति उसकी निष्ठा टूट गयी थी। राज-कोष खाली होनेके कारण सेनाको महीनो तनखाह न मिलती, इसलिए सैनिक भी जनता एवं व्यापारियोंको लूटते रहते थे।

भ्रष्टाचार

परन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि जहाँ मुग़ल साम्राज्यके अन्तिम युग-में राजनीतिक अनिश्चितता, आर्थिक दुर्दशा तथा चारित्रिक पतनका सर्वत्र बोलबाला था, तहाँ साहित्य एवं काव्य बराबर फूलता-फलता रहा। कदाचित् इसलिए कि वह विलास-कक्षके सौन्दर्यको बढाता था। विलासी एवं रसिक होनेके कारण मुग़ल काव्यके प्रेमी थे। अधिकांश स्वयं कवि थे और उनके दरबारमें बराबर कवियों, विद्वानों एवं कलाकारोंका सम्मान होता रहा। शाह आलम द्वितीय तो उर्दू, फ़ारसी, हिन्दी और पंजाबीका अच्छा कवि था। उसका हिन्दी काव्य पर्याप्त मात्रामें मिलता है। वह 'आफताब' और 'खुर्शीद' के उपनामसे फारसी-उर्दू तथा 'शाह आलम' के उपनामसे हिन्दीमें कविता करता था। उर्दू तो उसके संरक्षणमें खूब पनपी। अभीतक दरबारकी ज़बान (राजभाषा) फारसी थी। उसने पहिली बार उर्दूको वह स्थान दिया। इस समयतक दक्षिण—बीजापुर एवं गोलकुण्डा—में उर्दू या रेख़्ती पल रही थी। वली जब दिल्ली आये तो इस नई ज़बान-

काव्यका समादर एवं उर्दूका संरक्षण

ने दिल्लीवालोको मुग्ध कर लिया। शाह आलमके कारण उजडती दिल्लीमे अनेक कवि एकत्र हो गये थे।

उर्दू जबान थी तो इस देशकी बेटी, पर उसके मन, प्राण एव हुस्नमे फारसीयतका प्राधान्य था। इसलिए फारसीसे इसमे भी गजल आई, कसीदे आये, मस्नवी आई। पर विलासी जीवनमे इश्किया शायरीकी भूख गज़लमे ही मिट सकती थी। इसलिए गजलोका प्राधान्य हुआ। इसमे प्रेम-पीडा वार्तालापके रूपमे व्यक्त होनेके कारण सजीव हो उठती थी। इसने हिन्दू-मुसलमान दोनोके दिलोको खीचा। काव्य-प्रेमकी मस्तीमें हिन्दू-मुसलिम भेदभाव बहुत कम हो गया। इस समयकी दिल्लीकी जो हालत थी उसपर मीर, सौदा, इशा, जौक, गालिब, दाग सभीने आँसू बहाये हैं। कुछ अजब जमाना था। घुटे हुए दिल, लुटी हुई और पामाल जवानियोपर हसरत भरी निगाहें डालते और सिसकते थे। भली प्रकार रो भी न सकते थे। 'सौदा' ने ठीक ही लिखा है —

हैफ ! दर चश्मे ज़दन सोहबते यार आख़िर शुद।
रूए गुल सैर न दीदम व बहार आख़िर शुद॥

("अफसोस ! पलक झपते मित्रका साथ छूट गया। फूलके आननको जीभर देख भी न पाई थी कि वसन्त समाप्त हो गया।")

शाह आलमकी ज़िन्दगी दु ख-दर्दसे भरी ज़िन्दगी है। गुलाम कादिरने जिस प्रकार उसकी आँखें निकाली, उसका वर्णन पढकर रोगटे खडे हो जाते है। पर यह वह ज़माना था जब आँखें रहते भी लोग अन्धे हो रहे थे। दिल्ली तख्तके चतुर्दिक् तूफान उठ रहे थे। कही मराठे, कही अग्रेज, कही रुहेले, कही सिख, कही राजपूत, कही जाट विद्रोह करके स्वतन्त्र हो चुके थे। लूट-पाट एव शोषणका सर्वत्र बोलबाला था। पर सबमे बडी बात यह थी कि किसान लुटा और निम्न मध्यवर्ग शोषित था तथा राजा, नवाब, सरदार मतलब उच्चवर्गका भयकर आत्म-पतन हो चुका था।

दिल्लीके तख्तकी दुर्दशाका कारण उसकी ही अपनी पतित एव विलासपूर्ण जिन्दगी थी। अन्धे शाह आलमने अपनी एक करुणाजनक एव व्यथापूर्ण फारसी ग़जलमे खुद ही कहा है —

सरसरे हादसा बर्खास्त पये ख्वारिए मा।
दाद बरबाद सरोबर्ग जहाँदारिए मा।
आफताबे फ़लके रफ़अतो शाही बूदेम,
बुर्द दर शामे ज़वाल आह सियहकारिए मा।
नाज़नीनाने परी-चेहरा कि हमदम बूदंद,
नेस्त जुज़ महले मुबारक ब परस्तारिए मा।

(अर्थात् दुर्भाग्यका तूफान हमें मिटानेको उठा। इसने हमारी जहाँदारीको, हुकूमतको बरबाद कर दिया। शाही वैभवके गगनमें हम सूर्यकी भाँति चमक रहे थे। हमारी ही सियहकारियो—काली करतूतो—के कारण यह पतनकी सन्ध्या आई है। अप्सराओ-सी कोमलागनाएँ हमारी सेवामें उपस्थित रहती थी, पर आज हमारी देख-रेखको हमारी पवित्र पत्नीके सिवा कोई नही है।)

आत्मरोदन

मतलब बादशाह अशक्त, सामन्त और सरदार विलासी और एक-दूसरेके विरुद्ध, राजकर्मचारी रिश्वती और बेईमान, निम्नवर्ग शोषित एव भयभीत। देशकी अवस्था ऐसी थी कि अग्रेज आसानीसे प्रधान हो उठे। वैसे उनके अलावा भी छोटे-छोटे अनेक राजे-राजवाडे, नवाब-सरदार स्वतत्र या अर्ध-स्वतत्र हो गये थे। जिसे जहाँ मौक़ा मिला, उसने वही अपना अधिकार जमाया। सामान्य प्रजा तो सैकडो सालसे बराबर लुटती आ रही थी। स्वभावत वह ऐसे अनिश्चितताके जीवनसे

जन-जीवनके स्तर एव उनकी झाँकी

ऊव चुकी थी। जो आता वही उसे लूटता और उससे ख़िराज माँगता। वह किसका-किसका पेट भरती और कवतक भरती। अनिश्चितता एव नित्यकी लडाइयोके कारण खेती, व्यापार और गृह-उद्योग सव तवाह हो गये थे। उधर उच्चवर्गके लोगो—नवावजादो, रईसज़ादोंके सामने जीवनका कोई ध्येय न था। वे स्वच्छन्द जीवनके अभिलाषी, ऐशोइशरत-के दिलदादे प्रजाको दवाकर, उससे छीन-झपटकर अपने विलासकी सामग्री जुटाते, वचपनसे ही इश्ककी वातें करते और विलासी जीवन विताने लगते थे। मुर्ग और वटेर लडाते, पतगवाजी करते, शतरज और चौसर खेलते, काव्य-गोष्ठियो और नाच-रगकी महफिलोमे जाते, शराव व शायरीका शौक करते। देशका वहुसख्यक वर्ग इस अवस्थामे ऊव गया था। पर उसे सूझती न थी कि वे क्या कर सकते हैं। इस मानसिक दुर्वलताका अग्रेज़ोने लाभ उठाया। वे जहाँ गये वहाँ भले ही मतलवसे सही एक व्यवस्था तो ले गये। एक निज़ाम तो था। भले उसमे गुलामी थी। पर जिन्दगीका समतोल तो था।

मतलव राजनीतिक दृष्टिसे देश निराश एव जर्जर हो पडा था। मध्य एव उत्तरकालीन भारतीय इतिहासमे सदैव विदेशियोसे लोहा लेने-

निराशाका युग

वाले व्यक्ति पैदा होते रहे, प्रतिरोधक सगठित प्रयत्न भी जव-तव हुए पर सदियोसे जातीय

बच्चोंको केवल शेरोशायरी, भोग-विलास, सागर व मीना और नीचे दर्जेकी हुस्नपरस्तीसे काम था। उधर अंग्रेजोंके संरक्षणमें भारतके पूर्व तट पर एक नया नगर—कलकत्ता—न केवल तेजीसे बसता और बढ़ता जा रहा था वरं एक नये जीवन, एक नई दृष्टि, एक नई सभ्यता एवं संस्कृति, एक नई सामाजिक एवं औद्योगिक व्यवस्थाका प्रतीक बनता जा रहा था।

चेतनाके दो रूप

जबतक भारतीय घरेलू उद्योग-धन्धे सुरक्षित रहे, इस देशके कला-कौशल एवं चीज़ोंकी धूम विदेशी बाज़ारोंमें रही। अंग्रेज व्यापारी यहाँसे चीज़ें युरोप तथा सुदूर पूर्वके बाज़ारोंमें ले जाकर बेचते रहे। पर जब उनके देशमें युरोप-व्यापी औद्योगिक क्रान्तिकी लहर आई और वाष्पयंत्रों तथा चिमनियों-वाले कारखाने फैल गये तब अपने मालको यहाँ तथा अन्यत्र खपानेके लिए यहाँके धधोंका धीरे-धीरे निराकरण किया गया। इसीके कारण यहाँकी राजनीतिमें अंग्रेज़ोंने अधिकाधिक दिलचस्पी लेनी शुरू की। उद्योगोंके मिटनेसे भूमिपर भार बढ गया। आर्थिक स्थिति बिगडती गयी। हमारे यहाँ बेकारी फैली, धनिक एवं व्यापारी अपदस्थ हुए। अपने देश एवं उद्योग-धंधोंकी पामालीपर जाग्रत लोगोंमें क्षोभ था। वह कही विद्रोहके रूपमें फूटा, कही सुधारवादी प्रयत्नोंके रूपमें। स्थिति ऐसी थी कि अंग्रेज़ोंको स्वीकार करनेके सिवा कोई चारा न था। अव्यवस्था और अनिश्चिततासे तो अंग्रेजी शासन अच्छा ही दीखता था। अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षाने जहाँ अभारतीय मनःस्थिति पैदा करनेमें योग दिया तहाँ संसारके सम्बन्धमें एक नई दृष्टि भी दी, नवीन ज्ञानने नई भावनाएँ पैदा की। १८२६ का बैरकपुर विद्रोह प्रथम दलके क्षोभका, और राममोहन-राय इत्यादिके क्रिया-कलाप दूसरे दलकी मनःस्थिति एवं व्यवहारके द्योतक हैं।

ऊब चुकी थी। जो आता वही उसे लूटता और उससे खिराज माँगता। वह किसका-किसका पेट भरती और कबतक भरती। अनिश्चितता एव नित्यकी लडाइयोके कारण खेती, व्यापार और गृह-उद्योग सब तबाह हो गये थे। उधर उच्चवर्गके लोगो—नवावजादो, रईसजादोके सामने जीवनका कोई ध्येय न था। वे स्वच्छन्द जीवनके अभिलाषी, ऐशोइशरत-के दिलदादे प्रजाको दबाकर, उससे छीन-झपटकर अपने विलासकी सामग्री जुटाते, बचपनसे ही इश्ककी बातें करते और विलासी जीवन बिताने लगते थे। मुर्ग और बटेर लडाते, पतगबाजी करते, शतरज और चौसर खेलते, काव्य-गोष्ठियो और नाच-रगकी महफिलोमे जाते, शराब व शायरीका शौक करते। देशका बहुसख्यक वर्ग इस अवस्थासे ऊब गया था। पर उसे सूझती न थी कि वे क्या कर सकते है। इस मानसिक दुर्बलताका अग्रेजोने लाभ उठाया। वे जहाँ गये वहाँ भले ही मतलबसे सही एक व्यवस्था तो ले गये। एक निज़ाम तो था। भले उसमे गुलामी थी। पर जिन्दगीका समतौल तो था।

निराशाका युग

मतलब राजनीतिक दृष्टिसे देश निराश एव जर्जर हो पडा था। मध्य एव उत्तरकालीन भारतीय इतिहासमे सदैव विदेशियोसे लोहा लेने-वाले व्यक्ति पैदा होते रहे, प्रतिरोधक सगठित प्रयत्न भी जब-तब हुए पर सदियोसे जातीय भावना इतने निम्न स्तर पर गिर गयी थी और इतनी सकुचित हो गयी थी कि वह विस्तृत एव जनगत, लोकगत हो ही न सकी। शताब्दियोके सघर्षके बाद जैसे बहुसख्यक वर्ग, अनिश्चिततासे ऊबकर, दम ले रहा था। लोगोमे अपनी हीनताका भाव, इसीलिए विदेशियोके प्रति आक्रोश तो था पर जैसे नियतिके आगे अधिकाधिक जन कधा डालते जा रहे थे। मतलब गालिबके कैशोर कालमे एक ओर दिल्ली, क्या सारा देश, राज-नीतिक दृष्टिसे अशक्त था, देशकी राजकीय शक्ति तेजीसे बिखर रही थी और जो कुछ कर सकते थे उन सामन्तो और रईसो तथा उनके

बच्चोंको केवल शेरोशायरी, भोग-विलास, साग़र व मीना और नीचे दर्जेकी हुस्नपरस्तीमें काम था। उधर अंग्रेज़ोंके संरक्षणमें भारतके पूर्व तट पर एक नया नगर—कलकत्ता—न केवल तेज़ीसे बसता और बढ़ता जा रहा था वरं एक नये जीवन, एक नई दृष्टि, एक नई सभ्यता एवं संस्कृति, एक नई सामाजिक एवं औद्योगिक व्यवस्थाका प्रतीक बनता जा रहा था।

चेतनाके दो रूप

जबतक भारतीय घरेलू उद्योग-धन्धे सुरक्षित रहे, इस देशके कला-कौशल एवं चीज़ोंकी धूम विदेशी बाज़ारोंमें रही। अंग्रेज़ व्यापारी यहाँसे चीज़ें युरोप तथा सुदूर पूर्वके बाज़ारोंमें ले जाकर बेचते रहे। पर जब उनके देशमें युरोप-व्यापी औद्योगिक क्रान्तिकी लहर आई और वाष्पयंत्रों तथा चिमनियों-वाले कारखाने फैल गये तब अपने मालको यहाँ तथा अन्यत्र खपानेके लिए यहाँके धंधोंका धीरे-धीरे निराकरण किया गया। इसीके कारण यहाँकी राजनीतिमें अंग्रेज़ोंने अधिकाधिक दिलचस्पी लेनी शुरू की। उद्योगोंके मिटनेसे भूमिपर भार बढ़ गया। आर्थिक स्थिति बिगड़ती गयी। हमारे यहाँ बेकारी फैली, धनिक एवं व्यापारी अपदस्थ हुए। अपने देश एवं उद्योग-धंधोंकी पामालीपर जाग्रत लोगोंमें क्षोभ था। वह कहीं विद्रोहके रूपमें फूटा, कहीं सुधारवादी प्रयत्नोंके रूपमें। स्थिति ऐसी थी कि अंग्रेज़ोंको स्वीकार करनेके सिवा कोई चारा न था। अव्यवस्था और अनिश्चिततासे तो अंग्रेज़ी शासन अच्छा ही दीखता था। अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षाने जहाँ अभारतीय मनःस्थिति पैदा करनेमें योग दिया वहाँ संसारके सम्बन्धमें एक नई दृष्टि भी दी, नवीन ज्ञानने नई भावनाएँ पैदा कीं। १८२६ का बैरकपुर विद्रोह प्रथम दलके क्षोभका, और राममोहन-राय इत्यादिके क्रिया-कलाप दूसरे दलकी मनःस्थिति एवं व्यवहारके द्योतक हैं।

भारतमे मुगल साम्राज्यके क्षय एव अग्रेजी राज्यके विस्तारका इतिहास न केवल मनोरजक वर शिक्षाप्रद भी है। अग्रेजोने एक ओर देश-व्यापी अव्यवस्था, फूट तथा हमारे नैतिक एव सामाजिक पतनका लाभ उठाकर अपना रथ आगे बढाया तो दूसरी ओर अपने अधीनस्थ प्रदेशोको सुव्यवस्था, शिक्षा, न्याय-पद्धतिका भी दान दिया।। उन्होने समझा कि केवल तन जीतनेसे काम नही चलेगा, इस देशके लोगोका मन भी जीतना होगा। इसलिए उन्होने शिक्षित वर्गोको प्रोत्साहित किया। नवीन औद्योगिक क्रान्तिके लाभ उन्हें दिये। यह जागरण और नवीन शिक्षणका ही परिणाम था कि १८२३ ई० में राममोहन राय इत्यादिने मुद्रण-स्वातन्त्र्यके लिए एक निवेदनपत्र ब्रिटिश सम्राट्को भेजा था। यह सक्रान्तिका काल था। अत अग्रेज भी दो दलोमें बंटे हुए थे। एक दल भारतीयोको शिक्षित करने, उन्हे मुद्रण-स्वातन्त्र्य प्रदान करने, आधुनिक सभ्यताका लाभ उन्हें देनेके पक्षमे था, दूसरा इसके विरुद्ध था। लार्ड विलियम बैंटिक, सर टामस मनरो भारतीयोको मुद्रण-स्वातन्त्र्यकी सुविधाएँ देनेके विरुद्ध थे पर १८३६ ई० मे जब सर चार्ल्स मेटकाफ गवर्नर जेनरल हुए उन्होने भारतीयोको मुद्रण-स्वातन्त्र्यका अधिकार दे दिया। हाँ प्रगति-विरोधी गुटके प्रभावके कारण, इस 'अपराध'में वह अपने पदसे हटा दिये गये। फिर भी वह अपने विचारोपर दृढ रहे। उन्होने लिखा था—

अग्रेजोमे भी दो वर्ग

"यदि यह कहा जाता है कि ज्ञान-जागरणके फल-स्वरूप हमारे भारतीय राज्यका अन्त हो जायगा तो इसपर मेरा जवाब यह है कि नतीजा कुछ भी हो, उन्हें ज्ञान-लाभ कराना हमारा कर्त्तव्य ही है। यदि हिन्दुस्तानियोको अज्ञानमें रखनेसे ही यह देश हमारे साम्राज्यमें रह सकता तो हमारा प्रभुत्व इस देशके लिए शाप रूप ही सिद्ध होगा और उसका अन्त हो जाना ही ज़रूरी हो जायगा।"

शाप या वरदान

"मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यह मानना अधिक युक्तियुक्त और साधार है कि लोगोंको अज्ञान बनाये रखनेमें ही अधिक भय है। मैं तो यह सोचता हूँ कि ज्ञान-जागरणसे हमारा साम्राज्य अधिक बलिष्ठ होगा। इससे शासक और प्रजाजन दोनोंमें सहानुभूति उत्पन्न होगी और परस्पर एकताका भाव बढ़ेगा और आज जो खाई उनमें है वह धीरे-धीरे बिलकुल पट जायगी।"*

इसी प्रकारका भाव प्रकट करते हुए एलफिस्टनने जून १८१९ में ही मेकेण्टाशको लिखा था—"हमारा साम्राज्य अधिक समय तक नहीं टिकेगा, यह केवल कुशंका नहीं बल्कि युक्तियुक्त है। हमारे प्रभुत्वका अत्यन्त इष्ट अन्त यही हो सकता है कि हमारे शासनमें लोगोंके अन्दर इतने सुधार हो जायँ कि किसी भी विदेशी सत्ताका राज्य करना असम्भव हो जाय। 'यह समय कितना होगा इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। फिर भी हमारे सम्बन्ध-विच्छेदका समय कभी न कभी आये बिना नहीं रह सकता और यहांके लोग जंगली बने रहकर, अत्याचार करके हमारा सम्बन्ध तोड़ डालें इससे तो हमारे लिए यही अधिक हितकारक है कि भले ही वह जल्द टूट जाय परन्तु टूटे वह उनका सुधार होनेके बाद।"†

इससे तो टूट जाना अच्छा

जैसी स्थिति अंग्रेजोंके अन्दर थी वैसी ही भारतीयोंके बीच भी थी। देशमें राजनीतिक दृष्टिसे जहां असामर्थ्यकी एक सुप्त चेतना थी और वह चेतना रह-रहकर जब-तब भड़क भी उठती थी तहां एक चैतन्य वर्गमें

---

* The Development of An Indian Policy by Anderson and Subedar p. 143

† Mount Stuart Elphinstone by J. S Cotton pages 185–86.

अग्रेजी शासन-व्यवस्थाका लाभ उठानेका भाव भी था। जैसा हम ऊपरके उद्धरणोमे बता चुके है उदार अग्रेज़ अपनी जीवन-परम्परा, समाज-व्यवस्था, शिक्षण तथा यूरोपमे उठ रहे नवीन विचारोका अधिकाधिक लाभ अपनी नवीन भारतीय प्रजाको देनेके पक्षमे थे। एक ओर राजनीतिक शक्तिसे, दूसरी ओर ज्ञानसे अपनी श्रेष्ठताके प्रति भारतीयोको प्रभावित करना ही उनका लक्ष्य था। शताब्दियोकी अव्यवस्थासे ऊबकर धीरे-धीरे किन्तु निश्चित गतिसे लोग अग्रेज़ी व्यवस्थाके प्रति आकर्षित हो रहे थे। बहुतोने तो मान लिया कि प्रभुकी इच्छासे या नियतिके खेलको पूरा करने ही अग्रेज इस देशमे आये है और उनसे हमारा सम्बन्ध हुआ है। उनमे दोष है, विदेशी तत्त्व है पर जब देशी वर्ग एक दूसरेको हडपने एव मलियामेट करनेको तैयार हो, जब उनमे एक होकर विदेशियोके सामने खडा होनेका भाव न हो बल्कि आपसी झगडो या स्वार्थसिद्धिके लिए विदेशियोको आमन्त्रित करनेका भाव हो★ तो उनकी ओर एक निराशाभरी दृष्टि डालनेके सिवा चारा ही क्या है ?

इस समय भारत टुकडे-टुकडे हो रहा था। भारतीय केन्द्रीय सत्ताका प्रतीक दिल्ली उपहासजनक स्थितिमे थी। देशकी सबसे बडी आवश्यकता

ऐतिहासिक आवश्यकता

एक भारतीय सार्वभौम राज्यकी थी। १८१८म जब माउण्ट स्टुअर्ट एलफिस्टनने (जो बम्बई प्रान्तका प्रथम गवर्नर था) पेशवाईको खत्म कर दिया तबसे भारतीयोका सार्वभौमका भारतीय राज्य स्थापित करनेका स्वप्न भी समाप्त हो गया। अब कोई ऐसा देशी सघटन नही रह गया था जो मराठोका स्थान लेता। अग्रेजोमे भी ऐसे लोग थे और हिन्दुस्तानियोमे भी, जो इस सम्बन्धको

★ १८३५ ई० मे सरजानशोरने 'इण्डियन आर्मी' निबन्धमे लिखा था कि हिन्दुस्तानियोमे आत्मविश्वास नही है, न राष्ट्राभिमान है और वे एका भी नही कर सकते, यही हमारे साम्राज्यका सामर्थ्य है।

एक ऐतिहासिक आवश्यकता मानकर उसे स्वीकार करने और उनका सर्वोत्तम उपयोग करनेके पक्षमें थे, जैसा कि ऊपरके उद्धरणोंमे हम प्रकट कर चुके हैं। १८५०मे 'लोकहितवादी' पत्रने मानो त्रस्त भारतीय जनता-की इसी भावनाको प्रकट करते हुए लिखा था—"सुज्ञ लोगोको चाहिए कि वे अंग्रेजोंके जानेकी इच्छा कदापि न करें।" क्योंकि उनके न रहनेका परिणाम, उस समय व्यापक अराजकता एवं अनिश्चितताके अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता था। लोग यह भी देख चुके थे कि हमारे राष्ट्रीय चारित्र्यमें कोई ऐसी दुर्बलता अवश्य है कि बार-बार विद्रोह करके भी हम सफल नहीं हो पाते। इसलिए पहिले शिक्षा एवं संस्कार द्वारा अपनी वास्तविक स्थितिको समझने तथा अपनी परम्परागत दुर्बलताओंको दूर करनेसे आगे चलकर स्वतन्त्रताकी सम्भावना अधिक हो सकती है। उदार अंग्रेज भी इस बातको समझते थे कि शिक्षा पाकर भारतीय बराबरीका दावा करेंगे पर वे धीरे-धीरे अपनेको इस स्थितिके लिए तैयार कर रहे थे क्योंकि अब बिना भारतीयोंके अधिकाधिक सहयोगके उनका शासनतन्त्र भलीभाँति चल नही सकता था। १८२४ ई० में एलफिस्टनने कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सको जो शिक्षा-विषयक वक्तव्य भेजा था उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस वक्तव्यमें अन्य बातोंपर प्रकाश डालनेके बाद वह लिखता है—

"यह आपत्ति उठायी जायगी कि यदि हमने यहाँके लोगोको शिक्षा देकर अपने बराबरका दर्जा दे दिया और शासन-कार्यमें भी उन्हें हिस्सा देते चले गये तो वे उन पदोपर ही सन्तुष्ट नही रह सकेंगे जो हम उन्हे देंगे बल्कि वे सारे शासनपर अपना अधिकार साबित किये बिना शान्त न बैठे रहेंगे। इस बातसे इन्कार नही किया जा सकता कि ऐसा भय रखनेके कई कारण हैं परन्तु दूसरी किसी नीति-द्वारा हम अधिक स्थायी बन सकेंगे, ऐसा मुझे विश्वास नही होता।

सब दृष्टियोंसे भारतीयोंको समत्वका अधिकार देना अच्छा है।

यदि हमने देशी लोगोको नीचे ही दवा रखा तो उनके प्रतिकारमे ही हमारा राज्य उलट-पुलट हो जायगा और यह मकट पूर्वोक्त सकटकी अपेक्षा अधिक भयकर और अधिक अकीर्तिकर होगा। इस खीचातानीमें हमें सफलता मिल भी गयी तो हमारे साम्राज्यके लोगोसे एकरस न होनेके कारण विदेशी आक्रमणसे, अथवा हमारे ही वशजोकी वगावतसे, उमके उखड जानेकी सम्भावना है। हमारी कीर्ति एव हित दोनो दृष्टियोसे, एव मानव जातिके कल्याणकी दृष्टिसे भी विचार किया जाय तो जिन लोगोंके हितके लिए इस सत्ताकी धरोहर ईश्वरने हमे दी है उन्हीके हाथोमें उसे वापिस सौंप दें यही वेहतर है वनिस्वत इसके कि उसे विदेशी हमसे छीन लें या हमारे ही कुछ मुट्ठी भर उपनिवेशवासी अपना जन्मसिद्ध अधिकार कहकर अपने हाथमें ले लें।"★

साम्प्रदायिक वैमनस्य-का अभाव

इस प्रकार हम देखते है कि उन्नीसवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमें देशमे एक ओर घोर राजनीतिक अव्यवस्था और अनिश्चितता व्याप्त हो गयी थी और इस अनिश्चिततामे अग्रेज अपने शोषणमे भी जो व्यवस्था, नवीन जीवन-विधि, शिक्षा-प्रणाली लाये उसकी ओर धीरे-धीरे भारतीय जनता आशासे देखने लगी थी। दूसरी ओर दिल्लीके अन्तिम वादशाहो-के मुसलमान होनेके वावजूद हिन्दुओमे उनके प्रति अत्यन्त सम्मानका भाव था। समान दु ख और सकटके इस कालमे उनके तथा उच्चवर्गीय लोगोके अन्दर साम्प्रदायिक वैमनस्य तो रह ही नही गया था, भेदभाव भी वहुत कुछ दूर हो चला था। जनता भूल चली थी कि शासक मुसल-मान है। यह मुगलोकी धार्मिक उदारताकी नीतिका परिणाम था। यद्यपि मुगल मुसलमान थे और कोई-कोई कट्टर भी थे पर उन्होने योग्य हिन्दुओ-को ऊंचे पद दिये, कलाकारो, कवियो एव सगीतज्ञोको आश्रय दिया,

★ M S. Elphinstone by J S. Cotton p. 184

विद्वानोंको अपनाया, भारतीय भाषाओंको ग्रहण किया। यह परम्परा, औरङ्गज़ेबकी धार्मिक कट्टरताके बावजूद, अन्त तक चलती रही बल्कि अन्तिम मुगल कालमें वह और निखर गयी। खासतौरसे, कवियोंकी दुनियामें हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव कम-से-कम था। मुसलमान देशज शब्दों-को अपनाने लगे थे और दोनोंके सम्पर्कसे बनी हिन्दवी (बादकी रेखता या उर्दू) पनपती जा रही थी। यह ठीक है कि उर्दूकी आधारशिला फ़ारसीयत थी क्योंकि एक लम्बे अरसे तक फ़ारसीके राजभाषा होने तथा शिष्ट हिन्दू-मुसलमानों द्वारा उसे स्वाभाविक रूपमें ग्रहण कर लिये जानेके कारण ऐसा होना ही था पर उसमें इस देशके शब्द एवं संस्कार भी तेज़ीसे आ रहे थे (वली, इंशा, मीर, जफर इत्यादिकी रचनाओंसे यह स्पष्ट हो जाता है।) मीर, गालिब इत्यादि उर्दू-कवियोंमें कहीं कट्टरताका कोई चिह्न नहीं है। मतलब जब मुगलोंकी शक्तिका पतन हो रहा था, हिन्दू-मुस्लिम-समन्वय तथा जन-सम्पर्कसे एक नई ज़बान बन रही थी। इसके पीछे शिष्टताकी एक लम्बी परम्परा थी, जीवनका एक हलका-फुलका दृष्टिकोण था। रीतिकालीन हिन्दी काव्यकी भाँति, राज-नीतिक शक्तिकी क्षीणताके दिनोंमें, शत-शत निराशाओं एवं कठिनाइयोंसे भरे मानवको इसने प्रेमकी घूँट पिला-पिलाकर जिलाया। भले ही यह प्रेम अधिकांशतः बाज़ारू था पर इन संकटके दिनोंमें उसने मानव-हृदयको कट्टरताकी कालिमासे दूर रखा, जन-जीवनके नज़दीक लाया, बस्तीमें एक समता, एक निकटता पैदा की और फारसीके विशाल प्रेम-पूर्ण एवं

वातायन जिससे जीवनकी वायुके झकोरे आते रहे

शृंगार-साहित्यका खज़ाना शिष्ट एवं शिक्षित वर्गोंके आगे रख दिया। फलतः राजनीतिसे दूर रहने वाले पर इस देशकी रीति-नीतिमें पले, इस देशकी परम्पराओंसे बंधे हिन्दू-मुसलमानोंमें एक संस्कार, एक शिष्टता, एक शराफ़त, एक काव्यकला-प्रेम आया, एक सौहार्द्र पैदा हुआ, एक रस्मोराह पैदा हुई। उच्च वर्गोंके, परम्परागत

रूढियोसे ग्रस्त एव विलासपूर्ण जीवन-कक्षमे भी इमने एक दरीचा, एक खिडकी, एक वातायन बना दिया था जिसमेसे आनेवाले वायुके झकोरो-मे जन-जीवनकी घुटन, आकाक्षाएँ, हसरतें, लालसाएँ भी होती। राग-रगकी ज़िन्दगी तो होती, परम्पराएँ और रूढियाँ भी होती पर वह उत्कट भेदभाव न होता जो विजेता एव विजितके रूपमे मुसलमानो एव हिन्दुओंके बीच, एक ज़मानेमे, आ गया था। इससे ज़िन्दगीमे वह सतह उभरी जिसमें दोनो एक गोष्ठीमे बैठकर हमप्याला, कभी-कभी हमनिवाला, भी हुए, एक भावराशिसे भरे, एक ज़बानमे बोले। मुसलमान कवि एव भक्त ब्रजभाषा तथा अवधीमे अपनी वाणीका गौरव प्रदर्शित करते, हिन्दू फारसी एव उर्दूमे तबअ-आजमाई करते। हिन्दीमे श्रेष्ठ मुसलमान कवियोके अनेक नाम गिनाये जा सकते है, इसी प्रकार उर्दू और फारसीमे हिन्दुओंके काव्य एव ज्ञान-गरिमाके श्रेष्ठ उदाहरण सुरक्षित हैं।

दो प्रवृत्तियां

इस प्रकार अन्तिम मुगलोके समय जहाँ देशकी राजनीतिक क्रिया-शीलता सुप्त हो गयी, अंग्रेज़ोका प्रभाव बढता गया, अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा एव जीवन-क्रममे एक नवीन, अपेक्षाकृत व्यापक, दृष्टि आई, नवीनके प्रति किञ्चित् आकर्षण उत्पन्न हुआ तहाँ दूसरी ओर, सास्कृतिक धरातलपर, हिन्दू-मुसलमान अधिकाधिक निकट आते गये, साहित्य-जगत्में एक विशेष साहचर्यका जन्म हुआ, फारसीका स्थान धीरे-धीरे एक नई भारतीय भाषा उर्दू लेने लगी।

ऊपर हमने जिस स्थितिका चित्र दिया है उसे सक्षिप्त करनेसे निम्न-लिखित निष्कर्ष निकलते है—

सार्वभौमिकताके तीन प्रतिद्वन्द्वी

१ अठारही शतीके भारतमे अनेक शक्तियाँ सार्वभौम सत्ता हस्त-गत करनेके लिए प्रयत्नशील थी। इनमे फ्रासीसी, अंग्रेज, मराठे प्रमुख थे। प्रादेशिक स्वतत्र राज्यके लिए भी हैदरा-बाद, मैसूर, बगाल (मुर्शिदाबाद), अवध, पजाब प्रयत्नशील रहे। समय-समयपर अफगान

भी आ जाते थे पर उनका रूप प्रमुखत लुटेरोका रहा। इन तीनोंमें पहिले फ्रांसीसियोंने सार्वभौम राज्यकी आशा छोड दी, मराठो और अंग्रेजोकी प्रतिद्वन्द्विता बहुत दिनो तक चलती रही। पर अंग्रेजोकी शक्ति बराबर बढती गयी।

२ पानीपतकी तीसरी लडाई (१७६१) में मराठोकी भयकर पराजयके पश्चात् नक्शा बदलता गया। फिर भी अठारहवी शताब्दीके अन्त-

मराठा शक्तिकी त्रुटि

तक मध्य एवं उत्तर भारतमें मराठा शक्ति प्रबल रही। यह शक्ति कदाचित् और प्रबल होती यदि उनमें दम्भ कुछ कम होता, लूटपाटकी वृत्ति अनुशासित होती और आपसमें वे बिखर न जाते।

३ १८०४ ई० में लार्ड लेकने सिंधियाको हराकर दिल्लीपर भी अंग्रेजी प्रभुत्वकी नींव डाली। १८०६ ई०में माधवराव (महादाजी)

मराठा शक्तिका अन्त

सिंधियाकी मृत्युके बाद अंग्रेजोंको चुनौती देनेवाला कोई प्रबल वीर उत्तर भारतमें न रह गया। १८१८ ई०में पेशवाईका ही अन्त हो गया। यद्यपि राखके अन्दरसे कहीं-कहीं सुप्त चिनगारियाँ, हवा अनुकूल होते ही, चमक उठती थी और इक्के-दुक्के विस्फोट भी हो जाते थे पर निश्चित गतिसे भारतपर अंग्रेजी प्रभुता फैलती जा रही थी। उन्नीसवी शताब्दीका प्रथमार्द्ध उसके प्रसार एव द्वितीयार्द्ध उसके दृढ गठनका युग है। १८५७ ई० में अन्दरकी धधकती आग उभरी परन्तु वह समस्त भारतमें न फैल सकी। बगालियो, सिखो, राजपूतो, मद्रासियों, गुजरातियोंने उसमें हिस्सा नहीं लिया, कहीं-कहीं लिया तो नाम-मात्रका लिया। वह आग अन्तमें हिन्दी-भाषी प्रान्तो एव दिल्लीके आस-पास ही उमडघुमडकर और राष्ट्रीय खीझका एक प्रतीक बनकर रह गयी।

४ अंग्रेजोंमें ऐसे अनुदार बडी सख्यामें थे जो भारतीयोको सदाके लिए हीन और तुच्छ बनाकर रखना चाहते थे, पर उदार विचार वाले अंग्रेजोकी

सख्या भी कुछ कम न थी, जो समझते थे कि देर तक भारतवासियोको इस प्रकार रखना सम्भव नही है और सम्भव हो भी तो उचित नही है।

आत्मगौरव और आत्म-सुधारकी दो धाराएँ

फिर यूरोपमे भापके आविष्कारके कारण जो औद्योगिक क्रान्ति हुई और जिसकी परिधि तीव्र गतिसे विश्वव्यापी होती गयी उससे बचना-बचाना सम्भव न था। इसलिए कुछ समझकर, कुछ बे-समझे, कुछ स्वेच्छासे, कुछ बेबसीके कारण उन्हे शिक्षा, न्याय-व्यवस्था, कल-कारखाने, मतलब नई सभ्यताका अधिकाधिक परिचय एव लाभ भारतीयोको देना पडा। प्रेस एव अखबारोके कारण दुनियामे एक नई चेतना आ रही थी। यहाँ भी, समयपर, वह आई। इसके प्रभाव-तले हममेसे एक वर्गने अपने देश एव सस्कृतिके प्रति गौरवके भावका प्रचार किया, दूसरेने उन्मुक्त हृदयसे यूरोपसे नवीन दृष्टिकोणके लाभ ग्रहण किये, अपनी परम्पराओके दोपो एव अपनी दुर्बलताओकी ओर ध्यान दिया। 'जो पुराना है वह अच्छा ही है' इसके विरुद्ध भी कुछ प्रबुद्ध व्यक्ति उन्मुख हुए।

५ उच्च मध्यवर्ग राजनीतिक शक्तिसे हीन होकर भोग-विलास, अधिकार, जायदादमे फँसकर जीवन बिताता था। उसकी शिक्षाका कोई

उच्च वर्गों मे शिक्षणका रूप

प्रबन्ध न था। जहाँ था भी वहाँ उसका ढाँचा बहुत पुराना, अनगढ और अविकसित था। वे लोग उस्तादोसे थोडी अरबी-फ़ारसी पढ लेते, कुछ हिन्दू सस्कृत भी पढते। जो हिन्दू दरबार एव नौकरियोसे सम्बन्धित थे या जिनका रब्त-ज़ब्त उच्चवर्गीय मुसलमान शरीफो अथवा अदालतोसे था वे भी फारसी पढते। हिन्दू-मुसलमानके बीच भापाका कोई झगडा न था। उच्चवर्गोकी ज़िन्दगी चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान प्राय एक-सी थी। इनमे रस्मराह, मेल-मिलाप भी था। पर शिक्षणमे भापा-ज्ञान ही मुख्य था। भापाके माध्यममे अधिकतर काव्य एव पारम्परिक धर्मग्रन्थोका अध्ययन होता था।

६. अन्तिम मुगलोंके जमानेमें सांस्कृतिक तलपर कुछ बाते हुई। इनमें पहिली बात है उर्दूका अभ्युदय। तुर्कों, ईरानियों एवं भारतीयोंके ससर्गसे एक नई जबानका जन्म हुआ। हिन्दकी जबान होनेके कारण यह हिन्दवी कहलायी। वलीने इसे बचपनमें सम्भाला, हातिम, अबरू, मजहर और खाँ आरजूने इसे होशयार किया। बादमें यही रेख्ता हो गयी। शुरूमें यह एक ग्रामीण बोली थी—उस समय शरीफजादोंने इसे नहीं अपनाया। वे फारसी लिखने और बोलनेमें अपनी शान समझते थे, फ़ारसीयत एक प्राचीन सांस्कृतिक गठनका प्रतीक थी इसलिए उसमें पारायण होना शराफतका, शिष्ट जीवनका एक प्रमाणपत्र था। पर हिन्दवी या रेखतामें एक अजब लोच थी, उसमें इस देशकी मिट्टीकी सुगन्ध थी (यद्यपि उसका वातावरण फारसीका ही था) इसलिए धीरे-धीरे उत्तर, फिर दक्षिण और फिर उत्तरमें अनेक कवियोंने उसे अपनाया। ज्यादातर ऐसे थे जिन्होंने शौकिया, एक नये प्रयोगके आकर्षणके कारण, उसे अपनाया। यही बादकी उर्दू है जो दरअस्ल हिन्दीकी ही एक धारा है। इशा, सौदा और मीरतक़ी 'मीर'ने इस भाषाका सस्कार किया, बादमें आतिश और नासिखने उसे संवारा। शाह आलमने उसे दरबारमें सरक्षण दिया। मतलब अन्तिम मुगलोंने स्वयं मिटते हुए भी उर्दूके विकासमें काफी योग दिया। दूसरी बात हुई अंग्रेजों, फरासीसियों, डचोंका भारतीयोंसे ससर्ग। इनके साथ एक नया दृष्टिकोण, एक नया जीवन-गठन आया। एक सिहरन हुई, नींदमें एक फुरेरी-सी आई और पश्चिमके तीव्र, कर्कश, नादने मानो झिझोड़कर हमें जगा दिया। अंग्रेजोंके अभ्युदयके साथ यूरोपीय शिक्षण प्रणाली, प्रेस, अखबार, शासन-व्यवस्था, न्याय-प्रणाली आई। औद्योगिक सभ्यताका शैशव आरम्भ हुआ। दासता तो आई पर एक सुरक्षा एवं निश्चितता प्राप्त हुई। इस नवीन जीवन-क्रमने उच्च एवं मध्यवर्गोंको प्रभावित किया। सागर-सन्तरणको पाप

उर्दूका जन्म (side-heading beside lines 3–4)

नवीनका आकर्षण (side-heading beside lines 22–23)

माननेवाले भारतीयोको समुद्री हवाने खडवडा दिया। नवीनके प्रति एक रहस्यका आकर्षण उत्पन्न हुआ।

७ अन्तिम मुगलोका जीवन कष्ट, मुसीबत, करुणासे पूर्ण एक ऐसी कहानीके रूपमे प्रकट हुआ जिससे इसान सवक ले सकता है। शाहआलमने ठीक ही कहा था—

सरसरे हादसा बर्खास्त पये ख्वारिए मा।
दाद बर्बाद सरोवर्ग जहाँदारिए मा।

और उनकी बडी वेदना घनीभूत होकर अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह 'ज़फर'के साथ रगूनकी एक अँधेरी कोठरीमें जहाँ केवल पत्नी रोनेके लिए रह गयी थी, यो बरस पडी थी—

अपने मरनेका गम नहीं लेकिन,
हाय, तुझसे जुदाई होती है।

यह गम केवल अपने मरनेका, अपने मिटनेका ही गम नही है, यह एक प्राचीन परिपाटी, एक प्राचीन विरासत, एक जीवन-प्रणाली, एक सभ्यताके मिटनेका गम है। इसीलिए वह गमे जानाँ ही नही, आत्म-वेदना ही नही, गमे दौराँ—युग-वेदना—भी है। एक दुनिया, युगोकी जानी-पहचानी, परखी-परखाई दुनिया मिट रही थी और एक मादक, नवीन पर अज्ञात दुनिया, भविष्यके पर्देमे वनती हुई दुनियाकी परछाइयाँ पहिलेसे ही फैलने लगी थी।

आत्म-वेदना ही नहीं युग-वेदना भी

सक्रान्तिके इसी कालमे गालिबका जीवन वीता—वह पैदा हुए, पले, वढे, दुनिया देखी, खेले-खाये, रोये-हँसे और चले गये। वह ईरानी सस्कारोसे पूरित थे। फारसीयत उनके खूनमे प्रविष्ट हो गयी थी और उसके प्रति दृढ आग्रह उनके जीवनमे अन्त तक, दिखाई देता है। जैसे पुराने पण्डित वर्गमें हिन्दीके प्रति उपेक्षा और उपहासका भाव था वैसे ही

ग़ालिब और उनके वर्गमें इस नई उर्दूके प्रति तुच्छताका भाव था। गालिबकी ज़िन्दगी भी वही रईसज़ादोंकी स्वच्छन्दताके लिए तड़पती हुई

प्राचीनके बीच नवीनकी पकड—यह थे गालिब !

ज़िन्दगी थी, जिसके बारेमें हम ऊपर कई जगह नवेत कर चुके हैं। ज्यादातर वह एक सतही ज़िन्दगी थी पर उनकी तथा उनकी रचनाओंकी पृष्ठ-भूमिपर जो ऐतिहासिक प्रवृत्तियाँ एव शक्तियाँ उभरीं उन्होंने उनको समझा, एक सीमातक उनकी ओर आकृष्ट भी हुए। चूँकि ज़माना बदल रहा था, पुरातन और नूतनकी आँख-मिचौनी हो रही थी, उन्होंने दोनोंको ग्रहण किया बल्कि यों कह सकते हैं कि परिच्छद, पोशाक पुरानी होते हुए, और उसमें एक पुराने दिलकी धडकनें होते हुए भी अभिव्यक्ति, कल्पना, पकड और सूझ नई थी—दिल पुराना पर दिमाग नया। प्राचीनकी जडोंमे रस ग्रहण करनेवाला दिलपर नवीनकी ओर देखती चिन्तनाकी आँखें, कुछ जगे कुछ खोये हुए, स्वप्निल कल्पनाओंकी रंगीनियोंमे डूबे पर उनकी उपयोगिता एव सत्यताके प्रति शकाएँ जिनके ओठोंपर मचलती और आँखोंमें चमककर व्यग करती हैं, यह थे ग़ालिब। अपने ज़मानेके पतनकी परछाइयोंके बीच गर्भमें करवट लेते नवीनका अभिवादन करनेवाले।

उनके समयमें भारतीय समाज, सभ्यता, शासन सब टूट रहा था। मुग़ल वैभवकी प्रतीक दिल्ली, विदेशोंमें अफ़वाहकी तरह प्रसिद्ध दिल्ली,

विधवा-सी उपहास-का साधन दिल्ली !

विदेशियोंके दिलोंपर स्वप्न और दिमागपर जादूकी तरह छाई दिल्ली लुट-पिटकर पस्त हो गयी थी। ऐसी पस्त कि उसके लिए कविगण रोते, नृपतिगण सिर धुनते, शिष्ट एव शिक्षित-जन आश्चर्यसे अभिभूत होते और जन-सामान्य वेदनाकी घूँट पी-पीकर रह जाते थे। वह विधवा-सी हो रही थी। एक दिन उसके भृकुटि-विलासपर राज्य बनते-बिगडते थे, उसकी मुसकराहटसे अगणित मन-प्राण शीतल होते थे, एक दिन वहाँ-से 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'का घोष उठता था, एक दिन उसकी

शोखीपर उसकी नाज़ोअदापर राजमुकुट उलटते थे, उसके चरणोमे शत-शत मस्तक अर्पित होते थे, एक दिन वह मसारका स्वर्ग थी पर आज वही भूलुण्ठिता थी। जो आता उसे मसल देता, जो आता उसके दिलके जख्म कुरेद कर देखता कि यह नाट्य तो नही है, जो आता उसकी अस्मतपर हाथ डालनेको लोलुप। वह सिसकती है और लोग हँस देते हैं, वह रोती है और लोगोका मनोरजन होता है, उसकी लटे सचमुच एक अँधेरेकी सृष्टि करती है, एक ऐसे अँधेरेकी जिसमे तडपती रूहोका रोदन, मसली लालसाओका क्रन्दन, बीते वसन्तके करुण स्मरण और अतीतकी शत-शत स्मृतियोका दर्शन है। वह दिल्ली जिसके वैधव्य-में, सारी पस्तीके बावजूद, एक अद्भुत आकर्षण था—डूबते हुए सूर्यकी लालिमाका आकर्षण।

भारतीय जीवन उथला हो रहा था। उसकी गरिमा नष्ट हो गयी थी। जीवनकी गहराई और पकड खो गई थी, दर्शन एव तत्त्वज्ञान दिल-बहलावका साधन बन गये थे। पर पतनमे, मिटती हुई एक लम्बी जीवन-विधिके पीछे तेजी-से ऊपर उठती एक नई सभ्यता, एक नई जीवन-विधिकी आवाजे, कुछ अस्पष्ट-सी, आने लगी थी। पुरानी सभ्यता मृत्युकी वेदनामे करवटें लेती थी और उसके अन्दरसे अँगडाइयाँ लेता नवीन फूट-फूट उठता था।

मिटते प्राचीनमेसे फूटता नवीन

गालिबने नये ज़मानेकी, आते हुए नवीनके चरणोकी धमक सुनी। यह बूता तो उनमे न था कि एक नई राह, एक नई दुनिया, एक नया समाज वह गढते, इतना ही क्या कम था कि प्राचीन शृखलाओको अपने तनमे नही तो मन-से अवश्य उतार दिया और समझा कि जो नया आ रहा है वह हमारे बावजूद, उपदेशकोके नाक-भौ सिकोडनेके बावजूद आकर रहेगा। इस-लिए उसे अपनाना ही होगा, इसलिए कि वही इस युगका सत्य है।

गालिबका कार्य

इसीलिए उनमें अँग्रेज़ोंके प्रति, अँग्रेज़ी समाजके प्रति एक रुझान हम देखते हैं। उन्होंने कभी भूलकर अंग्रेज़ोंका विरोध नही किया, १८५७ के उन तूफानी दिनोंमें भी नहीं, क़िले और बादशाहके सम्पर्कमें रहते हुए भी नही। इसे उनकी देशभक्तिका अभाव भी कहा जा सकता है पर वस्तुस्थितिको समझने और ग्रहण करनेकी उनकी दृढताका प्रमाण भी इसमें सन्निहित है। यह दिल्लीकी बदकिस्मती है कि उसके पतनके उस ज़मानेमें किसी शायरके ओठोंपर विद्रोहका वह बिगुल अपनी शायरीमें नहीं तड़पा कि कौमकी स्वप्न-विजडित आत्माएँ—ख्वाबीदा रूहें—एका-एक जग पड़तीं। ग़ालिबकी ज़िन्दगीका जो गठन था उसमें यह उम्मीद नही की जा सकती थी पर इससे उन्हें देशद्रोही नही कहा जा सकता। वह अंग्रेज़के प्रति अनुकूल इसलिए थे कि वह उस ज़मानेका एक सत्य था जिसे इन्कार करना ज़मानेको इन्कार करना होता। अंग्रेज़ोंके साथ जो जीवनकी चमक-दमक आ रही थी, जो जीवन-विधि आ रही थी उसमें लाख दोष सही पर एक उन्मेष था, संसार-सुखको पूर्ण उत्साह एवं उमगसे ग्रहण करने, ज़िन्दगीका अधिकसे अधिक रस लेनेकी वृत्ति थी। यह वृत्ति ग़ालिबकी उत्फुल्लता, रसग्राहिणी भोग-प्रधान जीवन-वृत्तिके भी अनुकूल थी। वह दिल्लीकी बरबादीपर रोते हैं पर अंग्रेज़ोंके आगमनपर सन्तुष्ट हैं। वह बादशाहके सेवक और पार्षद हैं पर उनके मिटनेपर हम उन्हें रोते-तड़पते नही देखते। युगकी ऐतिहासिकताका ग्रहण उनके जीवन-का सत्य है।

अंग्रेज़ोंको इन्कार करना ज़मानेको इन्कार करना होता

١

ग़ालिब : मानसिक पृष्ठभूमि और मानवीय संवेदनाएँ

ग़ालिबके जीवन और काव्यमें सर्वत्र उनका मानवीय रूप बिखरा हुआ मिलता है। उसकी बुराइयाँ-भलाइयाँ, दोष-गुण दोनों इन्सानके दोष-गुण हैं। यही सामान्यता उसकी असाधारणता है। हमारा अभिप्राय यह है कि उनका निर्माण अपने युगके एक जागरित मानवके समानान्तर होते हुए भी अनुभूति एवं कल्पनामें उससे कहीं तीव्र है और विरोधी जलवायु एवं तूफानोंके बीच भी वह मानवकी उस बुभुक्षा, उस प्यास, उस उत्कण्ठा तथा उन महानुभूतियोंकी रक्षा कर सका है जिनके कारण जीवनका रथ कभी युगोंकी लीकपर चलता और कहीं उसे मिटाकर नई लीकें बनाता है तथा मनुष्यको नई शक्ति, नये मूल्य एवं नई निष्ठाएँ प्रदान करता है।

मानवकी वह बुभुक्षा और प्यास!

ग़ालिबके निर्माण-तत्त्वोंका अध्ययन करनेमें हमें उनमें परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। ये अन्तर्विरोध या परस्पर-विरोध व्यक्ति एवं युग दोनोंके अन्तर्विरोध हैं। व्यक्तिगत एवं वर्गगत अहंसे भरा हुआ पर बदलते हुए जमानेसे यों तंग कि हर क़दमपर वह अहं पददलित होता है, किसीके सामने हाथ फैलानेमें शर्मका अनुभव, फिर भी सदा हाथ फैलानेको बाध्य, जमानेके दु खको समेट लेनेका जज़्बा लेकर भी अपनी तंगीसे दलित, उमंगों और रंगीनियोंकी एक दुनिया दिलमें बसाये हुए, फिर भी क़दम-कदमपर असफलता एवं निराशासे उत्पीडित,

अन्तर्विरोध व्यक्ति और युग दोनोंके अन्तर्विरोध हैं

अपनी फारसीयत एव फारसी रचनापर आत्म-मुग्ध, किन्तु युगकी प्रतिहिंसा-से ऐसा प्रताडित कि जिस रेखता (उर्दू) को पांवकी धूल समझता रहा उसीने उसे अमर कर दिया और उसकी लोकप्रियता फारसी काव्यको खा गयी। रहन-सहन (वज़ा) मे सामन्ती, दिलसे रईस, खूनसे मुगल, रुचिसे ईरानी–फारसी–और मजबूरी तथा परिस्थितिसे हिन्दुस्तानी गालिब अनेक व्यक्तित्वोका व्यक्ति है, अनेक रगो का चित्रकार है, अनेक अन्तर्विरोधोका आकर है।

अन्तर्विरोधोको समतल करनेवाला तत्त्व

किन्तु इन सब अन्तर्विरोधोको समतल कर देनेवाली एक चीज़ है, दुनिया और इन्सानको प्यार करनेकी उसकी निष्ठा। यह उसकी समस्त विषमताओ, सब नाहमवारियोको ढंक लेती है, उसकी सम्पूर्ण दुर्बलताओ और अपूर्णताओको अपने अकमें समेट लेती है। यही वह जादू है जिसके कारण उदासी और दु खकी घटाऍ प्यारकी बिजलियोंसे चमक-चमक उठती है और भावनाकी धरती सवेदनाओकी अजस्र वर्षासे तृप्त होकर उर्बरा हो उठती है। वह लाख बुरा हो, पर इन्सानका दिल उसकी हर वाणीमें बोल-बोल उठता है—देवताका नही, इन्सानका दिल, गर्म-गर्म खूनसे भरा दिल जो अपनी अगणित शिराओमें जीवनकी प्यास लिये चलता है।

वह ज़माना!

गालिब जिस ज़मानेमे पैदा हुआ वह मुगल साम्राज्यकी सन्ध्या थी। वह एक ऐसी सभ्यतामे पला जो ऊपरसे मोहक बनी हुई थी, पर अन्दरसे इतनी खोखली हो गयी थी कि मृत्यु ही उसकी मुक्ति थी। उस गठनका शीराज़ा तेज़ीसे बिखर रहा था। इस बिखरावके क्रमको बहुत कम लोग देख पाते थे। नियतिने लोगोको मोहाविष्ट कर रखा था और उच्च वर्गके लोग उस बिनाशकी ओरसे आँखें मूँदें अपनेमे ही सिमट चले थे जो तेज़ीसे उनकी ओर दौडा चला आ रहा था। चरित्र राष्ट्रीय न होकर बहुत कुछ वैयक्तिक हो गया

था—निजी या समूहगत स्वार्थोंके पंकमें लिपटा हुआ। ग़ालिब ऐसे ही ज़मानेमें हुआ। बचपन दुलारसे पला, किशोरावस्था रंगरलियोंमें गुज़री, पर उत्तम संस्कारकी एक भी किरण न मिली। कोई निश्चित संस्कार बचपनमें न बन सका। न वातावरण था, न प्रेरणा थी, न बनानेवाला था। चैनसे गुज़रती थी और एक रईसज़ादेके लिए यही क्या कम था। स्वभावत उसमें विलासी जीवनकी परम्पराएँ पनपी। अपने वर्गके बहुत अधिक लोगोंकी तरह उसे भी विलासिता एव कामनाके तूफ़ानकी ज़िन्दगी मिली।

पर एक बातमे वह औरोंसे भिन्न था। उसे किसीकी छाया अधिक दिनोतक नसीब न हुई। उसकी खुशहालीके पीछे यतीमी झाँक रही थी।

खुशहालीके पीछे झाँकती यतीमी

उसीने उसको उच्छृङ्खल किया, दुनियाके खुले रास्तेपर अकेला छोड दिया, और उसीने हथौडोंकी चोटसे इसको गढा और तूफ़ानी थपेडोंसे इसमें जीवनकी गति उत्पन्न की। बचपनमें हम देखते है कि एक ओर आराम-आसाइशकी सब सामग्री प्रस्तुत थी, दूसरी ओर वह अनाथ था, तनसे भी और मनसे भी। इस सतहपर उसके दु ख-दर्दकी इन्तहा नहीं थी। यह स्थिति जीवन भर चलती रही और कभी समाप्त नहीं हुई। दो बरसका था कि बाप मरा, पाँचका था कि चचा मर गये। बच्चा था और घरमें अभाव न था, इसलिए यह दर्द, कुछ समयके लिए अन्दर ही अन्दर दब गया, पर यह इसके जीवनका एक महत्त्वपूर्ण एव स्मरणीय तथ्य है कि पाँच बरसकी उम्रके बाद इसका कोई सरपरस्त न रह गया। किसीके आगे झुकनेकी ज़रूरत न रही, कोई अनुशासन न रहा

निर्बाध जीवनकी डगरपर

(इसीलिए ग़ालिबके इश्क़में वह आत्मार्पणका भाव कभी न आया जो सामके मानवमें आध्यात्मिक अनुभूतियोंकी सृष्टि करता है)। चचाके मर जानेके बाद दुनियाकी रंगरलियोंमें डूबनेका रास्ता खुल गया। कोई रोक-टोक न रही। ज़रा ही बडा हुआ कि दिल्ली आया और एक उच्च वंशकी

लडकी इसे गले बांध दी गयी। वह सच्चे अर्थोमे गले ही बँधकर रह गयी, कभी दिलमे न उतरी, आँखोमे न चमकी, पाँवोमे गति न बनी, अरमानोमे न उभरी। जीवनके अन्तिम क्षणतक खटपट रही। उधर इशरतकी कीमत चुकानेमें, जो पास था, समाप्त हो गया, घरकी चीजे़ विक गयी और तव कठिनाइयोका जो सिलसिला शुरू हुआ वह ज़िन्दगी भर न टूटा। मरनेके वाद भी वाकी रहा। ज़िन्दगी सदा ऋणदाताओकी मोहताज रही। ३० वरसमें भाई पागल होकर मर गया। कई बच्चे हुए पर एक न जीया।

स्थायी पतझडका जीवन

जिसे गोद लिया वह भी चल वसा। पत्नीसे जिस जीवन-रसकी आशा थी, उसकी एक बूँद न मिली। ५० वरसकी उम्रमे जेल जाना पडा। इस प्रकार सुखके चन्द दिनो वाद दु ख जो आया तो ज़िन्दगी भर मेहमान वना रहा। जीवनके उद्यानमें चन्द दिन रहकर जो वहार गयी तो गयी, फिर सदा खिज़ांकी सनसनाहट, तोड और कुरेदन वनी रही।

वह दु खमे पला। दु ख उसकी ज़िन्दगीपर छा गया किन्तु उसके अन्दर जो जीवनकी प्यास थी उसने कभी उसके प्राणको, दिलको मरने

जीवनकी प्यास

न दिया। उसने दु खोकी चुनौती स्वीकार की और सदा उनसे लडता रहा। कभी हथियार नही डाले। ज़िन्दगीकी घाटियोमें भटकता हुआ निराश भी हुआ और दु खका, कलेजा मथनेवाला चीत्कार भी सुनाई दिया—

हे सब्ज़ ज़ार हर दरो-दीवारे-ग़मकद';
जिसकी वहार यह हो फिर उसकी ख़िज़ाँ न पूछ ॥१॥

× ×

जिसे नसीब हो रोज़ेसियाह मेरा-सा
वह शख्स दिन न कहे रातको तो क्योंकर हो ? ॥२॥

× ×

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुज़री 'ग़ालिब'
हम भी क्या याद करेंगे कि ख़ुदा रखते थे ॥३॥

[१. ग़मकद —दु खपूर्ण घरके द्वार व दीवार, मुद्दतोकी वीरानीके कारण लम्बी घाससे भर गये हैं, यही इस ग़मकद की बहार है तब हमारी खिज़ाँका हाल क्या पूछते हो ? २ जिसे मेरे जैसा रोज़ेसियाह—काला दिन—प्राप्त हो वह विवश है कि दिनको रात कहे क्योंकि ऐसा काला दिन, दिन तो कहा नहीं जा सकता। (भला उस दिनकी सियाही कैसी होगी जिसके आगे रात भी दिन मालूम होती है ?) ३ जब हमारी ज़िन्दगी ऐसे बुरे हालमें गुज़री (कि कभी कोई आरज़ू पूरी न हुई) तो हम भी क्या याद करेंगे कि हमारा भी कोई ख़ुदा था।]

पर ग़ालिबकी विशेषता यही है कि वह इतनेपर भी कभी ग़मका शिकार नहीं हुआ। किस्मतपर रोया भी है—कलेजेको टूक-टूक करने-

रोदनको मुसकराहट-की गोदमे उछालने-वाला इंसान

वाला रोना, दिलोको हिला देनेवाला रोना, किन्तु फिर इन रोदनको मुसकराहटकी गोदमें उछाल दिया है, एक आत्मविनोद (सेल्फ-ह्यूमर) में दु ख-दर्द खो गये हैं, और जीवन-की उमगोंके रग फिर उभर आये है, कामनाके पछीके डैने फिर फड-फडाने लगे हैं।

मतलब यह कि दु खोमें निढाल होकर वह कभी न बैठा, सदा लडता ही रहा। मजिलपर बैठकर रोनेकी जगह, रोते-हँसते और लडखडाते हुए राहपर आगे बढते जाना उसका शेवा था।

यह ठीक है कि ग़ालिबका ग़म उस कोटिका नही था जो मानवता-के बन्धन तोडनेको उद्यत होता है, जिसमें आदमी आकाश-कुसुम तोडने

को बेचैन हो उठता है और दु खका गला मरोड कर, पम्नीकी पसलियाँ तोडकर निराशाओके शव-पुजपर जीवनकी ज्योति और आशाके शख

अर्शपर उछालनेवाला ग़म नही

फूँकता है तथा स्वप्निल आत्माओको, ख्वाबीद-रूहोको बेदार कर देता है—ससारका चेहरा बदल देनेवाला गम जो इसानको अर्शपर उछाल देता है, वह गम जो बुद्ध और गांधीमे फूटता है, या और नज़दीक और नीचे स्तरपर उतर कर कहें तो वह गम जो 'हाली', 'जोश' और 'फैज़' वगैराको बेचैन कर देता है। स्वभावत उस माहोलमें, उस वातावरणमें, जिसमे गालिब पला था यह सम्भव न था पर यह गम ऐसा भी नही है कि 'मीर'के गमकी भाँति कलेजेके पोर पोरमें समा जाय, निकाले न निकले, हटाये न हटे, और ज़िन्दगीपर एक अपरिवर्तनीय ऋतुकी

वह गम भी नहीं जो कभी दूर न हो

तरह छा जाय, गम जो जिसे छूता है उसे रुलाता है और रुलाता है, जिसकी आँखोपर उतरता है उसकी ज्योति छीन लेता है, जिसको डॅसता है उसे सदाके लिए अपने आगोशमे, आलिंगनमें, यो जकड लेता है कि फिर छुटकारा नही।

इन दो आत्यन्तिक सीमाओके बीच एक गम और होता है, जो स्वस्थ इसानका गम है, वह गम जिसमे विखरे हुए मजारोके बीच भी ज़िन्दगीके मेले लगते है, वह गम जिसमें इसान रोता है पर रोकर

दुनियासे मुहब्बत सिखानेवाला ग़म

समाप्त नही हो जाता, और धुल जाता है, ज़िन्दगीके लिए और शक्ति प्राप्त करके उठता है। गालिबका गम उस मानवका गम है जो ऊवकर, निराश होकर ससारका त्याग करनेको उतावला नही होता, वल्कि उसके वावजूद, क्या उसके कारण, दुनिया तथा उसकी चीजोंसे और मुहब्बत करना सीखता है। हर कठिनाई, हर दु ख उसे वताता है कि यह दुनिया कितनी सुन्दर, कितनी प्राणोन्मादक, कैसी मोहक है।

ग़ालिब हर हालतमें इसी दुनियामें रहना चाहता है और इसी दुनियाका रस और स्वाद लेनेके लिए प्रयत्नशील है। तूफान आते हैं, पैर लडखडा जाते हैं, जब वह स्वाद नही मिलता तो दु खी और निराश भी होता है पर कभी दुनियाका तिरस्कार नही करता। उसमे दुनियाके प्रति घृणा नही, एक अटूट लगाव है। इसीलिए ग़ालिबका गम मारक नही है। वह जीवनका ऐसा शृगार है जिसमें कामनाओका हुस्न अपनी अगणित अदाओंके साथ मचलता है, जिसमें जीवनकी गति है, जीवनका नर्त्तन है।

मुग़लका रग

ग़ालिब मुगल था। जीवनके विषयमें मुगलका दृष्टिकोण उत्फुल्लताका दृष्टिकोण है। मुगल रक्तमें धर्म और मजहबकी प्याम शिथिल होती है और जीवनकी रानाइयो एव रगीनियोंके प्रति उसमें तीव्र आकर्पण होता है। स्वभावत वह विलासी एव काव्य-सगीत तथा सौन्दर्यका प्रेमी होता है। ग़ालिबमें भी यही रग उभरा मिलता है।

यह अदम्य प्यास ही जीवनका उत्स और काव्यका प्राण है

उसमें ससारके प्रति कामनाका प्रबल आग्रह है। ससारके प्रति यह अदम्य प्यास ही उसके जीवनका उत्स है, उसके काव्यका प्राण है। अमित कामनाएँ उनके जीवन और काव्यसे फूटती हैं। आले अहमद 'सुरूर'ने ठीक ही लिखा है—"उन्हें बचपनकी तफरीहात[1], जवानीकी रँगरलियो, ऐशोइशरत[2]की बहारो, सबमें हिस्सा मिला, अगर्चे उनके अरमान निकलनेपर भी न निकले★। वह दरियासे सैराब[3] होते हुए भी प्यासे रहे। यह तिश्नगी[4], यह प्यास,

---

१ सैर-सपाटा, विहार, मनोरजन, २ विलास, ३ लबरेज, पूर्ण छके हुए, ४ पिपासा।

★ हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पै दम निकले,
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।

यह बेचैनी, यह बहुत कुछ हासिल[1] होते हुए भी बेहासिलीका एहसास[2] मामूली नही है।"§

और यह अमित प्यास किसी छिछोरेकी प्यास नही है। औरत और शराब कोई उसकी जिन्दगी नही हैं, जीवनके उल्लासके साधन-मात्र हैं। वह नशा करता है पर नशेबाज़ नही है, नशा एक मस्तीका साधन भर है—

मयसे गरज़ निशात[3] है किस रूसियाहको[4],
एक गूना बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए।

जीवन गति है

इसी प्यासने उसे गति दी है। वह जानता है कि जीवन स्वयं गति है। जिन्दगी एक प्रवाह है, एक रवानी है, एक सफर है। मृत्यु एक ठहराव है, एक मंजिल है, एक गतिहीनता है। इसीलिए वह मंजिलका नही राहका कवि है। जब तक गम है, खुशी है, चल-चलाव है, गति है, तभी तक यह जिन्दगी है। इसलिए वह बराबर चलते रहनेमे विश्वास रखता है। यहाँ आयु निर्बन्ध होकर नाच रही है। उसपर किसी प्रकारका नियन्त्रण नहीं है—

[5]रौमें है [6]रख़्शे उम्र कहाँ देखिए थमे,
नै हाथ बागपर है न पा है रकाबमे।

[आयुका अश्व—काल अश्व—इस तीव्र गतिसे भाग रहा है कि बाग हमारे हाथमे और पाँव रकाबसे निकल गये है, कुछ मालूम नही कि यह कहाँ जाकर थमता है।]

१ प्राप्त, २ अनुभूति, ३ ऐश, ४ कृष्णमुख, पापी, ५ गति, ६ लाल और सफेद घोड़ा।

§ नक्दे गालिब, पृ० १२०।

यह मानसिक स्थिति है कि निष्क्रिय शान्तिकी अपेक्षा जिन्दगीका शोर-गुल और हगामा, फिर चाहे वह रोना ही हो, अच्छा लगता है। कहते हैं—

एक हंगाम: पै मौक़ूफ है घरकी रौनक़,
नौहए गम[1] ही सही, नग़मए शादी[2] न सही।

[घरकी शोभा एक चहल-पहलपर निर्भर है। इसलिए आनन्दका गान न हो तो शोकका गीत ही चलता रहे।]

यह उमग है कि वधस्तम्भकी ओर जाते हुए भी जिन्दगीकी वही अकड और आह्लादका वही रग है—

[3]मक़तलको किस निशात[4]से जाता हूँ मै कि है,
पुरगुल ख़याल ज़ख्मसे दामन निगाहमें।

इसीलिए ग़ालिबका दु ख जीवनको और मोहक बनाता है। फिर यह गम भी अनेक कोटियोंमें बँटा हुआ है। इन कोटियोंमें इश्कका गम (प्रेम-वेदना) श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें जीवनानन्द है, क्योंकि यह दर्द भी है और दवा भी है—

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्त[5]का मज़ा पाया,
दर्दकी दवा पाई दर्द वे दवा पाया।

फिर जब गम ज़िन्दगीसे लिपटा हुआ है तब इश्क़के ग़मसे बच भी जाते तो दुनियाका ग़म, जीविकाका गम, कोई और गम तो होता ही। तब यही अच्छा है—

गम अगर्चे जॉ-गुसिल[6] है पै कहॉ बचें कि दिल है,
ग़मे इश्क़ अगर न होता गमे रोज़गार होता।

---

१ शोकका गीत, २ आनन्दगान, ३ वधगृह, ४ आह्लाद, ५ जीवन, ६ हृदयविदारक, प्राणघातक।

गालिबके सारे जीवनमे कोई न कोई गम दिखाई पडता है। कभी इश्कका गम है, कभी रोज़गारका गम है यहाँ तक कि कभी अस्तित्व-

ग़मोंको चीरकर बहते हुए सुख और हास्यके झरने।

का गम (गमे हस्ती) भी है। पर इन गमो-को उलीचकर उसने सुख और हास्यके झरने बहा दिये है। बहुत दु ख उठाया है उसकी जिन्दगी आखीर तक दु खोसे भरी रही। बचपनसे वृद्धावस्था तक दु ख ही दु ख—यतीमीका दु ख सतानहीनताका दु ख, स्त्रीका दु ख, पैसेका दु ख, उत्तरकालमे अपने साथियो-सहयोगियोसे बिछुडनेका दु ख—मोमिन मरे, इमामबख्श सहबाई तोपसे उडा दिये गये, मयकशका प्राण गया, आरज़ुदाको कालापानी हुई, शेफ्ता दण्डित हुए—दिल्लीकी सल्तनत खत्म होनेका दु ख, दुनिया-द्वारा अपनी ठीक पहिचान न होनेका दु ख, वश-मर्यादा निभानेकी कठिनाइयोका दु ख। पर ये दु ख कभी उसकी जिन्दगीकी हविस तोडनेमे समर्थ न हुए। ऐसा नही कि असफलताकी निराशाने दिलको छेदा नही। गालिब निराश हुआ है और खूब हुआ है। मौनमे कलेजेका दर्द सीमाको पहुँच गया है और कह भी डाला है—

ख़मोशीमें निहाँ खूँगश्त लाखों आरज़ूएँ है,
चिरागे मुर्दः हूँ मै बेज़बाँ गोरे गरीबाँका।

[हमारे मौनमें लाखो कामनाएँ खून हो होकर, प्रच्छन्न हो गयी है। मैं बेज़बान परदेशियोकी क़ब्रोका मृत—बुझा हुआ—दीपक हूँ।]

पर जो आदमी स्वर्गके लिए भी दुनियाके आराम-आसाइश और मजे छोडनेको तैयार नही हुआ वह निराशामे कबतक पडा रह सकता था। एक क्षणकी पस्ती और फिर वही जिन्दगीका झटका, जो कहता और कहलाता है।

न होगा यक बयाबॉमॉदगीसे ज़ौक़ कम मेरा,
हुबाबे मौज़ए रफ्तार है नक़्शे क़दम मेरा।

[एक बयाबानको पार करनेकी थकान मेरी (यात्राकी) उमगको कम नही कर सकती। मेरा पद-चिह्न मेरी गतिकी तरगमे सिर्फ बुद्बुद्की भाँति है। अर्थात् जैसे लहरोमें अगणित बुलबुले उभरते रहते हैं पर उनका लहरोकी गतिपर कोई प्रभाव नही पडता वैसे ही इस यात्रामें मेरे चरण-चिह्नोका मेरी गतिपर कोई असर नहीं है, थकानसे मेरी उत्कण्ठामें कोई कमी नही आई है।]

यह विश्वास ही गालिबका ऐश्वर्य है।

अपनी शक्तिमें यही दृढ विश्वास गालिबका ऐश्वर्य है। यही विश्वास जीवनको गति देता है—गति जो, परिवर्तनोके बीच भी, अगणित स्वादो-का अर्घ्य लिये उसके पास आती है। एक फारसी क़सीदेमें तो उसने यहाँ तक कहा है—"मेरा उन्माद मुझे बैठने नही देता। आग जितनी तेज़ है उतना ही मैं उसे हवा दे रहा हूँ। मौतसे लडता हूँ और नगी तलवारोपर अपने जिस्मको डालता हूँ। तलवार और कटारसे खेलता हूँ, तीरोको चूमता हूँ।" यह वृत्ति उसके

जहाँ ग़म ग़म नहीं सुखकी सीढी है।

ग़ममें एक अजीब कशिश पैदा कर देती है, एक अद्भुत आकर्षण भर देती है, यहाँ तक कि गम गम नही रह जाता, सुखकी सीढियाँ बन जाता है। दु खको सुखमें ढाल देनेका यही करिश्मा गालिबके काव्य-का प्रधान तत्त्व है, यही उसके काव्यकी जीवन्त पृष्ठभूमि है।

× ×

गालिबने इश्क किया, गृहस्थी बनाई, दोस्ती की, मनकी गहराइयोमें पैठा पर ऐसा कभी न हुआ कि एक बिन्दुपर पहुँच कर रुक गया हो, एक तत्त्व या तथ्यमें केन्द्रित होकर रह गया हो। अन्तर एव बाह्य दोनो

उसके जीवनानन्दके साधन है। 'मीर'मे यही न था। वह अन्तरकी दुनियासे कभी बाहर न निकले, अन्तर एव बाह्य दोनोको मिलानेकी कभी कोशिश न की। इसीलिए उनमे वेदना और अनुभूतिकी गहराइयां है, अतलस्पर्शी पकड है। दिलकी एक ऐसी दुनिया है जिसका चप्पा-चप्पा उनका जाना हुआ है। वह उसी पर मुग्ध है, उसीमे खो गये है। बाहरी दुनियाकी ओर नज़र ही नही डालते। पर गालिब, दिलके दयारमे सैर कर लेनेके बाद बाहर भी निकल आता है और वहांकी बहार और खिज़ांका आनन्द भी लूटता है। उसमे एक अद्भुत व्यापकता और विविधता है। केमरेके शीशेकी तरह जो कुछ सामने आया उस सबका प्रतिबिम्ब उसके मानसने ग्रहण कर लिया। यहां दिल धडकता है पर हुस्नकी अदाकारियोपर निछावर भी होता है, यहां भावनाकी दृष्टि है पर मासलताका स्पर्श भी है।

गालिब और मीरके मानसिक निर्माणमे अन्तर

मैने ऊपर कही लिखा है कि गालिबमे एक मुगलकी दुनिया-परस्ती और तबीयतकी रगीनी है। पर यदि इतना ही होता, यदि उसके जिस्ममे दौडते हुए गर्म-गर्म खूनकी मांग बहुत तेज़ होती तो उस जमानेके मुगलोकी तरह बीबीको जो उसकी स्वच्छन्दताके पांवमे बेडी-जैसी थी और जिसे वह सदा वैसी अनुभव करता रहा, छोड रँगरलियोमे डूब जाता। अगर एक भारतीयकी अनुभूति तीव्र होती तो वह घर छोडकर फकीर हो जाता, फिर चाहे तसव्वुफके रँग उसमे उभरते या ज़ाहिद और वाइज़का रोल वह इख्तियार करता। या फिर ऊँचाईपर निखर कर प्रवक्ता बन कर एक सदेश, एक पयाम देनेकी कोशिश करता। पर वैसी बात न थी। उसमे अनेक व्यक्तित्वोका सामञ्जस्य था, अनेक धाराएं एक हो गयी थी। यह व्यक्तित्व-बहुलता (Multiplicity of Personality) गालिबको समझने-पानेकी एक प्रधान कुजी है।

गालिबकी कुञ्जी

गालिब ख़ूनसे मुगल, स्वभाव एवं रुचिसे ईरानी तथा रहन-सहनके सस्कारसे हिन्दुस्तानी है। अन्दरसे असीम प्यास लिये हुए भी, मुगल ख़ूनकी वह गर्मी लिये हुए भी, जिसमें ऐशोइशरतकी, विलासिताकी अक्षय मांग है, छिछोरा नही है। उस गर्मी और प्यासपर भारतीय सस्कृतिकी शालीनता एव ईरानी सस्कृतिकी विश्वानन्दी धाराकी कुछ न कुछ छाप स्पष्ट है। स्वभावत उसकी प्यास एक ऐसे स्वस्थ मानवकी प्यास बन गई जिसकी रगोमे गर्म ख़ून बहता है, पर जिसके दिमागमें मानवी मूल्योका एहसास भी है'। डा० अब्दुल लतीफने लिखा है कि "गालिबका इश्क़ बिलकुल माद्दी है, उसकी माशूक बाज़ारू है।" यह सही है, पर एक सीमातक। इसमें सत्य है, पर आशिक। उसमें कही-कही बाज़ारूपन ज़रूर आ गया है, पर वह बाज़ारू नही है। वह न स्वर्गीय है, न बाज़ारू, वह औसत इन्सान है। माद्दी भी है, क्योकि जैसा मैं कह चुका हूं, ग़ालिबके लिए जो कुछ है, यही दुनिया है—इसके बाद जो कुछ है, उसमे उसको विश्वास नही।* वह इसी दुनियाका है—अगणित जिह्वाओसे दुनियाका रस और स्वाद लेनेवाला, कामनाके अगणित नयनोंसे उसकी सौन्दर्य-भगिमाओको देखनेवाला, कल्पनाके सहस्र-सहस्र करोंसे उसे स्पर्श करनेवाला। हम इसे पसन्द न करें, यह और बात है। निजी रूपमें मैं स्वय इसे पसन्द नही करता।

क्या उसकी माशूका बाज़ारू थी ?

पर असलियत यह है कि वह इस भौतिक जगत्में ही अन्तर्जगत्, अतीन्द्रिय जगत्का सौन्दर्य देखता है। इसीलिए प्रेयसीके हुस्नकी सौ-सौ अदाएँ उसे खीचती हैं। वे अदाएँ, जो ज्यादा गहरे, अध्यात्म-प्रवण व्यक्तियोंके अन्तर्मनको एक गूढ एव रहस्यमय स्वाद, एक अव्यक्त आनन्दसे

---

* हमारे बच्चनकी तरह जो कहते हैं —

इस पार यहाँ मधु है तुम हो उस पार न जाने क्या होगा ?

भर देती है, गालिबमे स्पर्श और ग्रहण, चुम्बन और आलिंगनकी प्यास पैदा करती है । गालिब इसे छिपाता नही, वह कभी सकेत नही करता कि उसका प्रेम ईश्वरीय है, वह कभी नही कहता कि उसकी प्रेयसी तसव्वुफकी कभी पकडमे न आनेवाली और एक छलावे सी अदृश्य हो जानेवाली प्रेयसी है । उसका प्रेम मानवी है, उसकी प्रेयसी मानवी है, उसका सौन्दर्य मानवी है, उसकी, पकड मानवी है । स्वभावत उसमे बार-बार देखनेकी कामनाएँ उठती है, उसमे स्पर्शकी भावनाएँ मचलती है, उसमे माशूकको आलिंगनमे आवद्ध करनेकी तृष्णा है । पर इस हविस, इस तृष्णामे छिछोरापन नही है, बाजारूपन नही है । यहाँ प्रेयसीके सौन्दर्यमे ही विश्वका सौन्दर्य, अपनी सम्पूर्ण मोहक भगिमाओ, दिलकश अदाओंके साथ आकर सिमट गया है । यहाँ त्याग नही है, पर केवल भोग भी नही है या यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि भोगके लिए भोग नही है, वह एक अक्षय अतृप्तिमूलक तृप्तिके साधन-रूपमे है । इसीलिए उसमे एक रख-रखाव, एक सन्तुलन भी है ।

मानवी प्रेयसी

यहाँ उस वातावरणका स्मरण फिरसे दिलानेकी आवश्यकता है जिसमे गालिबका पालन-पोषण हुआ । वह एक उच्च मुगल घरानेमे पैदा हुआ, ईरानी सस्कारोंके तीव्र गन्ध युक्त वातावरणमे पला । फारसीयत उसकी घुट्टीमे थी—वह फारसीयत जो गुल और बुलबुल, मय और मीनाके कभी खतम न होनेवाले दास्तानसे भरी हुई थी । उसकी निश्चित परम्पराएँ थी । फिर वह मुगल सभ्यता एव शासनके सन्ध्याकालमे जन्मा और बढा । पिता और चचा कोई ऐसे सस्कार डालनेके पूर्व ही चल बसे जो उसकी जिन्दगीमे अनुशासन लाते । वह सोलह आना रईसजादा, एक रईसजादीसे विवाहित, उसकी सगत भी रईसजादोकी थी जिनमेसे अधिकाश जिन्दगीकी बाहरी खुशियो एव ऐशोइशरतमे डूबे हुए थे । इसलिए गालिबके अन्तर्मुख होनेका कोई सवाल ही न पैदा होता था । उसकी विशेषता यही है कि ऐसी परिस्थितिमे

वातावरण और सगति

भी उसने जिन्दगीकी लडाई खुद लडी, कभी उसने भागा नही और अपना रास्ता खुद बनाया—जीवनमे भी और काव्यमें भी। स्वभावत उसके काव्यमें न तो आकाशमें उडनेवाले देवोंकी वाणी है, न कीचडमें रेंगनेवाले वासना-कीटोंका चीत्कार है। वह इन दोनोंके बीचकी चीज है, वह एक भरपूर मानवकी वाणी है और यह ग़ालिबका कैरेक्टर है कि उसने अपनेको कभी नही छिपाया, जैसा था वैसा ही जाहिर किया। जहाँ प्रकट न करना था या कोई आवश्यक न था वहाँ भी अपनेको स्वाभाविक रगमें ही रखा, जिसमें पहिचानमें कोई धोखा न हो (यद्यपि खुद धोखा खाने और धोखा देनेवाले समीक्षको एव व्याख्याकारोने उसे इसपर भी नहीं बख्शा)। जीवन और काव्य सबसे उसकी यह ईमानदारीकी भावभूमि बिलकुल स्पष्ट है।

इसीलिए उसके काव्यमे हुस्नकी मचलती हुई तस्वीरोकी बहुतायत है। काशी और कलकत्तामें उसने जो सौन्दर्य देखा उसपर लहालोट हो गया है। निश्चय इस सौन्दर्यमें, जिसे सौन्दर्यको अपेक्षा रूप कहना चाहिए, शारीरिक आकर्षण है, कोई अशरीरी अनुभूति नही। पर इसमें बुतोंके आकर्षणका ही नहीं, प्राकृतिक हरीतिमाके आकर्षणका भी ज़िक्र है—

वह सब्ज़. ज़ारहाए[1] मुतर्रा[2] कि है ग़ज़ब
वह नाज़नी[3] बुताने ख़ुदआरां[4] कि हाय हाय।
सब्रआज़मा[5] वह उनकी निगाहें, कि हफ नज़र[6],
ताक़तरुबा[7] वह उनका इशारा कि हाय हाय।

---

१ हरीतिमाएँ। २ तरावट देनेवाली। ३ सुकुमारियाँ। ४ स्वय सज्जिता प्रतिमाएँ। ५ धैर्य-विघातक। ६ नज़र न लगे। ७ साहस और शक्ति देनेवाला।

इसी प्रकार दिल्लीमे भी एक प्रेयमीकी मृत्युपर जो 'नौहा' (शोक-गीत) लिखा था उसमे एक मानवी प्रेयमीके चिरविरहका रोदन है, उसमे

वासना ही जीवनका सत्य है

मासल कामनाओकी कराह है। गालिबने कही यह इशारा तक नही किया है कि उसका प्रेम अमानवीय, अशरीरी और वासनारहित है। वल्कि वासना ही उसके जीवनका सत्य है। पर वासनाका ग्रहण उसने इस ईमानदारी और निष्ठाके साथ किया है कि वासना वासना नही रह जाती। आत्यन्तिक आग्रह एव निष्ठाके कारणमें एक प्रकारका आध्यात्मिक सौन्दर्य पैदा हो गया है।

गालिबका काव्य शरीर-सौन्दर्य एव मासल प्रेमका काव्य होकर भी किसीको गिराता नही। उसमे लगावट है पर गिरावट नही। उसमे आग्रह है पर पशुत्व नही, उसमे प्यास है पर विष नही। उसमे दर्दकी तमन्ना है पर जिन्दगीका एहसास भी है, उसमे वेहोशी है पर एक अद्भुत सजगता भी है। उसमे भोग है पर कुछ न कुछ अर्पण भी है। वह अगणित जिह्वाओसे जीवनका रस चूसता है पर चूसकर रस दूसरोको देता भी है।

इसीलिए घोर सासारिक वासनाओका कवि होकर भी वह इसानको इस गहराईके साथ प्यार करता है, दूसरोके वच्चोको अपने वच्चोकी तरह अपना लेता है, दोस्तो एव शिष्योपर जान देता है, हर एकके दु ख-दर्दका शरीक है। इसीलिए उसमे दुनियाके प्रति वह प्रीति और निष्ठा है कि इसे छोड अमरताका सौदा करनेवाले खिज्रको ललकार कर कह सकता है —

वह ज़िंद हम है कि रुशनासे ख़ल्क[1] ऐ ख़िज्र,
न तुम कि चोर बने उम्रे जाविदाँ[2] के लिए।

---

१ ससारका परिचय रखनेवाले, २ अमर जीवन।

[ऐ ख़िज्र ! जिन्दा तो असलमें हम हैं कि दुनियामे चलते-फिरते और उससे पहचान रखते है न कि तुम जो अमर होनेके लिए चोर बने ।]

इसी निष्ठाके कारण, इसी ईमानदारीके कारण उसमें मानवीय संवेदनाओंका वह निखार है जो सूफ़ी और जाहिदमें नही मिलता । यह ठीक है कि वह अपनी आवश्यकताओंके लिए गिड़गिड़ाता भी है, पर यह न भूलना चाहिए कि दूसरोंको भीख माँगते देख, उनकी वेदना अनुभव कर, दर्दसे कराह भी उठता है । तीव्र एवं प्रबल आसक्तियोंके इस मानवकी जड़ोंमें एक प्रकारकी फ़क़ीरी, एक अनासक्ति है । एक जागरित सच्चे मानवकी तीव्र संवेदना उसमें है, बिना इसके क्या वह एक मित्रको, अपने एक निजी पत्रमें लिख सकता था—

तीव्र आसक्तियोंके मूलमे एक अनासक्ति भी है

"क़लन्दरी[1] व आज़ादगी व असियारी करम[2] के जो दुआवी[3] मेरे ख़ालिकने[4] मुझमें भर दिये है, बक़दर हज़ार[5] एक ज़हूर[6] में न आये । न वह ताक़त जिस्मानी[7] कि एक लाठी हाथमें लूँ और उसमें शतरंजी और एक टिनका लोटा मय सूतकी रस्सीके लटका लूँ और प्यादा पा चल दूँ, कभी शीराज जा निकला, कभी मिस्रमें जा ठहरा, कभी नजफ़ जा पहुँचा,

न वह दस्तगाह[8] कि एक आलमका मेजबान बन जाऊँ ।
अगर तमाम आलममें न हो सके न सही,
जिस शहरमें रहूँ उस शहरमें तो कोई,
नंगा-भूखा नज़र न आये ।

ख़ुदाका मक़हूर[9], ख़ल्कका मरदूद, बूढा, नातवाँ[10], बीमार फ़क़ीर,

---

१ फ़क़ीरी, २ श्रेष्ठता और कृपा, ३ दावे, ४ कर्त्ता, ५ हज़ारमें एक भी, ६ व्यक्त, ७ शारीरिक शक्ति, ८ सामर्थ्य, ९ दैवकोपग्रस्त, १० दुर्बल ।

नक्बत[1] मे गिरफ्तार। मेरे और मआमलात कलाम व कमालसे कतअ-नज़र करो,

वह जो किसीको भीख माँगते न देख सके,
और खुद दर बदर भीख माँगे, वह मैं हूँ।"

ऐसे समय उसकी निराशा समाजगत हो जाती है, उनका निजी दुःख युग-वेदनामें परिणत हो जाता है और अपनी असमर्थतापर कह उठता है—

न गुले नगमा हूँ न पर्दए साज[2]।
मै हूँ अपनी शिकस्त[3] की आवाज़।

यह 'अपनी शिकस्त' उसकी शिकस्त नही है। यह उस समाज-व्यवस्थाकी पराजयकी वाणी है जिसके पास एहसास तो था, अनुभूतियाँ तो थी पर निर्माणका कोई नया स्वप्न नही था।

राहसे बेखबर पर नवीन-का स्वागत करनेको उत्सुक

गालिबका जैसा निर्माण था उसमे उससे यह आशा नही की जा सकती कि वह एक नई दुनियाका सन्देश देगा, एक नये जगत्की राह दिखायेगा। इच्छा होती तो भी वैसी शक्ति न थी। वह ठीक-ठीक देख भी न पाता था कि नया मानव कब आयेगा या कैसा होगा पर उसकी विशेषता यह है कि वह पुरानेसे बँधा होकर भी नवीनका स्वागत करनेको उत्सुक है। ठीक राह उसे ज्ञात नही है पर उसकी खोजमे हर एक तेजीसे चलनेवालेके साथ कुछ दूर जाता है, गलती मालूम होनेपर रुक जाता है—

चलता हूँ थोडी दूर हर एक तेज रौके साथ,
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मै।

---

१ दरिद्रता, कंगाली, २ बाजेका पर्दा, ३ पराजय।

वह नवीन मानवके निर्माणमें क्रियात्मक भाग न ले सका—नही ले सकता था पर एक वस्तुवादीकी भाँति उसके निर्माणकी प्रबल आशा उसमें थी। वह इतना समझ गया था कि पुरानी व्यवस्था मिट रही है पर उसके कारण एव परिणामको वह देख न पाता था। फिर भी वह 'मृत प्राचीन' की उपासनाका स्पष्ट विरोधी था* और कहता था कि 'हर पुरानी चीज़ दुरुस्त नहीं।' उसने जड़ परम्पराओका उपहास करते हुए कहा—

तेशे बग़ैर मर न सका कोहकन 'असद',
सरगश्त-ए-ख़ुमारे रसूमो क़यूद था।

[ऐ 'असद' कोहकन (फ़रहाद) बिना कुदाल (मारे) न मर सका। बेचारा एक परम्परा और बन्धनके नशेमें मस्त था।]

वह नवीन जीवनके अभिनन्दनके लिए तैयार रहता था इसीलिए १८५७के ग़दरमें, गहरी आत्मवेदनाके बावजूद वह तटस्थ रहा क्योकि वह जानता था कि यह व्यवस्था मिटकर रहेगी। यद्यपि इस उपक्रममें उसके ही वर्गका विनाश निहित था और एक इसानकी भाँति उसे इसका अफ़सोस भी था, फिर भी वह समझता था कि इसे मिटना ही चाहिए।

एक मानवमे अनेक मानव

उसपर जो अपवाद लगाये जाते हैं वे केवल इस बातको भुला दिये जानेके कारण लगाये जाते है कि वह अनेक धाराओ, अनेक व्यक्तित्वो और विविधताओका कवि है। उसमें एक साथ अनेक मानस-ससार प्रतिफलित है। उसमे प्राय. परस्पर-विरोधी तत्त्व हैं। एक ओर घोर अह, दूसरी ओर जन्मभर नवाबो, राजाओ और शासकोकी खुशामद, एक ओर वासना-बाहुल्य दूसरी ओर घर-गृहस्थीके बन्धनोकी सँभाल, एक ओर

---

* सर सय्यदको लिखा था—मुर्दापरवर्दन मुबारककार नेस्त। (मुर्देको पालना श्रेय कार्य नही है।)

मानव-वेदनाकी अनुभूति एव ग्रहण दूसरी ओर अपनी ही पत्नीकी निराशा और गहरी जीवनव्यापी वेदनाके प्रति उपेक्षा, एक ओर भावुकता दूसरी ओर प्रबल वस्तुवादिता, एक मानवमें अनेक मानवोकी अभिव्यक्तिकी भाँति गालिब था। एक फारसी शेरमें अपनी प्रकृतिकी विविधताकी ओर ध्यान दिलाते हुए अपनी प्रेयसीसे कहता है —

दबीरम, शायरम, रिंदम, नदीमम, शेव हा दारम,
गिरपतम रह्म बर फ़रियादो अफ़गानम नये आयद।

उसकी खूबसूरती यही है कि सारी विविधताएँ, सारे विरोधाभास, उसकी उस सर्वग्राहिणी, अन्तर्भेदिनी पिपासित दृष्टिके सामने आकर एक पुष्प-गुच्छकी भाँति व्यवस्थित हो गये है जो लाला वो गुलमे भी, प्रकृतिमें भी मानवी सौन्दर्यको देख सकी थी—

सब कहाँ ! कुछ लाल वो गुलमें नुमायाँ हो गयीं।
ख़ाकमें क्या सूरतें होगी कि पेनहाँ हो गयीं।

गालिब ससारका प्रेमी, मानवी सौन्दर्य एव प्रेमका पुजारी, अमित कामनाओका कवि, अनेक अन्तर्विरोधोका आकर, अनेक व्यक्तित्वोका व्यक्ति, अपनी भावना एव कल्पनामें डूबा पर अपने दिमागको उनसे ऊपर रखे, भावुक होकर भी वस्तुवादी, पुराना होकर भी नया, गमके सुरोमे खुशीके राग गानेवाला ऐसा इन्सान है जो जाफरीके शब्दोमें 'प्राचीनताकी खिडकीसे नये युगको देख रहा था।'

ग़ालिबके काव्यमें दर्शन

क्या ग़ालिब दार्शनिक थे ?

कुछ समीक्षकोंने ग़ालिबके काव्यसे इधर-उधरके उद्धरण देकर यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि वह एक दार्शनिक थे और उनका काव्य गम्भीर दार्शनिक चिन्तन-कणोंसे पूर्ण है। दूसरोंने इसके बिल्कुल विपरीत उन्हें एक ऐसे सामान्य कविके रूपमें उपस्थित किया है जिसकी वाणीसे निम्नस्तरीय भोग-विलास तथा वासनाओंकी दुर्गन्ध आती है। यह इस बातका उदाहरण है कि आजकी समीक्षा गहरी चिन्ता और अनुशासित विचार-शृङ्खलाका परिणाम नहीं, मनका एक अनियन्त्रित उद्गार मात्र बनकर रह गयी है। वह मस्ती भावनाओंकी तरंगोंपर बहती है और निजी रुचिकी आँधियोंमें तिनके-सी उड़ती फिरती है। इस तूफानी वातावरणमें अच्छों-अच्छोंके क़दम उखड़ रहे हैं। ऐसे समय इस विषयपर कुछ कहना एक दुस्साहस ही है।

दार्शनिकका कार्य

पर इतना तो निश्चित है कि ग़ालिब कोई दर्शनशास्त्री या तत्त्ववेत्ता न थे। तत्त्ववेत्ता जीवन और विश्वके दृश्य रूपके अन्तरालमें पैठकर, सामने होते हुए अगणित परिवर्तनोंके पीछे जो सत्य होता है उसे एक विशिष्ट केन्द्रीय बिन्दुसे देखता है और उसीके प्रकाशमें प्रत्येक वस्तु या सत्ताका निरीक्षण करता है, अपने एवं चतुर्दिक् फैले जगत् और जगत्से भी परे जो जीवन है उसकी व्याख्या करता है। वह एक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति होता है, सबके विषयमें उसका एक निश्चित दृष्टिकोण होता है।

कविका मानस एक विशाल दर्पणकी भाँति होता है जिसके कलेजेमे शत-शत रूपावलियाँ इठलाती हुई प्रतिविम्वित होती है, जिसकी दुनियामे वसतागमकी अँगडाइयाँ जिन्दगीके सौ-सौ सपने लिये आती है, पर जहाँ खिजाँके दर्द भरे चीत्कार भी बुलबुलके प्राणमे समा जाते है, जहाँ जीवनका विलास है तो मृत्युकी विभीषिका भी है, जहाँ हुश्नोइश्ककी अदाएँ, अठखेलियाँ और प्राण मुग्धकर सकेत है तो विरह-अश्रुकी नदियोका उफान भी है। श्रेष्ठ कवि चाहकर स्वय (बजात खुद) दार्शनिक नही होता, हाँ उसकी कल्पनाएँ और अनुभूतियाँ गम्भीर सत्योको कभी-कभी स्पर्श कर लेती है और उसमे दार्शनिक तत्त्वोकी झलकियाँ फूट पडती है। कविकी पकड प्रज्ञाकी पकड नही है, वह कल्पनाकी पकड है। वह कल्पनाके पखोपर भावनाके अनन्त आकाशमे उडता है और रगीन दर्पणकी भाँति उसके मानसमे पडनेवाली छाया भी रगीन होती है। इस प्रकार वह शुद्ध दार्शनिक नही हो सकता। हाँ जीवन एव जगत्के दार्शनिक छायाचित्र, अनुभूतिके रगीन प्रतिविम्ब हमारे मनपर फेकता है।

कविका कार्य

न तो गालिबकी जीवन शैली, न उनका काव्य क्षेत्र ऐसा था कि वह दुनियाको एक निश्चित सन्देश दे सकते। ससारमे ऐसे कवि भी हुए है जिन्होने हमे एक जीवन-दर्शन दिया है। पर साहित्यके इतिहासमे उनकी ख्याति कविके रूपमे उतनी नही है जितनी जातीयता या मानवताके पथ-दर्शकके रूपमे है। वे जीवनमे सत्यके साधक होते है। जीवन-शोधन उनका प्रमुख साध्य होता है। गालिबमे कही इस प्रकारके जीवनके लिए कोई तडप नही, तडप क्या उत्कण्ठा ही नही। बचपनसे लेकर जीवनके अन्त-तक वह जिस वातावरणमे रहे-सहे, जो सस्कार ग्रहण किये उनमे कभी अन्तर्दृष्टि न रही, सदा वह दुनिया और उसकी रगीनियोको कलेजेसे लगाये रहे। खुद ही कहा है—

जीवन-दर्शन देनेवाले कवि

गालिब उनमे नहीं

जानता हूँ सवाब ताअतो ज़ुह्द[1],
पर तबीयत उधर नहीं आती।

ऐसे आदमीसे तत्त्व-विवेचन या दर्शनकी आशा करना एक ज्यादती है। फिर संसारमें जिन महाकवियोंने दार्शनिकका भी कार्य किया है उनमेंसे अधिकांशने महाकाव्य या आख्यान काव्यको साधनके रूपमें प्रयुक्त किया है, गीतिकाव्यमें नहीं। ग़ालिबकी न तो अपनी जिन्दगी तत्त्व-विवेचनाके अनुकूल थी, न उनके काव्य-साधन ही उस गहरी एवं व्यापक विचार-शृङ्खलाकी अभिव्यक्तिके अनुरूप थे। वह प्रधानतः एक 'ग़ज़लगो' शाइर थे। ग़ज़लमें किसी कल्पना या अनुभूतिकी एक झलक मात्र दी जा सकती है। वल्कि एक ही ग़ज़लके विभिन्न शेरोंमें भी अलग-अलग झलकियाँ या कल्पनाएँ होती हैं। ज्यादासे ज्यादा वह एक गुलदस्ता है जिसमें फूल और पखुरियाँ, पत्तियाँ और काँटे सब एक शक्लमें गूँथ दिये जाते हैं। ग़ज़ल एक ऐसा गीतिकाव्य है जिसे मुक्तक कहना चाहिए। ग़ज़लगो शाइर हर क़दमपर, हर शेरमें अपना विषय बदलता है। इसलिए यूँ भी ग़ालिबके काव्यमें किसी स्पष्ट एवं विवेचनपूर्ण जीवन-दर्शनकी खोज करना महज़ एक ख़ामख़याली है।

ग़ज़लगो शाइरकी मर्यादा

ग़ालिबके जीवन एवं काव्यकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह बन्धनोंको स्वीकार नहीं करता, किसी एक दृष्टिकोण, विचार-धारा या जीवन-शैलीमें बँधकर रहना उसे मंजूर नहीं। पुराना होकर भी वह पुराना नहीं और नयेकी झलक दिखाकर भी वह नया नहीं है। उसमें पुराना और नया, भूत और वर्तमान वल्कि भविष्यमें मिलकर रह गया है—जैसा वस्तुतः प्रत्येक विकसित एवं जागरित मानवमें होता है। इसलिए

बन्धनोंको चुनौती देनेवाला कवि

---

१. उपासना और तप (पवित्रता)।

उन्हे किसी विशेष दार्शनिक विचार-धारामे बाँटकर या बाँधकर रख देना एक हास्यास्पद चेष्टा है और खुद उन्हे असलियतसे दूर कर देना है—उस असलियतसे जो उनमे थी और जो उनके काव्यका आधार है। हाँ, दुनियामे चलते हुए उन्होने जो देखा, जो सोचा उसमे कभी-कभी ऐसे आभास भी दिख जाते है, ऐसी झाँकियाँ भी मिल जाती है, जिनमे दार्शनिक कल्पना, चिन्ता एव अनुभूतिकी चलती-फिरती तस्वीरे झाँक-झाँक उठती है।

यदि दर्शनसे सूक्ष्म एव चिन्तन-प्रधान विचार-पुजका अर्थ लिया जाय तो गालिबको दार्शनिक कहा जा सकता है किन्तु यदि दर्शनसे मानव-जीवन या उसके किसी पक्ष-विशेषके सम्बन्धमे निश्चित निजी दृष्टिकोणका तात्पर्य है तो वह दर्शनशास्त्री नही है। गालिबके काव्यमे जो दार्शनिक झाँकियाँ हमें मिलती हैं वे तत्त्ववेत्ताकी प्रज्ञाकी अभिव्यक्तियाँ नही है। इनमें कवि न दर्शनशास्त्री है, न दर्शनका व्याख्याता या मुतकल्लिम है। जैसा मै कह चुका हूं, वह सूफी भी नही है—उसकी प्रकृति ही सूफीकी प्रकृति नही है।

एक अर्थमे दर्शन-शास्त्री है

जब मै यह कह रहा हूं, तब मुझे उनका यह शेर खूब याद है—

य' मसायले तसव्वुफ य' तेरा बयान 'गालिब'
तुझे हम वली समझते जो न बादाख़्वार होता।

पर तसव्वुफकी समस्याओपर कुछ कह देनेमे ही कोई सूफी नही हो जाता, वह तत्त्वज्ञानीके सत्यको अनुभूतिके माध्यमसे जीवनमे उतारनेपर सूफी होता है। और सच पूछें तो इस शेरमे भी मदिरापानपर लेक्चर देनेवालोपर एक सूक्ष्म-व्यग-मात्र है।

जहाँ भी तसव्वुफकी बातें है वहाँ वे उनके दिलकी गहराईसे उठती नही जान पडती। मनमे लहरे उठती है और दिमागके पर्देपर एक परछाईं

सी उठती दिखती है आती और जाती हुई। तसव्वुफमें ससारकी वासना-का त्याग और परम प्रियतमके प्रति सर्वस्वार्पण मुख्य है जिनका ग़ालिबमें एकान्त अभाव है—वल्कि विश्व-वासना ही उनके जीवनकी प्रधान प्रेरणा है।

जिज्ञासा :

जिज्ञासा ज्ञान-रथका पहिया है। ग़ालिबने जब खुली आँखोंसे दुनिया-को देखा, तो दुनियाके विविध परिवर्तनोंके बीच उसके पीछे छिपी सत्ताका

संसारमें मचलता सौन्दर्य

सौन्दर्य सर्वत्र मचलता दीख पड़ा। उनमें जिज्ञासा प्रबल हुई। वह ससारमें बिखरे सौन्दर्यको देखते हैं। ये दिल मोहनेवाली तरु-णियाँ, उनके हाव-भाव, सुगन्धित कुञ्चित अलकें, सुर्मई आँखें, हरीतिमा और पुष्प, वर्षा एव वायु क्या हैं? कहाँसे आये हैं? क्यों हैं, जब तेरे बिना कोई नहीं?—

जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद,
फिर य' हंगामा ऐ ख़ुदा क्या है?
ये परीचेहर लोग कैसे हैं?
ग़मज़.[1] वो इश्क़ वो अदा क्या है?
शिकने ज़ुल्फे अम्बरीं[2] क्यों है,
निगहे चश्मे सुर्म.सा क्या है?
सब्ज़: व गुल कहाँ से आये हैं,
अब्र[3] क्या चीज़ है, हवा क्या है?

अस्तित्व (हस्ती) का तत्त्वज्ञान :

यहाँ जिज्ञासा ग़ालिबके समस्त मानसपर छा गयी है और तब समस्त

---

१ हाव, २ सुगन्धित अलकोंकी लटें या घुमाव, ३ मेघ, वर्षा।

सृष्टि एक खेल, बच्चोंकी एक क्रीडा-सी दिखाई पडती है। अस्तित्व एक तमाशा-सा लगता है, बडे-बडे करिश्मे विनोद-से जान पडते हैं —

बाज़ीचए अतफ़ाल[1] है दुनिया मेरे आगे।
होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे।
एक खेल है औरंगे सुलेमाँ मेरे नज़दीक,
एक बात है ऐजाज़े मसीहा[2] मेरे आगे।
जुज़ नाम नहीं सूरते आलम मुझे मंजूर,
जुज वहम नहीं हस्तिए अशिया[3] मेरे आगे।

[अर्थात् "संसार मेरे सामने हो रहा बच्चोंका खेल है। इसकी नवीनताओंको देखकर यही समझता हूँ कि मेरे सामने रात-दिन एक तमाशा हो रहा है। सुलेमानका तख्त और हज़रत ईसाके चमत्कार मेरे निकट एक खेल और सामान्य बात है। संसारका यह रूप नाम ही नाम भरको है। मेरे विचारमें सभी वस्तुओंका अस्तित्व एक वहम, एक भ्रम, एक माया है।"]

ये विचार मायावादी वेदान्तियोंके विचारोंसे मिलते हैं। एक स्थानपर फिर कहते हैं —

हस्तीके मत फ़रेबमें आ जाइयो 'असद'
आलम[4] तमाम हल्क़ए-दामे-ख़याल[5] है।

अर्थात् "ऐ असद! जिन्दगीके फरेबमें न आजाना (यह सरासर धोखा है) सारा विश्व विचारके जालका फन्दा है (फन्देसे बचो, क्षणिक अस्तित्वको जीवन न समझ लेना)।

---

१ बाल-क्रीडा, २ ईसाके चमत्कार (मुर्दोको जिलाना, रोगियोको नीरोग तथा पीडितोको पीडारहित करना आदि), ३ पदार्थोका अस्तित्व, ४ विश्व, ५ कल्पना-जालका घेरा।

फिर कहते हैं—

हाँ, खाइयो मत फ़रेबे-हस्ती,
हरचंद कहें कि है, नहीं है।

सांसारिक असारता और संसारकी कल्पना-जन्यताके विषयमें उनके उर्दू तथा फ़ारसी काव्यमें अनेक शेर मिलते हैं। फारसीमें तो उनकी संख्या उर्दूसे भी अधिक है। दो ऐसे फारसी शेरोंमें उन्होंने कहा है—

"मेरी कल्पनाओंने धुएँकी तरह उठकर एक पर्दा-सा तान दिया, मैंने उसका नाम आसमान रखा। मेरी आँखोंने एक परीशान-सा ख्वाब देखा,

आसमान, जहान बयाबान और समुद्र

मैंने उसका नाम जहान रख दिया। मेरी वहमने आँखोंमें धूल डाल दी, अब जो कुछ नज़र आया उसका नाम बयाबान रखा। पानीका एक कतरा गुदाज़[1] होकर फैल गया, उसे समुन्दरके नामसे पुकारने लगा।"

ऐसे शेरोंमें रूपनाममय जगत्के मिथ्या होनेकी घोषणा है। यह जगत् 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म'का प्रतिबिम्ब मात्र है, उसकी स्वतंत्र सत्ता

जगत्का रूप

नहीं। यह जो बाह्य जगत् है उसीके अवलम्बसे और उसीको लेकर है। वह है, इसलिए यह भी दिखाई देता है। वेदान्तमें मायाके दो प्रकार बताये गये हैं—१. व्यावहारिक, २. प्रातिभासिक। वस्तु-जगत् व्यावहारिक है। वह होते हुए भी नहीं है। शून्यको जाने दें पर जो शून्य नहीं है वह भी 'नास्ति' ही है। इसलिए ग़ालिब कहते हैं —

हस्ती[2] है न कुछ अदम[3] है ग़ालिब।

पर जिज्ञासा यहाँ पहुँचकर और आगे बढ़ती है। यह सृष्टि जब उसकी झलक है, उनका प्रतिबिम्ब है, उस एक मात्र सत्का, तब वह असत्य

---

१ पिघलकर, फैलकर, २ अस्तित्व, ३. अनस्तित्व (शून्यता)।

क्योकर है ? जो सत् है वह असत्को कैसे उत्पन्न कर सकता है ? तत्त्वज्ञानी कहते है कि ससारको स्वतन्त्र मानने या देखनेका कारण हमारा अज्ञान है। यूनानके प्राचीन तत्त्वज्ञानी प्लेटगेनियसके 'नव-अफलातूनवाद' (Neo-Platonism) का भी कुछ ऐसा ही कथन है कि यह सारा जगत् उसी एक तत्त्वकी झलक है, जलवा है। यह उसकी विविध अभिव्यक्ति है। इस विविधतामे उसकी एकता है। अनेकमे वही एक है। यो समझिए—सूर्य एक प्रकाश-पिण्ड है। जब तक उसकी रश्मियाँ उसीमे सिमटी है, कुछ दिखाई नही देता। जब उसकी रश्मियाँ अपने मूल स्रोतसे निकलकर समस्त जगत् पर छा जाती है तो ससार नाना रूपोमें चमक उठता है। पर जब सूर्य अस्त होता है तो उसके साथ उसकी किरणें भी आँखोसे ओझल हो जाती हैं। सूर्यका प्रकाश सूर्यसे अलग नही। जब तक किरणें सूर्यमे निमग्न है उनमें अनेकता नही, ऐक्य है पर उससे निकलते ही, बाहर होते ही उनमें अनेकता आ जाती है या हमें दिखाई पडती है। इस प्रकार हमारी आँखोके सामने नाना रूप प्रकट होते रहते है।

तब क्या गालिब वेदान्तियोकी तरह, सचमुच, ससारको मिथ्या मानता है ? नही। जब ससारके पर्देमें वही है और उसीका रूप,

ससार उसीका आईना है

शृगार, अदाएँ इस जगत्के रूपमें प्रकट हो रही है, जब, यह जगत् उसीके शृगारका ऐसा आईना है जिसके सामने वह अपनेको नित्य-नूतन सज्जामे प्रस्तुत करता है तब वह मिथ्या कैसे है ? यह ससार उसीका है, हम उसीके है—उसीके कारण है। कहते है—

है तजल्ली[1] तेरी सामाने वजूद[2],
ज़र्रा[3] बे परतौए ख़ुर्शीद[4] नहीं।

---

१ ज्योति, प्रभा, २ अस्तित्वका कारण, ३ कण, ४ सूर्य-प्रकाश।

अर्थात् "तेरी ही ज्योति (तजल्ली) से अस्तित्वका ससार प्रकट हुआ। सूर्य-प्रकाशके बिना एक कण भी नही चमक सकता।"

वह प्रियतम नित्य शृगारमें मग्न है —

आराइशे जमाल[1] से फ़ारिग नहीं हनोज़[2],
पेशेनज़र[3] है आईना दायम[4] नक़ाब[5] में।

(पर्देमें भी, नक़ाबमें भी वह सदैव आईनेको देखता रहता है। गोया अपने सौन्दर्यके शृगारसे अभी फारिग नही हुआ।)

यह ससार उसके सौन्दर्यकी एक झलक है। प्रियतमका हुस्न यदि आत्मदर्शी (दूसरे अर्थमे अभिमानी) न होता तो हमारी सृष्टि कैसे होती ?

देह्र[6] जुज़ जलवए यकताइए माशूक़[7] नहीं,
हम कहाँ होते अगर हुस्न न होता ख़ुद्बीं।

(ससार माशूक़—प्रियतम—की एकमात्र सत्ताकी झलक—जल्वाके सिवा और कुछ नहीं है। अगर वह सौन्दर्य खुदबी (अपने आपको देखनेमें मग्न) न होता तो हम कैसे अस्तित्वमें आते ?) मतलब यह कि हम सब उसीके सौन्दर्य-प्रसाधनके कारण हैं।)

जब ससारमें वही है, ससार उसीकी छवि है, तब हम उससे अलग कैसे हैं। हम तो उसीके हैं।—

दिले हर क़तरा है साज़े अनलबह्र[8],
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या ?

---

१ सौन्दर्यका शृगार, २ अबतक, ३ आंखके सामने, ४ सदैव, ५ घूंघट, पर्दा, ६ जगत्, ७ प्रियतमके एकत्वकी छवि या प्रदर्शन, ८ 'मैं समुद्र हूँ'।

शुहूद साधनाकी वह अवस्था है जब साधकको जगत्की सम्पूर्ण वस्तुओ मे ईश्वर (बल्कि ब्रह्म) ही ईश्वर दिखाई देता है। † गैबे गैब या

अभेद तत्त्व

गैबुलगैब (गैबका गैब) वह परम सत्ता है जो इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे परे है। गालिब कहते है जिसको हम शुहूदकी अवस्था समझे हुए है वही वस्तुत परम-सत्ता (गैबेगैब) है (भ्रमवश हम उसे शुहूद माने हुए हैं)। यह वैसा ही है जैसे आदमी स्वप्नमें अपनेको जगा हुआ देखनेपर भी स्वप्नमे ही रहता है। (अज्ञानवश साधक अपनेको ब्रह्मसे भिन्न समझे हुए है।)

इसी गजलमें (जिसका मिस्रा दिया हुआ है) वह और भी स्पष्ट कहते हैं—

अस्ले शुहूदो शाहिदो मशहूद एक है
हैराँ हूँ फिर मुशाहिद है किस हिसाबमें।

हम ऊपर बता चुके है कि शुहूद साधनाकी वह अवस्था है जिसमे साधकको दुनियाकी हर चीजमे ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई पडता है। शाहिद इस अवस्थाके द्रष्टा (साधक) को कहते है। जिसको देखा जाता है वह मशहूद है। मुशाहिदाका अर्थ निरीक्षण, देखना, है। कहते है कि जब वस्तुत शुहूद शाहिद और मशहूद (दर्शन, द्रष्टा और दृश्य वा साधना, साधक और साध्य) सब एक ही है तो हम क्या निरीक्षण करें, क्या देखें ?

---

† 'हरिऔध' ने 'प्रियप्रवास' मे विरहिणी राधाके मुँहसे कहलाया है—
पाई जातीं जगत्मे जितनी वस्तुएँ उन सबोमे,
मैं प्यारेको विविध रँग औ रूपमे देखती हूँ।

फिर कहते हैं, विश्वास दिलाते है—

> है मुश्तमिल[1] नमूदे सुवर[2] पर वजूदे बह्र[3],
> यॉ क्या धरा है कतर. वो मौजो[4] हबाब[5] में

सागरका अस्तित्व ही इन रूपोमें सम्मिलित (प्रकट) है अन्यथा बिन्दु, तरग और बुलबुलेमें क्या रखा है ?

अहलजात (ब्रह्म) अविनश्वर है, अमृत है और सृष्टि चूँकि उस परम तत्त्वसे अद्वैत (वहदत) है इसलिए सृष्टि भी अविनश्वर है। गालिब जगत्को ब्रह्मसे भिन्न नही मानते, जगत् स्वय ब्रह्म है।

तब एक दूसरा सवाल पैदा होता है कि यदि विश्व ब्रह्मका ही प्रकाश है तो पाप, अपराध, बुराइयाँ, दुख-दर्द क्या है ? प्रकाशके साथ मलिनता क्यो है ? अन्तर्विरोध कहाँसे पैदा होते हैं।

तब अन्तर्विरोध क्या है ?

भारतीय आर्यदर्शन इसका उत्तर यह देता है कि ऐसा उस परम सत्यकी अनुभूति न होनेके कारण या आत्माके 'स्व-रूप' को न समझनेके कारण है। समस्त मोह, विभेद अपनेको (आत्मा वा ब्रह्मको) न समझनेके कारण है। एक पर्दा पडा हुआ है। इस्लाममें उत्तर यह है कि आलोक सूर्यसे भिन्न नही है पर उससे जितना ही दूर जाता है उसमें अन्तरके कारण मलिनता आती जाती है। इस उत्तरसे जिज्ञासाका पूर्ण समाधान नही होता क्योकि तब प्रकाशस्रोत (ब्रह्म) से एक भिन्न वस्तु-अन्तर-पैदा हो जाती है और 'हम ऊस्त' (सब कुछ वही है) का सिद्धान्त शिथिल पड जाता है। चूँकि गालिब कोई तत्त्व-ज्ञानी नही, इसका कुछ ठीक उत्तर नही दे सका। हाँ उसकी तीव्र कल्पना में जो सत्य उद्भासित हुआ उसके प्रकाशमें उसने आशिक उत्तर देनेकी चेष्टा की है—

---

१ सम्मिलित, २ रूपाभिव्यक्ति, ३ सागरका अस्तित्व, ४ तरग, ५ बुदबुद।

"गुण (सिफाते कमाल) के एक विन्दुमे सम्पूर्ण अन्तर्विरोध सम्पन्न होता है।

—मुनाजात (अब्रे गुहरवार)

"तूने अन्यके भ्रम (वहमे गैर) में पडकर दुनियामे हलचल मचा रखी है।"

—फारसी कसीदा

जब एक बार कह चुके कि दर्शक एव दर्शनीय वल्कि दृश्य एव दर्शन भी एक हैं तब दो क्यो मालूम पडते है ! यह स्वय और अस्वयका विभाजन कैसा ? उत्तर यह कि इनके बीच पूजाकी रीति (रस्मे परस्तिश) का पर्दा पडा हुआ है।

मलिनताकी समस्या सुलझाते हुए यह भी कहा जाता है कि ठीक वह माशूक इस प्रकृति या जगत्के दर्पणमे अनेक जल्वो और अदाओमें दिखाई पडता है, प्रतिविम्बित होता है पर यह प्रतिविम्ब तब तक सम्भव नही जबतक शुभ्र कांचके पीछे कलई न हो। उज्ज्वलपर किरणे उतनी नही खिलती जितनी मलिनतापर। सूर्य-किरणे स्वच्छ आकाशमे उतनी नही चमकती जितनी धरतीकी अस्वच्छ वस्तुओपर पडकर चमक उठती है। प्रकाशके गौरवके लिए, उसकी स्वीकृति एव अनुभूतिके लिए अन्धकार की पृष्ठभूमि आवश्यक है। गालिब कहते है—

मलिनताकी पृष्ठ-भूमिपर प्रकाशका गौरव

लताफत[१] बेकसाफत[२] जल्वा पैदा कर नहीं सकती,
चमन ज़ंगार[३] है आईनए - बादे - बहारी[४] का।

अर्थात् सौन्दर्य (लताफत) विना मलिनता (कसाफत) के जल्वे नही पैदा कर सकता। वसन्त-समीरणके आईनेके लिए चमन (पुष्पोद्यान)

१ सौन्दर्य, सुषमा, २. विना मलिनता, ३ मलिनता, कलई, जग, ४ वसन्त-समीर।

क़लई (ज़ंग—मण्डूर—ज़ंगार) का काम देता है (चमनके कारण ही वसन्त-समीरणका गौरव है ।)

इससे भी भिन्नता एवं द्वैतका समाधान तो नहीं होता। बहरहाल ग़ालिब चाहे इसका ठीक उत्तर न दे सकें, वह मानते यही है कि संसारके सत्यको—कर्ताको—हम संसारमें ही जान और पा सकते हैं क्योंकि यह कहीं बाहरसे नहीं आया, उसीकी अभिव्यक्ति है, उसीका स्वरूप है। वर्ड्सवर्थने भी कहा है कि एक ही सत्ता समस्त जगत्के अन्तरमें गतिशील है—

वही एक बात है जो याँ नफ़स[1] वाँ नक़हते-गुल[2] है
चमनका जल्वा बाइस[3] है मेरी रंगीनवाईका।

इधर (मेरी) वाणी, उधर फूलकी सुगन्ध एक ही चीज़के दो रूप हैं।

संसार और जीवनका दर्शन :

जब यह संसार उसका है तब संसारकी सम्पूर्ण वस्तुएँ भी उसकी हैं। हम भी उसके हैं, यह दुःख सुख, यह अन्धकार-प्रकाश, यह बुराई-भलाई सब उसकी है। इसलिए ग़ालिब अपने आलिंगनमें समस्त संसारको, संसारको उसकी सम्पूर्ण विविधताओंके साथ, ग्रहण करता है। वह उसकी सम्पूर्ण रंगीनियोंके साथ उसे प्यार करता है। वह संसारका इसीलिए है कि संसार उसका है, संसारकी हर चीज़ उसकी है। उत्कण्ठा और उमंगने, बीचका पर्दा उठा दिया है—

सब कुछ उसका है

वा[4] कर दिये हैं शौक़ने बन्दे नक़ाबे हुस्न[5],
ग़ैर अज़ निगाह[6] कोई भी हायल[7] नहीं रहा।

---

१ श्वास, वाणी, २ पुष्प-गन्ध, ३ कारण, ४ अनावृत, उद्घाटित, खोल दिये, ५. सौन्दर्यके नक़ाब (आवरण) के बन्धन, ६ दृष्टिके सिवाय दूसरा, ७ बाधक।

शौकने हुस्नके नकावके वन्द (वन्ध) खोल दिये है। अव उसके और हमारे वीच सिवाय निगाहके दूसरी कोई चीज़ वाधक नही रह गयी है।

दृष्टिका पर्दा

हाँ, यह दृष्टि ही उसके सौन्दर्य-पानमे, उसके मिलनमे वाधक है। आधुनिक गज़लके अद्वितीय कवि 'जिगर' मुरादावादी इससे भी आगे जाकर कहते है—

लाओ, उसे भी रख दें उठाकर शवे विसाल[1],
हायल[2] जो एक ख़फ़ीफ़[3] सा पर्दा नज़रका है।

दृष्टिका एक क्षीण आवरण जो वाधक हो रहा है, लाओ इस मिलन-रात्रिमें उसे भी उठाकर अलग रख दें।

सचमुच, पर्दा उठाकर निगाह स्वय पर्दा वन जाती है। नही तो आत्मा (रूह) और पदार्थ (माद्दा), जीवन-मृत्यु, ब्रह्म-जीव सब एक है। यहाँ आकर दु ख-सुख, खिज़ाँ और वहार मिल जाते है—एक दूसरे को आलिगनमें लिये आते है। ऐसी स्थितिमे धर्मपरम्परा (मज़हब) परम सत्यसे हटा देती है। तव रीति-रवाज और सम्प्रदायका त्याग ही ईमान वन जाता है—

मिल्लतें जब मिट गयीं अजज़ाए ईमाँ[4] हो गयीं।

ससार, जो प्रियतमकी ही छवि है, पर मुग्ध हुआ कवि उसके दु ख-दर्दको भी उसकी अदाओकी तरह ग्रहण करता है। अदाओसे और प्यार उमडता है, शोखियोमे माशूकका हुस्न और उभरता है, मलिनताकी पृष्ठभूमिपर प्रकाशकी गौरव-वृद्धि होती है। इसी प्रकार दु ख दर्द भी वहींसे आते है, इसलिए कि सुख-चैनका स्वाद वढा दें। खिज़ाँका आगमन

दु ख-दर्द माशूक़की अदाएँ हैं

१ मिलनरात्रि, २ वाधक, ३ क्षीण, ४ ईमानके अग।

होता है, इसलिए कि जीवनका, आनन्दका नवीनीकरण हो (पत्तियाँ जाती हैं, नई कोपलें फूटती है ।)

मतलब यह कि दु ख सुखका, मलिनता प्रकाशका शृङ्गार है, यो बदी (बुराई) सत्कृतिका ही अग बन जाती है । अभेद हो जाता है—

याँ इम्तियाज़े[1] नाक़िसो[2] कामिल[3] नहीं रहा ।

अर्थात् सिद्ध और अपूर्णकी भेदरेखा मिट गयी है । गीताके वही शब्द याद आते हैं —

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन. ।

हर चीज प्यारके क़ाबिल है

चूँकि मानव उसका है, चूँकि मानवमें भी वही है, इसलिए वह मानवको प्यार करता है, चूँकि ससारमें वही है, इसलिए वह ससारको प्यार करता है, उसके दु ख-सुख, उसकी मृत्यु, उसके जीवनको प्यार करता है । बल्कि मृत्युके कारण ज़िन्दगीका मज़ा और बढ गया है, प्यारकी, जीनेकी, ससारको कलेजेसे लगानेकी लालसाएँ और तीव्र हो गयी हैं —

हविस[4]को है निशाते-कार[5] क्या क्या ?
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या ?

लालसाको काम करनेकी क्या-क्या उमगें है ? क्यो है ? इसलिए कि मरना है । इसीके कारण लालसाएँ और प्रबल होती हैं । चूँकि विनाश है इसीलिए दुनिया इतनी मनोरम लगती है । यह जो द्वैतकी मनोदशा है

---

१ विशिष्टता, भेद, २ अपूर्ण, असिद्ध, ३ सिद्ध, ४ लालसा, ५ कर्मका उल्लास ।

इसमे मरणकी कल्पना ही ससारके बिखरे अगोको एक लडीमे गूँथ देती है। अर्थात् रूपगत जो परिवर्तन है उसके कारण ससारका आकर्षण और तीव्र हो गया है। ऊपर-ऊपर जो विनाशका मार्ग चतुर्दिक् फैला दिखाई पडता है उससे भी उच्च और निम्न सब बराबर हो जाते है --

नज़रमें है हमारी जादए राहे फ़ना गालिब,
कि यह शीराज़ा है आलमके अज़ज़ाए परीशॉ का।

(ऐ गालिब ! विनाशकी राह हर समय हमारी नजरमे रहती है, क्योकि ससारके बिखरे हुए अगोको मिलानेकी कडी यही है।)

साधकको आरम्भमें ऐसा ही लगता है। सब कुछ नाशमान है, हमारे अन्दर भी विनाशके बीज छिपे हुए है —

मेरी तामीर[1] में मुज़मिर[2] है एक सूरत ख़राबीकी।

तुम्हारी कृपा हमे लूट लेगी

पर यह भय, यह द्वैत, तभीतक है जबतक माशूककी कृपासे हम वञ्चित है, जबतक उसने हमे अपनाया नही है, अपने कृपा-कटाक्षसे घायल नही किया है। ज्यो-हो उसकी कृपा-दृष्टि होती है, यह अस्तित्वकी भिन्नता नष्ट हो जाती है —

परतवे[3] ख़ुर[4] से है शबनम[5] को फ़ना[6] की ता'लीम,
मै भी हूँ एक इनायत[7] की नज़र होनेतक।

सूर्यका प्रकाश ओस-बिन्दु (शबनम) को फना (विनाश) की सीख देता है। इसी प्रकार मै भी तभीतक हूँ जबतक तुम्हारी कृपा-दृष्टि

---

१ निर्माण, रचना, २ प्रच्छन्न, निहित ३ प्रकाश, ज्योति, ४ सूर्य, ख़ुर्शीद, ५ ओस, ६ विनाश (यहाँ 'फना' अस्तित्वहीनता नही है वर पूर्ण विलीनता, तल्लीनता है), ७ कृपा।

नहीं होती। (तुम्हारी इनायतकी एक नजर होते ही मैं भी तुममें विलीन हो जाऊँगा।)

यह इनायतकी नजर होनेतक ससार और जीवनको, गालिब अमित कामनाओंके साथ प्यार करता है। वैसे मानव भी दुनियाकी अन्य वस्तुओंकी भाँति ही प्यार की चीज है, पर उसमें अन्य वस्तुओंसे यही अन्तर है कि उसमें कामना है, भावना है, उत्कण्ठा है, व्याकुलता है, तडप है। सबसे बडी बात यह कि उसमें बुद्धि है —

मिट्टीके पर्देमे मचलता प्रलय . मानव

ज़िमा गर्मस्त इन हगामः चिनगर शोरे हस्ती रा,
क़यामत मी दमद अज़ पर्दए ख़ाके कि इन्साँ शुद।

अर्थात् दुनियाकी यह हलचल मेरे ही कारण है और मिट्टीके उस पर्देमें प्रलय मचल रहा है, वह मानव बन गया है।

मानवमें ब्रह्म बोलता है। वह ब्रह्मकी सबसे प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। इसीलिए सृष्टिमें मानव महान् है। मानो समस्त सृष्टि उसीके लिए, उसीकी रुझानके लिए हो —

ज़ि आफरीनिशे आलम गरज़ जुज़ आदम नेस्त।

(मानवके सिवा विश्वकी उत्पत्तिका कोई हेतु नही है।)

इसीलिए गालिब हज़ार जानसे दुनियाको चाहता है, हज़ार कामनाओ से वह उसे आलिंगन किये हुए है, जकडे हुए है। ससारकी भाँति ही इन कामनाओंका अन्त नही है और प्रत्येक कामना इतनी लुभावनी कि क्या कहें —

हज़ारों ख़ाहिशें ऐसी कि हर ख़ाहिश पे दम निकले।

वह अबाध कामनाका कवि है। उसका पीना अबाध, उसकी मस्ती

अबाध । जिस रूपकी जादूगरीका तमाशा चारो ओर बिखरा है वह कभी समाप्त नही होता । वह उसमे इतना खो गया है कि उसीका होकर रह गया है । उसके बिना चैन नही । कामनाकी इस बेचैनीमे वह सृष्टिके समस्त सौन्दर्य एव भोग्य पदार्थोको अपना ही मानता है ।

अबाध कामनाका कवि

हर चेः दर मब्द. ए फैयाज़ बुवद आने मनस्त ।

अर्थात् जो कुछ उदार (फैयाज) सृष्टिके पास है, सब मेरा है, मेरे लिए है ।

इसीलिए गालिब, रवीन्द्रनाथकी भांति, ससारसे विरक्त करनेवाली मुक्तिका उपासक नही है । कामना ही उसे ससारसे, और उसीके माध्यमसे उस माशूकसे, जो सब माशूकोमे प्रकट है, जोडती है । इस कामनाका ज्वार कभी शान्त नही हुआ । वह निरन्तर बढता ही गया है, यहां तक कि सम्भावनाओका समग्र ससार उसके एक कदममे विलीन हो जाता है —

कामना ही माशूक़से जोडती है

है कहॉ तमन्ना[1] का दूसरा कदम, यारब[2] !
हमने दश्ते इम्का[3] को एक नक़्शे पा[4] पाया ।

"हे प्रभु ! कामनाका दूसरा पग कहां है ? (उसके रखनेकी जगह ही नही) यहां तो सम्भावनाओके बियाबानको हमने केवल एक चरण-चिह्नके रूपमे पा लिया है (सम्भावनाओका बियाबान एक ही कामनाके चरणमे समाप्त हो गया !) ।

---

१ कामना, २ हे ईश्वर, ३ सम्भावनाका बियाबान, ४ चरण-चिह्न ।

स्वभावत इस निर्बाध कामनाके स्वादके आगे, इस्लाम धर्ममे पवित्र लोगोको मिलनेवाले बिहिश्त (स्वर्ग) की क्या हस्ती ? ग़ालिब इस ससारके आनन्दको किसी भी सम्भावित, भावी परलोकगत सुखसे बदलनेको तैयार नही। उनके जीवनकी जडें इसी ससारकी भूमिमें इतनी गहराई तक चली गयी है कि ऐसे किसी भी प्रलोभनको,

उनके जीवनकी जडें इसी ससारकी धरतीमे गहरी गयी हैं

बिना एक क्षण विचार किये, वह ठुकरा देता है। शायद ही ससारके किसी दूसरे कविने स्वर्गका ऐसा उपहास किया होगा जितना ग़ालिबने किया है। फ़ारसी और उर्दू काव्यमें बार-बार उन्होने बिहिश्तका मज़ाक उडाया है। एक उर्दू शेर है —

देते है जन्नत[1] हयाते देह[2] के बदले,
नशा बअन्दाज़ए ख़ुमार नहीं है।

वह सासारिक जीवनके बदले जन्नत देते है। यह नशा मेरे ख़ुमारके अनुरूप नही है।

फिर एक नास्तिककी भाँति कहते हैं —

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त[3] लेकिन
दिल के ख़ुश रखने को ग़ालिब य ख़याल अच्छा है

स्वर्गकी बाते चढा-चढाकर उससे की जाती हैं, उसकी तारीफ़के पुल बाँधे जाते हैं पर यहाँ माशूक़के जल्वगाह (ससार) का जो सौन्दर्य उसकी आँखोमें बसा है उसपर दूसरा रग चढनेका नही —

---

१ स्वर्ग, २ सासारिक जीवन, ३ वास्तविकता।

सुनते जो है बिहिश्तकी तारीफ सब दुरुस्त,
लेकिन ख़ुदा करे वह तेरी जल्वगाह[1] हो।

पर उपदेश देनेवाले कब मानते है? वे तो अपनी ही कहते जाते है, उनकी बड जारी रहती है। यहाँ तक कि गालिब चिढकर कहते है —

ताअत[2] में ता रहे न मय वो ऑगबी[3] की लाग,
दोज़ख़[4] में डाल दो कोई लेकर बिहिश्त[5] को।

उपासनाके पीछे शराब और शहदकी लाग (लालच) न रह जाय इसलिए कोई स्वर्गको उठाकर नरकमे डाल दो। [इस्लाममे माना गया है कि परहेजगारी और इबादतकी जिन्दगी बिताने-वालोको स्वर्ग मिलता है जिसमे हूरे खिदमतको मिलती है और शराब व शहद पीने-खानेको। इसी प्रलोभन भरे विश्वास-की हँसी उडाई गयी है।]

जन्नतका लोभ हेय है

एक जगह और कहते हैं —

क्यों न फिरदौस[5] को दोज़ख़[4] मे मिला लें यारब!
सैर के वास्ते थोडी सी फिजा और सही।

हे ईश्वर! स्वर्गको क्यो न नरकमे मिला लें जिससे दिल बहलाव और सैरके लिए थोडी फिजा और बढ जाय।

वह बिहिश्तके दिलदाद इसलिए भी न हुए कि वहाँ मिलनेवाला सौन्दर्य सीमित है, जब उनकी कामना बिखरे हुए सम्पूर्ण सौन्दर्यको कलेजेसे लगा लेनेको छटपटाती है। इस प्रकार कामनाकी पूर्ति स्वर्गकी अपेक्षा ससारमे कही अधिक हो सकती है। चुनाचे एक खतमे लिखते है—

---

१ छविधाम, छविकक्ष, २ उपासना, भक्ति। ३ मधु। ४ नरक। ५ स्वर्ग।

"जब मैं बिहिश्तका तसव्वुर[1] करता हूँ और सोचता हूँ कि अगर मगफिरत[2] हो गयी और एक कस्र[3] मिला और एक हूर[4] मिली, अकामत[5] जाविदां[6] है और एक नेकबख्तके साथ ज़िन्दगानी है तो इस तसव्वुरसे जी घबराता है और कलेजा मुँहको आता है। हय, हय, वह हूर अजीरन हो जायगी। तबीयत क्यूँ न घबरायगी? वही जमुर्रदीं काख[7] और वही तूबा[8] की एक शाख!"

बिहिश्तके तसव्वुरसे कलेजा मुँहको आता है

स्वर्गकी वस्तुओंकी हँसी उडानेका कोई मौका हाथसे जाने नही देते। चुनाचे कहते हैं —

वाइज़[9] न तुम पियो न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारी शराबे-तहूर की।

ऐ उपदेशक! तेरी शराबे तहूर (स्वर्गमें पी जानेवाली मदिरा) का क्या कहना है, जिसे न तू पी सकता है न दूसरे ही किसीको पिला सकता है? (ऐसी ख्याली शराब लेकर क्या होगा?)

× ×

युवावस्थामें ग़ालिबके उस्तादने उनसे कहा था —"शकरका मज़ा चख लेना मगर मक्खी बनकर शहदपर कभी न बैठना नही तो उडनेकी शक्ति बाकी न रहेगी।" यह बात गालिबके हृदयमें पैठ गयी थी। यही उनके जीवनका मेरुदण्ड है। एकमे केन्द्रित होना, एक जगह बैठकर पीना, बँधकर रहना उन्होंने कभी स्वीकार न किया। इसीलिए सरदार जाफ़रीके शब्दोंमें "वह मज़िलका

मन्ज़िलका नहीं, राहका, तृप्तिका नहीं, तृष्णाका कवि

---

१ कल्पना, ध्यान, २ छुटकारा, मुक्ति, ३ महल, ४ परी, स्वर्गाङ्गना, ५ निवास, ६ नित्य, शाश्वत, ७ पन्ना (हीरा) का घर, ८ कल्पवृक्ष, ६ उपदेशक।

सुनते जो है बिहिश्तकी तारीफ़ सब दुरुस्त,
लेकिन ख़ुदा करे वह तेरी जल्वगाह[1] हो।

पर उपदेश देनेवाले कब मानते हैं ? वे तो अपनी ही कहते जाते है, उनकी बड जारी रहती है। यहाँ तक कि गालिब चिढकर कहते है —

ताअत[2] में ता रहे न मय वो ॲगबी[3] की लाग,
दोज़ख़[4] में डाल दो कोई लेकर बिहिश्त[5] को।

उपासनाके पीछे शराब और शहदकी लाग (लालच) न रह जाय इसलिए कोई स्वर्गको उठाकर नरकमें डाल दो। [इस्लाममे माना गया है

जन्नतका लोभ हेय है

कि परहेजगारी और इबादतकी जिन्दगी बिताने-वालोको स्वर्ग मिलता है जिसमे हूरे खिदमतको मिलती है और शराब व शहद पीने-खानेको। इसी प्रलोभन भरे विश्वास-की हँसी उडाई गयी है।]

एक जगह और कहते है —

क्यों न फिरदौस[5] को दोज़ख़[4] मे मिला लें यारब !
सैर के वास्ते थोडी सी फ़िजा और सही।

हे ईश्वर ! स्वर्गको क्यो न नरकमे मिला ले जिससे दिल बहलाव और सैरके लिए थोडी फिजा और बढ जाय।

वह बिहिश्तके दिलदाद इसलिए भी न हुए कि वहाँ मिलनेवाला सौन्दर्य सीमित है, जब उनकी कामना बिखरे हुए सम्पूर्ण सौन्दर्यको कलेजेसे लगा लेनेको छटपटाती है। इस प्रकार कामनाकी पूर्ति स्वर्गकी अपेक्षा ससारमे कही अधिक हो सकती है। चुनाचे एक खतमे लिखते है—

---

१ छविधाम, छविकक्ष, २ उपासना, भक्ति। ३ मधु। ४ नरक। ५ स्वर्ग।

"जब मैं बिहिश्तका तसव्वुर[1] करता हूँ और सोचता हूँ कि अगर मग़फिरत[2] हो गयी और एक क़स्र[3] मिला और एक हूर[4] मिली, अक़ामत[5] जाविदाँ[6] है और एक नेकबख़्तके साथ जिन्दगानी है तो इस तसव्वुरसे जी घबराता है और कलेजा मुँहको आता है। हय, हय, वह हूर अजीरन हो जायगी। तबीयत क्यूँ न घबरायगी? वही जमुर्रदी काख़[7] और वही तूबा[8] की एक शाख़!"

बिहिश्तके तसव्वुरसे कलेजा मुँहको आता है

स्वर्गकी वस्तुओंकी हँसी उड़ानेका कोई मौक़ा हाथसे जाने नहीं देते। चुनाचे कहते हैं—

वाइज़[9] न तुम पियो न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारी शराबे-तहूर की।

ऐ उपदेशक! तेरी शराबे तहूर (स्वर्गमें पी जानेवाली मदिरा) का क्या कहना है, जिसे न तू पी सकता है न दूसरे ही किसीको पिला सकता है? (ऐसी ख़्याली शराब लेकर क्या होगा?)

× ×

युवावस्थामें ग़ालिबके उस्तादने उनसे कहा था—"शकरका मज़ा चख लेना मगर मक्खी बनकर शहदपर कभी न बैठना नहीं तो उड़नेकी शक्ति बाक़ी न रहेगी।" यह बात गालिबके हृदयमें पैठ गयी थी। यही उनके जीवनका मेरुदण्ड है। एकमें केन्द्रित होना, एक जगह बैठकर पीना, बँधकर रहना उन्होंने कभी स्वीकार न किया। इसीलिए सरदार जाफरीके शब्दोंमें "वह मंजिलका

मंजिलका नहीं, राहका; तृप्तिका नहीं, तृष्णाका कवि

---

१ कल्पना, ध्यान, २ छुटकारा, मुक्ति, ३ महल, ४ परी, स्वर्गाङ्गना, ५ निवास, ६ नित्य, शाश्वत, ७ पन्ना (हीरा) का घर, ८ कल्पवृक्ष, ९ उपदेशक।

नही, पथका, तृप्तिका नही तृष्णाके रसका कवि है।" प्यास बुझाना उसका उद्देश्य नही, प्यास बढाना उसका आदर्श है। 'प्रसाद' की तरह वह—

इस पथका उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवनमे टिक रहना।

राहमे चलते हुए रस लूटते जाना ही उसके सुख और जीवनका तत्त्व है। उसे मजिलपर पहुँचकर तृप्त हो जानेवाले पथिकसे कभी ईर्ष्या न हुई क्योकि तब वह पथिक ही कहाँ रह गया? उसे ईर्ष्या यदि होती है तो मार्गमे अकेले भटकनेवाले पिपासाकुल राहीसे होती है, जैसा खुद फारसीमे कहा है—

रश्क बरतश्न-ए-तनहा रवे वादी दारम,
न बर आसूद दिलाने हरमो ज़मज़मे शॉ।

इस आदमीकी प्यास कभी न बुझी। वह कभी बुझनेके लिए पैदा ही न हुई थी। हाथोमे जब गति ही न रह गयी, तब भी यह प्यास नही मिटी, तब भी वह चीखकर कहता है—

गो हाथको जुबिश[1] नहीं, आँखोमे तो दम है,
रहने दो अभी सागरो[2] मीना[3] मेरे आगे।

× ×

पर गालिबकी दार्शनिक सफलता, जीवनके स्तरपर यह है कि तीक्ष्ण एव प्रबल कामनाओसे लिपटे हुए भी उसमे घटनाओके प्रति, परिणामके प्रति गहरी अनासक्ति है। इसी कारण गममे पलकर भी वह हँस सका है और हँसते हुए भी रो सका है। हास्य और रुदन, सुख और दुःख, उस स्तरपर है जहाँ उनका भेद मिट जाता है। दिलकी निहाईपर दुःखके

हँसीमे रोदन,
रोदनमे हँस।

---

१ गति, २ चषक, मद्यका प्याला, ३ मद्यकी सुराही या बडा कटर।

इतने हथौडे पडे हैं कि वह और दृढ हो गयी है—दु ख इतने देखे है कि वे मिटकर रह गये हैं। कठिनाइयाँ इतनी आई है कि उनको डँसनेकी शक्ति समाप्त हो गयी है; वे कठिनाइयाँ रही ही नही, आसान हो गयी हैं। मुश्किलोको आसान बनानेका गुर इनके हाथ आ गया है। कहते हैं—

रंजसे ख़ूगर[1] हुआ इसाँ तो मिट जाता है रंज,
मुश्किलें इतनी पडीं मुझपर कि आसाँ हो गयीं।

अर्थात् यदि किसीको दु खकी आदत पड जाती है तो फिर दु ख दु ख नही रह जाता। मुझपर इतनी कठिनाइयाँ पडी हैं कि मैं उनका अभ्यस्त हो गया हूँ और यों मुश्किलें आसान हो गयी हैं।

आसक्तियोंसे इस तरह लिपटा हुआ कि आसक्तियाँ अनासक्तिकी गोदमें सो जाती हैं—कुछ ऐसा इन्सान था ग़ालिब। उत्तरकालमें तो यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है। एक बारकी बात है कि उनके परमप्रिय शिष्य हरगोपाल 'तुफ्ता' निराशाके कारण ससार-त्यागको तैयार हुए। उस समय ग़ालिबने जो खत उन्हें लिखा था, उससे उनके मानसिक सन्तुलनका पता चलता है। लिखते हैं —

जिसमे आसक्तियाँ अनासक्तिकी गोदमे सो जाती हैं

"क्यो तर्के लिबास[2] करते हो? पहननेको तुम्हारे पास क्या है जिसको उतारकर फेंकोगे? तर्के लिबाससे कैदे हस्ती[3] मिट न जायगी। बग़ैर खाये-पिये गुजारा न होगा। सख्ती व सुस्ती[4], रंज वो अलम[5] को हमवार[6] कर दो। जिस तरह हो उसी सूरत व हर सूरत गुजरने दो।"

एक दूसरे खतमें उन्हींको फिर लिखते हैं —

---

१ अभ्यस्त, व्यसनी, २ वस्त्र-त्याग, ३ जीवनका बन्धन, ४ दृढता और शिथिलता, ५ दु ख-कष्ट, ६ समतल।

"मुझको देखो कि न आज़ाद हूँ, न मुकय्यद[1], न रंजूर[2] हूँ न तन्दु-रुस्त, न खुश हूँ न नाखुश, न मुर्दा हूँ न ज़िन्दा। जिये जाता हूँ, बातें किये जाता हूँ, रोटी रोज़ खाता हूँ, शराब गाह-गाह[3] पिये जाता हूँ। जब मौत आयेगी, मर रहूँगा। न शुक्र है, न शिकायत। जो तकरीर है बसबीले हिकायत।"

मुशी बदरुद्दीनको एक पत्रमे लिखते हैं—"नैरगिए कुदरतके तमा-शाई रहो।" फिर कहते हैं—

रात-दिन गर्दिशमें है सात आसमॉ,
हो रहेगा कुछ न कुछ घबरायँ क्या ?

हर रगमे मिलकर मस्ती लेनी चाहिए। दर्शनोत्कण्ठासे ही दृश्यमे सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है—

बख्शे है जल्वए गुल ज़ौके तमाशा 'गालिब',
चश्मको चाहिए हर रगमें वा हो जाना।

एक ओर दृष्टिकी विशालता, दूसरी ओर इस उच्च मनोभूमिकाने उन्हें सम्पूर्ण धार्मिक परम्पराओ और विभेदोके ऊपर उठा दिया था।

मूढ परम्पराओसे ऊपर

उनमे धार्मिक मूढग्राह ज़रा भी न थे। 'मीर' भी इसमे बहुत ऊपर थे पर वह एक सूफी पिता के पुत्र थे, फकीरी उनका जज़्बा थी, इश्क उनका मज़हब था। इसलिए धार्मिक सकुचिततासे ऊपर उठना उनकी खुदापरस्तीका एक सुबूत था, प्रेमधर्मकी उपासनाके लिए अनिवार्य। गालिब रईसी तबकेके आदमी थे। एक दूसरे वातावरणमे पले थे फिर भी उनमे विचार और तर्कना की प्रब-लता थी और वह मूढ परम्पराओके सामने सिर झुकानेको तैयार न थे। हम देख चुके है कि रोजा, नमाज, परहेजगारी और स्वर्ग-लोभका उन्होने

---

१ बन्दी, बन्धनमय, २ बीमार, ३ जब-तब, कभी-कभी।

किस प्रकार बार-बार उपहास किया है। यह भावनाके उत्कर्षका प्रमाण नही है, यह एक अविश्वासीके उच्चतर जीवन-मूल्योंके प्रति निष्ठाका प्रमाण है। इसीलिए दैरोहरम (मन्दिर-मस्जिद) उनके लिए, अधिकसे अधिक अभिलाषाकी पुनरुक्तिका एक दर्पणमात्र बनकर रह गया है—

दैरो हरम आईन-ए-तकरारे-तमन्ना।

या कही भी उपासनामें निष्ठा हो तो वह हर स्थानपर वन्दनीय है। किसको हिम्मत है जो उनकी तरह कहे—

वफादारी बशर्ते इस्तवारी अस्ले ईमॉ है,
मरे बुतख़ानामें तो का'ब में गाड़ो बिरहमनको।

यदि निष्ठामें दृढता हो तो वही धर्मका तत्त्व है। यदि ब्राह्मण मूर्ति-धाम (मन्दिर) में मरे तो उसे (सम्मानपूर्वक) काब में दफन करो।

फारसीमें भी कहा है—

दिलम दर का'बा अज तंगी गिरफ्त आदारए ख़्वाहम,
कि बामन बसअते बुतखानाहाए हिन्दूचाँ गोयद।

× ×

इस प्रकार ग़ालिब तत्त्ववेत्ता न होकर भी तत्त्ववेत्ता है क्योंकि जीवन और जगत्का दर्शन करते हुए वह अनुभूतिकी ऐसी गहराइयोमें उतर जाता है जिनसे तत्त्वज्ञानकी ज्योति जन्म लेती है। ग़ालिबकी विशेषता यह है कि वह ससारको केवल भावनाके आकाशमें उडते हुए ही नही देखता, उसे बुद्धिकी ठोस भूमिसे भी देखता है इसीलिए उसमें कल्पनाकी उडानके साथ गम्भीर दृष्टि-निक्षेपकी स्थिरता भी है। और यही ठहराव तत्त्वज्ञानकी अनेक झलकियाँ उसके दिलके आईनेमें उतारता है। चूँकि वह कवि है इसलिए इन झलकियोंमें भी तरह-तरहके रग खिल उठे हैं। वे तत्त्वज्ञानीकी शुद्ध ज्ञानचर्चासे नहीं, कविके सौन्दर्य-बोधसे उत्पन्न चित्र हैं।

तत्त्ववेत्ता न होकर भी तत्त्ववेत्ता

मौलाना 'नियाज़' फतहपुरीने लिखा है कि यदि ग़ालिबका कोई दर्शन है तो वह आनन्दका दर्शन है। यदि इसका अभिप्राय यह हो कि ग़ालिब केवल सुख, वैभव और खुशीका शाइर है तो यह बात बिलकुल ही तथ्य-हीन है। ग़ालिबके काव्यमें दुःख और दर्दकी तस्वीरें सुखके चित्रोंसे कहीं ज्यादा हैं। पर यदि इसका यह अर्थ है कि ग़ालिबका ग़म उसे निष्क्रिय नहीं करता, निराश नहीं करता और उस ग़मकी घटाओंके बीच मुस्कराहटकी बिजलियाँ तड़पती और चमकती हैं तथा आँसूके बादलोंमें ज़िन्दगीकी हज़ार-हज़ार लज़्ज़तें तीव्र प्रकाश-रेखाकी भाँति प्रविष्ट हो जाती हैं तो यह सत्य है।

ज़िन्दगी और कामनाकी अगणित भंगिमाएँ उसके काव्यमें मचलती हैं

ग़ालिब ऐसी उद्दाम कामनाका कवि और चित्रकार है जो कभी शान्त नहीं होती, जो इसी दुनियाके सहस्र-सहस्र रूपोंमें अपनेको खोजती और पाती है, जो मरती है और मर-मरकर जी उठती है, जिसमें ज़िन्दगीकी अगणित भंगिमाएँ नित्य नूतन स्वादका सर्जन करती हैं, नई-नई अदाएँ, नई-नई तस्वीरें, नये-नये रंग सामने आते हैं और एक ऐसा तमाशा हो रहा है जो कभी खत्म नहीं होता और जहाँ तमाशाई खुद एक तमाशा है, बल्कि तमाशेमें, दर्शनीयमें, दृश्यमें ही दर्शक मिल जाता है। माशूककी छवि यहाँ चारों ओर बिखरी हुई है, पर्दा उठानेकी देर है, हर जगह उसे नयन भरके देखा जा सकता है। यह संसार, दुःखकी घटाओंके साथ भी, कलेजेसे लगा लेने, हजार जानसे फ़िदा होनेके योग्य है। ग़ालिब शत-शत जिह्वाओंसे संसारके सौन्दर्यकी ओर इशारा करता है—

नहीं निगारको उल्फ़त, न हो, निगार तो है।
नहीं बहारको फ़ुर्सत, न हो, बहार तो है॥

यही शतधा बहनेवाला संसार एवं जीवनका सौन्दर्य ग़ालिबका दर्शन है।

ग़ालिबकी रचनाएँ

फारसी रचनाएँ

मिर्ज़ा गालिब फ़ारसीके उस्ताद थे। उन्हें अपनी फ़ारसीपर नाज़ था। कभी-कभी उर्दू लिखते थे पर फारसी-रचनाओंपर आसक्त थे। बचपनसे ही फ़ारसीमें शेर कहना शुरू कर दिया था और अन्तकालतक लगभग ग्यारह हज़ार शेर लिखे।

फारसी पद्य—फ़ारसीके लगभग ग्यारह हज़ार शेरोंमें गज़लें, क़सीदे, मस्नवियाँ, तर्कीबबन्द इत्यादि शामिल हैं। इनका मोटा विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

ग़ज़ल—लगभग साढे चार हज़ार शेर।

मस्नवी—दो हज़ारसे ऊपर।

कसीदे इत्यादि—लगभग चार हज़ार।

फारसीकी अधिकाश गज़लोंमें 'बेदिल'का रग है। मस्नवियाँ ग्यारह हैं जिनमें तीन (चिरागे देर, बादे मुखालिफ़ और अब्र गुहरबार) ज्यादा प्रसिद्ध हैं। अब्र गुहरबार सबसे अच्छी है। फ़ारसी क़सीदे कुल तैंतीस हैं जिनमें १२ धार्मिक हैं, शेष २१ दिल्ली, अवध और रामपुरके शासकों, मित्रो एव अग्रेज़ अधिकारियो तथा महारानी विक्टोरियाकी प्रशसामें लिखे गये हैं। क़सीदोंमें यह सौदासे बहुत नीचे और दूर मालूम पडते हैं फिर भी कहीं-कहीं उनमें इनकी प्रतिभा गज़लोंसे अधिक चमकी है और इनका काव्य-शिल्प उभर आया है।

कुल्लियाते नज़्मफारसी—३५-३६ सालकी उम्र तक मिर्ज़ाके फ़ारसी

कलामका अच्छा-खासा सकलन हो चुका था जिसे उन्होंने १८३५ ई० मे 'मयखानए आर्जू' (कामनाकी मधुशाला) के नामसे सम्पादित और क्रमबद्ध किया। पर यह दस वर्ष तक अप्रकाशित पडा रहा। १८४५ ई० मे नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदखाँ 'नय्यर'ने इसे सशोधित और सम्पादित कर मतबअ दारुलसलाम देहलीसे प्रकाशित कराया। इसमे ५०६ पृष्ठ है, और अन्तमे ३ पृष्ठका परिशिष्ट है। इसमे ६६७२ शेर है।

इसके बादका फारसी कलाम नवाब ज़ियाउद्दीन और नाजिर हुसेन मिर्ज़ाके पास एकत्र होता रहा। १८५७की उथल-पुथलमे इन दोनोके घर ऐसे लुटे कि किताबें भी न बची। यह सग्रहीत काव्य भी उसीमे स्वाहा हो गया। १८६२ ई० तक प्रयत्न करके जो कुछ दूसरी बार एकत्र किया जा सका उसे लखनऊके मुशी नवलकिशोरने नवाब जियाउद्दीन अहमदखाँके पुत्र मीरज़ा शहाबउद्दीन 'साकिब'से मँगवा लिया और अपने प्रेससे जून १८६३मे प्रकाशित किया। इसमे 'मयखानए आर्जू'के शेरोके अलावा ३७५२ शेर हैं अर्थात् कुल शेरोकी सख्या १०४२४ है।

अब्रे गुहरबार—शाब्दिक अर्थ है 'मुक्तावर्षक मेघ'। गालिबकी यह सबसे बडी मस्नवी है। यह कुल्लियातमे सम्मिलित है पर कुल्लियातके मुद्रणके कुछ दिनो बाद एक मित्रके आग्रहपर अलग छापी गयी। इसमे ४२ पृष्ठ हैं। इसमें ग्यारह सौसे अधिक शेर है। वस्तुत यह एक अपूर्ण मस्नवी है जिसे मिर्ज़ा फिर्दौसीके 'शाहनाम'के ढगपर लिखना चाहते थे पर वह शान्ति, जिसमे इसे पूरा कर सकते, नसीब न हुई। मिर्ज़ाके उत्तर-जीवनकी मानसिक स्थितिके अध्ययनके लिए इसमे पर्याप्त सामग्री मिलती है। इस कालमे जब भौतिक सुख, विलास और भोगकी कामनाएँ शिथिल पडती जा रही थी उनका मन बीच-बीचमे भगवान्के चरणोमे निवेदित होना चाहता था पर अभी तक उनमे सशयके पूर्व सस्कार बने हुए थे इसलिए ईशस्तवन तथा विनयमें भी वह प्राण-वेदन नही है जो अनुताप-दग्ध भक्तके हृदयसे फूटता है।

इस संस्करणमें मस्नवीके अन्तमें दो क़सीदे और दो क़ित्ते भी हैं जो कुल्लियातके प्रकाशनके बाद लिखे गये थे। इनके अतिरिक्त चन्द रुबाइयाँ (चतुष्पदियाँ) भी हैं जो कुल्लियातमें छपनेसे रह गयी थीं।

सबदे चीन—'सबदे चीन'का अर्थ है 'फूल चुननेवालेकी डलिया'। इसमें कुल्लियातके प्रकाशनके अनन्तर लिखे हुए क़सीदे, क़ित्ते तथा अन्य कलाम हैं जिनमें से कुछ तो 'अब्रे गुहरबार'में भी छप चुके थे। इसे अगस्त १८६७ ई० में मतबअ मुहम्मदीने प्रकाशित किया था। १९३८ ई० में इसका दूसरा परिवर्द्धित संस्करण श्री मालिकरामने सम्पादित करके मकतब जामिअ दिल्लीसे प्रकाशित कराया। इसमें ग़ालिबकी बिखरी हुई कुछ और रचनाएँ भी जोड दी गयीं। इसमें एक क़सीदा रामपुरके नवाब क़लबअलीख़ाँकी प्रशंसामें है। 'सबदे चीन'के इस संस्करणमें ८०७ शेर हैं।

सबद बाग़े दोदर—इसका पता कुछ समय पूर्व चला है। अभी तक अप्रकाशित है। इसकी जो पाण्डुलिपि देहली यूनिवर्सिटीके फारसी-अरबी विभागके अध्यक्ष प्रो० सय्यद वजीर हसनके पास है उसे लिपिकने ग़ालिबके शिष्य मुंशी हीरासिंह खत्रीकी फ़र्माइशपर तैयार किया था। किताबका लेखन-कार्य तो ग़ालिबके जीवनमें ही शुरू हुआ था पर उसकी पूर्ति उनकी मृत्युके सवा सालसे भी अधिक समयके बाद, ७ जुलाई १८७० ई० को हुई। ग़ालिबने इसका अधिकांश भाग देखा था।

दुआए सबाह—इस पुस्तकके दो खण्ड हैं। पहिले खण्डमें सबदे चीन (प्रथम संस्करण) तथा कुछ थोडी अन्य नज़्में हैं। दूसरे खण्डमें कुछ गद्य रचनाएँ हैं। 'दुआए सबाह'का अर्थ है 'प्रात प्रार्थना' या 'सुन्दर स्तव'। एक मस्नवी है जिसे ग़ालिबने अपने भाजे मीरज़ा अब्बास बेग एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर लखनऊकी फ़र्माइशपर लिखी थी और नवल-

कलामका अच्छा-खासा सकलन हो चुका था जिसे उन्होंने १८३५ ई० मे 'मयखानए आर्जू' (कामनाकी मधुशाला) के नामसे सम्पादित और क्रम-बद्ध किया। पर यह दस वर्ष तक अप्रकाशित पडा रहा। १८४५ ई० मे नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदखाँ 'नय्यर'ने इसे सशोधित और सम्पादित कर मतवअ दारुलसलाम देहलीसे प्रकाशित कराया। इसमे ५०६ पृष्ठ है, और अन्तमे ३ पृष्ठका परिशिष्ट है। इसमे ६६७२ शेर है।

इसके बादका फारसी कलाम नवाब ज़ियाउद्दीन और नाज़िर हुसेन मिर्जाके पास एकत्र होता रहा। १८५७की उथल-पुथलमे इन दोनोके घर ऐसे लुटे कि किताबें भी न बची। यह सग्रहीत काव्य भी उसीमे स्वाहा हो गया। १८६२ ई० तक प्रयत्न करके जो कुछ दूसरी बार एकत्र किया जा सका उसे लखनऊके मुशी नवलकिशोरने नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदखाँ-के पुत्र मीरज़ा शहाबउद्दीन 'साकिब'से मँगवा लिया और अपने प्रेससे जून १८६३मे प्रकाशित किया। इसमें 'मयखानए आर्जू'के शेरोके अलावा ३७५२ शेर है अर्थात् कुल शेरोकी सख्या १०४२४ है।

अब्रे गुहरबार—शाब्दिक अर्थ है 'मुक्तावर्षक मेघ'। गालिबकी यह सबसे बडी मस्नवी है। यह कुल्लियातमे सम्मिलित है पर कुल्लियातके मुद्रणके कुछ दिनो बाद एक मित्रके आग्रहपर अलग छापी गयी। इसमे ४२ पृष्ठ हैं। इसमे ग्यारह सौसे अधिक शेर है। वस्तुत यह एक अपूर्ण मस्नवी है जिसे मिर्जा फिर्दौसीके 'शाहनाम'के ढगपर लिखना चाहते थे पर वह शान्ति, जिसमे इसे पूरा कर सकते, नसीब न हुई। मिर्जाके उत्तर-जीवनकी मानसिक स्थितिके अध्ययनके लिए इसमे पर्याप्त सामग्री मिलती है। इस कालमे जब भौतिक सुख, विलास और भोगकी कामनाएँ शिथिल पडती जा रही थी उनका मन बीच-बीचमे भगवान्के चरणोमे निवेदित होना चाहता था पर अभी तक उनमे सशयके पूर्व सस्कार बने हुए थे इसलिए ईशस्तवन तथा विनयमे भी वह प्राण-वेदन नही है जो अनुताप-दग्ध भक्तके हृदयमे फूटता है।

इस सस्करणमे मस्नवीके अन्तमें दो कसीदे और दो किते भी है जो कुल्लियातके प्रकाशनके वाद लिखे गये थे। इनके अतिरिक्त चन्द रुवाइयाँ (चतुष्पदियाँ) भी हैं जो कुल्लियातमें छपनेसे रह गयी थी।

सवदे चीन—'सवदे चीन'का अर्थ है 'फूल चुननेवालेकी डलिया'। इसमें कुल्लियातके प्रकाशनके अनन्तर लिखे हुए कसीदे, किते तथा अन्य कलाम हैं जिनमें से कुछ तो 'अब्रे गुहरवार'में भी छप चुके थे। इसे अगस्त १८६७ ई० में मतवअ मुहम्मदीने प्रकाशित किया था। १९३८ ई० में इसका दूसरा परिवर्द्धित सस्करण श्री मालिकरामने सम्पादित करके मकतव जामिअ दिल्लीसे प्रकाशित कराया। इसमे गालिवकी विखरी हुई कुछ और रचनाएँ भी जोड दी गयी। इसमें एक क़सीदा रामपुरके नवाव क़लवअलीखाँकी प्रशसामें है। 'सवदे चीन'के इस सस्करणमें ८०७ शेर हैं।

सवद वाग़े दोदर—इसका पता कुछ समय पूर्व चला है। अभी तक अप्रकाशित है। इसकी जो पाण्डुलिपि देहली यूनिवर्सिटीके फ़ारसी-अरवी विभागके अध्यक्ष प्रो० सय्यद वज़ीर हसनके पास है उसे लिपिकने गालिवके शिष्य मुशी हीरासिह खत्रीकी फ़र्माइशपर तैयार किया था। कितावका लेखन-कार्य तो गालिवके जीवनमें ही शुरू हुआ था पर उसकी पूर्ति उनकी मृत्युके सवा सालसे भी अधिक समयके वाद, ७ जुलाई १८७० ई० को हुई। गालिवने इसका अधिकाश भाग देखा था।

दुआए सवाह—इस पुस्तकके दो खण्ड हैं। पहिले खण्डमें सवदे चीन (प्रथम सस्करण) तथा कुछ थोडी अन्य नज़्में हैं। दूसरे खण्डमें कुछ गद्य रचनाएँ हैं। 'दुआए सवाह'का अर्थ है 'प्रात प्रार्थना' या 'सुन्दर स्तव'। एक मस्नवी है जिसे ग़ालिवने अपने भाजे मीरज़ा अव्वास वेग एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर लखनऊकी फ़र्माइशपर लिखी थी और नवल-

किशोर प्रेस लखनऊसे छपी थी। मई १९४१के 'निगार' (लखनऊ) मे मौलाना इम्तियाज अली अर्शीने पुन प्रकाशित करायी।

फारसी गद्य—मिर्जा जितने अच्छे शाइर थे उतने ही उच्चकोटिके गद्यकार भी थे। यौवन कालके आरम्भसे ही उन्होने फारसीमे गद्य लिखना शुरू कर दिया था। अधिकाश फारसी गद्य-रचनाएँ २८ से ४० सालकी उम्रतक की लिखी हुई हैं। बादमें उर्दू गद्य लिखने लगे थे और फारसीमें लिखना छोड दिया था।

पच आहग—यह फारसी गद्यमे मिर्जाकी पहली रचना है। इसमे पाँच खण्ड है। १८२५ ई० मे जब अग्रेजोने भरतपुरपर चढाई की तो मिर्जा गालिबके चचिया ससुर नवाब अहमद बख्श खाँ भी उनके साथ युद्ध-में सम्मिलित थे। इस अवसरपर गालिब तथा उनके साले अलीबख्श खाँ 'रजूर' भी वहाँ थे। रजूरने गालिबसे अनुरोध किया कि आप पत्र-लेखनके नियमादिपर एक पुस्तक लिख दें। इसी अनुरोधके फलस्वरूप इस पुस्तक-की नीव पडी। उस समय इसके दो खण्ड लिखे गये। फिर तीसरे खण्डमे वे शेर दीवानसे लेकर एकत्र किये जिनका पत्र लेखनमे उपयोग किया जा सकता है। चतुर्थ खण्डमे स्फुट पद्य-गद्य रचनाएँ है। सबसे महत्त्वपूर्ण पचम खण्ड है जिसमें मिर्जाके वे फारसी पत्र है जो उन्होने गदरसे पहिले अपने मित्रोको लिखे थे और जिनसे उनके जीवनपर प्रकाश पडता है।

मेह्र नीमरोज—इसका शाब्दिक अर्थ है मध्यदिवसका सूर्य। जब अग्रेजोकी चेष्टा और प्रभावसे हकीम अहसन उल्ला खाँ शाहके वजीर नियुक्त हुए तो उन्होने अग्रेजोके और शुभेपियोके लिए भी दरबारमे जगह पैदा करनेकी कोशिश की। इन्हीमे एक मिर्जा गालिब भी थे जो अग्रेजोके पेन्शनखार और प्रिय थे। अवसर पाकर हकीम साहबने बादशाहका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि गालिब जैसा विद्वान् और कवि दिल्लीमे उप-स्थित हो और उसे शाही दरबारमे जगह न मिले, यह आश्चर्यकी बात है। इसपर गालिब ४ जुलाई १८५० ई० को राजकीय इतिहासकारके पदपर

नियुक्त किये गये और उन्हें तैमूर वशका इतिहास फ़ारसीमें लिखनेका काम सौंपा गया। शुरूमें बहादुरशाह 'ज़फर' के आदेशके अनुसार यह तय पाया कि तैमूरसे लेकर वर्तमान दिल्लीपति तकका विवरण पुस्तकमें दिया जाय। जनवरी १८५१ तक तैमूरसे आरम्भ कर बाबर तकका वृत्तान्त पूर्ण कर दिया और फिर मार्च १८५१के अन्ततक निर्वासनसे हुमायूँके लौटने तकका इतिहास लिख डाला।

जब मिर्ज़ा हुमायूँ तकका इतिहास लिख चुके तब बहादुर शाहने आज्ञा दी कि इतिहास सृष्टिके आरम्भसे लिखा जाय। मिर्ज़ाको इस विषयमें कोई दिलचस्पी न थी, न उन्हें सृष्टिके आरम्भके बारेमें कोई विशेष जानकारी थी, इसलिए वज़ीरने ऐतिहासिक तथ्य एव आंकडे एकत्र कर देनेकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली। एक प्रकारसे वज़ीर उसे उर्दूमें लिखते और गालिब फ़ारसी रूप देते थे। अब मिर्ज़ाने योजना बनाकर इतिहासके दो भाग कर दिये। पूरे ग्रन्थका नाम परतवस्तान और प्रथम भागका 'मेह्र नीमरोज़' एव दूसरेका 'माहे नीम माह' रखना तय किया। यह भी निश्चय हुआ कि प्रथम भागमें हुमायूँ तकके और दूसरे भागमें अकबरसे बहादुरशाह तकके वृत्तान्त दिये जायँ। बीच-बीचमें अनेक प्रकारके विघ्न पडते रहे, कभी हकीम साहबकी ओरसे ढिलाई होती, कभी ग़ालिबकी ओरसे। किसी तरह पहला भाग अर्थात् मेह्र नीमरोज़ अगस्त १८५४ ई० में समाप्त हुआ और १८५५ मे फखरुलमताबअसे प्रकाशित हुआ। इसका दूसरा सस्करण प्रोफेसर औलादहुसेन शादाँने, सशोधन एव सम्पादनके बाद, मतबअ करीमी लाहौरसे प्रकाशित कराया। दूसरा भाग लिखा ही नही गया।

दस्तम्बू—'दस्तम्बू' उस पुष्प गुच्छको कहते हैं जो हाथमें लेकर सूँघनेके लिए बनाया जाता है। जब गदरका हडकम्प मचा और मिर्ज़ाका किलेमें आना-जाना या बाहर निकलना बन्द हो गया तो बेकारीमें उन्होने ग़दरका हाल लिखना शुरू किया। इस पुस्तकका आरम्भ मई १८५७ ई०में हुआ और अगस्त-'५७ में वह समाप्त हो गयी। ज्यो-ज्यो लिखते थे, एक

नकल मीर मेहदी 'मजरूह' को भी भेजते जाते थे। अभिप्राय यह था कि हगामेमे यदि एकके यहाँ नष्ट हो जाय तो दूमरेके यहाँ सुरक्षित रहे। पुस्तक पहिली वार मतवअ मुफीदुल्खलायक आगरासे नवम्बर १८५८के प्रथम सप्ताहमे प्रकाशित हुई। पांच महीनेमे ५०० प्रतियोका यह मस्करण समाप्त हो गया। अधिक विक्री पजावमे हुई। १८६५ ई०मे दूसरा और और १८७१ ई० मे तीसरा सस्करण प्रकाशित हुआ। इम पुस्नककी मुख्य विशेषता यह है कि यह ठेठ फारसीमे है और सिवाय व्यक्तिवाचक नामोंके एक भी अरबी शब्दका प्रयोग नही किया गया है।

कुल्लियाते नस्र—इसमें उपर्युक्त तीनो पुस्तकें सकलित कर दी गयी हैं। लखनऊके मुशी नवलकिशोरने जनवरी १८६७ ई० मे पहिली बार इस ग्रन्थका प्रकाशन किया। १८७१ और १८८४ ई० मे इसके द्वितीय, तृतीय सस्करण हुए। १८७५ में नवलकिशोर प्रेसकी कानपुर शाखासे भी इसका एक सस्करण निकला था।

कातअ बुरहान—गदरके दिनोमे घरमे बन्द होनेके कारण, वक्त वितानेके ख्यालसे, गालिवने 'बुरहान कातअ' को पढना शुरू किया। यह मौलवी मुहम्मद हुसेन तब्रेज़ीका लिखा फारसीका प्रसिद्ध शव्दकोश है। जब पढने लगे तो उन्हें उसमें वहुतेरी गलतियाँ दिखायी दी। वह पुस्तकके पृष्ठोके हाशियेपर अपनी आपत्तियाँ लिखते गये। वादमे उन सबको एकत्र करके 'कातअ बुरहान' नामसे एक पुस्तक बना दी। १८६० मे पूरी हो गयी थी परन्तु दो साल बाद १८६२ ई० मे नवलकिशोर प्रेस लखनऊसे पहिली वार प्रकाशित हुई।

दुरफ्श कावयानी—काव ईरानमे एक लोहार था जिसने 'जहहाक'के अत्याचारोंसे तग आकर उसके विरुद्ध विद्रोह एव युद्ध किया और उसे हराकर 'फरीदूँ' को उसके स्थानपर बैठाया। दुरफ्शका अर्थ झण्डा या पताका है। भावार्थ है विद्रोहका झण्डा। 'कातअ बुरहान' के प्रकाशनके वाद साहित्य-जगत्में एक तहलका मच गया और मिर्ज़ाकी कडी आलो-

चनाका जवाव अनेक पुस्तकोंके रूपमें प्रकट हुआ। कई साल तक यह तूफान चलता रहा। जव उसका वेग कम हुआ तव कातअ बुरहानमें कुछ नयी आपत्तियाँ और अन्य वातें सम्मिलित करके दिसम्वर १८६५ ई० में इस नामसे एक नया संस्करण प्रकाशित किया गया।

मआसिर ग़ालिव—शाब्दिक अर्थ है गालिबके अच्छे स्मृति चिह्न या सुकृतियाँ। इसमें ग़ालिवके ३२ फारसी पत्र हैं जो उन्होंने कलकत्ता और ढाकाके अपने कुछ मित्रोंको लिखे थे। वैरिस्टर अव्दुल वदूद पटनाने इन पत्रों तथा कुछ अन्य उर्दू-फ़ारसी रचनाओंका सकलन-सम्पादन कर इस नामसे प्रकाशित कराया था।

मुतफर्रक़ाते ग़ालिब—इसमें कलकत्ताके मित्रोंके नाम लिखे गालिवके कुछ फ़ारसी पत्र तथा कलकत्ता-प्रवासमें लिखी कुछ नज्में हैं। एक अच्छी भूमिका और टिप्पणियोंके साथ सय्यद मा'सूद हसन रिज़वीने इन रचनाओंको उपर्युक्त नामसे १९४७ में रामपुरसे प्रकाशित किया। इसमें ४९ पत्र हैं जिनमेंसे अनेक पचआहगमें भी सम्मिलित हैं।

उर्दू रचनाएँ

उर्दू पद्य .—

मिर्ज़ा गालिवने अपने काव्यका आरम्भ उर्दूसे ही किया था परन्तु सामन्ती अहने शीघ्र फारसीकी ओर आकर्षित कर दिया। फिर भी आज गालिवको जो इतना यश मिला है वह उर्दू कविके रूपमें ही मिला है। पाँवकी धूल कभी-कभी सिरपर चढकर वोलती है।

दीवाने गालिव (उर्दू)—इनकी प्रारम्भिक उर्दू शाइरी वेदिलकी फ़ारसी शाइरीकी नकल है। वह वोझिल, कृत्रिम है। जव इनपर तीव्र आक्षेप होने लगे तव अपने परम प्रिय मित्र मौलवी फजलहक़ खैरावादी तथा दूसरे हितैपियोंकी सलाहपर अपने सकलनसे सैंकडो शेर काटकर निकाल दिये और काट-छाँटकर चुने शेरोंका एक दीवान सम्पादित किया।

इसमे नमूनेके तौरपर अपने प्रारम्भिक काव्यके भी बहुतसे शेर रहने दिये । यह दीवान पहिली बार १८४२ ई० मे सय्यदुल मताबअ दिल्लीसे प्रकाशित हुआ । इसमे कुल १०९५ शेर हैं, यद्यपि इसमे गणना १०७० की ही दी हुई है । यह सस्करण दुर्लभ है ।

इसका दूसरा सस्करण मई १८४७ मे मतबअ दारुलसलाम दिल्लीसे छपकर निकला । इसमे ११५९ शेर हैं ।

गालिबने मई १८५७ मे, गदरसे दो-चार दिन पहिले, अपने उर्दू दीवान-की एक हस्तलिपि रामपुरके नवाब यूसुफअलीखांके पास भेजी थी । इसीकी प्रतिलिपि लेकर मतबअ अहमदी दिल्लीसे २९ जुलाई १८६१मे और मतबअ निजामी कानपुरसे जून १८६२ मे दीवाने उर्दूके दो सस्करण और निकले । इनमे पहिला बहुत अशुद्ध और भद्दा छपा है । दोनो सस्करणोमे शेरोकी सख्या एक ही, १७९६ है पर पृष्ठ कम-ज्यादा है । दिल्ली सस्करणमे ८८ तथा कानपुरवालेमे १०४ पृष्ठ हैं । १८६३मे १७९५ शेरोका एक और सस्करण मुशी शिवनारायणने मतबअ मुफीदुल खलायक आगरासे निकाला था जिसमे १४६ पृष्ठ हैं ।

गालिबके जीवन-कालमे उनके उर्दू काव्यके यही चार सस्करण प्रकाशित हुए । उनके जीवनके बाद तो दीवाने गालिब उर्दूके बीसियो सस्करण हुए हैं ।

नुस्खे हमीदिय या नुस्खे भूपाल—मिर्जा साहबने अपना उर्दू दीवान रदीफवार—अक्षरानुक्रमसे—१८२१ ई० में साफ कराया था, जब वह केवल २४ वर्षके थे और बेदिलके रगमे रगे हुए थे । इसकी एक प्रति भूपालके राजकीय पुस्तकालयमे थी । १६३१ ई० मे नुस्खे हमीदिय के नामसे वह प्रकाशित कर दी गयी । इसके आरम्भमे ६० शेरोका एक फारसी कितअ है, फिर उर्दूके तीन कसीदे हैं जिनमें क्रमश ११०, ६८ और २९ शेर हैं । इसके बाद गज़ले हैं जिनमे १८८३ शेर हैं । जब दीवाने गालिबका चयन किया गया तब पहिले और दूसरे कसीदेके केवल २८ एव ३३ शेर

उनमें लिये गये, तीसरा बिलकुल निकाल दिया गया। इसी प्रकार गजलोंके १८८३ शेरोंमेंसे लगभग साढे चार सौ लिये गये।

आजकल दीवाने गालिबके जितने सस्करण मिलते हैं वे वही हैं जिन्हें खुद या अपनी देख-रेखमें चुनाव करके गालिबने अपने जीवनकालमें प्रकाशित कराया था। इनमें मालिकरामजी द्वारा सम्पादित सस्करण सबसे शुद्ध है।

अर्शी-सम्पादित दीवाने गालिब—रामपुरके राजकीय पुस्तकालयके अधीक्षक श्री इम्तियाजअली अर्शी वर्षोंसे ग़ालिबपर परिश्रम कर रहे थे। १९५८ ई०के मध्य उन्होने कृपापूर्वक मुझे सूचित किया कि मैंने ग़ालिबका सम्पूर्ण प्राप्त उर्दू काव्य एकत्र कर दिया है और वह छप रहा है। शीघ्र ही आपको मिल जायगा। अब यह सस्करण अजुमनतरक्किए उर्दूने प्रकाशित हो गया है। निश्चय ही अर्शी साहबने इसमे शुद्धताका बहुत ध्यान रखा है और पाद-टिप्पणियोंमें पाठभेदका सकेत भी विभिन्न प्रतियोंके आधारपर कर दिया गया है।

दीवाने ग़ालिबके अनेक सुन्दर सस्करण निकले हैं। इनमें बर्लिनवाला सस्करण, चग़ताईके चित्रयुक्त सस्करण, सरदार जाफरी सम्पादित सस्करण तथा पूर्णताकी दृष्टिसे अर्शी सस्करण उल्लेखनीय हैं परन्तु इनके मूल्य अधिक हैं और साधारण हैसियतके पाठक उनसे लाभ उठानेमें असमर्थ हैं।

उर्दू गद्य :—

ऊदे हिन्दी—१८४९ ई० तक मिर्ज़ा अपने पत्र फ़ारसीमें ही लिखा करते थे पर इसके बाद उर्दूमें लिखने लगे, फ़ारसीमें लिखना प्राय छोड दिया। मिर्ज़ाके उर्दू पत्र उर्दू गद्यमें बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। श्रीमुम्ताज़ अली मेरठीने बडे परिश्रमसे ग़ालिबके १३७ पत्र एकत्र किये और 'ऊदे हिन्दी'के नामसे मतबअ मुजतबाई मेरठमें छापकर २७ अक्टूबर १८६८को, अर्थात् ग़ालिबकी मृत्युसे लगभग चार मास पूर्व प्रकाशित किया।

इसमे नमूनेके तौरपर अपने प्रारम्भिक काव्यके भी बहुतसे शेर रहने दिये। यह दीवान पहिली बार १८४२ ई० मे सय्यदुल मतावअ दिल्लीसे प्रकाशित हुआ। इसमे कुल १०९५ शेर है, यद्यपि इसमे गणना १०७० की ही दी हुई है। यह सस्करण दुर्लभ है।

इसका दूसरा सस्करण मई १८४७ मे मतवअ दारुलसलाम दिल्लीसे छपकर निकला। इसमे ११५९ शेर है।

गालिबने मई १८५७ मे, गदरसे दो-चार दिन पहिले, अपने उर्दू दीवान-की एक हस्तलिपि रामपुरके नवाब यूसुफअलीखांके पास भेजी थी। इसीकी प्रतिलिपि लेकर मतवअ अहमदी दिल्लीसे २९ जुलाई १८६१मे और मतवअ निजामी कानपुरसे जून १८६२ मे दीवाने उर्दूके दो सस्करण और निकले। इनमे पहिला बहुत अशुद्ध और भद्दा छपा है। दोनो सस्करणोमे शेरोकी सख्या एक ही, १७९६ है पर पृष्ठ कम-ज्यादा है। दिल्ली सस्करणमे ८८ तथा कानपुरवालेमे १०४ पृष्ठ है। १८६३मे १७९५ शेरोका एक और सस्करण मुशी शिवनारायणने मतवअ मुफीदुल खलायक आगरासे निकाला था जिसमे १४६ पृष्ठ है।

गालिबके जीवन-कालमे उनके उर्दू काव्यके यही चार सस्करण प्रकाशित हुए। उनके जीवनके वाद तो दीवाने गालिब उर्दूके बीसियो सस्करण हुए है।

नुस्खा हमीदिय या नुस्खा भूपाल—मिर्ज़ा साहबने अपना उर्दू दीवान रदीफवार—अक्षरानुक्रमसे—१८२१ ई० मे साफ कराया था, जब वह केवल २४ वर्षके थे और बेदिलके रगमे रगे हुए थे। इसकी एक प्रति भूपालके राजकीय पुस्तकालयमे थी। १६३१ ई० मे नुस्खा हमीदिय के नाममे वह प्रकाशित कर दी गयी। इसके आरम्भमे ६० शेरोका एक फारसी कितअ है, फिर उर्दूके तीन कसीदे है जिनमें क्रमश ११०, ६८ और २९ शेर है। इसके बाद गजलें है जिनमे १८८३ शेर है। जब दीवाने गालिबका चयन किया गया तब पहिले और दूसरे कसीदेके केवल २८ एव ३३ शेर

उसमे लिये गये, तीसरा बिलकुल निकाल दिया गया। इसी प्रकार गज़लोंके १८८३ शेरोमेसे लगभग साढे चार सौ लिये गये ।

आजकल दीवाने गालिबके जितने सस्करण मिलते है वे वही है जिन्हें खुद या अपनी देख-रेखमें चुनाव करके गालिबने अपने जीवनकालमें प्रकाशित कराया था। इनमें मालिकरामजी द्वारा सम्पादित सस्करण सबसे शुद्ध है।

अर्शी-सम्पादित दीवाने गालिब—रामपुरके राजकीय पुस्तकालयके अधीक्षक श्री इम्तियाजअली अर्शी वर्षोसे गालिबपर परिश्रम कर रहे थे। १९५८ ई०के मध्य उन्होने कृपापूर्वक मुझे सूचित किया कि मैंने गालिबका सम्पूर्ण प्राप्त उर्दू काव्य एकत्र कर दिया है और वह छप रहा है। शीघ्र ही आपको मिल जायगा। अब यह सस्करण अजुमनतरक्किए उर्दूमे प्रकाशित हो गया है। निश्चय ही अर्शी साहबने इसमे शुद्धताका बहुत ध्यान रखा है और पाद-टिप्पणियोमें पाठभेदका सकेत भी विभिन्न प्रतियोंके आधारपर कर दिया गया है।

दीवाने ग़ालिबके अनेक सुन्दर सस्करण निकले हैं। इनमें वलिनवाला सस्करण, चगताईके चित्रयुक्त सस्करण, सरदार जाफ़री सम्पादित सस्करण तथा पूर्णताकी दृष्टिमे अर्शी सस्करण उल्लेखनीय हैं परन्तु इनके मूल्य अधिक है और साधारण हैसियतके पाठक उनसे लाभ उठानेमें असमर्थ हैं।

उर्दू गद्य :—

ऊदे हिन्दी—१८४९ ई० तक मिर्ज़ा अपने पत्र फारसीमें ही लिखा करते थे पर इसके बाद उर्दूमें लिखने लगे, फारसीमें लिखना प्राय छोड दिया। मिर्ज़ाके उर्दू पत्र उर्दू गद्यमें बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। श्रीमुम्ताज अली मेरठीने बडे परिश्रमसे गालिबके १३७ पत्र एकत्र किये और 'ऊदे हिन्दी'के नामसे मतबअ मुजतबाई मेरठमें छापकर २७ अक्टूबर १८६८को, अर्थात् ग़ालिबकी मृत्युसे लगभग चार मास पूर्व प्रकाशित किया।

उर्दूए मुअल्ला—मार्च १८६९ ई० मे, गालिबकी मृत्युके १९ दिन बाद, इस नामसे, उनके पत्रोका एक दूसरा सकलन अकमलुलमताबअ द्वारा प्रकाशित हुआ। यह प्रथम भाग था। इसमे ४६४ पृष्ठ है। इसी प्रेसमे इसका दूसरा सस्करण ११ फरवरी १८९१को प्रकाशित हुआ।

एप्रिल, १८९९ मे मतबअ मुजतबाई देहलीमे प्रथम भागके साथ ही दूसरा भाग भी मिलाकर, पहली बार प्रकाशित किया गया। मौलाना हालीने इसका सम्पादन किया था। पुन यह पूरा ग्रन्थ १९०२ ई० मे मुबारकअलीने करीमी प्रेस लाहौरसे छापकर प्रकाशित किया। इसके बाद तो कई सस्करण निकल चुके है। एक सस्ता-सा पर असम्पादित सस्करण इलाहाबादके प्रकाशक लाला रामनारायण लालने भी निकाला है।

मकातीबे गालिब—जीवनके उत्तरकालमे गालिबका रामपुर दरबारसे घनिष्ट सम्बन्ध रहा इसलिए १८५७ से मृत्युपर्यन्त उन्होने अनेकानेक पत्र लिखे। अधिकाश पत्र रामपुरके सरकारी साहित्य-विभागमे सुरक्षित थे। उन्हे सकलित और सम्पादित कर मौ० इम्तियाजअलीखाँ अर्शीने १९३७ ई० मे 'मकातीबे गालिब'के नामसे प्रकाशित कर दिया। तबसे इसके कई सस्करण निकल चुके है और प्रत्येक सस्करणमे कुछ न कुछ वृद्धि होती गयी है। इसका छठा सस्करण, जो १९४९ ई० मे निकला था, मेरे पास है। इसमे १३० पत्र है। गालिबके उत्तरजीवन तथा उनकी मानसिक एव शारीरिक स्थितिके ज्ञानके लिए यह ग्रन्थ बहुत जरूरी है। इस पुस्तकमे गालिबके पत्र तो है ही, जहाँ तक सम्भव हो सका है उनके उत्तर भी सकलित किये गये है तथा उपयुक्त टिप्पणियाँ देकर घटनाओपर प्रकाश डाला गया है।

नादिराते गालिब—इसमे गालिबके ७४ ऐसे पत्र है जो इस पुस्तकके पूर्व (दो पत्रोके सिवा) कही प्रकाशित नही हुए थे। श्रीआफाकहुसेन 'आफाक'ने, एक अच्छी भूमिका और परिशिष्टके साथ, इस नामसे, १९४९ ई० मे 'अदारए नादिरात' कराचीसे छपवाया था। मेरे पास

इसकी जो प्रति है उसमें डा० अब्दुलहक़की एक छोटी प्रस्तावना भी है। अब यह पुस्तक भी बाजारमे नहीं मिल रही है।

ख़ुतूते गालिब—हिन्दू विश्वविद्यालयके फारसी-अरबी विभागके प्रोफ़ेसर स्व० मौलवी महेशप्रसाद आलिम फाज़िलने गालिबपर बहुत काम किया था। उन्होने ग़ालिबपर अनेक भागोंमें एक महाग्रन्थ लिखनेकी योजना बनाई थी। इस सिलसिलेमें उन्होंने गालिबके बहुतसे पत्र भी एकत्र किये थे। इन पत्रोको 'खुतूते ग़ालिब' के नामसे सम्पादित किया था और उसका प्रथम भाग १९४१ ई० में हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबादसे प्रकाशित भी कराया था, पर असमय उनकी मृत्युसे वह महान् कार्य पूर्ण होनेसे रह गया। यह भी पता नही चला कि वह सब सामग्री, जो उन्होंने एकत्र की थी, अब कहाँ है।

नकाते गालिब—छोटी-सी पुस्तक है जिसमें फारसी व्याकरणके नियम है। मिर्जाने इसे शिक्षा विभाग पजाबके सचालक मेजर फ़ुलरके अनुरोधपर लिखा था।

नामए ग़ालिब—क़ातअ बुरहानके झगडेके वक़्त 'सातअ बुरहान' नामक पुस्तिकाके उत्तरमें मिर्ज़ाने यह पुस्तिका लिखी थी। बादमे वह 'ऊदे हिन्दी' में सम्मिलित कर दी गयी।

इसके अतिरिक्त 'तेगेतेज़' तथा कादिरनाम (पद्य) दो और छोटी पुस्तकें ग़ालिबकी लिखी हैं। गालिबके खतोंमेंसे साहित्यिक पत्र छाँटकर स्व० मिर्ज़ा मुहम्मद अस्करीने १९५४ में कराचीसे 'अदबी खुतूते ग़ालिब' के नामसे प्रकाशित किया है। इसमें ९८ पत्र हैं। ग़ालिबके साहित्य-सम्बन्धी विचार जाननेके लिए यह पुस्तक बडे कामकी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छोटेसे उर्दू दीवाने गालिबने गालिबको अमर कर दिया। इस छोटेसे ग्रन्थपर न जाने कितने भाष्य लिखे गये हैं और अब भी लिखे जा रहे है। इनमें हसरत मोहानी, तबातबाई, बेखुद, आसी, जोश मल्सियानी, अर्श मल्सियानी और बाक़रकी टीकाएँ अपेक्षाकृत

अच्छी है । पर इनमे भी कही-कही इतनी खीचतान है कि कविके काव्यका अर्थ अँधेरेमे पड जाता है और टीकाकारोकी विद्वत्ता जरूर सामने आ जाती है । अब भी एक शुद्ध, सरल टीकाकी जरूरत बनी हुई है ।

पद्यकी भाँति गालिबका उर्दू गद्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । सच पूछिये तो गद्यकारके रूपमें उर्दूके लिए गालिबकी देन उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है जितनी पद्यकार या कविके रूपमे है । कविके रूपमे उनपर पर्याप्त कार्य हुआ है, समीक्षाएँ, टीकाएँ और प्रशसा-ग्रन्थ लिखे गये है, परन्तु गद्यकार गालिबपर बहुत कम काम हुआ है । कोई अच्छा और प्रामाणिक समीक्षा-ग्रन्थ मेरी जानकारीमे नही निकला है । गालिबके उर्दू पत्रोकी शैली अनोखी है । इनमे वह लिखते नही, बल्कि बोलते है—जैसे दूरके मित्र, शिष्य, प्रियजन उनके सामने बैठ हो और वह उनसे बाते कर रहे हो ।

ग़ालिबका काव्य : १ :

विकास-रेखा

गालिब उर्दूके सबसे लोकप्रिय कवि है। कदाचित् ही किसी दूसरे उर्दू कविकी कविताओंके इतने संग्रह निकले हो या उनपर चर्चा एव समीक्षा हुई हो। कुछ विरोध करते हैं, कुछ प्रशसाके पुल बांधते हैं, कुछ खडे तमाशा देखते हैं। कुछ अभिनेता है, कुछ दर्शक हैं पर सबकी दिलचस्पी यहाँ है। सब कुछ न कुछ कहना चाहते है, सब कुछ न कुछ सुनना चाहते हैं, सब कुछ न कुछ देखना चाहते हैं। उन्हें भूलना, उनकी उपेक्षा करना मुश्किल हो गया है।

पर भीड़ सदा भ्रमित करती है। उसमे एक सामूहिक उत्कण्ठा और मनोवृत्ति होती है। उससे तर्क करना कठिन होता है। वह समझने या समझानेके 'मूड' में नही होती। निरपेक्ष दर्शकके लिए किसी समस्याकी तहतक पहुँचना कठिन कर देती है। ग़ालिबपर निकली आलोचनाएँ भी कुछ ऐसी ही है। उन्होने जितना प्रकाश दिया, उससे ज्यादा अन्धकार फैलाया, जितना सुलझाव नही रखा, उससे ज्यादा उलझनें पैदा कर दी। इनमें इतनी अतियाँ हैं कि जो समझना चाहता है वह विमूढ हो जाता है। आलोचकों या प्रशसकोकी भीडकी एक अति हैं स्व० डा० अब्दुर्रहमान बिजनौरी जिनका फ़तवा है—

इन आलोचनाओंमे प्रकाश उतना नहीं जितना अन्धकार है

"हिन्दुस्तानकी इलहामी किताबें दो हैं मुकद्दस वेद और दीवाने ग़ालिब।"*

* मुहासिन कलामे गालिब, चतुर्थ सस्करण, पृ० ५।

अच्छी है। पर इनमे भी कही-कही इतनी खीचतान है कि कविके काव्यका अर्थ अँधेरेमे पड जाता है और टीकाकारोकी विद्वत्ता जरूर सामने आ जाती है। अब भी एक शुद्ध, सरल टीकाकी जरूरत बनी हुई है।

पद्यकी भांति गालिबका उर्दू गद्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सच पूछिये तो गद्यकारके रूपमे उर्दूके लिए गालिबकी देन उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है जितनी पद्यकार या कविके रूपमे है। कविके रूपमे उनपर पर्याप्त कार्य हुआ है, समीक्षाएँ, टीकाएँ और प्रशसा-ग्रन्थ लिखे गये है, परन्तु गद्यकार गालिबपर बहुत कम काम हुआ है। कोई अच्छा और प्रामाणिक समीक्षा-ग्रन्थ मेरी जानकारीमे नही निकला है। गालिबके उर्दू पत्रोकी शैली अनोखी है। इनमे वह लिखते नही, बल्कि बोलते है—जैसे दूरके मित्र, शिष्य, प्रियजन उनके सामने बैठे हो और वह उनसे बाते कर रहे हो।

ग़ालिबका काव्य : १ :

विकास-रेखा

गालिब उर्दूके सबसे लोकप्रिय कवि हैं। कदाचित् ही किसी दूसरे उर्दू कविकी कविताओंके इतने सग्रह निकले हो या उनपर चर्चा एव समीक्षा हुई हो। कुछ विरोध करते है, कुछ प्रशसाके पुल बाँधते है, कुछ खडे तमाशा देखते है। कुछ अभिनेता हैं, कुछ दर्शक है पर सबकी दिलचस्पी यहाँ है। सब कुछ न कुछ कहना चाहते है, सब कुछ न कुछ सुनना चाहते हैं, सब कुछ न कुछ देखना चाहते हैं। उन्हें भूलना, उनकी उपेक्षा करना मुश्किल हो गया है।

पर भीड सदा भ्रमित करती है। उसमें एक सामूहिक उत्कण्ठा और मनोवृत्ति होती है। उससे तर्क करना कठिन होता है। वह समझने या समझानेके 'मूड' में नही होती। निरपेक्ष दर्शकके लिए किसी समस्याकी तहतक पहुँचना कठिन कर देती है। गालिबपर निकली आलोचनाएँ भी कुछ ऐसी ही हैं। उन्होने जितना प्रकाश दिया, उससे ज्यादा अन्धकार फैलाया, जितना सुलझाव नही रखा, उससे ज्यादा उलझनें पैदा कर दी। इनमें इतनी अतियाँ है कि जो समझना चाहता है वह विमूढ हो जाता है। आलोचको या प्रशसकोकी भीडकी एक अति हैं स्व० डा० अब्दुर्रहमान बिजनौरी जिनका फतवा है —

इन आलोचनाओंमे प्रकाश उतना नहीं जितना अन्धकार है

"हिन्दुस्तानकी इलहामी किताबें दो हैं मुकद्दस वेद और दीवाने गालिब।"*

---

* मुहासिन कलामे गालिब, चतुर्थ सस्करण, पृ० ५।

अच्छी है। पर इनमे भी कही-कहीं इतनी खीचतान है कि कविके काव्यका अर्थ अँधेरेमे पड जाता है और टीकाकारोकी विद्वत्ता जरूर सामने आ जाती है। अब भी एक शुद्ध, सरल टीकाकी जरूरत बनी हुई है।

पद्यकी भाँति गालिबका उर्दू गद्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सच पूछिये तो गद्यकारके रूपमे उर्दूके लिए गालिबकी देन उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है जितनी पद्यकार या कविके रूपमे है। कविके रूपमे उनपर पर्याप्त कार्य हुआ है, समीक्षाएँ, टीकाएँ और प्रशसा-ग्रन्थ लिखे गये है, परन्तु गद्यकार गालिबपर बहुत कम काम हुआ है। कोई अच्छा और प्रामाणिक समीक्षा-ग्रन्थ मेरी जानकारीमे नही निकला है। गालिबके उर्दू पत्रोकी शैली अनोखी है। इनमे वह लिखते नही, बल्कि बोलते है—जैसे दूरके मित्र, शिष्य, प्रियजन उनके सामने बैठे हो और वह उनसे बाते कर रहे हो।

ग़ालिबका काव्य : १ :

विकास-रेखा

गालिब उर्दूके सबसे लोकप्रिय कवि है। कदाचित् ही किसी दूसरे उर्दू कविकी कविताओंके इतने सग्रह निकले हो या उनपर चर्चा एव समीक्षा हुई हो। कुछ विरोध करते है, कुछ प्रशसाके पुल बांधते है, कुछ खडे तमाशा देखते हैं। कुछ अभिनेता है, कुछ दर्शक है पर सबकी दिलचस्पी यहाँ है। सब कुछ न कुछ कहना चाहते है, सब कुछ न कुछ सुनना चाहते है, सब कुछ न कुछ देखना चाहते हैं। उन्हें भूलना, उनकी उपेक्षा करना मुश्किल हो गया है।

पर भीड सदा भ्रमित करती है। उसमें एक सामूहिक उत्कण्ठा और मनोवृत्ति होती है। उससे तर्क करना कठिन होता है। वह समझने या समझानेके 'मूड' में नही होती। निरपेक्ष दर्शकके लिए किसी समस्याकी तहतक पहुँचना कठिन कर देती है। ग़ालिबपर निकली आलोचनाएँ भी कुछ ऐसी ही है। उन्होने जितना प्रकाश दिया, उससे ज्यादा अन्धकार फैलाया, जितना सुलझाव नही रखा, उससे ज्यादा उलझनें पैदा कर दी। इनमें इतनी अतियाँ हैं कि जो समझना चाहता है वह विमूढ हो जाता है। आलोचकों या प्रशसकोकी भीडकी एक अति हैं स्व० डा० अब्दुर्रहमान बिजनौरी जिनका फ़तवा है—

> इन आलोचनाओंमे प्रकाश उतना नहीं जितना अन्धकार है

"हिन्दुस्तानकी इलहामी किताबें दो हैं मुकद्दस वेद और दीवाने ग़ालिब।"*

---

* मुहासिन कलामे गालिब, चतुर्थ सस्करण, पृ० ५।

पूर्वार्द्ध कालमे, विशेषत किशोरावस्थामें, जब दिल दिमागके ऊपर छा जाता है और मानव भावावेगके आकाशमे उडता रहता है, उनपर इस वातावरणका अधिक प्रभाव पडता। हम देखते हैं कि इनके प्रारम्भिक काव्यपर 'वेदिल' का प्रभाव अत्यधिक है। वेदिलकी शाइरी दिमागी जोड-तोडकी शाइरी है जिसमे शब्द भावनाका शृगार नही करते, नटो-सी कलाबाज़ी दिखलाते हैं। इसी तरहके शेरोको देखकर मीरतकीने भविष्यद्वाणी की थी कि 'इस लडकेको अगर कोई कामिल उस्ताद मिल गया और उसने इसे सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाब शाइर बन जायगा वर्ना महमिल बकने लगेगा।'

बेदिलका प्रभाव

इस युगका काव्य फारसी तर्कीबोसे भरा हुआ है। भाषा क्लिष्ट है, भावानुभूतिके स्थानपर कल्पनाकी उडान है, काव्य-सौन्दर्य बहुत कम है। स्वाभाविकता नही, कृत्रिमता बहुत अधिक है। कोई नई बात कहने, नये ढगपर कहने और घुमा-फिराकर असामान्य ढगसे कहनेको ही काव्य समझते थे। इसीलिए इनपर आक्षेप भी होते थे पर यह 'बेदिल' पर इस तरह रीझे हुए थे कि उसके अनुकरणको बहुत बडी बात समझते थे —

कृत्रिमताका आधिक्य

तर्ज़े बेदिल मे रेख़्त: कहना,
असद उल्लाख़ॉ क़यामत है।

दूसरोके आक्षेपसे चिढते थे पर कभी-कभी अनुभव भी करते थे कि मै जो लिखता हूँ वह बहुत अच्छा नही है। एक गज़ल लिखी जिसका मतलअ था —

क़तरए मय बस कि हैरत से नफ़स परवर हुआ,
ख़त्ते जामे मय सरासर रिश्तए-गौहर हुआ।

आक्षेप हुआ। जवाब देते हुए लिखते हैं —"इस मतलअमे खयाल

है दकीक मगर कोह कुन्दन व काह बर आवर्दन यानी लुत्फ ज्यादा नही।"

उस जमानेके काव्यकी भाषा देखिए, कैसी बोझिल है

करे गर फ़िक्र ता'मीरे खराबीहाय दिल गर्दूं,
न निकले ख़िश्त मिस्ले इस्तख्वॉं बेरूँ ज़क़ालिब हा।
असद हर अश्क है यह हल्क़ः बरजज़ीर अफ़ज़ूदन,
व बन्दे गिरियः है नक्शे वर आब उम्मीदे रस्तन हा।
व हसरतगाहे नाज़े कुश्तए जॉ बख्शिए ख़ूबॉं!
खिज़िर को चश्मए आबे बक़ा से तरजबीं पाया।
रखा गफ़लत ने दूर उफ्तादए ज़ौक़े फ़ना वर्ना,
इशारत फ़हम को हर नाख़ुने बरींदः अबरू था।

बादमें जब चुनी हुई गजलोका दीवान सम्पादित किया तब भी उसमें अनेक शेर इस रगके रह गये—

हवाए सैरे गुल आईनए बेमेहिए क़ातिल[1],
कि अन्दाज़े बख़ूँ गलतीदने बिस्मिल[2] पसन्द आया।

× ×

शब ख़ुमारे चश्मे साक़ी रुस्तख़ेज़ अन्दाज़ः था[3],
ता मुहीते बादः[4] सूरत-ख़ानए-ख़मियाज़ः[5] था।

× ×

---

१ क़ातिलकी निर्दयताका दर्पण, २. घायलके पलटने—करवट लेनेका ढग, ३ रातको साक़ीकी आंखोका खुमार क़यामतके अन्दाजके समान था, ४ मदिराका सागर, ५ अँगड़ाइयोकी चित्रशाला।

ब तूफ़ॉ गाहे जोशे इज्तराबे शामे तनहाई,[१]
शुआए आफताबे सुबहे महशर तारे बिस्तर है।[२]
अभी आती है बू बालिशसे[३] उसकी ज़ुल्फ़े मुश्कींकी[४],
हमारी दीदको ख्वाबे ज़ुलेखा आरे बिस्तर है।[५]

फारसीयतसे लदी हुई भाषाके इन नमूनोमे भावका उत्कर्ष भी कही नही मिलता। दिमाग खुर्चकर और खींच-तानकर अर्थ निकालना पडता है। जहाँ सरल भाषा है, वहाँ भी काव्य काव्य नही पद्य एव तुकबन्दी मात्र बनकर रह गया है, उसमें शब्दोका जोड-तोड है पर अर्थ या भावका सौन्दर्य नही, जैसे एक बेजान खूबसूरत लाश हो—

खूबसूरत लाशानी कविता

पॉवोंमें जब वह हिना[६] बॉधते है,
मेरे हाथोंको जुदा बॉधते है।

× ×

शायद कि मर गया तेरा रुखसार[७] देखकर,
पैमाना रात माहका लबरेज़े-नूर[८] था।

---

१ मैं अपनी एकान्त सन्ध्या (शामे तनहाई) मे इतना बेकरार हूँ कि मेरी बेचैनीके जोशने एक तूफान उठा रखा है, २ मुझे अपने बिस्तरका हर तार प्रलय-प्रभातके सूर्यकी किरणके समान लगता है, ३ तकिया, ४ सुगन्धित अलकोकी, ५ हमारी आँखोके लिए जुलेखाका स्वप्न (जिसमे उसने युसूफके दर्शन किये थे) लज्जा और गैरतकी बात है (जुलेखाकी तरह स्वप्न-दर्शनको हम और हमारा बिस्तर अच्छा नही समझता।) ६ मेंहदी, ७ कपोल, ८ ज्योतिसे परिपूर्ण।

इस जमानेका अधिकाश काव्य काल्पनिक है, उसमें एक दिमागी कसरत है। वह एक ऐसा जगल है जिसमें झाडियाँ बेतरह बढी हुई हैं, कोई क्रम, व्यवस्था या सजावट नही। उलझनें है और उलझनें हैं। पर ऐसा भी नही कि इस कालका समस्त काव्य नीरस और सौन्दर्यहीन हो। इस जगलमें भी ऐसे फूल हैं जिनकी सुगन्ध मन-प्राणमें बस जाती है। इसमें भी ऐसे शेर हैं जो अनुभूति, भावना, अर्थ एव काव्यके अन्य गुणोंसे पूर्ण हैं, विशेषत वे जो इस अवधिके अन्तिम दिनो, २४ वर्षकी आयुके आस-पास, (१८१९–२१ ई०) लिखे गये। उदाहरणके तौरपर हम यहाँ उनके कुछ शेर देते हैं, जिनमें उनकी प्रतिभा और भावी सफलताकी स्पष्ट झलक है। कविको प्रिय होनेके कारण ये शेर बादके दीवानमें भी रख लिये गये है।

इस जंगलमे प्राणोन्मादक फूल भी हैं

आहको चाहिए एक उम्र असर होने तक,
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फके सर होने तक।
आशक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब,
दिलका क्या रग करूँ ख़ूने जिगर होने तक।
हमने माना कि तग़ाफुल[1] न करोगे लेकिन
ख़ाक हो जायँगे हम, तुमको ख़बर होने तक।

× ×

जब तक दहाने ज़ख्म[2] न पैदा करे कोई,
मुश्किल कि तुमसे राहे सखुन वा[3] करे कोई।

---

१ उपेक्षा, २ घावका मुँह, ३ खोले, मुक्त।

नाकामिए निगाह है बर्क़े नज़ार सोज़,[1]
तू वह नहीं कि तुझको तमाशा करे कोई।
सरबर हुई न वादए सब्रआज़मा[2] से उम्र,
फ़ुर्सत कहाँ कि तेरी तमन्ना करे कोई।
हुस्ने-फ़रोग[3] शमए-सखुन[4] दूर है 'असद',
पहले दिले-गुदाख्त[5] पैदा करे कोई।

× ×

आइनः क्यो न दूँ कि तमाशा कहे जिसे,
ऐसा कहाँ से लाऊँ कि तुझसा कहें जिसे।
फूँका है किसने गोशे-मुहब्बतमें ऐ खुदा,
अफसूने-इन्तज़ार[6] तमन्ना कहें जिसे।
सरपर हुजूमे दर्दे गरीबीसे डालिए,
वह एक मुश्ते ख़ाक कि सेहरा कहें जिसे।
दरकार है शिगुफ्तने गुलहाए ऐशको,
सुबहे बहार पबए मीना[7] कहें जिसे।
गालिब बुरा न मान जो वाइज़ बुरा कहे,
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे।

इसी युगमे उन्होने वह शोक गीत भी लिखा था, जिसमे उनका दिल टुकडे-टुकडे होकर बहा है, जिसमे अपने यौवनकी आशा, राग, आसक्तियो

---

१ दर्शनको जाननेवाली बिजली, २ धीरजको डिगानेवाला वादा, ३ प्रकाशपूर्ण सौन्दर्य, ४ वाणी दीप, ५ द्रवित हृदय, ६ प्रतीक्षाका जादू, ७ शराबके शीशेपर लगी रुई या डाट।

और अभिलाषाके चिता-भस्मपर बैठकर वह रोते हैं और जो उनके काव्यमें अमर हो गया है —

दर्दसे मेरे है मुझको बेक़रारी हाय हाय,
क्या हुई ज़ालिम तेरी गफलतशआरी हाय हाय।
ज़हृ लगती है मुझे आबो - हवाए ज़िन्दगी,
यानी तुझसे थी उसे नासाज़गारी हाय हाय।
किस तरह काटे कोई शबहाय तारे बरशकाल,[1]
है नज़र[2] ख़ूकर्दए[3] अख़्तरशुमारी[4] हाय हाय।
गोश[5] महजूरे-पयाम[6] वो चश्म[7] महरूमे जमाल[8],
एक दिल तिसपर यह नाउम्मीदवारी हाय हाय।

ग़ालिबके इस दौरके कलाममें उपमाओ और रूपकोकी भरमार है। कितनी ही ग़ज़लें ऐसी हैं जिनके द्वितीय मिसरे उदाहरण एव उपमासे पूर्ण हैं। इनमें गालिबकी कोशिश यह रहती है कि उपमाएँ नई-नई हो, और हो सके तो विषय—मज़मून—भी नये हो। देखिये —

सरापा[9] रेहने इश्क़ वो नागुज़ीरे[10] उल्फ़ते हस्ती[11],
इबादत[12] वर्क़[13] की करता हूँ और अफ़सोस हासिलका[14]।

× ×

थी वतनमें शान क्या ग़ालिब कि हो ग़ुर्बतमें क़द्र,
बेतक़ल्लुफ़ हूँ वह मुश्ते ख़स कि गुलख़न[15] में नहीं।

---

१ बरसातकी अँधेरी रातें, २ दृष्टि, आँखें, ३ अभ्यस्त, ४ तारे गिनना, ५ कान, ६ सन्देशसे हीन, ७ आँख, ८ दर्शनहीन, ९ आपाद मस्तक, १० अनिवार्य, जिससे छुटकारा न हो, ११ जीवनका, प्राणका मोह, १२ उपासना, १३ विद्युत्, १४ खलिहान, १५ भट्ठी।

पहिले शेरमे कहते है कि सिरसे पाँवतक, आपादमस्तक प्रेममे रेहन--गिरवी—हूँ और उधर अपने प्राणको प्रिय समझनेपर भी मजबूर हूँ। विद्युत्‌की उपासना करता हूँ और खलिहानके जल जानेका शोक भी है। (प्रेमको विद्युत् और प्राणको अन्नभण्डार या खलिहान कहा है ।)

दूसरे शेरमे कहते है कि वतनमे ही मेरी क्या शान थी कि परदेशमे सम्मान हो। मै वह मुट्ठी भर घास हूँ जो भट्ठीमे पडे तो वह उसे जला दे और भट्ठीसे बाहर (परदेश) जाय तो वहाँ उसे कोई न पूछे।

भावीकी झलक

इन बातोसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि लडकपनमे उनपर बेदिल, सायब इत्यादिका रग छाया हुआ था और कलाममें बडी दुर्वोधता एव कृत्रिमता थी, पर उनमे जन्मजात प्रतिभा भी थी और किशोरावस्थाकी डयोढी पार करते-करते वह सँभलने लग गये थे तथा बीस सालकी उम्रके बाद ज़बानमे सफाई और व्यजनामे सुघडता आने लगी थी। इसी ज़मानेके दो शेर है, जिनके पीछे उनकी भावी श्रेष्ठता और ऊपर उठनेके लिए सघर्ष करती हुई प्रतिभाके दर्शन होते है —

रात के वक़्त मय पिये साथ रक़ीब[1] को लिये,
आये वह यॉ ख़ुदा करे पर न ख़ुदा करे कि यो।
मैने कहा कि बज्मे नाज़[2] चाहिए गैर से तिही[3],
सुन के सितमज़रीफ़[4] ने मुझको उठा दिया कि यो।

२ मध्य युगका काव्य

इसमे उस दूसरे तरुणकालके श्रेष्ठ काव्यकी झलक है जिसने उर्दू काव्यके इतिहासमे गालिबको अमर कर दिया है। यह दूसरा युग १८२१

१ प्रतिस्पर्द्धी, २ प्रेमिकाकी गोष्ठी, ३ रिक्त, शून्य, ४ हँसी-हँसीमे अत्याचार करनेवाला।

से १८३२ तकका है, यद्यपि कई साहबोने इसको भी दो भागोमें विभाजित कर दिया है। इस कालका काव्य भूपाल वाली प्रतिके मुख्य भागमें तो नही है पर उसके हाशियेपर लिखा हुआ मिलता है।

इस युगके काव्यका अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि कविकी मानसिक उलझनें कम होती गयी है, कल्पनामें यथार्थता है, अनुभूति दृढ होती गयी है, ज़बान ज्यादा साफ है, ऊपरसे फारसी तर्कीबोका बोझ कम होता गया है। जहाँ पहिले 'बेदिल' और 'सायब' मानस क्षितिजपर छाये हुए थे तहाँ उर्फी और नज़ीरीका रग चढता गया है। उपमाएँ, रूपक, उत्प्रेक्षाएँ स्वाभाविक होती गयी हैं। विषय काल्पनिक (खयाली) की जगह यथार्थ (हाली) है, अभिव्यक्तिमें बाँकपन है।

उर्फी और नज़ीरीका रग

इस युगके उनके काव्यमें, स्वभावत प्रेमल भावनाएँ प्रधान हैं। सौन्दर्यकी शत-शत भगिमाएँ उसमे प्रकट हुई हैं। पर प्रेम और सौन्दर्यके अतिरिक्त अन्य मानवी अभिलाषाओका सागर भी उसमें उमडता दिखाई देता है। मानव-हृदयके प्रच्छन्न कोनोंको अपनी ज्योतिर्मयी कल्पनासे कवि प्रकाशित कर देता है। देखिए—

ज्योतिर्मयी कल्पना

इस नामुराद दिलकी तसल्लीको क्या करूँ,
माना कि तेरे रुख़[1]से निगह कामयाब[2] है।

यद्यपि तुम्हारे मुखको देखकर मेरी दृष्टि सफल हो गयी है पर अपने नामुराद दिलको किस तरह आश्वासन प्रदान करूँ? (केवल दर्शनसे हृदयको सन्तोष नहीं हो सकता।)

मत पूछ कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे,
तू देख कि क्या रग है तेरा मेरे आगे।

---

१ मुख, २. सफल।

मुझसे क्या पूछते हो कि तुम्हारे पीछे, तुम्हारे विरहमे मेरा क्या हाल होता है, यह देखो कि मेरे सामने तुम्हारा क्या रग होता है (तुम मेरे सामने कितने परीशान हो जाते हो ? अपनी इस परीशानीसे ही तुम अपने वियोगमे मेरी हालतका अन्दाज़ कर सकते हो !)

देखना तक़रीरकी लज्ज़त[1] कि जो उसने कहा,
मैने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिलमे है।

अर्थ स्पष्ट है।

सशोधनकी कलाका निखार

इसी कालके उत्तरार्द्धमे मिर्जाने 'दीवाने गालिब'का सम्पादन किया था और उसमे पहिले लिखे हुए शेरोमे जो परिवर्तन तथा सशोधन उन्होने किये है उनसे पता चलता है कि न केवल उनकी कल्पना, अनुभूति तथा अभिव्यक्ति अधिकाधिक सशक्त होती जा रही थी वर काव्य-शिल्प भी अधिकाधिक उभरता और निखरता जा रहा था। कुछ उदाहरण लीजिए। पहिले उन्होने लिखा था—

गर निगाहे गर्म फर्माती रही ता'लीमेज़ब्त[2],
शो'ल ख़समें जैसे खूँ दर रग निहाँ[3] हो जायगा।

अब इसे यो कर दिया—

गर निगाहे गर्म फर्माती रही ता'लीमे ज़ब्त,
शो'ल ख़समें जैसे खूँ रगमें निहाँ हो जायगा।

पहिले लिखा था—

इशरत ईजाद च बूए गुलो कूदूदे चिराग,
जो तेरी बज्मसे निकला सो परीशाँ निकला।

---

१ वाणीका स्वाद, २ सयमकी शिक्षा, ३ प्रच्छन्न।

अब यों कर दिया—

वूए गुल[1], नालए दिल[2] दूदे चिराग़े महफ़िल[3],
जो तेरी बज़्म[4]से निकला सो परीशाँ[5] निकला।

कहीं-कही पहिले लिखे हुए शेरोंमे एकाध शब्द ऐसे बदल दिये कि ज़मीन ही बदल गयी और नया मज़मून निकल आया। जैसे पहिले लिखा था—

नहीं बन्दे ज़ुलेख़ा बेतकल्लुफ़ माहे कनआँ[6]पर,
सफ़ेदी दीदए याक़ूब[7]की फिरती है ज़िन्दाँपर।

अब यों कर दिया—

न छोडी हज़रते यूसुफ़ने याँ भी ख़ाना आराई,
सफ़ेदी दीदए याक़ूबकी फिरती है ज़िन्दाँपर।

पहिलेकी उपमाओं, रूपकों या तर्कीबोंमें शब्दोंकी जोड़तोड़को ऐसा बदल दिया है कि वे चमक उठी हैं और एक नई दुनिया, जैसे, व्यक्त हो गयी है। जैसे पहिलेका शेर था—

आता है दाग़े हसरते दिलका[8] शुमार[9] याद,
मुझसे हिसाबे बेगुनही ऐ ख़ुदा न माँग।

इसमें 'दाग़े हसरते दिल'के ख़्यालसे 'बेगुनही' शब्दका जोड़ ठीक था किन्तु इसके कारण अर्थ-वैचित्र्यमें दुर्बलता आ गयी थी इसलिए ग़ालिबने ज़रा-सा बदल दिया और शेर ज़मीनसे आस्मानपर पहुँच गया—

---

१ पुष्पगन्ध, २ हृदयका रोदन, ३ महफ़िलके दीपकका धुवाँ, ४ सभा, ५ बिखरा हुआ, अव्यवस्थित, ६ पैलेस्टाइनका चाँद, (यूसुफ़), ७ यूसुफ़के पिता जो इनके विरहमें अन्धे हो गये थे, ८ हृदयकी वासनाओंके धब्बे, ९ गणना।

आता है दागे हसरते दिलका शुमार याद,
मुझसे मेरे गुनहका हिसाब ऐ खुदा न माँग।

३ प्रौढ़ युगका काव्य

शिल्प और सौन्दर्यकी पराकाष्ठा

तीसरे दौर (१८३३–५५) मे मिर्जाने उर्दूकी अपेक्षा फारसीकी ओर ज्यादा ध्यान दिया। इस जमानेकी अधिकाश फारसी गजले 'गुल्ले रा'ना'मे एकत्र है। ज्यादातर गजले १८३८के पहिलेकी है। कुछ १८३८ तथा १८४५ के बीच लिखी गयी है। समय-समयपर उर्दू गजले भी लिखते थे पर कम। १८४७के बाद बादशाह बहादुरशाहसे उनके सम्बन्ध अच्छे हो गये, तब उनके लिए फिर उर्दूमें लिखने लगे। इस जमानेका कलाम थोडा है किन्तु उसमे गालिबका शिल्प और सौन्दर्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। शाही दरबारसे सम्बन्ध होनेके कारण भी इनमे भाषाकी सादगी, मुहाविरोका प्रयोग, रोजमर्रेका आग्रह बढ गया है क्योकि दरबार-पर शाह नसीर और 'जौक'का रग चढा हुआ था। इस आग्रहके कारण कही-कही स्तर गिर भी गया है। जैसे—

वाइज़[1]! न तुम पिओ न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारी शराबे तहूर[2]की।

× ×

दर्द मिन्नतकशे[3] दवा न हुआ,
मै न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ।

× ×

१ धर्मोपदेशक, २ स्वर्गीय मदिरा, ३ आकाक्षी, प्रत्याशी।

गम खानेमें बोदा दिले नाकाम बहुत है,
यह रंज कि कम है मये-गुलफाम[1] बहुत है।

पर ऐसे शेर तादादमें कम है। अछूते मज़मून और अभिव्यजनाके खास अन्दाज़वाले एकसे एक शेर मिलते हैं। जैसे—

बस कि मुश्किल है हर एक कामका आसाँ होना,
आदमीको भी मयस्सर[2] नहीं इंसाँ होना।

या—

हविस[3]को है निशाते-कार[4] क्या था,
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या ?

× ×

य' न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले यार[5] होता,
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार[6] होता।

× ×

दिल ही तो है न संगो-ख़िश्त[7] दर्दसे भर न आये क्यों ?
रोयेंगे हम हज़ार बार कोई हमें सताये क्यों ?

नीचेके शेर देखिए। छोटी कायामें एक-एक दुनिया आबाद है—

मुनहसिर[8] मरने पै हो जिसकी उमीद,
नाउमेदी उसकी देखा चाहिए।

× ×

---

१ पुष्पागना, २ प्राप्त, ३ कामना, वासना, ४ कामकी उमग, ५ प्रिय-मिलन, ६ प्रतीक्षा, ७ पत्थर-ईट, ८ निर्भर।

दैर[1] नहीं, हरम[2] नहीं, दर[3] नहीं, आस्ताँ[4] नहीं,
बैठे है रहगुज़र[5] पै हम गैर हमें उठाये क्यो ?

× ×

जब मैकद[6] छुटा तो फिर अब क्या जगहकी क़ैद
मस्जिद हो, मदरसा हो, कोई ख़ानकाह[7] हो।

× ×

वफादारी बशर्ते इस्तवारी अस्ले ईमाँ है,
मरे बुतख़ानेमें तो का'बेमें गाडो बिरहमनको।

४. उत्तरकालिक काव्य

चौथा और अन्तिम युग, जिसका आरम्भ गदरकी भूमिकासे और अन्त गालिबकी मृत्युसे होता है, बहुत उपजाऊ नही। चूँकि गदरके बाद दिल्ली की बादशाहत खत्म हो गयी, और एक ओर दिन-दिन गिरते हुए स्वास्थ्य तथा दूसरी ओर बढती जानेवाली आर्थिक कठिनाइयोके कारण गालिबमे काव्यकी उमग भी गिरती गयी इसलिए बहुत कम लिखा है। जो लिखा भी वह अधिकाश फारसीमे लिखा या फिर पत्रोके रूपमे गद्यमे जो उर्दू साहित्यके अभिमानकी वस्तु है।

१८५५ के बाद उनकी मानसिक स्थिति खराब होती गयी। १८५७–५८ में वह अन्दरसे इतने टूटे हुए थे कि गजल लिखनेकी ओर तबीयत ही न होती थी। एक पत्रमे स्वय लिखते हैं—

---

१ मन्दिर, २ का'बा, ,खुदाका घर, ३ द्वार, ४ ड्योढी, निवास-स्थान, ५ आम रास्ते, ६ मद्यशाला, ७ तकिया, फकीरो एव साधुओके रहनेकी जगह, आश्रम।

" 'मियाँ, तुम्हारी जानकी कसम, न मेरा अब रेख्त: लिखनेको जी चाहता है, न मुझसे कहा जाय। इस दो बरसमें सिर्फ़ वह पचीस शेर बतरीक़ क़सीद तुम्हारी खातिरसे लिख भेजे थे। सिवाय इनके अगर कोई रेख्त कहा होगा तो गुनहगार बल्कि फारसी ग़ज़ल भी वल्लाह नहीं लिखी। क्या कहूँ कि दिलोदिमाग़का क्या हाल है ?"

अब न वह जवानी थी जो प्रत्येक रूपसीमें स्वर्गका चित्र देखती है और जिसमें राहके काँटे भी फूल हो जाते है, न वे उमगें, वे वलवले थे जो ज़मीनसे उठते हैं पर आकाशमें जीते और पुष्ट होते है। सच है—

थी वह यक शख्सके तसव्वुरसे,
अब वह रा'नाइए ख़याल कहाँ ?

१८५९से १८६३ तक कुछ निश्चिन्तता आई थी किन्तु उसके बाद जो बीमारी शुरू हुई वह जानलेवा बन गयी। सच पूछें तो इनके तीसरे दौरके काव्यमें जो शोखी, जो शिल्प, जो उच्च कल्पना तथा अनुभूतिका सगम है वह फिर दिखाई न दिया। काव्य-सौन्दर्यकी दृष्टिसे दूसरे तथा तीसरे युगकी कविताएँ श्रेष्ठ है।

वेहद दिलचस्प है। उसमे अनुभूतिकी गहराइयां है तो कल्पनाकी उडान भी है, वल्कि कल्पनाका कुछ ऐसा रग है कि वह खुद अनुभूतिकी सतह-पर उठ जाती है। उसमे चिन्तनशीलता भी है, पर वह व्यजनाके सौन्दर्यमे लिपटी हुई है। डा० अब्दुर्रहमान विजनौरीने भावावेशमें गालिबको 'महा-मानवका रूप दिया है और न जाने क्या-क्या बना दिया है पर एक वात उन्होने विल्कुल ठीक लिखी है कि उनके काव्यमे प्रत्येक पाठक-वर्गकी दिलवस्तगीका सामान है। वह लिखते है—

''लौह[1] से तम्मत[2] तक मुश्किलसे सौ सफहे है। लेकिन क्या है जो यहां हाज़िर नही, कौन-सा नग़मं[3] है जो इस ज़िन्दगीके तारोमे वेदार[4] या ख्वाबीद[5] मौजूद नही है।''*

काव्यकी अनेक परम्पराएँ, अनेक सम्प्रदाय है। कोई काव्यमे भावको, कोई व्यजनाको, कोई अलकरणको, कोई ध्वनिको प्रधान मानता है पर गालिबका काव्य इनमेंसे किसी एक परम्परा, एक सम्प्रदायमे समाप्त होकर रह नही जाता, वह जीवनका चित्रण है और जिन्दगी किसी एक दिशा, एक परम्परा, एक ढग, एक देशमें सीमित नही। उसमे इतनी विविधता है कि अनेक वार वह स्वय अपनेको ही काट देती है, एक रूप खीचती है और दूसरी जगह उसे ही मिटा देती है। यहां वह 'अनेक रूप-रूपाय' है। यह भी उसका है, वह भी उसका है। इसीलिए हर आदमीको उसमे अपनी तस्वीर मिल जाती है, पूरी नही तो उसकी स्फुट रेखाएँ, या चेहरा जो खिच गया है, दिल जो वर्फ होकर भी धड़कता है या आंखें जो प्रतीक्षा वनकर रह गयी है, या हाथ-पांव जो सकतेमे है पर जिनमें एक गतिकी

अनेक रूपरूपाय

---

१ आरम्भ, २ अन्त, ३ राग, ४ जागरित, ५ स्वप्नावशिष्ट।
*मुहामिन कलामे गालिब। डा० विजनौरी पृ० १।

लोच अब भी है। "इस साज़में बेशुमार नग्मे हैं और हर नग्म दिलावेज़[1] है।" †

ग़ालिबने दुनिया देखी थी, उसके हर पहलूका मज़ा लिया था। रईसोंमें रईस थे, शराबियोंमें शराबी थे, जुआरियोंमें जुआरी, जवानोंमें जवान, बूढ़ोंमें बूढ़े, कवियोंमे कवि, विचारकोंमें विचारक। उनके काव्यमें यह अनेकता है। उसमें उनके लिए पर्याप्त सामग्री है जो चुलबुलापन, शोख़ी और विनोद चाहते हैं, उनको भी सन्तोष है जो तसव्वुफ़ और गहराईके प्रेमी हैं, उनकी तृप्तिके लिए बहुत कुछ है जो हुस्नो इश्क़की नैरंगियोंके दिलदाद हैं और उनके लिए भी कम सामग्री नही जो वेदना और करुणाके उपासक हैं। हर प्रकारके पाठकको इसमें कुछ न कुछ मिल ही जाता है।

अनेक शैलियाँ

शैलीकी दृष्टिसे भी उनमें कई-कई शैलियाँ मिलती हैं। एक ओर फ़ारसीकी उच्च सस्कृतिसे लदी भाषा है तो दूसरी ओर ठेठ बोलचालकी ज़बान है, कहीं बेदिलका रग है, कही उर्फ़ीका तो कही 'मीर' का है। कही अर्थोंमें अजीब लपेट और घुमाव है तो कहीं इतनी सरलता है, मानो ज़बान नही दिल बोल उठा हो। कही इतनी सजावट, इतना शृगार है कि आँखें नहीं ठहरतीं, कहीं वह सादगी है कि अल्ला रे अल्ला! कहीं बज़्मे निशात है, मय है, मीना है, साक़ी है, उसकी मख़मूर निगाहें हैं, उसकी सौ-सौ अदाएँ हैं, आँखोंकी हैरत है, शौक़का हुजूम है, क़हक़हे हैं, कहीं इतनी तनहाई है कि अपनी आवाज़ भी गुम हो गयी है, शमा जलकर चुप हो चुकी है, विरहकी वेदना केवल मौनमें बोलती है, सब कुछ खो गया है, पानेका एहसास भी। मजबूरियाँ हैं और मजबूरियाँ। कही यह अह है कि काबेका दरवाज़ा भी स्वागतके लिए खुला न हो तो लौट आते

१ चित्ताकर्षक।

†ग़ालिबनामा मुहम्मद एकराम पृ० २७१।

है, और कही यह गुण्डागर्दी है कि माशूकका आँचल खीचनेके हौसले हैं। कही यह गहराई है कि इश्क अभिरुचि और आचरण बन जाता है तथा माशूकका हुस्न विश्व-सौन्दर्यमे परिणत हो जाता है, कही यह उथलापन है कि मासके चीत्कारसे शेरका एक-एक अक्षर कम्पित है। कही वह सौन्दर्य है कि आँखोको शान्ति और दिलको तस्कीन देता है, उच्च प्रेरणाएँ उत्पन्न करता है, कही वह रूपसज्जा है कि दिलमें एक आग लग जाती है और आँखोमे वासनाके शत-शत दीप जल उठते हैं, दीप जिनसे रोशनी नही मिलती, आगकी लपटें निकलती है, लपटें जिनमे पशुका पैशाचिक आनन्द है। कही थकावट मंजिलकी हसरत बनकर रह गयी है तो कही शाश्वत पद-चापसे राहका चप्पा-चप्पा मुखरित है, ऐसा कि जिसमे चलना ही सत्य है, चलना ही जीवन है, चलना ही सौन्दर्य है।

गहरी मानवीय अपील

दूसरी बात जिसके कारण गालिबको इतनी लोकप्रियता प्राप्त हो रही है उसकी गहरी मानवी अपील है। आजका युग देवताओका युग नही है, आजका युग उपासनाका युग नहीं है। आजका युग मानवका युग है, आजका युग कर्मका युग है, आजका युग भोगका युग है। इस युगका देवता अभी ढल नही पाया और जबतक वह ढलता नही इसान ही इस युगका देवता है। आदर्शकी कड़ियाँ टूट रही है, सपने बिखर रहे है। मन और प्राणमे वह उडान, वह ठहराव नही है कि मानवीमें भी देवीको खोज ले, इसान क्या पत्थरमें भी देवताकी सृष्टि कर दे। आकाशमे हम उडने जरूर लगे है पर हमारा मन जमीनसे बँध गया है, वहाँ हमारा शरीर ही उडता है, अन्तरिक्षकी यात्राएँ होने लगी हैं परन्तु वहाँ उडते हुए भी हम मिट्टीकी ठोस शारीरिकतामें बँधे हुए रहते हैं। आजका इसान धरतीपर खडा है, वह धरतीका रस लेकर पनपा है और धरतीका ही समस्त रस लेना चाहता है। इसलिए आजके काव्यके पाठकमे इसी धरतीके रसकी कामना अधिक है।

ग़ालिब हमें यही धरतीका रस देता है। वह इसी दुनियाके सौन्दर्यका कवि है। वह जब प्रेम देता है तो उस प्रेममें यौवनकी कामनाएँ मुखर होती हैं, कामनाएँ जो केवल प्राणोंकी अनुभूति नही, इन्द्रियोंका भी भोजन है। वह जब सौन्दर्यकी छवि अंकित करता है तो उसमें वह लोच, वह जादू होता है जो स्पर्श एवं आलिंगनकी भुजाओंमें बँधनेको आतुर है। ग़ालिब अतीन्द्रिय, स्वप्निल, गूढ और रहस्यमय प्रेम एवं सौन्दर्यके स्थान-पर नयनाभिराम, इन्द्रियगम्य, सरल और जीवन्त प्रेम एवं सौन्दर्यके चित्र देता है, जिनमें ख़ूनकी गर्मी और गति तथा जीवनकी अँगड़ाइयाँ होती हैं। वह हमारे मन-प्राणको स्वप्न-मुग्ध करके दूर, इस जगत्‌के पार किसी ऐसे लोकमें नही ले जाता जहाँ बुद्धिकी गति नही और जिसे न हम देख सकते, न छू सकते हैं, केवल सूक्ष्म और पकड़में न आनेवाली अनुभूतियोंकी झलक मात्र पा सकते हैं। वह इसी वसुधापर मनोरम और पकड़में आनेवाले सौन्दर्यकी सृष्टि करता है। यों भी कह सकते हैं कि वह धरतीको उड़ाकर स्वर्गमें नही ले जाता बल्कि स्वर्गको अपने दृढ पंजोंसे खींचकर धरतीपर उतार लाता है।

इसीलिए ग़ालिबके काव्यमें मानवकी पकड़ है, उस पारके सौ-सौ स्वर्ग इस धरतीपर निछावर हैं। उसका गान यहींका गान है, उसकी खुशी यहींकी खुशी है, उसका रोदन यहींका रोदन है। वह उस शराबकी बात नही करता जिसका स्वाद खुद उसके प्रचारकको भी नही मिल पाया[1], वह उस शराबकी बात करता है जो इसी जगत्‌में प्राप्त है।[2] वह उस जामेजमकी कामना नहीं करता जिसका मिलना भी संशयास्पद है, वह

---

१ वाइज़ न तुम पियो, न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारे शराबे तहूरकी।

२. जाँफ़िज़ा है बाद. जिसके हाथमे जाम आ गया,
सब लकीरें हाथकी गोया रगे जाँ हो गयीं।

मिट्टीके पात्रपर ही मोहित है।[1] वह यही किसी मुक्तकुन्तला रूपसीको देखना चाहता है, स्वर्गकी परियोको नही।[2] वह उसीको पानेकी उत्कण्ठा रखता[3] है। स्वभावत आजकी वस्तुवादी दुनियामे यह दृष्टिकोण अधिक प्रिय है।

फिर उर्दूके पुराने कवियोमें गालिब ही पहिला कवि है जिसमे आज-की दुनियाका मानसिक द्वन्द्व दिखाई पडता है, जिसमें पुराने विश्वासो तथा पौराणिक परम्पराओके प्रति गहरे व्यगका स्वर है। वही है जिसने स्वर्गकी बार-बार हँसी उडाई है, उसके अस्तित्वपर शका की है, और खुदाको भी इसानी जज्बेपर खीच लाया है।

इन कारणोसे ही उसकी दिलकी पकड इतनी स्पष्ट है। इन्ही कारणोंसे वह इतना लोकप्रिय है।

---

१. और बाजारमे ले आये अगर टूट गया,
जामे जमसे तो मेरा जामे सिफाल अच्छा है।

२ मांगे है फिर किसीको लबे बाम पर हविस,
जुल्फे सियाह रुख पै परीशां किये हुए।

३ नींद उसकी है, दिमाग उसका है, रातें उसकी हैं,
तेरी जुल्फें जिसके बाज़ूपर परीशा हो गयीं।

ग़ालिबका काव्य : ३ :

प्रेम और सौन्दर्य

प्रेम जीवनका उत्स है । जीवन उसी ज्योति पुजकी किरण-माला है । इन किरणोंमें उसीके कारण आकर्षण है । वही है जिसपर अपनेको लुटा-

प्रेम जीवनका उत्स है !

कर अपनेको निवेदितकर वह सार्थक हो जाता है । जीवन उसीसे है, उसीका है और उसीके लिए है । मानवकी समस्त अभिव्यक्तियोंमें वही बोलता है, मौनमें भी और वाणीमें भी । स्वभावत विश्व-काव्यपर इस प्रेमकी गहरी छाप है । संसार-का सर्वोत्तम काव्य प्रेम-काव्य ही है । कविकी वृत्ति, सस्कार, दृष्टिकोण, सामर्थ्यके अनुसार प्रेमके विविध रूप और विविध श्रेणियाँ उसमें व्यक्त हुई हैं । प्रत्येक जातिका हृदय उसके साहित्यमें स्पन्दित है । इसलिए प्रत्येक देश वा जातिके प्रेम-काव्यमें अपनी एक परम्परा, अपनी एक विशिष्टता दिखाई पडती है ।

फारसी-काव्यकी भी अपनी एक विशिष्टता है । उसका एक खास रग है । वह वैभव एव विलासकी रंगभूमिमें पल्लवित हुआ, गुलमें खिला,

फारसी-काव्यकी जमीन

बुलबुलके गानमें उभरा, वहारमे हँसा, खिजाँमें रोया, सेहरामें मारा-मारा फिरा । वह हुस्नकी अदाओंमें मचला, नयनोंमें मखमूर हुआ, जुल्फोंकी अमामें सोया, मुखकी पूर्णिमामें दीवाना हुआ, पावोंकी ठोकरोंसे मरा और हाथों या तेवरके स्पर्शसे

जी उठा। उसका प्रेम उसके सौन्दर्यपर दीवाना हुआ। उसके प्रेमके सोते इसी हुस्नपरस्तीसे फूटते है।

प्रेमीकी मुसीबतें

प्रेमी सौन्दर्यपर रीझता है, उसका हृदय-पक्षी खुद उडकर पिजरेमे चला जाता है। बन्द होकर फडफडाता है—बाहर निकलनेके लिए पर बाहर निकलनेपर भी नही निकलता। यो उसके दिलपर माशूकका अधिकार हो जाता है। अब माशूक है कि उसे अपने हुस्नपर नाज है, वह देखकर भी उधर नही देखता। आशिकसे आँखें चुराता है, उसे ज़रा छेड देता है, फिर उपेक्षा करता है, बल्कि उसे व्यथित करनेके लिए गैरोसे हँसता है, बोलता है, उनकी तरफ ज्यादा ध्यान देता है। उसके बज़ममे अगियारका स्वागत और अभिनन्दन है। इधर आशिक तडप-तडपकर रह जाता है। कलेजा मुँहको आता है, रकाबत या ईर्ष्याके बिच्छुओके हज़ार-हज़ार डक उसका कलेजा छेद देते है। रातें काटे नही कटती। आँखोसे दरिया वह निकलता है। यहाँ तक कि आशिक विरहमे पागल हो जाता है, बस्तीसे सेहराकी ओर भागता है, गिरेबाँ फाडता है, बाल नोचता है। घुल-घुलकर मरता है पर मरकर भी चैन नही पाता। मज़ारके तले भी, माशूककी छेडनेवाली अदाओके कारण, बेचारा सो नही पाता। कोई भूले-भटके चिराग जला देता है तो हवा (आह भरकर) उसे सरेशाम ही बुझा देती है। ऐन बहारमे बुलबुलका आशियाँ उजडता है, तिनके बिखर जाते है। पतगा शमाके हुस्नके जल्वेमे जल जाता है पर शमा खुद भी तिल-तिल जलती है। इस जलनेके कारण ही उसमे सौन्दर्य ज्योतित है। प्याससे गला सूख रहा है, प्याला है, सुराही है, शराब भी है पर साकी नही जो दो चुल्लू पिला दे। या है भी तो यह शोखी है कि प्याला भरकर भी नही देते। आंखोमें शराब है पर वे बन्द कर ली जाती है, कपोलोपर गुलाब खिलते है पर वे हटा लिये जाते है, मुखपर चांदनी फूटी है कि मुख चुरा लिया जाता है।

उधर वह यौवन, वे अदाएँ, वे शोखियाँ, और इधर यह गुरबत, यह आह, यह कराह, यह बेचैनी !

ईरानका गुल है, भारतका कमल नहीं

यही दुनिया, यही वातावरण फ़ारसी शाइरीमें मिलता है। उर्दू पली हिन्दुस्तानकी धरतीपर किन्तु उनमें दिलकी क़लम लगी ईरानकी। ज्यादातर कवि वहींसे आये थे या उनकी सन्तति थे जो वहांसे आये या जिनपर वहांके सपने और नशे हिन्दुस्तानमें भी छाये हुए थे। कुछ लोगोंने पुराने वक्तोंमें और एक अच्छी तादादने आजकल इस फ़िज़ाको बदलनेकी कोशिश की पर सब मिलाकर आज भी उर्दू शाइरी वह है जिसमें हिन्दुस्तानके दिलका सुकून नहीं, ईरानके दिलकी बेक़रारी है, जिसमें ईरानका गुल खिलता है पर भारतका कमल नहीं, जिसमें ईरानका बुलबुल गाता है किन्तु हिन्दुस्तानकी कोयल नहीं कूकती, जिसमें कोहकनकी कुदालके शब्द प्रेमको अर्घ्य देते हैं और शीरींका हुस्न अँगड़ाइयाँ लेता है पर कृष्णकी बांसुरीसे प्रेमकी रागिनी नहीं फूटती, न राधाका पद-चाप किसी मल्लिका-कुंजमें सुनाई देता है।

गालिबके जमानेमें तो यह बात और भी सत्य थी। खुद वह फ़ारसीयतसे ओतप्रोत थे, फारसीके कवि थे। स्वभावतः उनमें भी इश्क़ोहुस्नकी वही परम्पराएँ मिलती हैं। उनके प्रारम्भिक काव्यमें ये अधिक हैं और परम्परागत एवं काल्पनिक मालूम पड़ती हैं पर बादके काव्यमें उनमें निजी अनुभूतियोंके स्पर्शसे एक जीवित आकर्षण आ गया है।

आंख और दिलका खेल

आंख और दिल शृंगार-काव्यके प्रेरक अंग हैं। आंखसे दर्शन होता है, दिलसे अनुभूति आती है। दर्शन (आंख) सौन्दर्य और अनुभूति (दिल) प्रेमका साधन हैं। जो कुछ है आंख और दिलका खेल है। आध्यात्मिक प्रेमका सम्बन्ध शाश्वत सम्बन्ध है, वह देखनेसे पहिले आराध्यका हो चुकता है। वह पैदा होनेके दिनसे ही उसीका है, बल्कि उसीसे पैदा हुआ है, आराध्यका सौन्दर्य भी खुद

उसकी अपनी आँखोके सुप्त सौन्दर्यकी छाया है। वह अपनेको ही उसमें देखता है। पर ऐसा सौन्दर्य-दर्शन, ऐसी प्रेमानुभूति, ऐसा सर्वस्व-निवेदन ससारमे किसी-किसीको मिलता है।

प्राकृत मानवमें प्रेमके पूर्व दर्शन और सौन्दर्य है। वह पहिले देखता है, तब रीझता है। स्वभावत शरीर और उसका चरम सौन्दर्य दृष्टिको लुभाता है। दृष्टि ही सौन्दर्यका आधान है, इससे दिलमें एक आलोडन होता है, एक सम्मोहन-सा होता है, एक बेचैनी, एक गर्मी पैदा होती है, एक द्रवण होता है। प्रेमकी यह गर्मी, दिलकी यह बेचैनी सौन्दर्यको और आकर्षक बना देती है। दिलके इसी द्रवणसे कविताकी धारा बहती है। इसके लिए दिलकी तपिश जरूरी है। गालिबने इसे अनुभव किया था। कहते है—

दृष्टि सौन्दर्यका आधान है

हुस्ने फरोग शमअ सुख़न दूर है 'असद',
पहले दिले गुदाख्त[1] पैदा करे कोई।

[ऐ असद! काव्यकी शमाका ज्योतिर्मय सौन्दर्य अभी दूर है, पहले कोई द्रवणशील हृदय तो पैदा करे। (तब वह प्राप्त होगा)]

मै इसे कह चुका हूँ कि गालिबका प्रेम एक मानवका प्रेम है। यह प्रियतमाके शारीरिक सौन्दर्यपर आसक्त है। इस सौन्दर्यमे शरीरकी गढन, छवि, आकार, शृगार सब सम्मिलित है। उसकी लचक और सगीतकी भाँति लहराती उसकी गति और चाचल्यपर वह मुग्ध है।

चंचलता

है साइक[2] व शोल वो सीमाब[3]का आलम,
आना ही समझमें मेरी आता नहीं गो आय!

---

१ पिघला हुआ, २ विद्युत्, ३ पारद।

[तड़पती हुई बिजली, लपट और पारदकी-सी अवस्था है, वह आती है तब भी उसका आना समझमें नहीं आता ।]

उनके उर्दू-फ़ारसी काव्यमें प्रियतमाके क़द-क़ामतका ज़िक्र बार-बार आता है। इसपर उनकी दृष्टि पहिले जाती है—

क़द्-क़ामत

अगर वह सरोक़द गर्मे ख़रामेनाज़ आ जावे,
कफ़े हर ख़ाके गुल्शन शक्ले क़मरी नालःफ़र्सा हो।

निश्चय ही वह लम्बे, छरहरे बदनकी है—

ब यादे क़ामत अगर हो बुलन्द आतिशे गम,
हर एक दागे जिगर आफ़तावे महशर हो।

या

असद उठना क़यामत क़ामतोंका वक़्ते आराइश,
लिबासे नज्ममें बालीदने मज़मूने आली है।

बाल

क़द-क़ामतके अलावा उसके बालोंमें बड़ा आकर्षण और सौन्दर्य है। उसपर वह मुग्ध है। उनकी खुशबू उन्हें मस्त कर देती है—

अभी आती है बू बालिशकी उसकी ज़ुल्फ़े मुश्कींसे।

× ×

तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर परीशाँ हो गयीं।

× ×

तू और आराइशे ख़मे काकुल।

× ×

ज़ुल्फ़े ख़याले नाज़ुको इज़हार बेक़रार।

× ×

कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़के सर होने तक।

कभी उनका दिल सौन्दयके जादूसे आक्रान्त पूछता है—

शिकने ज़ुल्फे अम्बरी क्यों है ?
निगहे चश्मे सुर्म सा क्या है ?

यह 'ज़ुल्फे अम्बरी' (सुगन्धित अलकें) और 'निगहे चश्मे सुर्म सा' (सुर्मई आँखोकी दृष्टि) उन्हे कभी नही भूलती। सुर्मई आँखें उन्हे सदा खीचती रहती हैं, बार-बार याद आती हैं।

आँखें

ख़मोशियोंमें तमाशा अदा निकलती है,
निगाह दिलसे तेरे सुर्म सा निकलती है।

× ×

हल्क़े है चश्महाय कशादः बसूए दिल,[1]
हर तारे ज़ुल्फ़को निगहे सुर्म सा कहूँ।[2]

× ×

सुर्मए मुफ़्ते नज़र हूँ, मेरी क़ीमत यह है—

ये आँखें, यो भी, हर हालतमे उनके लिए काम्य है—

मुँह न दिखलावे न दिखला पर बअन्दाज़े इताब[3],
खोलकर पर्द ज़रा आँखें ही दिखला दे मुझे।

('आँखें ही दिखला दे' में मुहाविरेका क्या प्रयोग है !)

अश्रुसे आर्द्र नयनोका सौन्दर्य और मोहक हो जाता है—

क़यामत है सरिश्क आलूद.[4] होना तेरी मिज़गाँका।

---

१ तेरी जुल्फोमे जितने भी पेंच या घूँघर है सब मेरे दिलपर आँख (घात) लगाये हुए हैं, २ तेरी ज़ुल्फ़के हर तारको सुर्मई दृष्टि कहना चाहिए, ३ ज़रा गुस्सेमे, ४ अश्रुमय।

या—

करे है क़त्ल लगावटमें तेरा रो देना,
तेरी तरह कोई तेगे निगहको आब तो दे।

(इसमें भी तलवारको पानी देनेके मुहाविरेका कैसा निर्वाह है !)

अधखुली आँखोंमे और ही असर है—

कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकशको,[1]
यह ख़लिश[2] कहाँ से होती जो जिगरके पार होता।

कभी-कभी वह जिगर तक चोट करती है—

दिलसे तेरी निगाह जिगर तक उतर गयी।

वह देखते-देखते आँखें चुरा लेना, या बनावटी क्रोध गजब ढा देता है—

लाखों लगाव एक चुराना निगाहका,
लाखों बनाव एक बिगड़ना इताब[3] में,

(बनाव और बिगडनाका विरोधाभास तो देखिए !)

वे आँखें ऐसी है कि—

ऑखोंको रखके ताक़ पै देखा करे कोई।

माशूक़ पर्देमें है, त्योरी चढी हुई है और पर्देमें होकर भी वह पर्देसे बाहर है—

है तेवरी चढ़ी हुई अन्दर नक़ाबके,
है इक शिकन पड़ी हुई तर्फ़े नक़ाबमें।

---

१ आधे खींचे हुए, २ साल, करकराहट, ३ गुस्सा।

उनकी छवि स्वय देखे जानेकी कामनासे भरी हुई है। आईनेका जौहर भी पलकें होना चाहता है—

जल्व. अज़ बस कि तक़ाज़ाए निगह करता है,
जौहरे आईन' भी चाहे है मिज़गाॅ होना।

कभी-कभी घूँघटसे सौन्दर्य बढ जाता है—

मुँह न खुलने पर है वह आलम कि देखा ही नहीं,
ज़ुल्फसे बढ़कर नक़ाब उस शोखके मुँहपर खुला।

कभी मेंहदी-रजित अँगूठा लुभाता है—

दिलसे मिटना तेरी अगुश्ते हिनाईका ख़याल,
हो गया गोश्तसे नाख़ुनका जुदा हो जाना।

उसकी चाल, उसके चरण सब मोहक हैं—

दिल हवाए ख़रामे नाज़से फिर,
महशरिस्ताने बेक़रारी[1] है।

आये बहारे नाज़ कि तेरे ख़रामसे[2],
दस्तारे गिर्द शाख़े गुल नक़्शे पा करूँ।

या—

देखो तो दिल फरेबिए अन्दाज़े नक़्शे पा,
मौजे ख़रामे यार भी क्या गुल कतर गयी!

लज्जासे सौन्दर्य और अनावृत हो जाता है—

शर्म इक अदाए नाज है अपने ही से सही
है कितने बेहिजाब कि है यो हिजाबमें।

---

१ बेचैनीका प्रलयस्थल, २ चरण-प्रक्षेप।

उनकी हर बात अच्छी लगती है। हर बात प्राणलेवा है—

बलाए जान है ग़ालिब उनकी हर बात,
इबारत क्या, इशारत क्या, अदा क्या ?

इस सौन्दर्यने दिलमें तमन्नाओंकी एक दुनिया जगा दी है। ग़ालिबका प्रेम ऐसा नहीं कि वह देखकर तृप्त हो जाय, उनमें उपासना नहीं, कामना है। उसमें इस सौन्दर्यको छूने, गले लगाने, चूमने और उससे तृप्त होनेकी वासना है। कलीसे ओठोंको चूमनेकी इच्छा उसमें है—

गुंचए नाशिगुफ्तः[1] को दूरसे मत दिखा कि यों,
बोसेको पूछता हूँ मैं मुँहसे मुझे बता कि यों।

उसमें वार्तालापकी प्यास है—

बिजली एक कौंद गयी आँखोंके आगे तो क्या,
बात करते कि मैं लब तिश्नए तक़रीर[2] भी था।

उनका प्रेम शीतल नहीं है, उसमें शान्ति नहीं है; उसमें विद्युत्की गर्मी, चपलता और प्रकाश है, उसमें वेदनाका, दर्दका आनन्द है और यही दर्द जीवनका स्वाद है—

रौनक़े हस्ती[3] है इश्क़े ख़ान. वीरा साज़[4]से,
अंजुमन बेशमअ है गर बर्क़[5] ख़िरमनमें नहीं।

× ×

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका[6] मज़ा पाया,
दर्दकी दवा पाई, दर्द लादवा पाया।

---

१ बे-खिली कली, २ बातचीतकी प्यास, ३ जीवनकी शोभा, ४ घरको वीरान करनेवाला प्रेम, ५ विद्युत्, ६ अस्तित्व।

तमाशाए गुलशन, तमन्नाए चीदन,[1]
बहार आफ़रीना ! गुनहगार है हम ।

इस स्वाद-प्रियताके कारण ही कुछ-न-कुछ छेड चली जानेका उपक्रम करते रहते है । कृपा न सही, दुश्मनी सही, जुल्म सही पर किसी-न-किसी तरह उनसे सम्बन्ध तो बना रहता है—

हमको सितम अज़ीज, सितमगरको हम अजीज,
नामेहबॉ नहीं हैं, अगर मेहबॉ नहीं ।

× ×

क़तअ कीजे न तअल्लुक़ हमसे,
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही ।

शुरू जवानीमें लज्ज़तपरस्तीकी यह स्थिति ज्यादा स्पष्ट थी । उत्तर-जीवनमें अक्लका बन्धन कामनाओपर बढता गया । यहां तक कि विना बन्धनमें फँसे, विना आसक्तिके भी एक मज़ा ले लेने, एक चर्का देनेकी कला उनमें आ जाती है—

आशिक़ हूँ पै मा'शूक़फरेबी है मेरा काम,
मजनूँको बुरा कहती है लैला मेरे आगे ।

× ×

हूँ मै भी तमाशाइए नैरगे तमन्ना[2],
मतलब नहीं कुछ इससे कि मतलब ही बर[3] आवे ।

---

१ चुननेकी कामनाएँ, २. कामनाके इन्द्रजालका दर्शक, ३ पूर्ण हो ।

स्पष्ट ही ग़ालिबके प्रेम और सौन्दर्यका सम्पूर्ण दृष्टिकोण मानवी है; उसमें स्वाद लेनेकी, भोगकी कामना है। यह कवि उन्माद तक बढ़े हुए

उपासनापूर्ण प्रेमपर व्यंग

प्रेमको, अतीन्द्रिय प्रेमको, उपासना युक्त प्रेमको समझ ही नहीं सकता, उसका मानसिक निर्माण ही वैसा नहीं है। वह ऐसे प्रेमको पागलपन, मस्तिष्ककी विकृति मात्र समझता है। स्पष्ट कहा है—

बुल्बुलके कारोबार पै हैं ख़न्दःहाय[1] गुल,
कहते है जिसको इश्क़ ख़लल है दिमाग़का।

उसके कामनाजनित आकर्षणको जब कुछ लोग, भ्रमवश, प्रेमोपासना समझ लेते हैं तब वह चिढकर कहता है—

ख्वाहिशको अहमक़ोंने परस्तिश[2] दिया क़रार,
क्या पूजता हूँ उस बुते बेदादगरको मैं?

सच पूछें तो ग़ालिब उस स्थलपर हैं जहाँ ईश्वरीय प्रेम तथा भौतिक प्रेम दोनोंके भ्रमसे प्रेमी ऊपर उठ जाता है—

ऐ वहमतराज़ाने मजाज़ी व हक़ीक़ी,
उश्शाक़ फ़रेबे हक़ों बातिलसे जुदा है।

इसीलिए इस कामनापूर्ण स्वाद-ग्रहणमें लफ़ंगाई नहीं है, उसमें स्वस्थ मानवका शारीरिक आकर्षण है पर पतनशील प्रवृत्तियोंका नर्त्तन नहीं है।

कामनाका डंक है इन्द्रिय लुब्धता नहीं

उसमें दिलकी गर्मी है, शरीर-सौन्दर्यका लोच और सगीत है, कामनाका डक है, पर निम्न-स्तरकी इन्द्रियलुब्धता नहीं है। उलटे उन्हें शिकायत है कि सौन्दर्योपासना और प्रेमकी परम्पराको प्रलुब्धजन, निम्न-

---

१ खुश, हास्यपूर्ण, २ पूजा।

स्तरपर लाते जा रहे है और उसे तिनकेकी तरह जल उठने और बदनामीका कारण बना दिया है—

हर बुलहवस[१] ने हुस्नपरस्ती शआरकी[२],
अब आबरूए शेवए अहले नजर[३] गयी।
फरोगे शोलए ख़स[४] एक नफस है[५],
हविसको पासे नामूसे वफ़ा क्या[६] ?
अहले हविसकी फतह है तर्के नबर्दे इश्क[७]।

फिर गालिब एक सामन्ती युगकी उपज थे। वह चाल-चलन, शिष्टाचारकी एक परम्परासे बँधे हुए थे। उनमे अह भी था। यह अह उस

अह जो समर्पणमे बाधक है

पूर्ण आत्मार्पणमे बाधक था जिसके विना प्रेम स्वर्गकी ऊँचाइयो तक नही पहुँचता, जिसके विना उसमें आध्यात्मिक दृष्टि और सौन्दर्य नही आता। अह तो उनमें इतना है कि समर्पण और मिलनमे बाधक हो उठता है। वह नही बोलते तो हम क्यो बोलें, वह अपना ढग नही छोडते तो हम अपना तर्ज़ क्यो छोडें ? वह अपनी महफिलमें बुलायेंगे नही और हम रास्तेमें उनसे मिलेंगे नही (क्योकि यह शराफत नही।) इनमे लज्ज़त-परस्ती ज़रूर है। पर उसपर भी खुदपरस्ती छा गयी है। कहते है—

वह अपनी ख़ू[८] न छोडेंगे, हम अपनी वजअ क्यों छोडें,
सुबुक सिर[९] बनके क्यो पूछें कि आख़िर सरगिराँ[१०] क्यो हो ?

---

१ लोभी, लोलुप, २ ग्रहण किया, ३ शिष्टो (आँखवालो) की शैली, ४ तिनके या घासके शोलेका प्रकाश, ५ क्षणिक है, ६ लोलुपताको निष्ठा निभाने या उसकी बदनामीकी क्या परवा ? ७ लोलुपकी विजय प्रेम-युद्धके त्यागके तुल्य है। ८ आदत, ९ नतशिर १० रुष्ट।

या—

याँ वह गुरूरे इज्जो नाज़[1] याँ यह हिजाब पासे वज़अ[2],
राहमें हम मिले कहाँ, बज़्ममें वह बुलाये क्यों ?

अहजनित ईर्ष्या भी बाधक है—

हम रश्कको अपने भी गवारा नहीं करते,
मरते है वले उनकी तमन्ना नहीं करते।

सबसे पूछते फिरते हैं कि किधर जायें पर रश्कका यह आलम है कि ज़बानसे उसका नाम नही लेते—

छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ,
हर यकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं।

इस प्रकार उनका दिल अनेक मानवी भावनाओंका आकर है, वह हुस्नको देखना, छूना, उसका स्वाद लेना चाहते हैं पर अपनी शिष्टता, अपने ढंग, अपनी वज़अको छोडना भी उन्हें गवारा नही। उनमें तृष्णा है, पर वह क्षण-भर भकसे जलकर बुझ जानेवाली घासकी आग-जैसी नहीं है। यह वह तृष्णा है जिसमें दिल एक शाश्वत अग्निकुण्ड बन-कर रह जाता है, वह उसी प्रेमकी जलन, व्यथा-वेदनाको चाहते हैं जिससे जीवन सचमुच जीवन है, वह उस उत्सको, उस जीवन-स्रोतको चाहते है जिससे समस्त क्रियाएँ, समस्त उत्कण्ठाएँ उत्पन्न और ऊर्जस्वित होती हैं। उनके मतसे जो दिल आगकी भट्टी न हो वह भी कोई दिल है !

शाश्वत जलन वाली तृष्णा

---

१ नाज व सम्मानका गर्व, २ अपने वज़अकी लाज।

है नगे[1] सीन· दिल अगर आतिशकद.[2] न हो,
है आरे दिल[3] नफस अगर आज़ुरफिशाँ[4] न हो।

जो दिल और जो सीना अपने अन्दर आगकी भट्ठी न छिपाये हो वह सीना और दिलको लज्जित करनेवाला है, जिस श्वाससे स्फुल्लिग न निकले वह क्या श्वास है।

वह प्रेमकी उस अग्निके कायल है जिसके सूत्र शमअकी तरह ऊपरसे नीचेतक फैल जाते हैं—

वह तपे इश्क़ तमन्ना है कि फिर सूरते शमअ,
शोलअ तानब्ज [5]जिगररेश· दवानी[6] माँगे।

अर्थात् प्रेमकी उस जलन और गर्मीकी तमन्ना रखता हूँ कि जिसकी लौ मेरे ज़िगरकी रगोतक इस तरह फैल जाय जिस तरह शोलेकी लौ शमअके ज़िगरतक फैली हुई होती है।

एक जगह फिर कहते है—

हमने वहशतकदए बज्मे जहाँमें जूँ शमअ,
शोलए इश्क़को अपना सरो सामाँ समझा

यानी ससारके पागलखानेमें हमने शमअकी तरह प्रेमकी आगको ही अपना सर्वस्व समझ रखा है।

यही आग उनके इन्द्रियलब्ध प्रेमको भी ऊँचा उठा देती है और इस कामनाके खेलमे भी एक दार्शनिक सलग्नता पैदा कर देती है। यह

१ लज्जा योग्य, २ भट्ठी, अग्निशाला, ३ दिलके लिए गैरत या लज्जाकी बात, ४ जिसमे चिनगारियाँ निकलें, ५ जिगरकी रग, ६ रेशोंका दौडना।

आग आसानीसे न लगाये लगती है, न बुझाये बुझती है* पर इसीके कारण जीवनका आनन्द है§, इसी ज्वलनशील विद्युत्के कारण जीवनका अन्न भाण्डार प्रकाशित† है, इसीके कारण जीवनकी शोभा है, और इसीके कारण ग़ालिब बुलबुलकी तरह चहकता फिरता है—

हूँ गर्मिए निशाते तसव्वुरसे नग्मःसंज[1],
मै अंदलीब गुलशने नाआफरीदः हूँ[2]।

१–२ ध्यानानन्दकी गर्मीसे मैं गाता हूँ। मैं उस उद्यानका बुलबुल हूँ जो अभी उत्पन्न नही हुआ।

*इश्क़ पर ज़ोर नहीं है वह आतिश ग़ालिब,
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

§इश्कसे तबीयतने ज़ीस्तका मज़ा पाया।

†रौनक़े हस्ती है इश्क़े खानः वीरांसाज़से,
अंजुमन बेशमअ है गर बर्क़ खिरमनमे नहीं।

ग़ालिबका काव्य : ४ :

काव्य-शिल्प

काव्य शब्दकी साधना है। जब शब्द मुँहसे जादू उगलते हैं, जब उनके अन्दरसे एक प्रच्छन्न दुनिया निकलकर आँखोके आगे सज उठती है, तब काव्यकी कला निखरती है। ललित-कलाओमे काव्यका स्थान सबसे ऊपर है क्योकि इसमे सब कलाओके तत्त्व है। इसमे नृत्यकी गतिशीलता, मूर्तिकलाका सौन्दर्य, चित्रकलाका रेखाङ्कन और रग तथा सगीतकी गूँज अथवा ध्वनि है। वही सौन्दर्य जो फूलमे मचलता है, कविके श्वाससे नि सृत होता है। खुद गालिबके शब्दोमे—

वही यक बात है जो यॉ नफस वॉ नक्हते गुल है,
चमनका जल्वा बाइस है मेरी रगीनवाईका।

काव्य-शास्त्रमे यथातथ्य चित्रण, भगिमाका नावीन्य, रग और पालिश, सूक्ष्मता, अनुभूति एव कल्पनाकी घुलावट, अभिव्यजनाका वैल-क्षण्य तथा भावोद्रेककी गहराईको महत्त्व दिया गया है। गालिबके काव्यमे इनमेसे अधिकाश गुण पाये जाते हैं। मौलाना हालीने उनके काव्यकी विशेषताओमे विषय-नावीन्य (जद्दते मजामीन), कल्पना-वैचित्र्य (तुर्फ-गीए ख्याल), नवीन उपमा-रूपक-विधान, शोखी और विनोदको प्रधान स्थान दिया है।

ज़बान .

गालिबकी ज़बानके बारेमे लोगोके परस्पर-विरोधी मत हैं। कुछने उसकी अत्यधिक प्रशसा की है, कुछ इस क्षेत्रमे मीर और सौदाको उनसे

बहुत ऊपर मानते हैं। सत्य इन दोनोंके बीच है। इसमें तो सन्देह नहीं कि मीरकी भाषाकी घुलावट और सादगी तथा सौदाका शब्द-सौन्दर्य ग़ालिबमें नहीं है पर साथ ही विषयके अनुरूप भाषाका चयन उनकी विशेषता है। जहाँ फ़ारसी वातावरण, सामन्ती श्रेष्ठता और सत्कारकी बात है तहाँ वह फ़ारसीयतसे लदी है, पर जहाँ दिलकी गहराईसे निकली भावनाओंका सवाल है वहाँ ठेठ हिन्दुस्तानी ज़बान है। कहीं कहते हैं—

हवाए सैरे गुल आईनए वेमेह्रिए क़ातिल,
कि अन्दाज़े बख़ूँ गल्तीदने बिस्मिल पसन्द आया।

तो कहीं अत्यन्त सरल ठेठ शब्दोंकी ग़ज़लमें भावनाओंकी एक ऐसी दुनिया करवट लेती दिखाई देती है कि जिसमें सादगीके सौन्दर्यका जादू है—

मौतका एक दिन मोअय्यन[1] है,
नींद क्यों रात भर नहीं आती।
पहले आती थी हाले दिल पै हँसी,
अब किसी बातपर नहीं आती।

भाषा उनके हाथमें एक अस्त्र है, जब जैसा चाहते हैं, उसको रखते हैं। जहाँ शृंगार और सजावटका वातावरण है वहाँ शृंगार और सजावट इतनी है कि कुछ न पूछिए, और जहाँ सादगीसे असर पैदा किया जा सकता है वहाँ सादगी है। शब्दोंका चयन और उपयुक्त स्थानपर उनको बैठानेकी कलामें ग़ालिब एक ही हैं। मुहम्मद एकरामने लिखा है—

"अगर हम ज़बानसे मुराद लें अल्फ़ाज़का इन्तख़ाब[2], उनकी हम-आहंगी[3] और निशस्त[4] तो मिर्ज़ाका मर्तबा[5] तमाम उर्दू शुअरा[6] से बुलन्द

---

१ निश्चित, २ शब्द-निर्वाचन, ३ सन्तुलन, ४. बैठक, स्थान, ५ दर्जा, ६ शाइरका बहुवचन।

है। वह सिर्फ मा'नीपरस्त न थे बल्कि हुस्न ज़ाहरी[१] की कद्र व कीमत भी पहचानते थे। उनके अशयार[२] मे अलफाज़[३] फकत इज़हारे मतलबका[४] ही वसील[५] नही बल्कि शायरान हुस्न पैदा करनेका ज़रिया भी है।"

हमआहगी गालिबकी कोई खास विशेपता नही है क्योकि जहाँ वह है वहाँ खूब है और जहाँ नही है वहाँ फिर नही ही है। उनके दीवानमे काफी बद आहग शेर भी हैं। अपनी समीक्षा-पुस्तक 'उर्दू शाइरीपर एक नज़र'मे श्री कलीमउद्दीन अहमद लिखते हैं—"गालिबने हुस्ने अल्फाज़[६] तो सौदासे नही सीखा लेकिन ख्यालातकी बुलन्दी और तखय्युलकी परवाज़[७] मे सौदाका अत्वाअ[८] किया।" उन्होने सौदाका अनुकरण किया हो या न किया हो पर इतना तय है कि वह शब्दोको पहचानते है, उनके भीतरकी दुनियाको पहचानते है और उनसे यो काम लेते हैं जैसे वे उनके सेवक हो।

छन्द सीमाका विस्तार :

गजलकी दुनिया बहुत छोटी होती है। उसमे हर शेर एक नया मज़मून लेकर आता है। इस छोटे शेरके नन्हे कलेवरमे कोई बडा मज़मून नही बाँधा जा सकता। आधुनिक उर्दू-काव्यमे इसीलिए ग़ज़लके विरुद्ध एक बगावत खडी हो गयी है और 'नज़म'का प्रचार बढ रहा है। गालिब स्वय इसे अनुभव करते थे। लिखा है—

बक़दरे, शौक़ नहीं, ज़र्फे तगहाय गज़ल,
कुछ और चाहिए वसअत मेरे बयॉके लिए।

१ बाह्य सौन्दर्य, २ शेरका बहुवचन, ३ लफ्ज़ (शब्द) का बहुवचन, ४ अर्थ-प्रकाश, ५ साधन, ६ शब्द-सौन्दर्य, ७ कल्पनाकी उडान, ८ अनुकरण।

ग़ज़लकी इस मर्यादाके होते हुए भी ग़ालिबने उसे खींचकर काफ़ी बढ़ा दिया है और उसके क्षितिजको विस्तृत कर दिया है। उसमें महा-काव्यत्वकी विशालता तो सम्भव नहीं, पर गीति-काव्यका पूर्ण सौन्दर्य है। ग़ालिबमें तुलसीकी विराटता या 'प्रसाद' की सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि एवं सृष्टि नहीं है फिर भी अनुभूतियोंकी अँगड़ाई और कल्पनाकी उड़ान है। शेरमें कई सुसम्बद्ध विचार तो सकलित नहीं हो सकते पर ग़ालिबकी विशेषता यह है कि उसके एक शेरमें भाव या विचारकी व्यंजना कुछ ऐसे ढंगपर होती है कि भावोंकी एक शृंखला आरम्भ हो जाती है। एक भावना अपने-में ही समाप्त होकर नहीं रह जाती। "ग़ालिब एक ख़्यालको इस पैराये-में बयान करते हैं जिनसे दूसरे ख़्यालातकी तरफ़ तवज्जुह मुनअतफ़[1] होती है और शेर पढ़कर ज़ेहन इन दूसरे ख़यालातकी जुस्तजू[2] में महो[3] हो जाता है गोया महशरिस्ताने ख़्यालका[4] दरवाज़ा खुल जाता है।"

उदाहरण लीजिए—

देह्र जुज़ जल्वए यकताइए माशूक़ नहीं,
हम कहाँ होते अगर हुस्न न होता ख़ुदबीं।

× × ×

फूँका है किसने गोशे मुहब्बतमें ऐ ख़ुदा,
अफ़सूने इन्तज़ारे तमन्ना[5] कहें जिसे।

ये शेर अपने ही में ख़त्म होकर नहीं रह जाते। इनमे आबाद दुनिया नयी दुनियाओंके द्वार खोल देती है। इनमें एक संकेत, एक इशारा है। हमारी आँखें दूर क्षितिजपर किसीको खोजती हैं।

---

१ फिरना, फेरना, २ अन्वेषण, ३ निमग्न, ४ कल्पनाका प्रलय-स्थल, ५ कामनाकी प्रतीक्षाका जादू।

व्यंजनाका प्रवाह (जोशे बयान) :

कही-कही शेरोमें तीव्र प्रवाह और गति है। जो कहते है, जोशके साथ कहते है, उसमें भावनाकी हरहराती नदीकी आवाज़ है, उबलती और बलखाती बरसाती नदीकी जवानी है, देखिए—

ऐ अन्दलीब[1] ! यक कफे खस बहे आशियाॅ,[2]
तूफ़ान आमद आमदे फस्ले बहार है[3] ।

× ×

चाक मतकर जेब बेअय्याम गुल,
कुछ उधरका भी इशारा चाहिए ।

× ×

लरज़ता है मेरा दिल जहमते मेहरे दुरख्शाॅ[4] पर,
मै हूॅ वह क़तरए शबनम कि हो ख़ारे बयाबाॅ पर ।

× ×

मुनहसिर मरने पै हो जिसकी उमीद,
नाउमीदी उसकी देखा चाहिए ।

इन शेरोमे आन्तरिक अनुभूतियां दिलके पर्देको उठाकर अभिव्यंजनाकी खिडकियोसे झांक-झांक उठती है ।

अंगसौष्ठव और चित्रांकन ·

मूर्तिकलाको कलाओका नमूना–माडल–कहा जाता है। इसमे अगोका सौष्ठव, सतुलन और सामञ्जस्य होता है। अग सांचेमे ढले-से होते है। काव्यमे भी यही मतुलन शिल्पका प्राण है। गालिवमे कही-कही यह खूब

१ बुलबुल, २ आशियांके लिए, ३ वसत ऋतुके आगमनमे तूफ़ान आया है, ४ प्रकाशमान सूर्यकी विपत्ति ।

उभरता है, शेर ऐसे जान पड़ते हैं जैसे मूर्तियाँ किसी दक्ष मूर्तिकारने पत्थरमें काट दी हों, या भावका चित्र हसीनोंकी छविका बोल-चाल उभरा हो। एक मशहूर गज़लका क़िता है—

ऐ ताज़ः वारिदाने[1] बिसाते हवाए दिल,
ज़िनहार अगर तुम्हें हविसे नायनोश[2] है।
देखो मुझे जो दीदए इबरत निगाह[3] हो,
मेरी सुनो जो गोशे नसीहत नयोश[4] है।
साक़ी बजल्व: दुश्मने ईमानो आगही[5],
मुतरिब[6] बनग़मः रहज़ने[7] तमकीनो होश है।
या शब को देखते थे कि हर गोशए बिसात,
दामाने बाग़बाँ व कफ़े गुलफ़रोश है।
लुत्फ़े ख़रामे साक़ी[8] व ज़ौक़े सदाए चंग,
यह जन्नते निगाह वह फ़िरदौसे गोश है।
या सुबह दम जो देखिए आकर तो बज़्ममें,
नै वह सरूरो सोज़ न जोशो ख़रोश है।
दाग़े फ़िराक़े सोहबते शबकी जली हुई,
इक शमअ रह गयी है सो वह भी ख़मोश है।

कहते हैं, हृदयकी आकांक्षाओंकी फ़र्शपर आकर नये बैठनेवालो! (प्रेमकी दुनियाके नवागन्तुको!) यदि तुम्हें गान और पानका लोभ है किन्तु शिक्षा लेनेवाली दृष्टि सुरक्षित है तो मुझे देखो, अगर उपदेश सुनने-

१ हृदयाकांक्षाकी भूमिपर नये आने वालो, २ गान-पान, ३ शिक्षा लेने योग्य दृष्टि, ४ उपदेश श्रवण करने योग्य कान, ५ बुद्धि, ६ गायक, ७ डाकू, ८ साक़ीके चरणनिक्षेपका सौन्दर्य या आनन्द।

वाले कान रखते हो तो मेरी बात सुनो। यहाँ साकी अपना रूप, अपनी छवि (जल्व) दिखाकर ईमान और अक्लको लूट लेता है, गायक अपना गान सुनाकर स्थिरता और चेतनापर डाके डालता है। रात इस विलास-कक्षका यह हाल था कि खुशीकी बिसातका हर कोना मालीके दामन और फूल बेचनेवालेके हाथकी तरह फूलोंमे भरा हुआ था (इसमे रूपसियोंका जमघट था)। साकीके चरण-निक्षेप एव सारगीकी धुनें आँखो और कानोके लिए स्वर्गकी सृष्टि करती थी। किन्तु सुबह उसी महफिलमे आकर देखता हूँ तो यह हाल है कि न वह आनन्द है, न प्रेमका वह उत्ताप (सोज़) है, न वह उमग-उत्साह है। रातके आमोद-प्रमोदके विरह-दु खमे जली हुई एक शमअ रह गयी है किन्तु वह भी मौन है। (महफिलका अन्तिम चिह्न भी मिट गया है)।

कैसा जीवन्मय चित्र है। रातके विलास-कक्ष और प्रात कालीन उदासीकी मूर्त्ति शब्दोके पत्थरोपर उभर आई है। आँखोमे प्रियतमाके हाव-भाव, बेहोशीसे भरी और बेहोश करनेवाली आँखें फिर जाती है, उसकी कोकिल-तान शब्दोके पर्देमे गूँज रही है, और फिर जब सब मिट गया है, कोई ठोस स्मृति भी शेष नही है, तबकी उदासी और नीरवता चतुर्दिक् छा गयी है।

कलीमने लिखा है—"एक नई दुनिया जल्व अफरोज है। बेरब्ती[1] और परागन्दगीका[2] यककलम[3] नामोनिशान नही। यहाँ तामीरी यकसानी[4] का वजूद[5] है यानी इब्तिदा, वस्त व इन्तिहा[6] मे रब्त व मुताबिकत है। एक नक्शे कामयाब दिमाग व तखय्युलके सामने अपना हुस्न मरत्तब[7] करता है। गालिबने इस मामूली और आम ख्यालको शायराना हुस्न और शायराना सदाकतके साथ बयान किया है। अल्फाज अपनी

---

१ असतुलन, २ असम्बद्धता, ३ बिल्कुल, ४ निर्माणकी समानता, ५ अस्तित्व, ६ आरम्भ, मध्य एव अन्त, ७ सम्पादित।

जगहोंपर किस पुख़्तगीसे जमद हैं, गोया उन्हें अपनी क़द्र व क़ीमतका एहसास[1] है। तस्वीरें मस्नूई[2] व ख़्याली नहीं, कैसी दिलकश है।"

इनके शिल्पके और नमूने देखिए—

मैं नामुराद दिलकी तसल्लीको क्या करूँ,
माना कि तेरे रुख़से निगह कामयाब है।

चित्रकारी—

रौमें है रख़्शे उम्र कहाँ देखिए थमे,
नै हाथ बाग पै है न पा है रकाबमें।

वेदना और तड़प—

जान दी हुई उसीकी थी,
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ।
ज़िन्दगी यूँ भी गुज़र ही जाती,
क्यों तेरा राहेगुज़र याद आया।

गालिबके क़लाममें एक समत्व और एक तेवर है जो उसीका है, उसकी अभिव्यंजनामें उसके व्यक्तित्वकी गूँज है। उसमें दार्शनिक पकड न हो पर जिज्ञासा अवश्य है। वह कभी आश्चर्य-विमुग्ध होकर दुनिया और उसके सौन्दर्यको देखते हैं, उनके ज़ेहनमें आता भी है कि ये हस्तीके फरेब हैं, सारी दुनिया कल्पनाका चक्रमात्र है पर फिर वह दृश्य सौन्दर्यमें डूब जाते हैं, जो सामने है उसे पकडनेको आतुर हो उठते हैं और जिज्ञासासे यह कहकर पल्ला छुडा लेते हैं—

कह सके कौन कि यह जल्व.गरी किसकी है,
पर्द. छोड़ा है वह उसने कि उठाये न बने।

---

१ अनुभूति, २ कृत्रिम।

प्रकृतिके चित्र :

गालिब तथा उर्दूके सभी कवियोका काव्य प्रकृतिके सुन्दर चित्रणोंसे खाली है। कही-कही रेखाएँ भर हैं, फिर भी गालिबमें एकाध नमूने मिल ही जाते हैं, और अच्छे नमूने—

फिर इस अन्दाजसे बहार आई,
कि हुए मेह्रो मह[१] तमाशाई[२]।
देखो ऐ साकिनाने ख़त्तए ख़ाक[३],
इसको कहते है आलम आराई[४]।
कि जमीं हो गयी है सर ता सर[५],
रूकशे[६] सतहे चर्ख़े मीनाई[७]।

बहार इस जोशके साथ आई है कि सूर्य-चन्द्र भी दर्शक बन गये है। हे पृथ्वीके रहनेवाले, देखो, ससारका शृङ्गार इसे कहते है। सारी धरती ऐसी सज उठी है कि रगीन आकाशकी बराबरी करने लगी है।

चिन्तन एवं अनुभूतिका सन्तुलन .

चिन्तन एव अनुभूतिका गहरा सन्तुलन तथा सामञ्जस्य गालिवके काव्यकी एक विशेषता है। दो-तीन शेर देखिए—

दीदार बाद. हौसल' साकी निगाहे मस्त,
बज्मे ख़याल मयकदए बेख़रोश है।

(ख्यालकी महफिलमे प्रियतमाका दर्शन शराबका काम देता है। आँख पीकर मस्त हो जाती है। यह मधुशाला दूसरोंमे भिन्न, नीरव है।)

---

१ सूर्य-चन्द्र, २ दर्शक, ३ धरतीके निवासी, ४ ससारका शृगार, ५ एक सिरेसे दूसरे सिरे तक, पूरीकी पूरी, ६ प्रतिद्वन्द्वी, ७ नील, (रगीन) नभ।

मक़तलको किस निशातसे जाता हूँ मै, कि है,
पुरगुल ख़याले ज़ख़्मसे दामन निगाहका।

(वक्षस्थलमें जो ज़ख़्म लगेंगे उनकी कल्पना मात्रसे निगाहका आँचल फूलोंसे भर गया है और मैं किस उमंगसे वहाँ चला जा रहा हूँ।)

तबअ है मुश्ताक़े लज़्ज़तहाय हसरत क्या करूँ,
आरज़ूसे है शिकस्ते आरज़ू मतलब मुझे।

(तबीयत हसरत—निराशामयी लालसा—की लज्जतोंके लिए उत्कण्ठित है, यो मैं कोई अभिलाषा भी करता हूँ तो मेरा अभिप्राय अभिलाषाकी असफलता ही होता है ताकि इस असफलता से फिर हसरतका जन्म हो और तबीयतको बराबर उसका स्वाद मिलता रहे।)

भावना एवं अनुभूतिकी विविधता :

भावना और अनुभूतिकी विविधता ग़ालिबमें खूब पाई जाती है। सबसे बडी बात तो यह है कि व्यजनामें एक अजब शोखी है, जैसे दूसरोको जवाब दे रहे हों—

इन आबलोंसे पाँवके घबरा गया था मैं,
जी ख़ुश हुआ है राहको पुरख़ार देखकर।

(निरन्तरके चलनेसे, सेहरानवर्दीसे पाँवमें जो छाले पड गये है उनको देख-देखकर मैं घबरा गया था कि इनमें टीसकी लज्ज़त कैसे भर दूँ। अब रास्तेको काँटोंसे भरा देखता हूँ तो तबीयत खुश हो गयी है, अब काँटो और आबलोंमें अच्छी पटेगी।)

क्यों गर्दिशे मुदामसे घबरा न जाय दिल,
इसान हूँ पियालः वो साग़र नहीं हूँ मैं।

(इस सदा चक्कर काटनेसे दिल क्यो न घबरा जाय ? मैं भी इंसान हूँ, कोई प्याला नही हूँ—प्याला सदा फिरता रहता है।)

नवीन उपमाएँ, रूपक, उत्प्रेक्षाएँ :

गालिबकी एक बडी विशेषता उनकी उपमाएँ और रूपक हैं। वह प्रचलित और पिटी-पिटाई उपमाओ और रूपकोका प्रयोग नही करते, सदा नयी उपमाएँ और रूपक ढूँढते है। मुहम्मद इकरामने लिखा है—"मिर्जा तश्बीह और इस्तआर के बादशाह थे।" उनकी उपमाएँ और रूपक ऐसे है कि उपमेय तथा विषयको स्पष्ट और ज़ोरदार बना देते हैं। एक अदृश्य जगत् अनावृत हो जाता है। इस प्रकारकी नवीनता प्रारम्भिक काव्यमें भी है। जैसे श्वासकी उपमा तरग (लहर) से, बेखुदीकी दरियासे, आहोकी फटे गलेके बखियेसे, निष्ठा-मार्गकी तलवारकी धारसे, पाँवकी ज़जीरकी पाँवके चक्करसे।

बादमें तो काव्यमें इसकी और पुष्टि होती गयी है। कुछ उदाहरण लीजिए—

हैं जवालआमाद' अजजा आफरीनशके तमाम,
मेह्र गर्दू है चिरागे रहगुजारे बाद यॉ।

इसमें सूर्यकी उपमा वायु-मार्गमें प्रज्वलित दीपकसे दी गयी है। (इस ससारके सभी अग पतनोन्मुख हैं, क्षयशील है। इसमे सूर्य हवाके रास्तेमे रखा गया दीपक है।)

गमे हस्तीका 'असद' किससे हो जुज मर्ग इलाज,
शमअ हर रगमें जलती है सेहर होने तक।

इस शेरमे मृत्युको प्रभात बताया गया है क्योकि प्रभात शमअके लिए मृत्युका कारण है। (ऐ असद ! जीवनके दु खोकी चिकित्सा मृत्युके सिवा कौन कर सकता है? शमअको प्रभात होने तक हर रगमे जलना ही पडता है।)

जूए खूँ ऑखोसे बहने दो कि है शामे फिराक़,
मै यह समझूँगा कि दो शमएँ फरोजॉ हो गयीं।

विरहकी सन्ध्यामें, रोनेसे हुई रक्ताभ आँखोंकी दो जलती ज्योतियोंसे उपमा दी गयी है।

*किनाय (लुप्तोपमा) के भी अनेक अच्छे उदाहरण ग़ालिबके काव्यमें मिलते हैं। देखिए—

बिजली एक कौंद गयी आँखोंके आगे तो क्या?
बात करते कि मैं लब तिश्नए-तक़रीर[1] भी था।

प्रियतमा एक झलक दिखाकर चली गयी है। इसी बातको पहिले मिस्रेमें कहा है कि आँखोंके आगे एक बिजली कौंदकर लुप्त हो गयी।

दम लिया था न क़यामतने हनोज़,
फिर तेरा वक़्ते सफ़र याद आया।

प्रियतमाकी विदाईके समय जो दर्दनाक हालत हुई थी और जो उसके चले जानेके बाद रह-रहकर याद आती है उसमें जो कभी-कभी विराम-काल आ जाता है उसे क़यामतका दम लेना कहा है (अभी क़यामतने दम भी न लिया था कि तेरी विदाईका समय याद आ गया!)

पेनहाँ[2] था दामे सख़्त क़रीब आशियानके,
उड़ने न पाये थे कि गिरफ़्तार हम हुए।

आशियाँके समीप ही कोई कठोर-जाल छिपा हुआ था। उड़ने भी न पाये थे कि उसमें गिरफ़्तार हो गये। वास्तविक अभिप्राय यह है कि हमारे

---

१ वार्तालापके लिए पिपासित ओठोंवाला, २ प्रच्छन्न।

* शब्दार्थ—छिपी, बात, गुप्त संकेत। उर्दू साहित्यकी परिभाषामें उपमेयका वर्णन न करके केवल उपमानका वर्णन करना। जैसे नर्गिससे मोती गिर रहे हैं। मतलब तो यह है कि उनकी नर्गिस-सी आँखोंसे अश्रु-मुक्ता झर रहे हैं पर आँखें और अश्रु पदसे लुप्त हैं।

आस-पास कठिनाइयो और मुसीबतोंके जाल बिछे थे और होश सँभालनेके पहिले ही हम उसमे फँस गये ।

शोखी :

मिर्जाकी तबीयत ही चुलबुली और विनोदप्रिय थी । उनके काव्यमे उनकी शोखीकी झलक प्राय मिलती है—

पकड़े जाते है फरिश्तोंके लिखे पर नाहक,
आदमी कोई हमारा दमे तहरीर भी था !

फरिश्तोंके लिखनेपर हम नाहक पकडे जा रहे हैं । उनके रिपोर्ट लिखते वक्त कोई हमारा भी आदमी उपस्थित था ? बेगवाहीको तहरीरपर पकडना भी कोई न्याय है !

जमअ करते हो क्यों रकीबोंको,
एक तमाशा हुआ गिला न हुआ।

मैंने शिकायत की थी, तुमने तमाशा बना लिया । यह मेरे प्रतिस्पर्धियोको क्यो एकत्र कर रहे हो ? (शिकायतका क्या जवाब मिला है !)

गालिब गर इस सफ़रमें मुझे साथ ले चलें,
हजका सवाब[1] नज़र करूँगा हुज़ूर की ।

यदि इस यात्रामें मुझे भी साथ ले चलें तो हजका जो पुण्य होगा उसे मैं हुजूरकी नज़र कर दूँगा ।

वाइज़ न तुम पिओ न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारी शराबे तहूर[2] की ।

---

१ पुण्य, २ स्वर्गीय मदिरा ।

'क्या बात है' शेरकी जान है।

हम जो कहते हैं कि हम हश्रमें लेंगे तुमको
किस रऊनतसे वह कहते हैं कि "हम हूर नहीं।"

इस्लाम धर्मका विश्वास है कि प्रलयके समय ख़ुदा लोगोंको पुरस्कार देता है, उसमें हूरें (अप्सराएँ) मिलती हैं। उन्हींपर छेड़ते हैं कि हम प्रलयके समय तुम्हींको लेंगे और वह किस गर्वसे जवाब देती है कि मैं कोई हूर तो नहीं हूँ।

व्यंग-विनोद :

ग़ालिबके काव्यकी एक बहुत बड़ी विशेषता वह प्रच्छन्न व्यंग और विनोद (तंज़ और ज़राफ़त) है जो उनके लहजेमें पाई जाती है। व्यंगमें उन्होंने किसीको छोड़ा नहीं। यहाँ तक कि "उर्दू शाइरीमें ग़ालिब पहिले शख़्स हैं जिन्होंने तंज़में ख़ुदाको मुख़ातिब किया है।" उनमें 'सैल्फ़ह्यूमर' (अपनेपर हँसनेका गुण) भी था और इसी गुणने उन्हें मुसीबतोंकी घाटीमें चलनेका बल दिया।

चन्द शेर देखिए—

की मेरे क़त्लके बाद उसने जफ़ासे तौबः,
हाय उस ज़ूदपशेमाँ का पशेमाँ होना।

जब कोई देरसे आता है तो लोग व्यंगमें कहते हैं—बहुत जल्द आये! यहाँ भी ग़ालिब उसी तर्ज़में व्यंग करते हैं। "अपने कियेपर शीघ्रतासे पछतानेवालेकी वह लज्जा! उसने मेरा क़त्ल करनेके बाद ही जफ़ासे तौबा कर ली।" (जब क़त्ल कर लिया, गुनाह पूर्णतापर पहुँच गया और इतनी देर हो गयी कि अनुतापसे पूर्ति न हो सके तब वह अपने किये पर लज्जित हो उठा!)

---

१ गर्व, २ शीघ्र पछतानेवाला।

हूँ मुनहरिफ़[1] न क्यों रहो रस्मे सवाब[2] से,
टेढ़ा लगा है कत कलमे सरनविश्त[3] को ।

मैं पुण्यकी परम्पराओके प्रति विद्रोही क्यो न होऊँ जब मेरी भाग्यलिपि लिखनेवाली लेखनीमे ही कत टेढा लग गया है ?

मिटता है फौते फ़ुर्सते हस्तीका गम कोई,
उम्रे अज़ीज़ सर्फ़े इबादत ही क्यों न हो ?

चाहे यह प्यारी उम्र उपासनामें ही खर्च कर दी जाय पर क्या जीवनकी इस सूक्ष्म अवधिके नष्ट होनेका दु ख मिट सकता है ? (तब भी दु ख रहेगा कि और बहुतसे काम न कर सका और उम्र बीत गयी ।)

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन,
दिलके बहलानेको गालिब य' ख़याल अच्छा है ।

हमको स्वर्गकी वास्तविकताका पता है, पर हाँ दिल बहलानेके लिए यह एक अच्छी कल्पना है ।

वह दूसरोपर ही नही अपनेपर भी हँस लेते है, व्यग कर लेते है—

गाफिल इन महतलअतोके वास्ते,
चाहनेवाला भी अच्छा चाहिए ।
चाहते है ख़ूबरूयोको 'असद'
आपकी सूरत तो देखा चाहिए ।

आप सुन्दरियोको चाहते है, जरा अपना मुँह तो देखिए । ऐ गाफिल ! इन चन्द्रमुखियोके लिए चाहनेवाला भी तो अच्छा—सुन्दर—होना चाहिए ।

---

१ उलटा चलनेवाला, विद्रोही, २ धर्म-परम्परा और मार्ग, ३ भाग्यलिपि ।

बादशाहकी नौकरीकी विवशताका अनुभव करते हुए अपनेपर फब्ती कसी है—

ग़ालिब वज़ीफ़ःख़ार हो दो शाहको दुआ,
वह दिन गये कि कहते थे—नौकर नहीं हूँ मैं ।

अर्थ-वैचित्र्य :

बहुतसे शेर ऐसे हैं जिनसे यो देखनेपर एक अर्थ निकलता है पर सोचनेके बाद दूसरा अर्थ समझमें आता है । शेर पहलूदार है, जैसे—

कोई वीरानी-सी वीरानी है,
दश्तको देखकर घर याद आया ।

ऊपरी अर्थ यह है कि दश्तकी वीरानी और कष्टको देखकर घर और उसका आराम याद आ गया ।

सोचनेपर दूसरा अर्थ यह निकलता है कि घर इतना वीरान था कि दश्तकी वीरानी देखकर घरकी वीरानी याद आ गयी ।

क्योंकर उस बुतसे रखूँ जान अज़ीज़,
क्या नहीं है मुझे ईमान अज़ीज़ ?

एक अर्थ यह है कि अगर उससे प्राण अधिक प्रिय रखूँगा तो वह ईमान ले लेगा इसलिए जानको प्रिय नहीं रखता । दूसरा अर्थ यह है कि "उस बुतपर जान निछावर करना तो ईमान है, फिर उससे जानको क्योंकर अज़ीज़ रख सकता हूँ ?"

प्रेमका चित्रण और उसका दर्शन, तसव्वुफका हलका रंग, वेदना और आर्द्रता (सोज़ो गुदाज़), निराशाके चित्र (क़नूतियत), घटना-चित्रण तथा कथोपकथन (मुहाकात) तथा मुआमल बदी* ग़ालिबके काव्यके मुख्य विषय हैं । इनके चंद नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

*काव्यमें नायक-नायिकाके प्रेमके मुआमिलोंको इस प्रकार बाँधना कि उनका प्राकृतिक चित्र आँखोंके सामने फिर जाय ।

प्रेमदर्शन :

परतवे ख़ुर[1] से है शबनमको फना[2] की तालीम,
मै भी हूँ एक इनाअतकी नजर होने तक।
मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़ जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते है जिस काफिर पै दम निकले।
इशरते क़तरा है दरियामे फ़ना हो जाना,
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।
जबतक दहाने ज़ख्म न पैदा करे कोई,
मुश्किल कि तुझसे राहे-सख़ुन वा[3] करे कोई।

तसव्वुफ :

हम वहॉ है जहॉसे हमको भी,
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।
था ख्वाबमें ख़यालको तुझसे मुआमिल,
जब ऑख खुल गयी न जियॉ था न सूद था।
थक थकके हर मुक़ाम पै दो चार रह गये,
तेरा पता न पायें तो नाचार क्या करें ?

वेदनाविह्वलता और आर्द्रता :

आगे आती थी हाले दिल पै हॅसी,
अब किसी बात पर नहीं आती।
रगोंमें दौडने फिरनेके हम नहीं क़ायल,
जब ऑख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ?

---

१. सूर्य-प्रकाश, २. विनाश, ३. अनावृत करे, खोले।

इब्न मरियम हुआ करे कोई,
मेरे दुःखकी दवा करे कोई।
कहता है कौन नालए बुल्बुल[1] को बेअसर,
पर्देमें गुलके लाख जिगर चाक हो गये।
करने गये थे उनसे तग़ाफ़ुलका हम गिलः,
की एक ही निगाह कि बस ख़ाक हो गये।

निराशा :

जब तवक़्क़ुअ[2] ही उठ गयी ग़ालिब,
क्यों किसीका गिल करे कोई।
मुनहसिर[3] मरनेपै हो जिसकी उमीद,
नाउमेदी उसकी देखा चाहिए।
सँभलने दे मुझे ऐ नाउमेदी, क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाय है मुझसे।
रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो,
हमसुख़न कोई न हो और हमज़बाँ कोई न हो।
पड़िए गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार,
और अगर मर जाइए तो नौह.ख़्वाँ कोई न हो।

मुहाकात :

देके ख़त मुँह देखता है नाम.बर,
कुछ तो पैग़ामे ज़बानी और है।
जाता हूँ थोडी दूर हर यक तेज़रौके साथ,
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं।

---

१. बुलबुलके रोदनका चीत्कार, २ आशा-भरोसा, ३ निर्भर।

वह आयें हमारे घर ख़ुदाकी क़ुदरत है,
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते है ।

मुआमिल-बंदी:

किस मुँहसे शुक्र कीजिए उस लुत्फ़े ख़ासका,
पुर्सिश[1] है और पाए सुख़न दरमियॉ नहीं ।
हर एक बातपै कहते हो तुम कि तू क्या है,
तुम्हीं कहो कि यह अन्दाज़े गुफ्तगू क्या है ?
गलत है ज़ज्बे दिलका शिकव देखो जुर्म किसका है,
न खींचो गर तुम अपनेको कशाकश दरमियॉ क्यो हो ?

इनकी कवितामे अर्थ-चमत्कार (मा'नी आफरानी) भी खूब मिलता है—

हस्ती हमारी अपनी फना पर दलील है,
यॉ तक मिटे कि आप हम अपनी क़सम हुए ।
मरते है आरज़ूमें मरनेकी,
मौत आती है पर नहीं आती ।
नक़्शको उसके मुसव्विर[2] पर भी क्या क्या नाज़ है,
खींचता है जिस क़दर उतना ही खिंचता जाय है ।

उलटवासियॉ

इनके काव्यमे पेंचसे, घुमा-फिराकर, विरोधी शब्दो द्वारा भी किसी तथ्यकी अभिव्यक्ति की गयी है —

१ पूछ-ताछ, स्वागत-सत्कार, २ चित्रकार ।

बस कि दुश्वार[1] है हर कामका आसाँ होना,
आदमीको भी मयस्सर नहीं इंसाँ होना।
मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ तो सहल है,
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नहीं।

दोष :

ऐसा नही है कि ग़ालिबमें काव्य-दोषोंका अभाव है। पहला दोष तो यह है कि उनकी भाषामें प्रसाद गुणकी बहुत कमी है। उसमे सरलता नही है। उसमे कुमारीत्वका सरल सौन्दर्य नही, शृगारभारावनता रूपसी-का हुस्न है। डा० अब्दुललतीफके इस कथनमें पर्याप्त सत्य है कि "उसकी लफ्ज़ियात और अस्लूब इस कदर ग़रीब थे कि आम लोग उसके पुरजोश और बाज़ औकात निराले तख़य्युलकी रविशोंमे उसका साथ नही दे सकते थे।"

असल दोष स्वय ग़ालिबमे था और वह यह कि उनकी ज़िन्दगी शुरू-से अन्ततक अशान्तिसे, बेइत्मीनानीसे परिपूर्ण थी। समाजने उन्हें सर, आँखोंपर जगह दी, दिल्लीमें उनका जो सत्कार हुआ वह दूसरे किसी सम-कालिक कविको नसीब न हुआ, आर्थिक दृष्टिसे भी वह कुछ बुरे न थे पर उनमें असन्तोषकी वृत्ति कुछ इस तरह उभरी थी कि कभी उन्हें अपनेसे, अपने सम्मानसे, अपनी स्थितिसे सन्तोष न हुआ। उन्हें ज़िन्दगी-भर दो बातोंकी शिकायत बनी रही—१ साहित्यिक क्षमता और कार्यकी नाकदरी और २ आर्थिक कठिनाइयाँ। इसी असन्तोषके कारण उनमे परस्पर विरोधी तत्त्व मिलते हैं। उनके तीव्र अहके बावजूद उन्हें जन्मभर हम सबके आगे हाथ फैलाते देखते है। उनका अह मीरका आन्तरिक तुष्टिवाला वह अह नही था जो आपत्तियोंकी ओरसे बेपर्वा है। वह लिखते थे—आराम

---

१ कठिन।

के लिए, यशके लिए, पैसेके लिए। यही भौतिकताका स्तर उनका दोष है, पर यही उनका गुण भी है। उनके काव्यके सम्बन्धमे यही बात है। उनकी दृष्टि यथार्थ जगत्की दृष्टि है। एक पत्रमे लिखते है —

"मैने नवाब मुख्तारुमुल्कको कसीद भेजा, कुछ कद्रदानी न फरमाई मस्नवी मुहीउद्दौलाको भेजी, रसीद भी न आई। एक कम सत्तर बरसकी उम्र हुई। सिवाय शोहरतके फने शेरका फल न पाया।"

फिर लिखते है —"मेरा मकसूद तो इतना है कि कसीदे गुज़रे और कुछ हमारे-तुम्हारे हाथ आये।"

निराशामे भौतिक तृष्णा इतनी यथार्थ हो उठी है कि साफ-साफ लिखते है —"बू अली सीना[१] के इल्म और नजीरी[२] के शेरको जाय और बेफायद और मौहूम[३] जानता हूँ। जीस्त[४] बसर करनेको कुछ थोडी राहत दरकार है और बाकी हिक्मत व सल्तनत व शाइरी और साहिरी[५] सब खुराफात है। हिन्दुस्तानमे कोई औतार हुआ तो क्या, मुसलमानोमे नबी बना तो क्या, दुनियामे नामआवर हुए तो क्या और गुमनाम जिये तो क्या? कुछ वजहे मआश[६] हो और कुछ सेहत जिस्मानी[७], बाकी सब वहम।"

इसीलिए उनकी शाइरीमे दिलोकी गहराइयाँ उतनी नही जितनी मस्तिष्क और कल्पनाकी उडानें है। यो कह सकते है कि शाइरीसे अधिक शिल्प है।

गालिबके काव्यका बहुत-सा भाग ऐसा है जिसमे अनुभूतियोका नर्त्तन नही, दिल्की गहरी पकड नही। वह बौद्धिक या चेतनाका स्पर्श मात्र बनकर रह गया है। शेर दिमागको छूते है पर दिलको ठण्डा छोड जाते है। जैसे —

१ एक तत्त्वज्ञ, २ फारसीका एक प्रसिद्ध कवि, ३ भ्रमात्मक, ४ जीवन, ५ जादूगरी, ६ जीविकाका साधन, ७ शारीरिक स्वास्थ्य।

अह्ले बीनश ने बहैरतकदए शोख़िए नाज़,
जौहरे आईनः को तूतिए बिस्मिल बाँधा।
न लेवे गर खसे जौहर तरावत सब्ज़ए ख़तसे,
लगा दे ख़ानए आईनः में रूए निगार आतिश।
शब खुमारे शौक़े साक़ी रस्तख़ेज़ अन्दाज़ था,
ता मुहीते बादःसूरत ख़ानए ख़मियाज़[1] था।

भारी-भरकम शब्दोंकी कायामें डोलती हुई खोखली, बेजान कल्पना दिखाई देती है।

इन सब त्रुटियोंके होते हुए भी ग़ालिबकी आवाज़में एक ज़ोर है, एक निष्ठा है, एक कड़क है। उन्होंने गज़लके तंग दायरेको विस्तृत किया, उसमें एक ऐसी चोट है जो दूसरे गज़लगो शाइरोंमें नहीं मिलती। गज़लकी शाइरीपर गहरा प्रहार करनेवाले कलीमउद्दीन अहमदको भी इतना तो मानना ही पड़ा है—"मैं ग़ज़ल और गज़लके अशआरको जराहते पैका़से ता'बीर[2] करता हूँ और इसीलिए उसमें वह राहत नहीं पाता जो तबीयत ढूँढ़ती है और जो नज्मोंमें मिलती है, लेकिन गालिबके अशआरमें ज़ख्मे तेग़का लुत्फ़ मिलता है।"*

ग़ालिबके काव्यमें आत्माभिव्यक्ति, जगत्के सौन्दर्यकी विविधताको ग्रहण करनेकी कामना, कल्पना और यथार्थका सामञ्जस्य, फारसीकी अत्यधिक शृङ्गार-प्रियताके साथ देशी सरलताका मिश्रण, मिटते हुए

---

१ तीरकी नोक, २ ममता (स्वप्न-फल बयान करना या बताना)।

* उर्दू शाइरीपर एक नजर पृ० १३९। ग़ालिबका खुद भी यही दावा है—

नहीं ज़रीयए राहत जराहते पैका,
वह ज़ख्मे तेग़ है जिसको कि दिलकुशा कहिए।

मुगल वैभवकी वेदनाओका चित्रण, पर उसके साथ आशाकी झलक तथा भूत एव भविष्यको वर्तमानसे मिलानेकी चेष्टा पाई जाती है।

उसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि वह यथार्थकी भूमिपर खडा है। उसमें निजी कामनाओको दुर्बलता है पर निर्माणकी आकाक्षा भी है। गालिब अपने युगसे निराश था। उसे इतना यश मिला पर उसने उसे बहुत कम समझा, उसे इतना सरक्षण प्राप्त हुआ पर वह और पानेके लिए दाँत निपोरता रहा। मीरका झटका देकर वातावरणको दूर फेंक देना उसे कभी न आया। उसने अयोग्य लोगो एव इस मुल्कको पामाल करनेवाले अग्रेज़ अफसरोकी प्रशसामें कसीदे कहे, भीखपर ज़िन्दगी बिताता रहा, खून उगलता रहा, पर कर्ज़की शराब पीता रहा। पर इसी अन्तर्द्वन्द्वमें उसने उर्दू काव्यको एक यथार्थताका स्वर दिया। उसमे भावनाका वेग बुद्धिसे नियन्त्रित है। उसकी कल्पना यथार्थके नीडसे उडती है पर फिर उसीमें लौट आती है। सब बुराइयोके बावजूद उसमें हँस-हँसकर चोट खानेका सामर्थ्य है, वह हँसीके आँचलसे आँसुओको पोछता दीखता है, वह गमको मुसकराते ओठोंसे पी जाता है, वह अपनेपर, अपनी किस्मतपर, विनाशपर हँसना जानता है—मौतको, कठिनाइयोको चुनौती देता चलता है। तकलीफमे, दर्दमे, तूफानमें भी चलना नही छोडता। जब पाँव ज़ख्मी हो जाते है तब सीनेके बल चलता है।[1] रुकता है और चलता है, पर चलता ज़रूर है।

जीवनके प्रति इस आस्थाके साथ उसके काव्यकी चित्रण-शीलता है

---

[1] एक फारसी शेरमे गालिबने कहा है—"जिन्दगीकी एक ऐसी दुर्गम घाटीमे, जहाँ खिज्रकी रहनुमाई भी काम नही देती और जहाँ मेरे पाँव चलनेसे बेबस है, वहाँ मै सीनेके बल चल रहा हूँ।"

श्री रशीद अहमद सिद्दीकीने लिखा है—"गालिबने किसी हालमे अपना साथ न छोडा। वह हर मिस्मारीके नीचेसे फटे हाल लेकिन मुसकराते हुए निकलते थे।"

जिसके विषयमे मैं सरदार जा'फरीके शब्दोको यहाँ दोहरा भर देना चाहता हूँ —

"......इनके साथ ग़ालिबकी मुतहर्रक और रक्साँ 'इमेजरी' है जो तस्वीरगरीकी मे'राज है। जब यह अपनी अछूती तश्बीहों और नादिर इस्तआरोंका जादू जगाता है तो एक-एक अक्षर नृत्य करने लगता है। ठहरे हुए नक़्श सय्याल हो जाते हैं, मुजर्रद ख़याल एक पैकरे रंगोबू बनकर सामने आ जाता है, दश्त गर्मिए रफ़्तारसे जलने लगते हैं, सेहराके जिस्ममें रास्ते नब्ज़ोंकी तरह धड़कने लगते हैं, बेजान पत्थरोंके सीनेमें नातराशीद बुत नाचने लगते हैं, आईनोंके जौहरोंमें पलकें लर्ज़ने लगती हैं, शराबके प्यालोंको उठाये हुए हाथोंकी लकीरोंमें खून दौड़ने लगता है। मा'शूक़की गुफ़्तारसे दीवारोंमें जान पड़ जाती है।" अर्थात्—"इनके साथ ग़ालिबकी गतिशील एवं नर्तित इमेजरी है जो चित्राङ्कनकी पराकाष्ठा है। जब वह अपनी अछूती उपमाओं और अनुपम रूपकोंका जादू जगाता है तो एक-एक अक्षर नृत्य करने लगता है। स्थिर चित्र तरल बन जाते हैं। एकाकी विचार रंग एवं सुगन्धका शरीर धारण कर सामने आता है, अरण्य गतिके उत्तापसे जलने लगते हैं, मरुस्थलकी कायामें मार्ग नाड़ी-तुल्य धड़कने लगते हैं, बेजान पत्थरोंके सीनोंमें अनगढ़ी मूर्त्तियाँ नाचने लगती हैं, आईनोंके जौहरोंमे पलकें कम्पित होने लगती हैं, जिन हाथोंमें मधुपात्र होते हैं उनकी रेखाओंमें रक्त दौड़ने लगता है। मा'शूक़के वचनोंसे दीवारोंमें प्राण थिरकने लगते हैं।"*

ग़ालिबकी सबसे बड़ी देन इन्सानके लिए उनका अदम्य प्यार और इस दुनियाके लिए उनकी कभी न बुझनेवाली तृष्णा है। वह संसारकी तृष्णाके कवि हैं। वह कहीं हो, इस धरतीसे उनका सम्बन्ध बना रहता है। श्री रशीदअहमद सिद्दीक़ीने ठीक ही लिखा है—"वह कहीं हो,

---

* 'दीवाने-ग़ालिब'की भूमिका ' बम्बई संस्करण, पृ० २०–२१।

उनका पाँव ज़मीनपर ही रहता है। किसी हालमे वह हमसे जुदा होना या जुदा रहना गँवारा नही करते।"† निश्चय ही गालिबने उर्दूकी पुरानी शाइरीको एक नया स्वर, एक नया लहज, एक नई दृष्टि दी और गजलको प्रेम-वर्णनके वाहनसे जीवन-वर्णनका विषय बना दिया। विषय पुराना है पर उसे प्रस्तुत करनेमें कविका तेवर नया है। उसके काव्यमे अतीतका मोह, वर्तमानकी सलग्नता और भविष्यकी आशा है। उसमे उस रातकी वेदना है जिसमें मा'शूककी अदाएँ और अठखेलियाँ है, उसकी सौ-सौ चितवनोकी चुभन है, उस महफिलका नग्म है जो उजड चुकी है, उसमे उस शमअकी राख है जो रातभर जलकर मौन हो गयी है, पर उसमें उस प्रभातीका जीवन-स्पर्श भी है जो शत-शत कलियोंके निद्रित नयन-पटल उन्मीलित कर देता है, इसके साथ ही उसमें उस भविष्यके चरणोकी धमक है जो अभी दूर है पर जिसको आना ही है और जिससे कल जीवन-पन्थ मुखरित हो उठेगा।

---

† 'नक्दे गालिब' पृ० ३१७ ('कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या?')

ग़ालिब तथा अन्य कवि

तुलना

मीर और ग़ालिब :

प्राय ग़ालिबकी तुलना 'मीर' तया अन्य उर्दू कवियोंसे की जाती है। किसी कविके अध्ययनकी यह कोई उत्तम प्रणाली नहीं है फिर भी यह युग ही तुलनात्मक समीक्षाका है इसलिए इस विषयपर संक्षिप्त चर्चा कर लेना अच्छा ही है। ग़ालिबके काव्यका रंग सबसे अलग है। वह किसी उर्दू कविको अपने सामने कुछ समझते न थे। आरम्भमें जब उनपर फ़ारसीयतका रंग चढा हुआ था, वह अपने उर्दू काव्यको भी तुच्छ समझते थे और कहा करते थे कि मेरा महत्त्व आँकना हो तो मेरे फारसी काव्यको देखो। इसलिए उनकी किसी उर्दू कविसे तुलना क्या करें? पर इतना मानना पडेगा कि यदि किसी उर्दू कविसे वह विशेष प्रभावित थे तो वह कवि 'मीर' थे। वह दूसरे कवियोंकी प्रशसा बहुत कम करते थे किन्तु 'मीर'की प्रशंसा उन्होंने कई स्थानोंपर की है। अपने शिष्योंको जो पत्र लिखे हैं उनमें भी 'मीर'के शेर बार-बार उद्धृत करते है। उत्तर कालमें जब उनकी तूफानी जिन्दगीमें एक सामञ्जस्य आया और सामन्ती अहकार तया फ़ारसीयतका नशा कुछ धीमा पड गया तब वह ज़मीनपर उतरे और 'मीर'की सरल शैलीका अनुकरण किया तो छोटी बहरोंमें जो ग़ज़लें लिखीं वे उनकी सर्वोत्तम ग़ज़लोंमेंसे है और सामान्य लोगोंकी ज़बानपर चढ गयी हैं।

इस प्रभावके होते हुए भी ग़ालिबकी जीवन-दृष्टि मीरकी जीवन-दृष्टिसे बिलकुल भिन्न है। मीर अन्त स्थ, अपनी दुनियामें खोये हुए हैं। उनमें

आत्म-विस्मरणका तत्त्व बहुत अधिक है। वह यह सोचकर बहुत कम लिखते है कि दूसरे लोग भी हमारी कविता पढ़ेंगे। अक्सर शेर कहते

जीवन-दृष्टिकी भिन्नता

समय वह उसीके वातावरणमे डूब जाते है और आत्मविस्मृति एव निमग्नताकी यह अवस्था आ जाती है कि लोग आते है, सलाम करते है, बैठते हैं और उठकर चले भी जाते है पर उन्हे कोई खबर नही होती। बगलमें बाग है पर अपने भावोद्यानके सौन्दर्यमे ऐसे डूबे कि उसकी तरफ खिडकियाँ नही खुलती, न यही ख्याल होता है कि यहाँ कोई बाग भी है। यह तत्त्व उनमे अपने सूफी पिता और चचा तथा उस वातावरण-से आया है जिसमे उनका बचपन बीता।

गालिब प्रधानत बाह्य-जगत् और उसके वैभवके कवि हैं। उनके मज़े इसी दुनिया तक हैं। आन्तरिक जगत्मे प्रवेश करते भी है तो दर-

इस धरतीके पथिक

वाजा कभी बन्द नही करते, खुला रखते है, बल्कि होशियार रहते है कि निकलनेका रास्ता बन्द न हो जाय। और अन्तर्जगत्की एकाध झांकी लेनेके बाद, फिर अपनी दुनियामे और अपनी जमीनपर लौट आते है। उनमें 'मीर'का आत्मविस्मरण कही नही दिखाई पडता। उन्हे अपना कलाम सुनानेकी उत्कण्ठा, बल्कि लालसा रहती है। जब नजदीक कोई नही रहता तो दूरके शिष्यो एव मित्रोको, पत्रोके द्वारा अपना कलाम सुनाने से नही चूकते।

'मीर' अरबीके अच्छे जानकार एव फारसीके उस्ताद, एक फारसी दीवानके रचयिता तथा कई गद्य-पुस्तकोके लेखक होकर भी, भारतीय

दिल्ली और शीराज़का वातावरण

वातावरणमे साँस लेते है, वह दिल्लीमे दिल्ली-के होकर रहते है, उर्दूमे फारमी तरकीबोका सही और सुन्दर प्रयोग करके भी वह उर्दूके ही है, उर्दूपर उनको गर्व है। गालिब जब उर्दू लिखते है तब भी

फ़ारसीयत उनपर ग़ालिब रहती है। उर्दूके प्रति उनमें तुच्छताका भाव है। भावना एवं दृष्टिकोणसे वह ईरानी अधिक, भारतीय कम है। दिल्लीमें रहते हुए भी वह शीराज़के निवासी मालूम पड़ते हैं। जहाँतक गहराईका सम्बन्ध है उर्दूका दूसरा कोई कवि मीर तक नहीं पहुँचता। पर जहाँ तक विस्तृतिका सम्बन्ध है ग़ालिब सबसे आगे हैं।

ग़ालिबकी जटिलता

मीर सरल, दिलसे सीधे ज़बानपर आनेवाली भाषाका प्रयोग करते हैं, ग़ालिब बातोंको घुमा-फिराकर उनमें जटिलता पैदा करनेकी कोशिश करते हैं। दिमाग़ खुरचना पड़ता है तब उनका मतलब समझमें आता है। ग़ालिबके पूर्वार्द्ध जीवनका काव्य तो हिन्दी कवि केशवकी भाँति (जिन्हें 'कठिन काव्यका प्रेत' कहा गया है) जान-बूझकर दुर्बोध बनाया हुआ काव्य है। जनाब 'असर' लखनवीने ग़ालिबका ही एक शेर उद्धृत करके इस विषयपर प्रकाश डाला है—

लेता न अगर दिल तुम्हें देता कोई दम चैन,
करता जो न मरता कोई दिन आहो फ़ुग़ाँ और।

जब किसीने इसका मतलब पूछा तो ग़ालिबने कहा—

"यह बहुत लतीफ़ तक़रीर[1] है। लेताको रब्त[2] चैनसे, करता मरबूत[3] है आहोफ़ुग़ाँसे। अरबीमें ता'क़ीद लफ़्ज़ी[4] व मा'नवी[5] दोनो मा'यूब[6] हैं। फ़ारसीमें ता'क़ीदे मा'नवी[7] ऐब और ता'क़ीद लफ़्ज़ी जायज़ बल्कि फ़सीह[8] व मलीह[8]। रेख़्ता तक़लीद[9] है फ़ारसीकी। हामिल मा'नी मिस्र-

---

१ सुन्दर वाणी, २ सम्बन्ध, ३ क्रमबद्ध, प्रसंगयुक्त, ४ किसी वाक्य या शेरमें शब्दोंका ऐसा उलट-फेर जिससे अर्थ बदल जाय, ५ किसी वाक्य या शेरमें किसी शब्दका ऐसा अर्थ लेना जो उसके साधारण अर्थके विपरीत हो, ६ दूषित, ७ सरल एवं प्रचलित, ८ सुन्दर, लावण्ययुक्त, ९ अनुकरण।

मीर :

इश्क़ उनको है जो यारको अपने दमे रपतन[1],
करते नहीं गैरतसे ख़ुदाके भी हवाले।

ग़ालिब :

क़यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफर 'गालिब',
वह काफ़िर जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे।

मीर :

आदमे ख़ाकीसे आलमको जिला[2] है वर्ना,
आइना था तो मगर काबिले दीदार[3] न था।

ग़ालिब .

लताफत बेकसाफत जल्वा पैदा कर नहीं सकती,
चमन जगार है आईनए बादे बहारीका।

कही ज़मीन मिलती है, कही भाव मिलते है। जो साम्य है वह भावका कम, बाह्य अधिक है। एक ही 'तरह'की गजलोंमें यह समता अधिक दिखाई पडती है—

मीर .

क्या तरह है आशना गाहे गहे नाआशना,
या तो बेगाने ही रहिए हूजिए या आशना।

ग़ालिब '

खुदपरस्तीसे रहे बाहम दिगर नाआशना,
बेकसी मेरी शरीक आइना तेरा आशना।

---

१ विदा या प्रवासके समय, मरनेके वक्त, २ आभा, चमक, ३ देखने योग्य।

मीर :

दिल इश्क़का हमेशा हरीफे नबर्द[1] था,

ग़ालिब :

धमकीमें मर गया जो न बावे नबर्द था।

मीर :

मरते है तेरी नर्गिसे बीमार देखकर,
जाते हैं जीसे किस क़दर आज़ार देखकर।

ग़ालिब :

क्यों जल गया न तावे रुख़े यार देखकर,
जलता हूँ अपनी ताक़ते दीदार देखकर।

कहीं-कहीं तो मीरके पदके पद गालिबमें मिलते हैं—

मीर :

तेज़ यूँ ही न थी शब आतिशे शौक़[2],
थी ख़बर गर्म उनके आनेकी।

ग़ालिब :

थी ख़बर गर्म उनके आनेकी,
आज ही घरमें बोरिया[3] न हुआ।

मीर :

न हो क्यों ग़ैरते गुल्ज़ार वह कूच. ख़ुदा जाने,
लहू इस ख़ाकपर किन-किन अज़ीज़ोंका गिरा होगा।

---

१ लडाईका प्रतिद्वन्द्वी, २ उत्कण्ठाकी अग्नि, ३ (खजूरकी) चटाई।

ग़ालिब :

ख़ुदा मालूम किस-किसका लहू पानी हुआ होगा,
क़यामत है सरश्क आलूद[1] होना तेरी मिज़गाँ[2] का।

मीर :

आवेगी इक बला तेरे सिर सुन ले ऐ सबा[3],
ज़ुल्फे सियहका उसके अगर तार जायगा।

ग़ालिब :

हम निकालेंगे सुन ऐ मौजे सबा बल तेरा,
उसकी ज़ुल्फोंके अगर बाल परीशा होगे।

एक ज़मीनपर लिखते है पर दोनोके दृष्टिकोणकी भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। 'मीर' कभी प्रियतमासे शिकायत करते है, यहाँतक कि उलझते भी है तो भी शराफतको नही छोडते, शिकायत बात-चीत तक रह जाती है, कर्ममे नही रूपान्तरित होती

शिकव' करूँ हूँ बख़्तका, इतने गजब न हो बुता,
मुझको ख़ुदा न ख्वास्ता तुमसे तो कुछ गिला[4] नहीं।

× ×

नाले किया न कर सुना, नौहे[5] पै मेरे अन्दलीब[6],
बातमें बात ऐब है, मैने तुझे कहा नहीं।

बल्कि उनकी उच्च नैतिकता अपनेसे ही शिकायत, आत्म-प्रतारणा करती है

इतनी भी बद-मिज़ाज़ी हर लहज. मीर तुमको,
उलझाव है ज़मींसे झगडा है आसमा से।

---

१ अश्रुपूरित, २ पलकें, ३ पुरवैया, मृदुसमीर, ४ शिकायत, ५ रोदन, ६ बुलबुल।

ग़ालिब तो दया-प्रार्थनाके असफल होनेपर गुण्डई तक पर तुल जाते हैं, वही सामन्ती ढग

इज्ज़ो-नियाज़से तो वह आया न राहपर,
दामनको आज उसके हरीफ़ाना[1] खींचिए।

'मीर' में सादगी है। उनके कलाम लम्बे, सुलझे हुए हैं। उनमें लोकवाणीकी छाया है। लोक-जीवन बोलता है। ग़ालिबमें बनावट, घुमाव, शृगार-सजावट है। वह बातको सक्षेपमें और जटिल रूपमें कहते हैं। उनकी वाणी उच्चवर्गकी वाणी है।

ग़ालिबकी जबानमें वह सफ़ाई नही जो मीरमें है, न वह घुलावट, वह तडप, वह बेचैनी और वह दर्द है जो 'मीर' में प्राय मिलता है। पर 'मीर' के काव्यमें वह समतलता (हमवारी) नही जो ग़ालिबमें है। जहाँ मीरके शेर अच्छे हैं तहाँ बहुत अच्छे हैं। पर उनका बहुत-सा काव्य सामान्य कोटिका है। कदाचित् इसका कारण यह हो कि गालिबने 'मीर'के मुक़ाबले बहुत कम लिखा, उनका काव्य-विस्तार बहुत कम है या उनकी चुनी हुई ग़ज़लें ही उपलब्ध हैं।

गालिब और मोमिन :

गालिब (१७९७ ई०—१८६९ ई०) और मोमिन (१७९८–१८५१ ई०) दोनो एक ही कालके कवि हैं। मोमिनकी मृत्यु ग़ालिबके जीवन-कालमें ही हो गयी थी। मोमिनकी भाषा बहुत साफ है, उनमें कल्पनाकी तरलता एव सूक्ष्मता है, शब्दोका चुनाव प्रशसनीय है। उनकी तबीयत गजलख्वानीके लिए बहुत उपयुक्त थी, अपनी अनुभूतियोकी अभिव्यक्तिमें उन्हें कमाल हासिल था पर वह गालिबकी भाँति शब्दोंके

---

१ प्रतिस्पर्द्धाकी भाँति।

दाँव-पेंच और व्यजनाकी गुत्थियोसे उलझ गये और उर्दू काव्य उनकी प्रतिभाका लाभ उस सीमातक नही उठा सका जिस सीमा तक उठा सकता था।

समता

श्री मुहम्मद एकरामने ठीक ही लिखा है—"दोनोको खुदाने शानदार दिल व दिमाग दिये थे, दोनोमे खुदपसन्दी बहुत थी। दोनो नामिखके मद्दाह[1] और मुकल्लिद[2] थे और दोनोकी ज़बानमे फारसीयत और तसन्नो[3] का असर[4] नुमायाँ[5] है। दोनो मा'नी आफरीनी[6] और खयाल बदी[7] पर शैदा[8] थे। दोनो जबान और मज़मूनमे ऊँचे तबके[9] के तर्जुमान[10] थे। नाजुक ख्याली और दिक्कतपसन्दीके गालिब और मोमिन दोनो दिलदाद थे और पुराने मजामीनके लिए नये अस्लूबे बयान[11] इख्तराअ[12] करनेमें दोनो बडा जोर व दिमाग सफ[13] करते थे। इस मकसद[14] के हुसूल[15] के लिए दोनो एक ही तरहका तकियए-फन[16] (Mannerism) इस्तेमाल करते हैं। मस्लन् महजूफातके[17] दोनो आदी हैं। और दोनोके कई अशआरमे किसी वाकय या हालत का बयान करते हुए कई ऐसे अजज़ा[18] छोड दिये गये हैं जिन्हे पूरा करनेके लिए दिमागपर ज़ोर देना पडता है। गालिबका मशहूर शेर है—

क़फ़समें मुझसे रूदादे चमन कहते न डर हमदम,
गिरी थी जिसपे कल बिजली वह मेरा आशियॉ क्यो हो?

---

१ प्रशासक, २ अनुकरणकर्ता, ३ बनावट, ४ तत्त्व, ५ प्रकट, ६ अर्थ-वैचित्र्य, ७ कल्पनाकी उडान, ८ आसक्त, ९ कोटि, १० रूपान्तरकार, अनुवादक, ११ कहनेका ढग, १२ उत्पन्न करने, निकालने, १३ व्यय, १४ उद्देश्य, १५ प्राप्ति, १६ शिल्प-शैली, १७ शब्द-लोप, १८ अश।

इस कवीलके अशआर कुल्लियाते मोमिनमें कई है—

"ऐ काश उदू[1] को ग़ैरत आये,
मैं मुन्तज़िर अपनी मौतका हूँ।
मेरे तग़य्युरे रंग[2] को मत देख,
तुझको अपनी नज़र न हो जाये।"

ग़ालिबकी विशेषता

पर ग़ालिबमें एक विशेषता थी, वह जमानेसे सीखते थे। अपनी काव्य-कलामें सदैव नूतन प्रयोग करते रहते थे, बडा श्रम करते थे। इसलिए उत्तरकालके उनके काव्यमें वह नाज़ुक-ख्याली और दिक्क़त-पसन्दी, जो उनकी विशेषता थी, कम होती गयी। ग़ालिब और मोमिन दोनोंमें अहं था और दोनो शेर कहनेकी कलामें अपने बराबर किसीको न मानते थे परन्तु जहाँ ग़ालिबने इस अहंके होते हुए भी अपने काव्यमें निरन्तर संशोधन और सुधारका प्रयत्न किया, मोमिनने नहीं किया। फिर भी तग़ज्जुल और मुआमिलाबन्दीमें मोमिन ग़ालिबके आगे हैं।

मोमिनमें ग़ज़बकी 'जद्दते-अदा' (अभिव्यञ्जना) मिलती है। उनके निम्नलिखित शेरको सुनकर अहंमें डूबे हुए ग़ालिब भी झूम पडे थे और कहते थे—"काश मोमिन खाँ मेरा सारा दीवान ले ले और यह शेर मुझे दे दे।"

तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।

इन दोनो कवियोंके भाव भी अक्सर टकरा गये हैं। ढंग अपना-अपना पर ज़मीन एक है। कुछ शेर देखिए—

---

१ दुश्मन, २ रंग-परिवर्तन।

लिक्खें जो और कुछ तो हमारी मजाल क्या,
इतना ही लिखके भेज दिया है—"तरस गये।"

दागका सक्षेप देखिए, जैसे तारके शब्द हो। गालिबमे न उत्कण्ठाका जोश है, न बेचैनी है, जैसे अपना नही किसी दूसरेका अनुभव बयान कर रहे हो।

गालिब :

क़यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफर 'गालिब'
वह काफिर जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे।

दाग़ :

दावरे हश्र[1] से अब तक है उमीदे इसाफ,
क्या करेंगे जो पसद उसकी अदाएँ आईं।

गालिब कहते है कि जो मेरे लिए इतना प्रिय है कि जुदाईके समय 'खुदा हाफिज' कहने या उसे ख़ुदाको सौपनेमे भी मै असमर्थ हूँ (किसी भी दूसरेको, फिर चाहे वह खुदा ही हो, उसे सौपनेको तैयार नही), कैसा गजब है कि वही मेरे प्रतिद्वन्द्वीका सहयात्री हो (उसके साथ चला जाय।)

गालिबकी प्रियतमा ऐसी है कि उसके बारेमे वह खुदापर भी भरोसा करनेको तैयार नही, वही विरोधीके साथ चली गयी, तब परिणाम क्या होगा!

दागकी प्रियतमा ऐसी है कि उसकी ज्यादतियोका इन्साफ प्रलयके समय खुदासे करनेका आसरा तो लगाये बैठे है पर कहते है, कही उसकी अदाएँ खुदाको भी पसन्द आ गयी तब मै क्या करूँगा?

---

१ प्रलयके दिन न्याय करनेवाला ईश्वर।

ग़ालिब :

हवा मुख़ालिफ़ो शवतारो बह्र तूफ़ॉख़ेज,
गसस्तः लंगरे कश्ती व नाख़ुदा ख़ुफ्तः अस्त ।*

दाग़ :

पा विरहनः दश्त वीरा, दूर मज़िल राहसख्त,
तू बता ऐ शामे गुर्वत, मै करूँ तो क्या करूँ ।

ग़ालिब कहते है कि हवा प्रतिकूल है, रात अँधेरी है, समुद्रमें तूफान उठ रहे हैं, नौकाका लगर टूटा हुआ है, और कर्णधार सुप्त है । पर यह परिस्थितिका आशिक चित्र मात्र है । इस परिस्थितिमें खुद उनकी, नौकाके आरोहीकी, क्या हालत है, यह कुछ नही बताते ।

'दाग़'का चित्र अधिक स्पष्ट है, स्थिति भी अधिक दर्दनाक है । 'गालिव'-के साथ कश्तीका कर्णधार है । क्या हुआ जो सो गया है । उसे जगाया जा सकता है । कश्ती उलट जाय तो भी दरियामें तैरा जा सकता है, हाथ-पाँव तो मार ही सकते हैं । पर 'दाग' तो अकेले है, कहीं कोई नही । नगे पाँव, निर्जन वन प्रान्त या मरुभूमि, मज़िल दूर है, रास्ता कठिन, शाम हो गयी है । ऐसे समय क्या उपाय है ? दागकी भापामें प्रवाह और तडप है ।

दाग़की तडप

ग़ालिब :

यह मसायले तसव्वुफ़[1] य' तेरा बयान 'ग़ालिब',
तुझे हम वली[2] समझते जो न बाद:ख़्वार[3] होता ।

---

* हाफ़िजका शेर है:—

शवे तारीको बीमे मौजो गर्दावे चुनीं हायल ।
कुजा दानिन्द हाले मा सुबुकसाराने साहिल हा ॥

१ ईश्वरानुभूति (तसव्वुफ) की समस्याएँ, २ पहुँचा हुआ, साधु, सिद्ध, ३ शराबी ।

दाग़ :

वाक़िफ[1] रमूज़े इश्क़ो मुहब्बत[2] से 'दाग' है,
मिलता अगर तो पूछते कुछ इस वलीसे हम।

गालिबमें अन्तर्विरोध है, दागमे सामञ्जस्य है।

ग़ालिब :

इशरते क़तरा है दरियामें फना हो जाना,
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।

दाग़ :

कमाले इश्क़ है ऐ दाग महो हो जाना,
मुझे ख़बर ही नहीं नफअ क्या ज़रर[3] क्या है।

गालिब समुद्रमें बूँदके विलीन हो जानेको बूँदका ऐश्वर्य मानते है। ऐसा करनेसे बिन्दुको अपने लक्ष्यका लाभ मिल जाता है। दर्दका सीमासे बढ जाना, असीम हो जाना ही उसकी दवा है। (गोया फना ही दवा है।)

दाग प्रेमकी अधिक ऊँची स्थितिमे है। वह कहते है कि निमग्न हो जाना ही प्रेमकी सीमा है, आदर्श है। मैं नही जानता कि हानि-लाभ क्या है ? (दागका प्रेम हानि-लाभके विचारसे परे है, जब ग़ालिबमे एक बचाव, एक 'रिज़र्व' है।)

ग़ालिब :

सब कहाँ कुछ लाल वो गुलमें नुमायाँ हो गयीं,
खाक़में क्या सूरतें होगी कि पेनहाँ हो गयीं।

---

१ जानकार, २ प्रेम-प्रीतिका रहस्य, ३ हानि।

दाग़ :

कातिलने देखे उसमें हज़ारों परीजमाल,
दिल चाक क्या हुआ कि परीख़ाना खुल गया।

ग़ालिबके कहनेमें वैलक्षण्य है, शोख़ी है। जमीनके नीचे न जाने कितना रूप, कितनी सूरतें प्रच्छन्न हैं। इनमेंसे कुछ ही लाला वो गुलके रूपमें फूट निकली है। दाग़ मिट्टीको नहीं दिलको हसीनोंकी जगह मानते हैं। कहते हैं—कातिलने मेरा दिल चीर दिया तो देखा कि उसमें हज़ारों रूपसी परियाँ उपस्थित हैं। मेरा दिल क्या चाक हुआ कि परीख़ानेके द्वार खुल गये।

ग़ालिब :

पिला दे ओकसे साक़ी जो हमसे नफ़रत है,
पियाल: गर नहीं देता न दे, शराब तो दे।

दाग़ :

कब गदाए दरे मयख़ाना[1] को आर[2] आती है,
ओकसे पी जो मयस्सर क़द्हे मुल[3] न हुआ।

ग़ालिबके यहाँ साक़ीसे नोक-झोक चल रही है। कहते हैं कि भई, अगर हमसे घृणा है, अपना प्याला नहीं देना चाहता तो न दे, मुझे उससे क्या? मुझे तो शराब चाहिए। मेरी नजर तुम्हारे प्यालेपर नहीं शराबपर है (क्योंकि वही असल चीज है), मुझे ओकसे पिला दे।

भिखारीका तर्ज़

पर जहाँ नफ़रत है, घृणा है, वहाँ शराब पीने-पिलानेमें क्या मज़ा है? दाग मद्यशालाके दरवाज़ेके भिखारी हैं। साकी दयार्द्र होकर उनपर नजर डालता है और कहता है ला अपना प्याला या पात्र उसमें शराब

---

१ मद्यशालाके द्वारका भिखारी, २ लाज, घिन, ३ मधुपात्र।

उँडेल दूँ। पर भिखारीके पास पात्र भी नही है। वह कहता है, फकीरको क्या शर्म, लाइए ओकसे पिला दीजिए, पात्रकी जरूरत ही क्या है ?

ग़ालिब :

सँभलने दे मुझे ऐ नाउमीदी क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाय है मुझसे।

दाग़ :

बरसोंसे लग रही थी लबे बाम टकटकी,
थक-थकके गिर पडी निगहे इन्तज़ार आज।

गालिबमे जो शोखी है, जो अपील है वह दागमे नही है। गालिब कहते हैं—"अरी निराशा, कैसी ज्यादती है तेरी, जरा मुझे सँभल तो जाने दे। प्रियतमके घ्यानका आँचल मेरे हाथसे छूटा जा रहा है।" दागमे निराशाकी सीमा है। वह बरसो तक छतकी ओर टकटकी लगाये रहे हैं, आज प्रतीक्षाकी वह दृष्टि थककर गिर पडी है, अब उठनेवाली नही है।

जौक़ और ग़ालिब :

जौकने केवल पद्य लिखा है,—जब गालिबने पद्य-गद्य दोनोमे सफलता प्राप्त की है। जौक कसीद के बादशाह हैं, इस क्षेत्रमे वह उर्दूके खाकानी हैं। अच्छे गजलगो उर्दूमे अनेक हुए हैं पर उर्दू कसीद गोई सौदा, इशा और जौकपर खत्म हो गयी है। यदि कसीद को ले तो गालिब और जौककी कोई तुलना नही। जहाँ तक ग़जलकी बात है, दोनोंमें अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। भाव-चित्रण (जज्बात निगारी) मे गालिबका पल्ला जौक़से कुछ भारी पडता है। दूसरी ओर जबानकी सफाई, प्रसादगुणमे ज़ौक गालिबके ऊपर है। कोई भी बात हो, उसे घुमा-फिराकर, कुछ वैचिश्र्य उत्पन्न कर, कहनेका रोग गालिबको था, जब ज़ौक सीधे ढङ्गसे बात पसन्द करते थे।

उर्दू क़सीद का सीमित क्षेत्र

तरही ग़ज़लके कुछ शेर देखिए —

गालिब :

मिसाल यह मेरी कोशिश की है कि मुर्गे असीर[1],
करे क़फ़स[2] में फराहम[3] ख़श आशियाँ[4] के लिए।

ज़ौक़ :

सबा[5] जो आई ख़सो ख़ार गुलिस्ताँ[6] के लिए,
कफसमें क्योंकि न फड़के दिल आशियाँ के लिए।

जमीन एक होते हुए भी गालिबका शेर ऊँचा है। जौक़ने जो कुछ कहा है, वह सदासे कहा जाता रहा है। उनमें कुछ नवीनता नहीं। कहते हैं—पुरवैया पुष्पोद्यानके तिनके और काँटे लिये लाई है, तब पिंजड़ेमें हमारा दिल घोंसलेके लिए क्यों न फड़के, क्यों न बेचैन हो (इस ख़सोख़ारको देखते ही आशियांका स्मरण आना स्वाभाविक है। ऐसा भी तो हो सकता है कि गुलिस्ताँमें एक डालपर बने मेरे आशियाँके ही ख़सोख़ार यह उड़ा लाई हो, मतलब वह भी उजड़ गया हो तब अपने उजड़े आवासके लिए मजबूरियोंमें बँधा हुआ, क़फ़समें पड़ा हुआ मैं और मेरा दिल क्यों न तड़पे ?)

गालिब किसी भी स्थितिमें निराश होकर बैठनेवाले जीव नहीं हैं। वह प्रयत्नशीलतामें विश्वास रखते हैं। कहते हैं कि मेरी प्रयत्नशीलताका उदाहरण यह है कि बन्दी पक्षी क़फ़समें भी आशियाँके लिए तिनके चुनता है।

गालिब :

नवेदे अम्न है बेदादे दोस्तजाँ[7] के लिए,
रहे न तर्जे सितम[8] कोई आस्माँ के लिए।

---

१ बन्दी पक्षी, २ पिंजड़ा, बन्दीगृह, ३ एकत्र, ४ घोंसला, आवास, ५ पुरवैया, ६ पुष्पोद्यान, ७ प्रियके अत्याचार, ८ अत्याचारका ढङ्ग।

दिल दे तो इस मिजाजका परवरदिगार दे,
जो रजकी घड़ी भी ख़ुशीसे गुज़ार दे।

किसीका एहसान और अवलम्ब न लेनेकी भावना दोनोमे प्रधान है —

दीवार बार[1] मन्नते मज़दूरसे है ख़म[2],
ऐ खानमॉ ख़राब न एहसा उठाइए।

—गालिब

न पकडें दामने इलियास[3] गिर्दावे बला[4] में हम
कि बदतर डूबकर मरनेसे है जीना सहारे का।

—ज़ौक़

तसव्वुफका रङ्ग, प्रेमप्रणय-दर्शन एव रिन्दाना शोख़ीमे गालिब ज़ौकसे वढे हुए है और इसीलिए उनके काव्यमे अर्थवैचित्र्य, कल्पनाकी उडान और कथनकी नवीनता (जद्दतराज़ी) है। नैतिकताका रङ्ग, ज़बानकी सफाई, बयानकी सादगी और मुहाविरेके शिल्पमे ज़ौक गालिबमे आगे है।

सौदा और गालिब .

यद्यपि दोनोके काव्यमे बहुत ज्यादा समता नही पाई जाती पर दोनोकी रुझान और तबीयत एक-सी थी। दोनोमे उत्फुल्लता और उमङ्गके तत्त्व अधिक है। दोनोमे शोखी है। हां, गालिबकी भाषामे निखार आ गया है।

अन्य कवि

कही-कही अन्य कवियोके भावोके साथ भी गालिब टकरा गये है —

-

१ बोझ, २ टेढी, ३ एक पैगम्बर जो (हमारे लोमशकी भांति) सदा जीवित रहते है, समुद्रोके सरक्षक है और डूवतोको बचानेका काम करते रहते है, ४ विपत्तियोकी भँवरमे।

ग़ालिब :

सताइशगर[1] है ज़ाहिद[2] इस क़दर जिस बाग़े रिज़्वाँका[3],
वह इक गुल्दस्तः है हम बेख़ुदोंके ताक़े निसियाँका[4] ।

अमीर मीनाई :

बहारे ताज़ए दिल देख अगर शौक़े तमाशा है,
बिहिश्त[5] एक फूल मुरझाया हुआ है इस गुलिस्ताँका ।

गालिब कहते है—"जाहिद जिम स्वर्गोद्यानकी इतनी प्रशसा कर रहा है वह हमारे लिए केवल ऐसा पुष्प-गुच्छ है जिसे हम ताकपर रखकर भूल गये है ।"

अमीर मीनाईकी बात साफ़ है और उसमें चुनौतीका स्वर है । कहते है, अगर देखनेका, तमाशेका शौक़ है तो दिलके नवीन—नित्य—वसन्त को देख । स्वर्ग तो इस (दिलके वसन्तके) पुष्पोद्यानका एक मुरझाया हुआ फूल मात्र है ।

गालिब और फ़ारसी कवि :

गालिब फ़ारसीके उस्ताद थे । उसके ज्ञानका उन्हे गर्व था । उन्होने फ़ारसीके कवियोका गहरा अध्ययन किया था और खुदपसन्दीका यह आलम था कि सिवा खुसरोके किसीको कुछ न समझते थे, फैज़ीकी तारीफ भी खुलकर नही की है । आश्चर्य तो यह है कि फ़ारसीमें खुसरो और उर्दूमें मीरकी तारीफ़ तो करते हैं पर अपनी काव्य-शैलीमें उनका अनुकरण बहुत ही कम करते है । खुसरो और मीर सादा एव भावपूर्ण काव्यके प्रेमी थे, गालिबके कलामपर मुश्किलगोईका धुँधलका छाया हुआ है । गालिबमें कल्पनाकी उडान एव अलकरण भी दोनोंसे अधिक है, उनकी उपमाएँ एवं

---

१ प्रशसक, २ तपस्वी, विरक्त, ३ स्वर्गोद्यान, ४ वह ताक जिसमें किसी चीज़को भूलनेके लिए रख दिया जाता है, ५ स्वर्ग ।

रूपक भी दोनोसे अच्छे है । तबीयत और विचारस्वातन्त्र्यकी दृष्टिसे गालिब फैजीके अधिक नजदीक हैं । उदारताके कारण ही फैजीपर पुरानी परम्परा-के मुस्लिम धर्माचार्योंने वे जुल्म किये कि इस्लामसे उसका विश्वास ही डिग गया था । स्पष्ट कहता है —

अगर हक़ीक़ते इस्लाम दर जहॉ ई अस्त,
हजार खन्दए कुफ्र अस्त बर मुसलमानी ।

अगर दुनियामे इस्लामकी हकीकत यही है तो मुसलमानीसे कुफ्र सहस्र-गुण प्रकाशमान है ।

उसने बार-बार प्रेमकी राहको का'बेकी राहपर तर्जीह दी है । कहता है, काबा और शिष्टाचार-शिक्षणपर क्या ध्यान दूँ, तीव्र गतिसे चलने-वालोको इन बूढोकी भाँति फुर्सत कहाँ है ? फिर कहता है—

कारवाने का'ब शुद मजिलनशीं,
रहरवाने इश्क़ रा आराम नेस्त ।

काबेका कारवाँ तो मजिलपर बैठा हुआ है । किन्तु प्रेमके पथिकोको विश्राम कहाँ ?

गालिबने भी धार्मिक कट्टरताको बार-बार चुनौती दी है, स्वर्गका मजाक उडाया है, खुदाकी ओर तक सन्देह भरा इशारा किया है पर आश्चर्य है कि फैजीकी प्रशसा खुलकर नही करते । बात यह है कि फैजीमे जो खोज है, जो गहराई है, वह गालिबमे नही । फैजी और इकबाल दार्शनिक थे और अपने सत्यान्वेषणमे बार-बार बुद्धिकी पगुता अनुभव करते है । फैजी तो बेचैन होकर कह उठता है—"बुद्धिके अन्धकारमें बडा सघर्ष, खिचाव हो रहा है । तू अपनी कृपा वा इच्छाकी शमा जला दे ।" पर गालिब इसी दुनियाके जीव होनेके कारण अपनी बुद्धिपर गर्वित है । फैजी और गालिब दोनो मुगल सस्कृतिकी अभिव्यक्तियाँ है पर फैजीमे मुगल शासनके उत्थान-की झलक है, वही उच्चता, जब गालिबमे मिटती हुई मुगल हुकूमतकी

टिमटिमाहट है। फ़ारसी कवियोंमें गालिब 'उर्फी'के सबसे निकट मालूम पडते है। दोनोंके कलाममें वही जोर, वही कल्पनाकी उडान, वही नई बात पैदा करनेकी उत्कण्ठा, वही पेंचदार, अभिव्यक्ति है। पर उर्फी तरुणावस्थामें ही परलोकगामी हुआ और गालिबकी भाँति उसे अपने शिल्पमें निखार लानेका अवसर नहीं मिला।

इसी प्रकार गालिब और इकबालमें भी बडा फर्क है। दोनो दो भिन्न जगत्के निवासी हैं। गालिब कवि है, इकबाल दर्शनवेत्ता हैं। गालिब चित्रकार है, उनके निकट ज़िन्दगीका हर पहलू सुन्दर है, इकबाल सन्देश देनेवाले है, उनपर एक नई दुनिया बनाने, नई दुनियाका सन्देश देनेका नशा छाया हुआ है। ग़ालिबमें सामान्य मानवकी उमगें, उसकी वासनाएँ, उसकी निराशाएँ हैं, इकबाल सतहके नीचे प्रवेश करनेवाले दार्शनिक है। दोनोंका दृष्टिकोण भिन्न है, वातावरण भिन्न है, जीवन-दर्शन भिन्न है।

कुछ शेर

[१]

कहते हो "न देंगे हम दिल अगर पडा पाया"
दिल कहाँ कि गुम कीजे, हमने मुद्दआ पाया।

अगर किसीकी खोई चीज किसी औरको मिल जाती है तो वह छेडनेके लिए कहता है कि अगर हमें मिल गयी तो हम नही देंगे। कभी दूसरेकी चीज लेनेकी मनमें आती है उसे छिपाकर कहते हैं कि तुम्हारी चीज हमें मिल गयी तो हम न देंगे। यही स्थिति इस शेरमें है।

"तुम कह रहे हो कि अगर तुम्हारा दिल हमें कहीं पडा मिल गया तो हम न देंगे। पर वह है कहाँ ? हमारे पास तो है नहीं कि खोनेका डर हो। हाँ, तुम्हारी बातसे मैं तुम्हारा मतलब समझ गया कि तुम्हें मेरे दिलकी कामना है या तुम उसे पहिले ही पा चुके हो, वह तो तुम्हारे ही पास है। तब मुझे क्यो नाहक़ छेड रहे हो ?"

[२]

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका मज़ा पाया
दर्दकी दवा पाई, दर्द बेदवा पाया।

अर्थ स्पष्ट है। प्रेमके कारण ही, तबीयतको, जीवनका स्वाद मिला। इसके रूपमें हमें अपने दर्दकी दवा मिल गयी पर इसके साथ ही एक ऐसी वेदना भी मिली जिसकी कोई दवा नही।

जीवनका आनन्द प्रेमसे ही है। प्रेमशून्य जीवन स्वादहीन, नीरस है। 'गालिब'ने स्वय अन्यत्र कहा है —

रौनक़े हस्ती है इश्क़े-ख़ान वीरॉसाजसे,
अजुमन बेशमअ है गर बर्क़ ख़िरमनमे नहीं।

यह एक दर्द है जो दर्द भी है, दवा भी है। इसमे एक ऐसा दर्द मिलता है जिसकी दवा अब तक नही बन पाई, पर मजा यह है कि इसी दर्दको पानेके लिए आदमी तडपता है क्योकि उस तडपमे, उस जलनमे भी एक स्वाद है।

गालिबकी जमीनपर ही मौलाना रूम और फारसीके प्रसिद्ध कवि जहूरी-ने भी शेर कहे है। मौलाना रूम कहते है —

मर्हबा ऐ इश्क़ खुश सौदाए मा,
ऐ तबीबे जुम्ल इल्लतहाए मा।

"वाह! ऐ प्रेम! तुम मेरे प्रिय उन्माद और सम्पूर्ण व्यथाओंके वैद्य हो।" कुछ लोगोने मर्हबासे 'तुम्हारा स्वागत है' अर्थ भी किया है पर यहाँ 'मर्हबा' शब्द आनन्दातिरेकका एक उद्‌गार है। अनुभूतिकी आर्द्रता शब्दोमे उतर आई है। प्रेमी अनुभव करता है कि यह प्रेम मेरे सम्पूर्ण रोगोका वैद्य है। यह आ गया है तो सब व्यथाएँ मिट जायँगी, सम्पूर्ण रोग-कष्ट चले जायँगे। मौलाना रूम बहुत ऊँची मानस-भूमिपर खडे है जहाँ प्रेम ही सम्पूर्ण प्रश्नो एव शकाओका समाधान है।

'जहूरी' कहता है —

शद तबीबे मा मुहब्बत मन्नतश बरजाने मा,
मेहनते मा, राहते मा, दर्दे मा, दरमाने मा।

इसमे काव्यका स्वाद ज्यादा उभरा है। वह भी कहता है कि 'मुहब्बत मेरा तबीब है और मै प्राणसे उसके प्रति कृतज्ञ हूँ। वही मेरा श्रम है,

वही विश्राम है, वही मेरा दर्द है और वही दवा है।' इसमें मेहनत, राहत, दर्द और दरमान शब्द जिस क्रमसे आये हैं उसमें कविका चमत्कार है। इनसे स्पष्ट यह ध्वनि भी निकलती है कि तेरे आते ही मेरा श्रम विश्राम और दर्द दवा बन गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि गालिबमें शोखी ज्यादा है पर इसमें गहराई और जहूरीमें काव्य-चमत्कार कहीं अधिक है। गालिब पहिले जिन्दगीको एक दर्द क़रार देते है, फिर कहते है कि प्रेमके बिना जीवन स्वादहीन है। दूसरे मिस्रेमें और आगे बढते हैं—इस स्वादहीनताकी, इस दर्दकी दवा, प्रेमके रूपमें, मिल गयी। पर दवा भी कैसी है ? स्वय एक बेदवा दर्द है। इसकी अनुभूतिमें प्रेम जीवनके सम्पूर्ण प्रश्नोका हल, सम्पूर्ण कष्टोकी दवा है। शब्द ऐसे है, जैसे वह उसकी लज्ज़त पा रहे हो। यह शब्दके स्तरसे ऊँचा अनुभूतिका स्तर है। जहूरी सम्पूर्ण प्राणसे प्रेमके प्रति निवेदित हैं। वही उनका श्रम और विश्राम दोनों है बल्कि उसने श्रमको विश्राम और दर्दको दवा बनाकर द्वन्द्वको मिटा दिया है।

[२]

है कहाँ तमन्नाका दूसरा कदम यारब !
हमने दश्ते इम्कॉको एक नक़्शेपा पाया।

गालिब शाश्वत तृष्णा और कामनाके कवि है। उनकी कामनाकी सीमा नहीं है। इसीकी ध्वनि इस शेरमें है। कहते हैं—हे ईश्वर ! सभावनाओंका जगल तो उसका (कामनाका) एक चरण-चिह्न है, तब तमन्ना (कामना) का दूसरा चरण कहाँ है ? एक ही चरणमें सम्भावनाओकी समस्त भूमि, वामन भगवान्की भाँति उसने नाप ली है। कामना गतिमान है। वह सम्भावनाओंके जगलसे गुजर चुकी है। उसका एक पद-चिह्न दिखाई देता है, दूसरा पता नही कहाँ है।

[४]

बूए गुल, नालए दिल, दूदे चिरागे महफिल,
जो तेरी बज्मसे निकला सो परीशॉ निकला।

इस शेरकी सजावट देखने योग्य है। फिर पहिले मिस्रेके शब्दो और पदोमे ध्वनि और सगीत तथा अनुप्रासका ऐसा सयोग है, मानो तब्लेपर कोई ठेका दे रहा हो। 'बूए गुल'से 'नालए दिल'के उच्चारणमे कुछ अधिक समय लगता है, फिर 'दूदे चिरागे महफिल'मे कुछ और ज्यादा पर इनमे ताल है और सब एक समपर समाप्त होते है।

गालिब कहते है कि तेरी सभामे जितनी भी चीजें हैं—गुल है (तेरे और तेरे कक्षके शृङ्गारके लिए), दिल हैं (तेरे प्रेमियोके जो तेरी बज्मसे आबद्ध है), दीपक या शमअ है। पर सबमे एक हलचल है, एक परीशानी है। फूलके प्राण गन्ध बनकर बिखर रहे है, दिलकी आह उडी जा रही है, दीपकका धुवॉ ऊपर लहराते हुए बिखर रहा है। तुम्हारी बज्मसे जो भी निकलता है परीशान निकलता है। क्या इसका कारण तुम्हारी निर्दयता है ? या यह इसलिए भी तो हो सकता है कि सबमे तुम्हारे लिए तडप है, कोई तुमसे जुदा होना नही चाहता, पर जुदा होना पडता है इसलिए तुमसे जुदा होकर जो भी निकलता है परीशान नज़र आता है।

[५]

कुछ खटकता था मेरे सीनेमें लेकिन आख़िर,
जिसको दिल कहते थे सो तीरका पैकॉ निकला।

मेरे सीनेमे कुछ खटकता तो था। मै उसे अपना दिल समझ रहा था पर आखिर देखा गया तो वह तीरका पैकां (नोक) निकला। आंखोके बाणसे दिल तो बिंधता ही है, वह तो एक सामान्य-सी बात है पर यहां बाण ही दिल बन गया है।

उर्दू गजलके अप्रतिम कवि जिगर मुरादाबादीने लिखा है—

कुछ खटकता तो है पहलूमें मेरे रह-रहकर
अब ख़ुदा जाने तेरी याद है या दिल मेरा।

मेरे पहलूमें कुछ खटकता तो जान पड़ता है। पर यह ख़ुदा ही जानता है कि वह तेरी याद है या मेरा दिल है।

याद करना दिलका काम है। यहाँ दिलको ही याद बना दिया है।

[६]

सताइशगर है ज़ाहिद इस क़दर जिस बागे रिज़्वाँका,
वह इक गुलदस्तः है हम बेख़ुदोंके ताक़े निसियाँका।

ग़ालिबने बार-बार स्वर्ग एवं स्वर्गमें प्राप्त चीज़ोंकी हँसी उड़ाई है। यहाँ भी कहते हैं कि ज़ाहिद (परहेज़गार, संयमी) जिस स्वर्गोद्यानकी इतनी प्रशंसा करता है वह मेरे जैसे बेख़ुदों (आत्मलीनों) के ताक़े निसियाँ (वह ताक़ जिसपर कुछ रखकर भूल जायँ) का एक गुलदस्त: मात्र है। चूँकि नन्दन काननकी बात है इसलिए (विस्मृतिके) गुलदस्तेसे उसकी उपमा दी है। फिर गुलदस्ता प्रायः ताकमें ही सजाया जाता है।

मतलब जिस स्वर्गोद्यानकी वह इतनी प्रशंसा करता है और हमें प्रलोभन देकर उधर आकर्षित करना चाहता है हमारे—जैसे बेख़ुद लोग उसकी पर्वा भी नहीं करते, उसे रखकर भूल जाते हैं। स्वर्गकी तुच्छता प्रकट की गयी है।

[७]

ख़मोशीमें निहाँ खूँगश्त लाखों आरज़ूएँ हैं,
चिराग़े मुर्दः हूँ मैं बेज़बाँ गोरे ग़रीबाँका।

चिराग़े मुर्दः = बुझा हुआ या मौन दीपक। जिस प्रकार परदेसियों और पथिकोंकी क़ब्रोंके बुझे हुए दीपक उनकी लाखों कामनाओंको अपने

कलेजेमे छिपाये होते है वैसे ही मेरे मौनमे भी रक्तरजित लाखो कामनाएँ निहित है। दीपककी ज्योतिकी प्राय जबानसे उपमा दी जाती है इसलिए 'चिरागे मुर्द' (मृत या बुझा दीपक) को बेज़बान कहना बहुत सार्थक है।

[८]

बक़द्रे जर्फ है साकी! खुमारे तश्न कामी भी
जो तू दरियाए मय है, तो मै ख़मियाज हूँ साहिलका।

खुमार = नशेका उतार। तश्न कामी = प्यासकी कामना, प्यास। खमियाज़ = अँगडाई। साहिल = तट जो ऊँचा-नीचा (अँगडाई—जैसा) होता है।

ऐ साकी! प्यासकी कामना भी अपने-अपने हौसलेके अनुसार होती है। कुछ लोग एक चुक्कडकी, थोडी-सी पीनेकी, तमन्ना रखते है किन्तु मेरा हाल दूसरा है। अगर तू मयका सागर है तो मै उसके तटकी अँगडाई हूँ। समस्त दरियाको भी अपने आलिंगन (आगोश) मे लेकर तटकी प्यास नही बुझती, वह नशेके उतार (खुमार) की अँगडाई लेता रहता है। मेरा भी वही हाल है। यहाँ भी गालिबकी कामना और तृष्णाका अन्त नही है।

[९]

मुँह न खुलने पर है वह आलम कि देखा ही नहीं,
ज़ुल्फसे बढ़कर नकाब उस शोख़के मुँहपर खुला।

गोरे-गोरे मुखपर काली काली छिटकी हुई अलकें गोराई और सौन्दर्यमे चार चांद लगा देती है। गालिब कहते है कि उस शोखके मुँहपर जो घूंघट है वह अलकोसे भी अधिक उसके सौन्दर्यको बढा रहा है। मुँह न खुलनेपर यह आलम है कि मैने (अन्यत्र) नही देखा। शेरका सौन्दर्य 'देखा ही नही' और 'मुँह न खुलनेमें' है। मुँह नही खुला है तब कोई देखेगा

क्या। पर इस न देखनेमें ही प्रलय है। न देखकर भी ऐसा देखा है कि वैसा कहीं नहीं देखा।

[१०]

जल्व· अज़ बस कि तक़ाजाए निगह करता है,
जौहरे आइन· भी चाहे है मिज़गाँ होना।

उनकी छवि देखनेका आग्रह करती है। कहती है—मुझे देखो। दर्पण स्वय नयन बन गया है और उसका जौहर पलकोंके रूपमें बदल जानेको बेचैन है। रूपका कमाल है कि जिस दर्पणमें वह अपनेको देखते हैं वह स्वयं उनको एकटक देख रहा है।

[११]

तेरे वादेपर जिये हम, तो यह जान, झूठ जाना,
कि ख़ुशीसे मर न जाते, अगर एतबार होता।

उर्दू काव्यमें माशूक़के वादेपर न जाने कितने शेर लिखे गये होंगे पर मिर्ज़ाने अपने कहनेके ढगसे उसमें एक जद्दत पैदा कर दी है। और लोग उसके वादे (आश्वासन) के विश्वासपर जीते हैं परन्तु ग़ालिब इसलिए जीते हैं कि उसक वादेको झूठा समझते हैं।

कहते हैं—"तेरे वादेपर जो हम जीते रहे तो समझ कि मैंने उसे झूठा ही समझा था। अगर तेरे वादेपर विश्वास होता तो मारे ख़ुशीके मर न जाते।" माशूक़के वादोंपर कैसा तीखा व्यग है।

[१२]

कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकशको,
यह ख़लिश कहाँसे होती जो जिगरके पार होता।

अधखुली अधमुँदी आँखो, सैन और कटाक्षके आनन्दको प्रेमी ही जानता है। यदि नयनबाण ज़ोरसे खींचकर चलाये गये होते तो दिलके

बाहर चले जाते और यह जो स्थायी वेदना, रह-रहकर जो करकराहट, टीस होती है उसका मजा क्योंकर मिलता ?

कहते हैं—तेरे आधे खिंचे तीरका स्वाद कोई मेरे दिलसे पूछे (अर्थात् उसे मेरा दिल ही जानता है)। अगर वह जिगरके पार हो गया होता तो यह टीस कैसे होती।

[१३]

दिले हर कतर है साजे अनलबह्,
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या ?

अनलबह्—मैं समुद्र हूँ।

हर बूँदका दिल एक साज (बाजा) है जिससे निरन्तर ध्वनि उठ रही है कि मैं समुद्र हूँ। हम तो उसके हैं ही, हमारा क्या पूछना।

कतर और दरियाके द्वारा प्रकृति और ब्रह्म या उपासक उपास्यकी एकता न जाने कबसे काव्यमें प्रतिपादित होती चली आ रही है। उसी बातको नये ढंगसे कहा है। फारसी कवि 'गनीमत' ने भी कहा है—

ज़ मुहब्बश सीनहा जौलों गहे बर्क़,
दिले हर जर्रे दर जोशे अनलशर्क़।

उसकी मुहब्बतने सीनेको बिजलीकी दौड़का मैदान बना दिया है। बिजलीकी तड़प सिद्ध है। उसका सीनेपर गिरना ही क्या कम है ? यहाँ तो सीना ही बिजलीका "रेसिंग ग्राउण्ड" है। 'असर' लखनवीने ठीक ही लिखा है कि गनीमतका शेर बहुत ऊँचा है। बिजलीकी दौड़ है, सीनेका मैदान है जिसे (प्रेम) की बिजली रौंद रही है। उधर प्रत्येक कणका हृदय नृत्य करता हुआ कहता है—मैं सूर्य हूँ।

[१४]

बंदगीमें भी वह आज़ादो, ख़ुद्बीं है कि हम,
उलटे फिर आये, दरे काबः अगर वा न हुआ ।

हम बंदगीमें, उपासनामें भी इतने स्वतन्त्र और अभिमानी हैं कि अगर क़ाबाका द्वार भी खुला नहीं मिलता तो प्रतीक्षा नहीं करते, लौट आते हैं । दरवाज़ा खटखटाना शानके ख़िलाफ़ समझते हैं ।

गालिबको अपने सम्मानका बड़ा ख्याल रहता था । वह अपनेको रीति-परम्परासे ऊपर समझते थे । इसलिए भाव उनके अनुकूल ही हैं । फ़ारसीमें भी, उन्होंने, एक जगह कहा है—

तश्न'लब बर साहिले दरिया ज़ग़ैरत जाँ दहम,
गर ब मौज उफ़्तद गुमाने चीने पेशानी मरा ।

[१५]

कोई वीरानी-सी वीरानी है,
दश्तको देखके घर याद आया ।

वैसे सरल है पर इसमें दो प्रकारके अर्थ छिपे हैं । यह वीरानी अप्रतिम है । जंगलको देखकर, उसकी वीरानीको देखकर घरकी याद आ गयी । दूसरा अर्थ यह है कि जंगलको देखा तो वीरान घर याद आ गया ।

[१६]

बिजली एक कौंद गयी आँखोंके आगे, तो क्या,
बात करते कि मैं लब-तश्नए तक़रीर भी था ।

रूप और कामनाके चित्रांकनमें ग़ालिब निपुण हैं । कहते हैं—वह आकर और एक झलक-सी दिखाकर ग़ायब हो गये । आँखोंके आगे एक बिजली-सी कौंद गयी । पर मैं तो उनसे बातचीतका प्यासा था, दो-एक बातें भी कर लेते तो कितना अच्छा होता ।

[१७]

मशहदे आशिकसे कोसो तक जो उगती है हिना,
किस क़दर यारब ! हलाके हसरते पाबोस था।

मशहदे आशिक = प्रेमीकी बलिवेदी। हलाके हसरते पाबोस = पाँव चूमनेकी कामनाका मारा हुआ।

जिस जगह प्रेमीका रक्त बहा है वहाँ कोसो तक मेहदी उगती है। क्यो ? इसलिए कि जिन्दगीमे तो उनका चरण चूमनेकी कामना पूरी न हुई और दिलकी हसरत दिलमे ही रह गयी। अब खून मिट्टीमे मिलकर उनका पाँव चूमनेके लिए मेहदीकी शक्लमे उगा है। (उसमे भी वही खूनका रग छिपा है) जब वह मेहदी उनके चरणोमे लगेगी तो (चरण चूमनेकी) उसकी कामना पूरी हो जायगी।

[१८]

लबे खुश्क दर तश्नगी मुर्दगाँका
जियारतकदः हूँ दिल आजर्दगाँका
हम नाउमीदी, हम बदगुमानी
मै दिल हूँ, फरेबे वफा खुर्दगाँका।

जियारतकद = तीर्थस्थल, आजर्द = खिन्न, दु खी, हम = समग्र, साकार।

कैसी करुणा है। कहते है—मै उनलोगोका शुष्क अधर हूँ जो (प्रेमकी कामनाकी) पिपासामे मर गये है। मै सताये हुए दुखित लोगो-का तीर्थस्थल हूँ। मै निराशा एव शकाकी साकार प्रतिमा, वफा (निष्ठा) का फरेब खाये हुए लोगोका हृदय हूँ।

[१९]

आईना देख, अपना-सा मुँह लेके रह गये,
साहबको, दिल न देने प, कितना गुरूर था।

शेरमें क्या शोखी पैदा की है। कहते हैं, उन्हें दावा था कि मैं किसीको चाहता नही, किसीको दिल नही देता, किसीपर आशिक नही हो सकता। पर दर्पणमें अपनेको देखा तो अपना-सा मुँह लेके रह गये—लज्जित हो गये। अपनी छायाका सौन्दर्य देख यह भी भूल गये कि यह मेरा प्रतिविम्ब मात्र है। उसे दूसरा व्यक्ति समझ लिया और उसे दिल दे बैठे।

ध्वनि यह है कि तुम्हारा सौन्दर्य ही ऐसा है कि जो देखता है तुम्हें दिल दे देता है। तुम्हारी समझमे यह बात नही आती थी पर जब तुम अपने अक्सपर मुग्ध हो गये तब तुम्हारा ग़रूर टूटा। (जब तुम अपनी छायापर इतने मुग्ध हो और उसे दिल दे दिया तब मैं तुम्हें दिल दे बैठा, तो क्या अपराध किया ?)

[२०]

शायद कि मर गया, तेरे रुख़सार देखकर,
पैमान' रात माहका लब्रेज़े नूर था।

पैमान' लब्रेज होना या प्याला भरवाना एक मुहाविरा है जिसका अर्थ होता है अब विनाशका समय आ गया है। प्रियतमाके कपोलोका वर्णन करते हुए कहते हैं कि रात चाँदका पैमाना प्रकाशसे भर गया था (पूर्ण चन्द्रकी ओर सकेत है) पर कदाचित् उसने तुम्हारे कपोलोको देख लिया और ग्लानिसे मर गया (क्योकि तुम्हारे कपोलोकी छवि और ज्योतिके सामने उसकी ज्योति निष्प्रभ थी।)

[२१]

जाते हुए कहते हो, "क़यामत को मिलेंगे,
क्या खूब ! क़यामत का है गोया कोई दिन और।

प्रियतमका वियोग ही प्रलय है। विछुडनेका दुःख प्रेम करनेवाला ही जानता है। वह जा रहे हैं और कहते है कि अब क़यामत (प्रलय)

के दिन भेट होगी। क्या खूब, अब कयामतका दिन और क्या होगा ? (तुम्हारी जुदाई ही तो कयामतका दिन है !)

[२२]

रुख़े निगारसे, है सोज़े जाविदानिए शमअ,
हुई है आतशे गुल आबे ज़िन्दगानिए शमअ ।

निगार = प्रियतमा । जाविदानी = अमरत्व । आबेजिन्दगानी = आबे-हयात, अमृत । कहते हैं —प्रियतमाके मुख (के सौन्दर्य) से ही शमअको यह जलनकी अमरता प्राप्त हुई है (उनके मुखको देखकर शमअ ईर्ष्यासे जल रही है ।) उस फूलके (सौन्दर्य) की आग शमअके लिए अमृत बनी हुई है ।

[२३-२४]

आशक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब
दिलका क्या रंग करूँ ख़ूने जिगर होने तक ।
हमने माना, कि तग़ाफ़ुल न करोगे, लेकिन
खाक हो जायँगे हम, तुमको ख़बर होने तक ।

प्रेममें हृदयकी क्या दशा होती है । उसमें धैर्यकी आवश्यकता होती है, वह लम्बी साधना है, जिसमें भावनाओंपर नियन्त्रण रखना पड़ता है । तूफान उठता है पर उसे बाँधकर रखना पड़ता है । इधर प्रेममें धीरज और संयमकी जरूरत है, उधर कामनाकी बेचैनी गजब ढाती है । प्रेमी इन दो चक्कियोंके बीच पिसता है । उसे नहीं सूझता कि वह क्या करे । उधर उसकी बेचैनीकी, उसकी वेदनाकी उन्हें खबर भी नहीं । खबर होगी तब सम्भव है वह ध्यान दे, कृपा करे परन्तु जब तक उन्हें खबर होगी, बेचारा प्रेमी मिट जायगा ।

कहते हैं —प्रेम धीरज चाहता है और इधर कामना बेचैन है ।

जिगरका खून हो जाने तक, सफल हो जाने तक, दिलको किस तरह सँभालकर रखूँ ? मैं मानता हूँ तुम गफलत न करोगे, जल्द लौट आओगे पर तुम्हारे विरहमें हमारी क्या दशा होगी ? जब तक तुम तक मेरी दुरवस्थाका समाचार पहुँच पायेगा, हम मिट चुके होंगे ।

[२५]

परतवे ख़ुर से, है शबनम को, फ़नाकी ता'लीम
मैं भी हूँ, एक इनाअतकी नज़र होने तक ।

परतवे ख़ुर = सूर्य-प्रकाश । जिस तरह सूर्यकी रोशनी शबनमको विनाशकी शिक्षा देती है—उसे पी जाती है उसी तरह तुम्हारी कृपा-दृष्टि होने तक ही मेरा अस्तित्व है । तुम्हारी कृपा हुई और मेरा निजत्व, विशिष्ट व्यक्तित्व गया । कृपा-दृष्टिको सूर्यकी रोशनी और अपने अस्तित्वको शबनम कहकर कविने एक दार्शनिक तथ्यको प्रकट किया है । जब तक प्रियतमसे मिलन नहीं हुआ, जब तक यह विरह है, विभेद है तभी तक जीवन है, उसका अस्तित्व है । उनकी कृपा होनेपर, मिलन होनेपर मैं कहाँ रह जाऊँगा ।

[२६]

तेरे ही जल्व.का है यह धोका कि आज तक
बे इख़्तियार दौड़े हैं गुल दरक़फ़ाए गुल ।

फूल खिलता है तो कलियाँ समझती है कि तू ही फूलके पर्देमें शोभायमान हो रहा है इसलिए तेरा सौन्दर्य, तेरी शोभा देखनेके लिए वे भी फूल बन-बनकर दौड़ी आ रही हैं ।

[२७]

आज हम अपनी परेशानिए ख़ातिर उनसे
कहने जाते तो हैं, पर देखिए क्या कहते है ।

प्रेमकी दुनिया ही दूसरी है। आदमी छटपटाता है, पागल होता है। उधर वह है कि जैसे कुछ हुआ नही। यह उदामीनता गज़ब ढाती है। कभी दिलमे आता है कि उनसे मिलूँ और कुछ अपनी व्यथा, अपना दर्द उनसे कहूँ, शायद वह पसीजे। पर जब सामने होते है, बात नही निकलती। इसी भावको इस शेरमे व्यक्त किया गया है। कहते है—आज हम अपने दिलकी परीशानी उनसे कहने जा रहे है, पर देखिए कुछ कह पाते है या नही ?

कुछ लोग यह अर्थ भी लगाते है कि आज हम अपनी हृदय-व्यथा उनसे कहने जा रहे है, देखिए (वह) क्या कहते है। पर यह अर्थ नही, अनर्थ है और ज़बर्दस्ती है।

इसीसे मिलती-जुलती जमीनपर हसरत मोहानीने कहा है—

कुछ समझमें नहीं आता कि यह क्या है 'हसरत'
उनसे मिलकर भी न इज़हारे तमन्ना करना।

[२८]

हो गये है जमअ, अज्जाए निगाहे आफताब,
जर्रे उसके घरकी दीवारोके रौजनमे नहीं।

दीवारोमे जो छिद्र या रोशनदान होते है उनपर जब सूर्यकी किरणें पडती है तो अगणित कण आते या उडते हुए दिखाई देते है। इसी तथ्यको लेकर क्या शेर कहा है। दीवारोके छिद्रोमे जो बेशुमार जर्रे चमकते दिखाई दे रहे है वे जर्रे नही है बल्कि सूर्यकी मुग्ध दृष्टिके कण है जो उसे देखने और झाँकनेके लिए एकत्र हो गये है। (सूर्य भी तेरी छवि देखनेके लिए बेचैन है और किरणरूपी आँखोसे तुम्हारी ओर ताक-झांक कर रहा है।)

[२९]

तमाशा कि ऐ महवे आईनदारी
तुझे किस तमन्नासे हम देखते है ।

सरल शेर है पर दूसरा मिस्रा जोरदार है। ओ दर्पणमे अपनेको देखनेमे तल्लीन ! जरा इधर भी तो देख कि हम किस तमन्नाके साथ तुझे देख रहे है !

[३०]

ता फिर न इन्तज़ारमे, नींद आये उम्र भर,
आनेका अहृद कर गये, आये जो ख्वावमें ।

प्रियतमकी छेड और शोखी देखिए। प्रेमी प्रतीक्षा करते-करते सो गया है। यह सोना भी उनको गवारा नहीं। वह ख्वाव (स्वप्न) में आये भी तो फिर आनेका वादा करके चले गये कि फिर मुझे उनकी प्रतीक्षामें उम्रभर नीद न आये। (क्योकि वह तो आयेंगे नही पर वादा कर गये हैं इसलिए उम्रभर प्रतीक्षा करनी पडेगी।)

प्रतीक्षाकी लम्बी घडियाँ, नींद न आना, उनका वादा सब यहाँ एक शेरमें एकत्र हो गये हैं।

[३१]

है तेवरी चढ़ी हुई, अन्दर निकावके,
है इक शिकन पड़ी हुई, तर्फ़े निकावमें ।

जब उनके सामने ऐसा जिक्र आ जाता है कि कोई भेद खुल रहा हो, या कोई अनचाही वात निकल पडी हो तो बोलती नही है पर घूंघट भी उनके तेवरी चढाने और कटाक्षको छिपा नहीं पाता। कहते है, घूंघटमें एक ओर शिकन पडी हुई है। जान पडता है घूंघटके अन्दर उनकी तेवरी चढ गयी है।

उनके बिगडनेका क्या चित्र है। आगे और कहते है—

[३२]

लाखों लगाव, एक चुराना निगाहका,
लाखों बनाव, एक बिगडना इतावमें।

लगाव = लगावट, मुहब्बत। इताव = क्रोध।

बात मामूली है, उनकी लाखो लगावटें, प्रेमके हाव-भाव एक ओर और निगाहका चुराना एक ओर। लाखो बनाव-शृगार एक तरफ और गुस्सेमे बिगडना एक तरफ। मा'शूककी लगावट प्रेमीके लिए बडी चीज़ है पर उसका आँख चुराना उन लगावटोसे कही मोहक होता है। इसी प्रकार बनाव-शृगारसे उसका सौन्दर्य अवश्य बढ जाता है पर गुस्सेमे बिगडनेपर उसकी शोभाका क्या पूछना ?★

जिसने प्रेम किया है और प्रेमकी आंखोसे प्रियतमाका आंख चुराना और चिढना देखा है वही इस शेरके सौन्दर्यको पूर्णत हृदयगम कर सकता है। मौलाना हालीने लिखा है—"यह शेर सहल है। अगर अल्फाज़की तरफ देखिए तो ताज्जुब होता है कि क्यो कर ऐसे दो हमपल्ल मिस्रे बहम पहुँच गये जिसमें हुस्ने तर्सीअका पूरा-पूरा हक अदा किया गया है और अगर मा'नीपर नज़र कीजिए तो हर मिस्रअमे एक ऐसा मुआमिल बांधा गया है जो फिलवाकअ आशिक व मा'शूकके दरमियान हमेश गुजरता रहता है। मा'शूककी लगावट आशिकके लिए बहुत बडी चीज है मगर उसका आंख चुराना जो लगावटकी जिद है वह आशिककी नजरमे लगावटसे बहुत ज्याद दिलफरेब दिलावेज होता है।

★ किसीका शेर है—

उनको आता है प्यारपर गुस्स,
हमको गुस्स प प्यार आता है।

इसी तरह बनाव-शृंगारसे मा'शूकका हुस्न बेशक दोबाला हो जाता है मगर उसका गुस्सेमें बिगड़ना उसके बनावसे बहुत ज्याद खुशनुमा और दिलरुबा मालूम होता है। इस शेरके मुत'ल्लिक यह सब जाहिर और ऊपरी बातें है, जो हम लिख रहे है। इसकी असल खूबी वज्दानी है जिसको साहिबे ज़ौकके सिवा कोई नही समझ सकता।"

मौलाना हालीने यह भी लिखा है कि मौलाना आजुर्द ने, जो गालिब-के दुरूह शेरोंसे बहुत चिढते थे, एक दिन किसीके मुँहसे यह शेर सुना तो झूमने और तड़पने लगे थे।

[३३]

शर्म इक अदाए नाज़ है अपने ही से सही,
हैं कितने बेहिजाब कि है यों हिजाबमें।

लज्जा सौन्दर्यका दीपक है। वह सौन्दर्यको मोहक बनाती है और उसे छिपानेकी चेष्टामे और व्यक्त कर देती है, और बेपर्दा कर डालती है। लज्जा जब दूसरोंसे होती है तब तो लुभावनी होती ही है पर जब अपनेसे होती है तब उसका क्या कहना।

कवि कहता है—लज्जा चाहे अपनेसे ही हो एक गर्वसे भरी अदा है। इस प्रकार उनका पर्देमें, घूंघटमे रहना उन्हें और बेपर्द कर रहा है।

[३४]

आराइशे जमालसे फ़ारिग़ नहीं हनोज़,
पेशे नज़र है आईनः दाइम निक़ाबमें।

अभी तक वह सौन्दर्यके शृगारसे निवृत्त नही हुई हैं। पर्देकी ओटमे दर्पण निरन्तर उनकी आँखोंके सामने है। यह शृंगार शाश्वत है, पर्देके पीछे निरन्तर उसकी तैयारी चलती रहती है। प्रकृतिको देखिए। वह अदृश्यमें, ओटमें निरन्तर अपना शृगार करती रहती है। अपनेको देखती है और रचती है, रचती है और अपनेको देखती है।

[३५]

है गैब गैब जिसको समझते हैं हम शुहूद,
हैं ख्वाबमें हनोज, जो जागे हैं ख्वाबमें।

शायद यह अवस्था होती है जब साधकको सब वस्तुओंमें ईश्वर ही ईश्वर दिखाई पड़ता है। गैब गैबका मतलब गैबुल्गैब या परोक्षका परोक्ष है। कहते हैं जिसे हम सर्वत्र उपस्थित देखते हैं वह भी अत्यन्त परोक्ष ही है। जैसे स्वप्नमें जो जागरण होता है वह जागरणका अनुभव होते हुए भी स्वप्न ही है। हम सपनेमें ही जगते हैं, कुछ देखते हैं परन्तु सारी कार्रवाई सपनेमें ही होती है।

[३६]

वह आये घरमें हमारे, ख़ुदाकी क़ुदरत है,
कभी हम उनको, कभी अपने घरको देखते हैं।

मशहूर शेर है और प्राय किसी दुर्लभ आगमनपर पढ़ा जाता है। कभी उम्मीद नही थी कि वह हमारे घर आयेंगे। निराशा चरम सीमापर पहुँच गयी है। हम चुप हो बैठे हैं। एकाएक वह आये। कैसे यह सम्भव हुआ ? निश्चय ही यह प्रभुका चमत्कार है। आश्चर्यमे कभी हम उनको, कभी अपने घरको देखते हैं (जैसे अब भी यह अविश्वसनीय घटना समझमे नही आ रही है।) आश्चर्यका अनुपम चित्र है।

[३७]

रंजसे ख़ूगर हुआ इंसाँ, तो मिट जाता है रंज,
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझपर, कि आसाँ हो गयीं।

जब आदमी दुःख-शोकका अभ्यस्त हो जाता है तो दुःख स्वयं मिट जाता है। मुझपर इतनी कठिनाइयाँ आई है कि सहन करते-करते वे कठिनाइयाँ कठिनाइयाँ नही रह गयी है—सरल हो गयी है।

[३८]

दिल ही तो है, न संगोख़िश्त दर्दसे भर न आये क्यों ?
रोयेंगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताये क्यों ?

वह ज़ुल्म भी करते हैं और रोने भी नही देना चाहते। प्रेमी सहन करता है पर जब सहन शक्तिका अन्त हो जाता है तब कहता है—आखिर दिल ही तो है, कोई ईंट-पत्थर नही है, फिर दर्दसे क्यों भर न आये ? हम हज़ार बार रोयेंगे। कोई हमें क्यो सताता है ?

यहाँ 'कोई' शब्द काव्यकी जान है।

[३९]

जब वह जमाले दिल फ़रोज़, सूरते मेह्न नीमरोज़,
आप ही हो नज्जार· सोज, पर्देमे मुँह छिपाये क्यों ?

मेह्न नीमरोज़ = मध्याह्नका सूर्य जिसे तीव्र प्रकाशके कारण नही देखा जा सकता। चमक इतनी होती है कि आँख नही ठहरती। कहते हैं—जब वह दिलको मुग्ध और प्रकाशित न करनेवाला सौन्दर्य मध्याह्नके सूर्यकी तरह दृष्टिको जला देता है तो फिर उसे पर्देमें मुँह छिपानेकी क्या ज़रूरत है ? क्योकि उसके मुखकी ओर तो कोई देख पाता नही है।

[४०]

है आदमी बजाए ख़ुद, एक महशरे ख़याल,
हम अंजुमन समझते हैं, ख़िल्वत ही क्यों न हो ?

दर्शनमे कहा गया है कि मन ही ससारका कारण है। गीतामें कहा गया है कि 'मन एव मनुष्याणा कारण बन्ध-मोक्षयो'—मन ही मनुष्यके बन्ध एव मोक्षका कारण है। हम ससारके शोरगुलसे बचनेके लिए जगलमें चले जाते हैं परन्तु वहाँ भी मन हमारा पीछा नही छोड़ता। मनमे हम अपनी दुनिया लिये फिरते हैं।

गालिब कहते है कि आदमी स्वय अपनेमे कल्पना या विचारका ससार लिये रहता है (जैसे मजारमे मुर्दे जी उठते है वैसे ही मनमे नाना प्रकारके विचार उठते रहते है) इसलिए एकान्तमे रहते हुए भी मानो हम अजुमनमे, भीडमे, सभामे रहते है ।

[४१]

शबको किसीके ख्वाबमे आया न हो कहीं,
दुखते है आज उस बुते नाज़ुकबदनके पॉव ।

सदासे प्रेयसीका तन्वगी—नाजुक—होना काव्यका एक विषय रहा है । सदासे कवि इस विषयपर उक्तिया कहते आये है । हिन्दी कवि विहारीने कहा है —

भूषन-भार सँभारिहै, क्यो यह तन सुकुमार ।
सूधो पॉव न धरि परत, शोभा ही के भार ॥

यह सुकुमार तन आभूषणोका बोझ कैसे सँभाल सकेगा, जब शोभाके बोझसे ही तुम्हारे पॉव सीधे नही पडते, डगमगाते है ।

गालिबकी नायिका इस सीमा तक नही पहुँच पाई है पर उसकी नाजुकी भी गजबकी है । कहते है, आज उस तन्वगी, उस नाजुकवदनके पॉव दुख रहे है । कही वह किसीके स्वप्नमे न आई हो । स्वप्नमे आनेसे भी पॉव दुखनेकी कल्पना बिल्कुल नई है ।

[४२]

यह कह सकते हो "हम दिलमें नहीं है ?" पर यह बतलाओ,
कि जब दिल में तुम्हीं तुम हो तो ऑखो से निहॉ क्यो हो ?

तुम यह तो कह नही सकते कि मेरे दिलमे तुम नही हो । वह तो तुम जानते हो । पर यह बताओ कि जब दिलमे तुम्ही तुम भरे हुए हो तो आंखोसे क्यो छिपे रहते हो, दर्शन क्यो नही देते । यह क्या ढब है कि दिलमें तो घर कर लेना और आंखोसे दूर रहना !

[४३]

चश्मे-ख़ूबाँ ख़ामुशीमें भी नवा पर्दाज़ है,
सुर्मः तू कहवे कि दूदे शोलए आवाज़ है।

चश्मे ख़ूबाँ = रूपसियोंके नयन। खामुशी = मौन। नवापर्दाज = स्वर-साधक, गानेवाला। दूदे शोलए आवाज = ध्वनि-ज्वालाका धूम्र।

आँखोंको नयन नहीं होते ('नयन बिनु बानी'—तुलसीदास)' पर अपने मौनमें भी उनका बोलना गज़बका होता है। उनकी वाणी दिलमें सीधे उतर जाती है। फ़ारसीमें तो, इसीलिए, 'चश्मे सुख़नगो' (बात करनेवाली आँखें) 'कहते हैं' जिसका उर्दूमें भी प्रयोग होता रहा है, जैसे—

क्या चश्मे सुख़नगो ने कहा तूने सुना भी,
नज़रों का निशानः कहीं होता है ख़ता भी।

ग़ालिब कहते हैं रूपसियोंके नयन अपने मौनमें भी बोल-गा रहे हैं। उनकी आँखोंमें सुर्मा नहीं है बल्कि उसी ध्वनिकी ज्वालाका धुवाँ है।

कहा जाता है कि यदि कोई व्यक्ति सुर्मा खा ले तो उसकी आवाज़ सदाके लिए बैठ जाती है और वह बात नहीं कर सकता। पर मिर्ज़ा कहते हैं कि मा'शूकोंका सुर्मा वह सुर्मा नहीं, यह ध्वनिकी ज्वालाके धुएँपर बनाया गया है इसलिए इससे नयनोंकी ज्योति ही नहीं बढ़ती, उनकी वाक्शक्ति भी बढ़ जाती है। यहाँ मा'शूकको शमअ, उसकी वाणीको ज्वाला और ज्वालाके धुएँको ऐसा सुर्मा कहा गया है जो और सुर्मोंसे भिन्न दृष्टिको वचन-चातुरी प्रदान करता है।

[४४]

आँख की तस्वीर सरनामे प खींची है, कि ता,
तुझ प खुल जावे, कि इसको हसरते दीदार है।

क्या बात पैदा की है, क्या तरकीब सोची है। पता नहीं वह अपनी निष्ठुरतामें मेरा पत्र पढ़ते भी हैं या नहीं। तब उन्हें मेरी कामनाका पाता

हो सकेगा ? इसलिए लिफाफेके ऊपर भी आँखका चित्र बना दिया है ताकि लिखा पढ़े भी उन्हें मालूम हो जाय कि उसको मेरे दर्शनकी लालसा है। 'पता लग जाय' लिखा बहुत उपयुक्त है जिससे 'पता लग जाय' का अर्थ भी दिया है और लिफाफेको आँखें लगी होनेकी ध्वनि भी है।

'जौक' ने भी कहा है—

> यह चाहता है शौक़ कि क़ासिद बजाय मुह्र,
> आँख अपनी हो लिफ़ाफ़ा ख़तपर लगी हुई।

[४५]

> नज्जारने भी काम किया वाँ निक़ाबका,
> मस्तीसे हर निगह तेरे रुख़ पै बिखर गयी।

मेरी निगाह तेरे मुख तक पहुच कर ऐसी बदमस्त हुई कि वह बिखर गयी और बिखर जानेके कारण तुझे देख भी न सकी। मतलब दृष्टि ही तुम्हारे सौन्दर्य-दर्शनमे पर्देका काम कर रही है।

दृष्टि दर्शनमे बाधक है, इस बातको गालिबने अनेक प्रकारसे कहा है। देखिए—

> नज्जारः क्या हरीफ हो उस बर्क़े हुस्नका,
> जोशे बहार जल्वेको जिसके निक़ाब है।

(दृष्टिमे यह शक्ति नही कि उसकी सौन्दर्य रूपी उस बिजलीका सामना कर सके जिसकी छविके लिए स्वय वसन्तकी उत्कण्ठा-उत्सुकता घूंघट बन गयी है। बहारकी रगीनीका जोश निकाबका काम कर रहा है या उसके जल्वेमें बहारका वह जोश है कि उसने स्वय छविको छिपा लिया है।)

यह अर्थ भी निकलता है कि दृष्टि सदैव निकाबपर, उस अन्त - सौन्दर्यके आवरणपर पडती है—यानी दृष्टि केवल शरीर तक पहुँचेगी,

जगत्के सौन्दर्यमें फँसकर रह जायगी। इस सौन्दर्यके पीछे जो परम प्रियतमकी विद्युज्ज्योति है वह छिप गयी है।

एक दूसरी जगह कहते हैं—

देखना क़िस्मत कि आप अपने प रश्क आ जाये है,
मै उसे देखूँ भला कब मुझसे देखा जाये है।

दर्शनका अवसर आया है। पर इस सौभाग्यपर अपनेसे ही ऐसी ईर्ष्या होती है कि उन्हें देख नही पाता हूँ। क्या क़िस्मत है!

अन्यत्र कहा है—

तकल्लुफ़ बर तरफ नज्ज़ारगीमें भी सही लेकिन,
वह देखा जाय, कब यह ज़ुल्म देखा जाये है मुझसे।

बहुतसे लोग उन्हें देख रहे है, इसका रश्क इतना है कि यह (दूसरे भी उन्हें देखें) जुल्म मुझसे नही देखा जाता, इस रश्कमें उन्हें भी नही देख पाता।

[४६]

हम वहाँ है जहाँसे हमको भी,
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।

बेखुदीमें ऐसे स्थानपर पहुँच गये हैं कि अपनी भी कोई खबर नही रह गयी है।

[४७]

ज़ुल्मतकद: में मेरे शबे ग़मका जोश है,
इक शमअ है दलीले सेहर, सो ख़मोश है।

हमारे तिमिर-कक्षमें ग़मकी निशा अपने यौवनपर है। घरका अँधेरा इतना अधिक है कि प्रकाशकी कोई झलक नही। पता नही, कब प्रभात होगा? शमअ बुझने-बुझनेको होती तो उससे प्रभातके आगमनका सकेत प्राप्त होता किन्तु यहाँकी शमअ तो मौन है, बहुत पहिले बुझ चुकी है।

[४८]

काटोंकी जुबा सूख गयी प्याससे, यारब!
इक आबल: पा वादिए पुरखारमें आवे।

ऐसी घाटीमें काटोंकी जिह्वा प्याससे सूख गयी है। ऐ खुदा! (इस काँटोकी घाटीमें) कोई ऐसा निकल आवे जिसके पांवमें चलते-चलते छाले पड गये है (जिससे छालोके पानीमें काँटोकी प्यास बुझ जाय।)

[४९]

उनके देखेसे जो आ जाती है मुँहपर रौनक़,
वह समझते है कि बीमारका हाल अच्छा है।

जब तक मा'शूक प्रेमीकी दुर्दशा और विरह-विदग्धताको न देखे, उसे कैसे ज्ञान हो सकता ह कि वह मुझे कितना चाहता है और इस चाहमे उसपर क्या गुज़र रही है। पर कठिनाई यह है कि जब माशूक नही होता, जब विरह-काल आता है तब तो वेदनासे प्राण निकलते होते है किन्तु जब उसका दर्शन होता है तो उसके कारण प्रसन्नतासे मुँहपर एक रौनक, एक शोभा खिल उठती है। वह आये तो बीमारको देखने पर देखते यह है कि इसका हाल तो अच्छा है, खामखा बीमारीका बहाना किये पडा है। ऐसी हालतमे वह क्या करुणा मुझपर करेंगे?

[५०]

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन,
दिलके ख़ुश रखनेको गालिब य' खयाल अच्छा है।

हम स्वर्गकी वास्तविकता जानते है कि किस प्रकार सब्ज बाग दिखाया गया है। हाँ, इतना लाभ है कि इसकी कल्पनासे दिल बहला रहता है, उसे एक प्रकारकी प्रसन्नता होती ह।

[५१]

रगोंमें दौड़ने फिरनेके हम नहीं क़ायल,
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ?

क्या उम्दा शेर है—दर्द और सोज़से भरा हुआ। अर्थ स्पष्ट है।

[५२]

इश्क़पर ज़ोर नहीं, है यह वह आतश ग़ालिब,
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

इश्क़पर ज़ोर नही चलता। यह वह आग है जो न लगानेसे लगती है, न लग जानेपर बुझाये बुझती है। मतलब प्रेम न अपने चाहनेसे पैदा होता है, न अपनी इच्छासे छोड़ा ही जा सकता है।

[५३]

करे है क़त्ल लगावटमें तेरा रो देना,
तेरी तरह कोई तेग़े निगहको आब तो दे।

लगावटमें, मुहब्बतमें तुम्हारा रो देना क़त्ल कर देता है। इस तरह आँसूसे निगाहकी कटारीपर पानी देना उसे आबदार बनाना कोई तुमसे सीखे।

[५४]

वाय ! वाँ भी शोरे महशरने न दम लेने दिया,
ले गया था गोरमें ज़ौक़े तन आसानी मुझे।

आरामतलबीके स्वाद और उत्कण्ठा मुझे क़ब्रमें ले गयी थी। सोचा था, यहाँ तो आरामसे सोयेंगे, दुनियाकी विपत्तियों और झंझटोंसे मुक्ति मिल जायगी मगर अफ़सोस कि क़यामतके शोरने वहाँ भी मुझे दम न मारने दिया, विश्राम न लेने दिया।

इस जमीनपर 'जौक' का मशहूर शेर याद आता है—

अब तो घबराके यह कहते है कि मर जायँगे,
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायँगे ?

[५५]

खुदा या ! जज़्बए दिलकी मगर तासीर उलटी है
कि जितना खींचता हूँ और खिचता जाये है मुझसे ।

कहते है, ऐ खुदा ! मेरे हृदयके भावोद्वेगका शायद उलटा प्रभाव होता है क्योकि मै उसे जितना ही अपनी ओर खीचता हूँ, उतना ही वह मुझसे खिचता जाता है, खफा होता जाता है। मुहाविरेका प्रयोग देखने योग्य है। खूबी यह है कि इसमे आश्चर्य और निवेदन दोनो है।

[५६]

उधर वह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है,
न पूछा जाये है उससे, न बोला जाये है मुझसे ।

वह तो मेरे बारेमे बदगुमाँ है, समझते है कि मेरा प्रेम झूठा है इसलिए मेरा हाल भी नही पूछते। इधर मै इतना नातवाँ, इतना क्षीण और दुर्बल हो चुका हूँ कि मुझसे बोला नही जाता, अपना हाल कहा नही जाता। अजब मुश्किल है।

[५७]

सँभलने दे, मुझे ऐ नाउमीदी, क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाये है मुझसे ।

ऐ निराशा, तू क्या कयामत ढा रही है, वह स्वय तो दूर हैं ही, मै उनके ध्यानका अञ्चल पकडकर चल रहा था, तेरे कारण वह भी मुझसे छुटा जा रहा है। अरे, ज़रा मुझे सँभल तो लेने दे। यह ज़रा-सा सहारा तो न छुडा।

निराशाकी तस्वीर-सी खीच दी है। इसकी चित्रात्मकता देखने योग्य है। कोई चित्रकार इसपर सुन्दर चित्र बना सकता है।

[५८]

लागर इतना हूँ कि गर तू बज़्ममें जा दे मुझे,
मेरा ज़िम्मः देखकर गर कोई बतला दे मुझे।

अतिशयोक्ति है। कहते है—मैं इतना क्षीण हो गया हूँ कि अगर तू मुझे अपनी महफिलमें जाने दे तो इसका जिम्मा लेता हूँ कि वहाँ मुझे कोई देख ही न पायेगा। (अपना काम बनाने और प्रियतमाको निन्दासे बचाने-का हल एक साथ निकाला है।)

क्षीणताके सम्बन्धमें उर्दू कवियोंने सैंकडो शेर कहे है परन्तु बहादुर-शाह ज़फरकी अतिशयोक्ति इन सबके ऊपर है। वह कहते हैं —

नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में,
कोने-कोने ढूँढ़ती फिरती कज़ा थी, मैं न था।

[५९]

मुँह न दिखलावे, न दिखला, पर ब अन्दाज़े इताब,
खोलकर पर्दः, ज़रा आँखें ही दिखला दे मुझे।

मुहाविरोंके प्रयोगमें एक सौन्दर्य और शोखी पैदा कर देनेमें गालिब बेजोड हैं। आँख दिखाना एक मुहाविरा है (न कि आँखें दिखाना जैसा कि शेरमें है पर काव्यमें इतना परिवर्तन क्षम्य है।) जिमका अर्थ होता है रोष करना, रुष्ट होना। इसी मुहाविरेको लेकर ग़ालिबने बातमें बात पैदा की है।

कहते है, तू मुझसे रुष्ट है इससे दर्शन नही देता, अपना मुँह मुझे नही दिखाता। अच्छा मुँह नही दिखलाता तो न दिखा पर अपने गुस्सेके अन्दाजमें घूँघटको हटाकर ज़रा आँख ही दिखा दे, अपना गुस्सा ही प्रकट

रहा है। (क्या तरकीब निकाली है कि वह आगे दिखाकर अपना गुस्सा भी प्रकट करे और हमको दीदार भी नसीब हो जाय)। यहाँ बारीकी यह है कि आगे दिखायगी तो मुँह अपने आप दिख जायगा।

[६०]

मत पूछ, कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे,
तू देख, कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे।

शब्द वैषम्यसे गालिबने क्या रङ्ग पैदा किया है। यहाँ रङ्ग और आगे-पीछे पदोंने शेरमे जान डाल दी है।

कहते हैं, यह न पूछ कि तेरे पीछे, तेरे विरहमे मेरा क्या हाल होता है। यह देख कि मेरे आगे तेरा क्या रङ्ग हो जाता है, तू मेरे सामने आकर कितना बेचैन हो जाता है। इसीसे अनुमान कर ले कि तेरे विरहमे मेरा क्या हाल होता होगा।

[६१]

ईमाँ मुझे रोके है तो खींचे है मुझे कुफ़्र,
का'ब· मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे।

'आसी' साहब इस शेरकी प्रशसामे लिखते हैं—"बेमिस्ल शेर कहा है, खुसूसन मिसए सानी। अगर दीवानके दीवान इसपर सिद्के कर दिये जायँ तो बजा है।"

काबाको ईमान और कलीस (गिर्जाघर) को कुफ़्र कहा गया है। काबा (ईमान) पीछेसे खीच रहा है, रोक रहा है कि आगे मत बढो। कलीसा (कुफ़्र) आगेसे अपनी तरफ खीच रहा है कि इधर आओ।

ईमानमे साधक या सूफीकी चरमावस्था, जिसमे वह 'अनलहक' (अहं ब्रह्मास्मि) कहता है कुफ़्र है। कुफ़्र आगेकी तरफ है जिधर मैं जा रहा हूँ, उसमे आकर्षण इतना है कि काबेको पीछे छोड चुका हूँ। बीच रास्तेमें हूँ,

दोनोंके बीच विमूढ हो रहा हूँ कि किधर जाऊँ। ईमान या परम्परागत मजहब मुझे रोकता है और कहता है—पीछे लौट आओ। कुफ्र या उन परम्परागत रूढियोंका त्याग मुझे आगेकी ओर खीच रहा है और कहता है—पीछे लौटे तो माशूकके दर्शनसे वचित रह जाओगे।

[६२]

खुश होते है, पर वस्लमें यों मर नहीं जाते,
आई शबे हिजरॉकी तमन्ना, मेरे आगे।

ऊँचे पायेका शेर है। जोश मल्सियानीने इसकी प्रशसा करते हुए लिखा है—"यह शेर हर साहिबे जौकको दीवान कर देनेके लिए काफी है। मिर्जा अगर और कुछ न कहते, सिर्फ यही एक शेर कहते तो यह उनकी अजमत और ए'तराफे कमालके लिए काफी था।" तबातबाई लिखते है—"वस्लकी खुशीमें मर जाना और लोग भी बाँधा करते हैं मगर यह बात ही और है। सारी करामात मुहाविर और ज़बानकी है जिसने मरनेके मजमूनको जिन्द कर दिया है।"

कहते है—मिलनमे सभी खुश होते है पर मेरी तरह कोई मर नही जाता। जुदाई (विरह) की रातोमे जो बार-बार तमन्ना किया करता था कि मरूँ तो तुम्हारे मिलन-क्षणमे मरूँ वह मेरे आगे आई—पूर्ण हुई।

[६३]

गो हाथको जुम्बिश नहीं, आँखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी सागरो मीना मेरे आगे।

अन्तिम क्षण आ गया है। कमजोरीका यह हाल है कि हाथोमें हिलनेकी भी ताकत नही रही पर कहते हैं कि हाथोमें शक्ति नही तो क्या हुआ? आँखोमें तो अभी दम मौजूद है। प्याले और सुराहीको मेरे सामनेसे क्यों हटाते हो, मेरे सामने ही पडा रहने दो ताकि मैं अपने दिलको तस्कीन दूँ।

जो वस्तु मनमें प्रिय होती है मरते समय उसीको देखनेकी कामना रहा करती है। पहिले शेरमें नजअ (मरण काल) का चित्र है, अङ्ग शिथिल और निष्प्राण हैं हाथ-पाँवमें गति नहीं है। केवल आँखोंमें जीवन का चिह्न शेष है।

कहते हैं—यद्यपि हाथोंमें गति नहीं है, उनमें शक्ति नहीं है कि सुराहीसे मदिरा निकालकर प्यालेमें भर सके और प्यालेको उठाकर मुँह तक ला सके किन्तु जान अभी आँखोंमें है इसलिए प्याले और सुराहीको मेरे सामने पड़ा रहने दो कि मैं उन्हें देखता तो रहूँ।

लालसाका कैसा चित्र है।

[९४]

करने गये थे उससे तगाफुलका हम गिला
की एक ही निगाह, कि बस खाक हो गये।

सामान्य अर्थ तो यह है कि उनसे हम उपेक्षाकी शिकायत करने गये थे। उन्होंने एक बार ही आख उठाकर देखा कि हम मिट्टी हो गये।

इस शेरमें तसव्वुफका रग है। जब परम प्रियतमसे आख मिलती है तब दर्शकका अस्तित्व उसीमें विलीन हो जाता है। 'सहाबी'ने, फारसीमें, कहा है—

ऐ ज़ाहिदो आशिक़ ज़तू दर नाल व आह
दूर तू व नज़दीक तेरा हाले तबाह
कस नेस्त कि जॉ तू अज़ सलामत बबुर्द
ऑरा बतगाफुल कुशी ईरा बनिगाह।

(जाहिद और आशिक दोनों नाल और आह द्वारा तुझसे फर्याद कर रहे हैं। जो तुझसे दूर है वह भी तबाहहाल है और जो तुझसे नजदीक हैं वह भी बर्बाद है। ऐसा कोई नही जो तुझसे जान बचा ले जाय। उसको

(ज़ाहिदको) तग़ाफ़ुलसे, उपेक्षासे क़त्ल करते हैं और इसे (आशिकको) निगाहसे ।)

[६५]

जबतक दहाने ज़ख्म न पैदा करे कोई,
मुश्किल, कि तुझसे राहे सुख़न वा करे कोई ।

जबतक चोट या घावका मुँह न पैदा हो किसीके लिए तुझसे बात करनेका रास्ता निकालना सम्भव नही ।

अर्थात् प्रेमका घाव लगे बिना प्रियतमसे बात नही की जा सकती ।

[६६]

मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़, जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते है, जिस काफ़िर प दम निकले ।

प्रेममें जीवन और मरणमें कोई अन्तर नही है क्योंकि जिस काफ़िर पर मरते हैं, जिसपर दम निकलता है उसीको देखकर जीते है ।

[६७]

बेगानए रसूमे जहाँ है मज़ाक़े इश्क़ ,
तर्ज़े जदीद ज़ुल्म कुछ ईजाद कीजिए ।

प्रेम ससारकी रीतियो एव परम्पराओंकी पर्वा नही करता । इसलिए वही पुराने ज़ुल्मके ढंग छोड़िए, ज़ुल्मका कोई नया तरीक़ा पैदा कीजिए ।

किसीने कहा है—

वस्लसे इन्कार है यह तो पुरानी बात है ,
अब नये अन्दाज़ सीखो जी जलानेके लिए ।

[६८]

वह शोख़ अपने हुस्न प मग़रूर है 'असद' ,
दिखलाके उसको आईन. तोड़ा करे कोई ।

वह शोख (चंचल माशूक) अपने सौन्दर्यपर गर्व कर रहा है। क्या अच्छा हो कि कोई उसे दिखाकर दर्पणको तोड़ा करता।

दर्पण दिखाना इसलिए कहा कि वह उसमें अपना जवाब—प्रतिद्वन्द्वी—देख ले। आईना तोड़ना इसलिए कहा कि उसके हजारों टुकड़ोंमें वह प्रतिबिम्ब दिखाई दे।

बिहारीने, दूसरी जमीनपर कहा है

हौं समुझ्यो निरधारि, यह जग काँचो काँच सम,
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ।

किसी उर्दू कविने कहा है

नज़र आते कभी काहेको इतने खूबरू यकजा,
यह हुस्ने इत्तिफाक़ आईन: उसके रूबरू टूटा।

दर्पणको लेकर एक दूसरा शेर है

आईन उठा लाये और अक्ससे यूँ बोले,
क्यों बात नहीं करता जो तू है वही मै हूँ।

[६६]

बाग तुझ बिन गुले नर्गिसमे डराता है मुझे,
चाहूँ गर सैरे चमन आँख दिखाता है मुझे।

नर्गिस एक फूल है जिसकी आँखसे उपमा दी जाती है। 'आँख दिखाना' मुहाविरा है जिसका अर्थ है—नाराज़ होना। इसी मुहाविरेपर यह शेर खड़ा है।

मैं विरह कालमे तेरे विना यदि पुष्पोद्यानकी सैरको जाता हूँ तो उद्यान मुझे डराता है। किस प्रकार कि मुझे नर्गिसके फूल यानी आँख दिखाता है।

किसी उर्दू कविका शेर है—

मुझे नर्गिसका दस्तः ग़ैरके हाथोंसे क्यों भेजा,
अगर आँखें दिखानी थीं, दिखाते अपनी आँखोंसे।

[७०]

भूँचाल्में गिरा था यह आईनः ताक़से,
हैरत शहीद जुंबिशे अबरूए यार है।

हैरत एक दर्पण थी और माशूककी दृष्टिका दोलन एक भूचाल। जबसे ताक-जैसी उनकी भौंहोंमें दोलन हुआ, हैरत शहीद होकर रह गयी। जैसे ज़लज़ला आया हो और उसमें ताकसे गिरकर दर्पण टूट जाय।

[७१]

साक़िया! दे एक ही साग़रमें सबको मय, कि आज,
आर्जूए बोसए लबहाय मैगूँ है मुझे।

आर्जुए बोसए लबहाय मैगूँ = शराबसे लाल ओठोंको चूमनेकी कामना।

कहते हैं—ऐ साकी! मेरी कामना यह है कि आज तू एक ही प्यालेमें सब पीनेवालोंको शराब पिलादे ताकि इस बहानेसे मैं उन रक्तिम ओठोंका चुम्बन ले सकूँ। उनके ओठ प्यालेको लगेंगे, वही प्याला मेरे ओठों तक पहुँचेगा। इस प्रकार मैं उनके ओठोंका चुम्बन ले सकूँगा।

इस प्रकारके मजमून बहुत लोगोंने कहे हैं। किसीका एक प्रसिद्ध शेर है—

पसे मुर्दन बनाये जायँगे साग़र मेरी गिलके,
लबेजाँ बख़्शके बोसे मिलेंगे ख़ाकमें मिलके।

मरनेके बाद मेरी मिट्टीके प्याले बनाये जायँगे। इस प्रकार मिट्टीमें मिलकर मैं उस प्राणदाताके ओठोंके चुम्बन पा जाऊँगा।

[७४]

हज़ार क़ाफ़लए आर्ज़ू बयाबाँ मर्ग,
हनोज़ महमिले हसरत बदोशे ख़ुदराई ।

यद्यपि मेरी सहस्रो कामनाओंके क़ाफ़्ले निराशाकी मरुभूमिमें तडप तडपकर मर गये हैं परन्तु मेरी लालनाकी पालकी (महफ़िल) अब भी स्वयसज्जा—आत्मश्रृंगारके कन्धेपर बैठी चली जा रही है ।

[७५]

देखना तक़रीरकी की लज्जत कि जो उसने कहा,
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिलमें है ।

उसकी वाणीका स्वाद यह है कि जो कुछ उसने कहा उसे सुनकर मैंने अनुभव किया कि यह तो मेरे ही दिलकी बात है । वाणीका प्रभाव तभी पडता है जब श्रोता वक्ताकी बातको अपने ही दिलसे निकलता हुआ अनुभव करे ।

[७६]

मरते है आर्ज़ूमें मरनेकी ।
मौत आती है पर नहीं आती ।

स्पष्ट है ।

काव्य-भाग

दीवाने ग़ालिब

रदीफ़ अलिफ :

[१]

नक़्श[1] फरियादी है किसकी शोख़िए तहरीरका[2],
काग़ज़ी है पैरहन[3], हर पैकरे तस्वीरका[4]।

[२]

था ख़्वाबमें, ख़यालको तुझसे मु'आमिल[5],
जब आँख खुल गयी न ज़ियाँ[6] था न सूद[7] था।
तेशे[8] बग़ैर मर न सका कोहकन[9] 'असद',
सरगश्त ए ख़ुमारे रुसूमो क़यूद[10] था।

[३]

इश्क़से तबीअतने ज़ीस्तका[11] मज़ा पाया,
दर्दकी दवा पाई, दर्द बे दवा पाया।

---

१ निशान, चिह्न, चित्र (नामरूपात्मक जगत्), २ लिखावटका, चित्राङ्कनका बाँकपन, ३ वस्त्र, टिप्पणी—प्राचीन ईरानकी प्रथा थी कि फ़रियाद करनेवाला कागज़के कपडे पहिनकर आता था, ४ चित्रका आकार, चित्र-यष्टि, ५ सम्बन्ध, ६ हानि, ७ लाभ, ८ कुदाल, ९ फ़रहाद, शीरीका प्रेमी, १० परम्पराओंके बन्धनके नशेमें भ्रान्त, ११ जीवन।

हाले दिल नहीं मालूम लेकिन इस क़दर यानी,
हमने बारहा ढूँढा तुमने बारहा पाया।
शोरे पन्दे नासेहने[1] ज़ख्मपर नमक छिड़का,
आपसे कोई पूछे, तुमने क्या मज़ा पाया।

[४]

दिल मेरा सोज़े निहाँ[2] से बे महाबा[3] जल गया,
आतिशे ख़ामोशकी[4] मानिन्द गोया जल गया।
दिलमें ज़ौक़े वस्लो यादे यार तक बाक़ी नहीं,
आग इस घरमें लगी ऐसी कि जो था जल गया।
अर्ज़ कीजे जौहरे अन्देशा की गर्मी कहाँ!
कुछ ख़याल आया था वहशतका कि सेहरा जल गया।

[५]

बूए गुल[5], नालए दिल[6], दूदे चिरागे महफ़िल[7][8]
जो तेरी बज़्मसे निकला सो परीशाँ निकला।
चन्द तस्वीरे बुताँ चन्द हसीनोंके ख़ुतूत,
बाद मरनेके मेरे घरसे यह सामाँ निकला।

---

१ उपदेशकके उपदेशका शोर (नमक अर्थ भी होता है), २ अन्तरकी अग्नि, ३ बिना किसी लिहाजके, ४ मौन अग्नि, ५ पुष्प-गन्ध, ६ दिलकी फरियाद, ७ सभाके दीपकका धुआँ, ८ महफ़िल।

[६]

दह्‌मे[1] नक़्शे वफ़ा[2] वज्हे तसल्ली न हुआ,
है यह वह लफ़्ज़, कि शर्मिन्दए मा'नी[3] न हुआ।
मैंने चाहा था कि अन्दोहे वफ़ासे[4] छूटूँ,
वह सितमगर मेरे मरने पै भी राज़ी न हुआ।
किससे महरूमिए क़िस्मतकी[5] शिकायत कीजे,
हमने चाहा था कि मर जायँ, सो वह भी न हुआ।

[७]

सताइशगर[6] है ज़ाहिद[7] इस क़दर, जिस बाग़े रिज़्वाँका[8]
वह इक गुलदस्त है हम बेख़ुदोंके ताक़े निसियाँका[9]।
ख़मोशीमें निहाँ ख़ूँगश्त लाखों आरज़ूएँ हैं[10],
चिराग़े मुर्दा हूँ मैं बेज़बाँ गोरे ग़रीबाँका[11]।
नहीं मालूम किस-किसका लहू पानी हुआ होगा,
क़यामत है सरश्क आलूद[12] होना तेरी मिज़गाँका[13]।
नज़रमें है हमारी जादए राहे फ़ना[14] 'ग़ालिब',
कि यह शीराज़ा[15] है आलमके अज्ज़ाए परीशाँका[16]।

---

१ काल, जगत्, २ निष्ठाका चित्र, ३ सार्थक, ४ (प्रेमकी) निष्ठाका दुःख, ५ भाग्य-हीनता, ६ प्रशंसक, ७ संयमी (उर्दू-फ़ारसी शाइरोंमें पाखण्डी समझकर ज़ाहिदका मज़ाक उड़ानेकी परम्परा है), ८ स्वर्गोद्यान, नन्दन-कानन, ९ ताक जिसमें कोई चीज रखकर उसे भूल जाते हैं, १०. ख़ून हुई लाखों कामनाएँ मौनमें छिपी हुई हैं, ११ कब्रिस्तान, १२ अश्रुपूर्ण, १३ दृगञ्चल, १४ मृत्यु-मार्ग, १५ शृंखला, १६ विशृंखल अङ्गों।

[८]

सरापा[1] रहने इश्क़ो[2] नागुज़ीरे[3] उल्फ़ते हस्ती[4],
इबादत[5] बर्क़की[6] करता हूँ और अफसोस हासिलका[7]।
ब क़द्रे ज़र्फ है साक़ी खुमारे तश्न कामी[8] भी,
जो तू दरियाए मय है तो मै ख़ामियाज़[9] हूँ साहिलका[10]।

[९]

महरम[11] नहीं है तू ही नवाहाए राज़का[12],
यॉ वर्नः जो हिजाब[13] है पर्द. है साज़का।
तू और सूए गैर नज़रहाए तेज़ - तेज,
मै और दुख तेरी मिज हाए दराजका[14]।

[१०]

है ख़याले हुस्नमे[15] हुस्ने अमलका[16] सा खयाल,
खुल्दका[17] इक दर है मेरी गोरके[18] अन्दर खुला।
मुँह न खुलनेपर है वह आलम[19] कि देखा ही नहीं,
जुल्फसे बढ़कर नकाब उस शोखके मुँहपर खुला।

१ आपादमस्तक, २ प्रेमके हाथ गिरवी, ३ अनिवार्य, ४ जीवनका प्रेम, ५ उपासना, ६ विद्युत्, ७ आय, खलिहान, ८ प्यासका खुमार, ९ अँगडाई, परिणाम, १० तट, ११ मर्मज्ञ, १२ मर्मके स्वर, १३ पर्दा, लज्जा, घूँघट, १४ लम्बी पलकें, १५ सौन्दर्यकी कल्पना, १६ कार्यका सौन्दर्य, १७ स्वर्ग, १८ कब्र, १९ अवस्था।

[११]

बस कि दुश्वार है हर कामका आसाँ होना,
आदमीको भी मयस्सर नहीं इंसाँ होना।
जल्व अज़ बस कि तक़ाज़ाए निगह करता है[1],
जौहरे आईन[2] भी चाहे है मिज़गाँ होना।
इशरते पारए दिल[3] ज़ख्मे तमन्ना[4] खाना,
लज़्ज़ते रीशे जिगर[5] गर्क़े नमकदाँ[6] होना।
हैफ़[7] उस चार गिरह कपडेकी क़िस्मत 'गालिब',
जिसकी क़िस्मतमें हो आशिक़का गिरेबाँ होना।

[१२]

यह न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले यार[8] होता,
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता।
तेरे वा'दे पर जिये हम, तो यह जान झूठ जाना,
कि ख़ुशीसे मर न जाते, अगर एतबार होता।
कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकशको[9],
यह ख़लिश[10] कहाँ से होती जो जिगरके पार होता।
यह कहाँकी दोस्ती है कि बने है दोस्त नासेह[11],
कोई चार साज़[12] होता, कोई ग़मगुसार[13] होता।

---

१ छविमें भी देखे जानेकी उत्कण्ठा है, २ आईनेका जौहर, ३ दिलके टुकडोका आनन्द, ४ कामनाके घाव, ५ जिगरके जख्मका स्वाद, ६ नमकदाँमें डूबना, ७ अफ़सोस, ८ प्रिय-मिलन, ९ आधा खिंचा वाण, १० चुभन, वेदना, ११ उपदेशक, १२ परिचारक, १३ दुख बाँटनेवाला।

रगे संग[1] से टपकता वह लहू कि फिर न थमता,
जिसे गम समझ रहे हो, यह अगर शरार[2] होता।
गम अगर्चे जॉगुसिल[3] है, प कहाँ बचें कि दिल है,
गमे इश्क़ गर न होता गमे रोज़गार[4] होता।
कहूँ किससे मैं कि क्या है, शबे गम बुरी बला है,
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता।
यह मसायले तसव्वुफ[5] यह तेरा बयान 'गालिब',
तुझे हम वली[6] समझते जो न बादख्वार[7] होता।

[१३]

हवस[8] को है निशाते कार[9] क्या-क्या,
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या ?
दिल हर क़तर[10] है साज़े अनल बह्[11],
हम उसके है हमारा पूछना क्या ?
बलाए जॉ है 'गालिब' उसकी हर बात,
इबारत[12] क्या, इशारत[13] क्या, अदा[14] क्या ?

[१४]

बन्दगीमे भी वह आज़ाद वो खुदबी[15] है कि हम,
उलटे फिर आये दरे का'ब अगर वा[16] न हुआ।

---

१ पत्थरकी नस, २ (शरर) चिनगारी, ३ जानलेवा ४ संसारका दुख, ५ तसव्वुफ (ईश्वर-सन्निधान) की समस्याएँ ६ ऋषि, ७ मद्यप, ८ लालसा, तृष्णा, ९ काम करनेकी उमंग १० प्रत्येक बिन्दुका हृदय, ११ 'मैं सागर हूँ'का स्वर, १२ लेखन-शैली १३ संकेत, १४ हाव-भाव, १५ अभिमानी, १६ उन्मुक्त।

[१५]

वही इक बात है जो यॉ नफ़स[1] वॉ नकहते गुल[2] है,
चमनका जल्वः बाइस[3] है मेरी रगींनवाई[4] का।
न दे नामेको इतना तूल 'ग़ालिब' मुख़्तसर लिख दे,
कि हसरतसज[5] हूँ, अर्ज़े सितमहाए जुदाई[6] का।

[१६]

ले तो लूँ सोतेमें उसके पॉवका बोस मगर;
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर[7] बदगुमॉ[8] हो जायगा।
दिलको हम सर्फ़े वफ़ा[9] समझे थे क्या मालूम था,
यानी यह पहिले ही नज़्रे इम्तिहॉ हो जायगा।

[१७]

दर्द मिन्नतकशे दवा[10] न हुआ,
मै न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ।
जमअ करते हो क्यो रकीबोको,
इक तमाशा हुआ गिला[11] न हुआ।
कितने शीरीं[12] हैं तेरे लब कि रकीब,
गालियॉ खाके बेमज न हुआ।

---

१ श्वास, २ कुसुम-सौरभ, ३ कारण, ४ स्वरमोहकता, ५ अभिलाषी, ६ विरहकी विपत्तियोका कथन, ७ माशूक, ८ सन्देहशील, ९ निष्ठाका लाभ, निष्ठाका निर्वाह करनेवाला, १० दवाका आभारी, ११ शिकायत, १२ मीठे।

[१८]

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता,
बह्र[१] अगर बह्र न होता तो बयाबाँ[२] होता।

[१९]

न था कुछ तो ख़ुदा था, कुछ न होता तो ख़ुदा होता,
डुबोया मुझको होनेने न मै होता तो क्या होता!
हुई मुद्दत कि 'गालिब' मर गया पर याद आता है,
वह हर इक बातपर कहना कि यो होता तो क्या होता!

[२०]

दम लिया था न क़यामत[३] ने हनोज़[४],
फिर तेरा वक़्ते सफर याद आया।
ज़िन्दगी यूँ भी गुज़र ही जाती,
क्यों तेरा राहे गुज़र[५] याद आया।
कोई वीरानी-सी वीरानी है,
दश्त[६] को देखके घर याद आया।

[२१]

बिजली इक कौंद गयी आँखोंके आगे तो क्या,
बात करते कि मै लब तश्नए तक़रीर[७] भी था।

---

१ समुद्र, २ मरुस्थल, ३ प्रलय, ४ अभी, ५ मार्ग, ६ जगल,
७ बातोंका प्यासा।

पकड़े जाते है फरिश्तोंके लिखे पर नाहक़,
आदमी कोई हमारा दमे तहरीर भी था ?

[२२]

जबतक कि न देखा था क़दे यारका आलम,
मैं मा'तक़दे फ़ितनए महशर न हुआ था।[1]
दरिया'ए म'आसी[2] तुनुकआबी[3] से हुआ ख़ुश्क,
मेरा सरे दामन भी अभी तर न हुआ था।

[२३]

अर्ज़े नियाज़े इश्क़के क़ाबिल नहीं रहा,
जिस दिलपै नाज़ था मुझे वह दिल नहीं रहा।
वा कर दिये है शौक़मे बंदेनिक़ाबे हुस्न[5],
ग़ैर अज़ निगाह अब कोई हायल[6] नहीं रहा।
गो मैं रहा रहीने सितमहाए रोज़गार[7],
लेकिन तेरे ख़यालसे गाफ़िल नहीं रहा।

[२४]

मंज़र[8] इक बुलन्दीपर और हम बना सकते,
अर्श[9] से इधर होता काशके मकाँ अपना।
घिसते-घिसते मिट जाता, आपने अबस[10] बदला,
नंगे सिज्दः[11] से मेरे संगे[12] आस्ता अपना।

---

१ प्रलयकी मुसीबतोंका विश्वासी, २ पाप-सागर, ३ पानीकी दरिद्रता, ४ प्रेमाकांक्षा निवेदन, ५ उत्कण्ठाने माशूकके सौन्दर्यकी निकाबके बन्धन खोल दिये हैं, ६ बाधक, ७ समारके उत्पीडनोंका शिकार, ८ दृश्य, ९ गगन, १० व्यर्थ, ११ सिज्देके कलक (चिह्न), १२ देहरीका पत्थर।

[२५]

बज़्मे क़दह[1] से ऐश तमन्ना[2] न रख कि रंग,
सैदे ज़िदाम जस्त[3] है, इस दामगाह[4] का।
रहमत[5] अगर कुबूल करे क्या बईद[6] है,
शर्मिन्दगीसे उज्र न करना गुनाहका।
मक़्तल[7]को किस निशातसे जाता हूँ मैं, कि है,
पुरगुल ख़यालेज़ख़्मसे दामन निगाहका।[8]

[२६]

जौर[9]से बाज़ आये पर बाज आयें क्या,
कहते हैं "हम तुझको मुँह दिखलायें क्या?"
रात-दिन गर्दिश[10] में हैं सात आसमाँ,
हो रहेगा कुछ-न-कुछ घबरायें क्या?
लाग हो तो उसको हम समझें लगाव,
जब न हो कुछ भी तो धोका खायें क्या?
पूछते हैं वह कि "गालिब कौन है?"
कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या?

[२७]

इश्रते क़तर[11] है, दरियामें फ़ना[12] हो जाना,
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।

१ प्यालोंकी महफिल, २ कामना नर्त्तन, कामनाका विलास, ३ जालसे छूटकर भागा शिकार, ४ जालसे पूर्ण स्थान, ५ प्रभुकृपा, ६ दूर, ७ वधस्थल, ८ दृष्टिका आँचल घावकी कल्पनाओंके पुष्पोंसे भरा हुआ है, ९ जुल्म, १० चक्कर, ११ बूँदका ऐश्वर्य, १२ विलीन।

दिलसे मिटना तेरी अंगुश्ते हिनाई[1] का ख़याल,
हो गया गोश्तसे नाखुनका जुदा हो जाना।
है मुझे अब्रे बहारीका बरस कर खुलना,
रोते-रोते गमे फ़ुर्क़तमें फ़ना हो जाना।
बख्शे है जल्वए गुल ज़ौक़े तमाशा[2] 'गालिब',
चश्मको चाहिए हर रगमें वा हो जाना।

रदीफ़ 'बे' :

[२८]

है यह बरसात वह मौसिम कि अजब क्या है अगर,
मौजे हस्ती[3] को करे फ़ैज़े हवा[4] मौजे शराब।
चार मौज उठती है तूफ़ाने तरब[5] से हरसू[6],
मौजे गुल[7] मौजे शफ़क़[8], मौजे सबा[9], मौजे शराब।
बस कि दौड़े है रगेताक[10] में खूँ हो-होकर,
शहपरे रंग[11] से है बालकुशा[12] मौजे शराब।

रदीफ 'जीम' :

[२९]

आता है एक पारए दिल[13] हर फ़ुगाँ[14] के साथ,
तारे नफ़स, कमन्दे शिकारे असर है आज[15]।

१ मेंहदी लगी उँगली, २ दर्शनकी उत्सुकता ही फूलमें छवि उत्पन्न करती है, ३ जीवन-तरंग, ४ वायुकी उदारता, ५ हर्षका तूफ़ान, ६ चतुर्दिक्, ७ पुष्प-तरंग, ८ उषा-तरंग, ९ प्रभातीकी तरंग, १० द्राक्षा (अंगूर) की नसोंमें, ११ रंगके पंख, १२ पर खोले हुए, १३ हृदय-खण्ड, १४ रोदन, आर्त्तनाद, १५ आज साँसकी डोरी प्रभावका शिकार करनेवाली कमन्द बन गयी है।

ऐ आफ़ियत[1] किनार' कर, ऐ इन्तिज़ाम चल,
सैलाबे गिरिय' दरपैए दीवारो दर है आज[2]।
लो हम मरीज़े इश्क़के तीमारदार है,
अच्छा अगर न हो तो मसीहाका क्या इलाज।

रदीफ़ 'चे' .

[३०]

नफस न अंजुमने आरज़ू[3] से बाहर खींच,
अगर शराब नहीं, इन्तिज़ारे सागर खींच।
कमाल गर्मिए सइए तलाशे दीद[4] न पूछ,
बरगे ख़ार[5] मेरे आइनेसे जौहर खींच।
तेरी तरफ है बहसरत नज़ारए नर्गिस,[6]
बक़ोरिए दिलो चश्मे रक़ीब[7] सागर खींच।

रदीफ़ 'दाल' :

[३१]

शमअ बुझती है तो उसमेंसे धुवाँ उठता है,
शोलए इश्क़ सियहपोश[8] हुआ मेरे बा'द।
खूँ है दिल ख़ाकमें अहवाले बुताँ[9] पर या'नी,
इनके नाख़ुन हुए मुहताजे हिना[10] मेरे बा'द।

---

१ कुशलता, २ आज रोदनका तूफान घर-बार ढा देनेपर तुला हुआ है, ३ अरमानोंकी महफिल, कामनाओंकी भीड, ४ प्रियदर्शनकी खोजमें प्रयत्नकी सीमा, ५ कण्टक-तुल्य, ६ नर्गिसकी दृष्टि तेरी ओर लालसापूर्वक देख रही है, ७ रकीब (प्रतिद्वन्द्वी) के अन्धेदिल और अन्धी आंखके नामपर, ८ काला, ९ मा'शूकोंकी दशा, १० मेंहदीके मुखापेक्षी।

कौन होता है हरीफे मये मर्द अफगने इश्क[1],
है मुकर्रर[2] लबे साक़ी[3] पै सला[4] मेरे बा'द।
आये है बेकसीए इश्क़ प रोना 'गालिब',
किसके घर जायेगा सैलाबे बला मेरे बा'द।

रदीफ़ 'रे':

[३२]

मक़सद है नाज़ो ग़मज़ः[5], वले गुफ्तगूमें काम,
चलता नहीं है, दश्नः ओ ख़ंजर[6] कहे बग़ैर।
हरचन्द हो मुशाहद-ए हक़[7] की गुफ्तगू,
बनती नहीं है, बाद ओ सागर[8] कहे बगैर।

[३३]

साबित हुआ है गर्दने मीना[9] पै ख़ूने ख़ल्क़[10],
लरजे है मौजे मय तेरी रफ्तार देखकर।
इन आबलोंसे पाँवके घबरा गया था मैं,
जी खुश हुआ है राहको पुरख़ार[11] देखकर।
गिरनी थी हम प बर्के तजल्ली[12] न तूर[13] पर,
देते है बाद, जर्फे क़दह ख्वार[14] देखकर।

---

१ प्रेमकी विजयिनी मदिराको सहन करनेमें मेरी बराबरी करनेवाला, २ बारम्बार, ३ साकीके अधर, ४ आमन्त्रण, ५ रूपगर्व और हाव-भाव, ६ कटार और छुरी, ७ ब्रह्म-दर्शन, ८ मधु एव मधुपात्र, ९ सुराहीकी गर्दन, १० ससारका खून, ११ कण्टकित, १२ ब्रह्मज्योतिकी बिजली, १३ एक पर्वत, १४ शराबका प्याला पीनेवालेका साहस देखकर।

[३४]

लरज़ता है मेरा दिल ज़हमते मेहे दरख़्शाँ[1] पर,
मै हूँ वह क़तरए शबनम[2] जो हो ख़ारे बयाबाँ[3] पर।
न छोडी हजरते यूसुफने याँ भी खान आराई,
सफेदी दीदए या'क़ूबकी, फिरती है ज़िन्दाँपर[4]।
मुझे अब देखकर अब्रे शफक़ आलूद[5] याद आया,
कि फुर्क़तमें तेरी आतिश बरसती थी गुलिस्ताँपर।
बजुज़ परवाज़े शौक़े नाज़[6] क्या बाकी रहा होगा,
क़यामत इक हवाए तुद[7] है ख़ाके शहीदाँपर।

[३५]

यारब न वह समझे है, न समझेंगे मेरी बात,
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको जबाँ और।
लेता, न अगर दिल तुम्हे देता, कोई दम चैन,
करता, जो न मरता कोई दिन, आहो फुगाँ और।
है और भी दुनियामें सुख़नवर बहुत अच्छे,
कहते है, कि गालिबका है अन्दाज़े बयाँ और।

[३६]

लाज़िम था कि देखो मेरा रस्ता कोई दिन और,
तनहा[8] गये क्यो अब रहो तनहा कोई दिन और।

---

१ चमकते सूर्यका कष्ट, २ ओसकी बूँद, ३ वन-कण्टक, ४ या'कूब यूसुफके पिता थे, जब यूसुफ मिस्रमे क़ैदकर लिये गये तो बाप रो-रोकर अन्धे हो गये, इसीपर यह उक्ति है, ५ उषालालिमा-रंजित बादल, ६ प्रेमकी उमगमे उडते-फिरते, ७ प्रभंजन, ८ अकेले।

ऐ तेरा गमज़ः[१], यक क़लम अंगेज़[२],
ऐ तेरा ज़ुल्म सर ब सर अन्दाज़[३]।
मुझको पूछा तो कुछ गज़ब न हुआ,
मै गरीब और तू गरीबनवाज़।

रदीफ 'शीन'.

[३९]

न लेवे गर ख़से जौहर[४], तरावत[५] सब्ज़ए ख़त[६] से,
लगावे ख़ान ए आईन[७] मे रूए निगार[८] आतिश।
फरोगे हुस्न[९] से होती है हल्ले मुश्किले आशिक[१०],
न निकले शमअके पा-से निकाले गर न ख़ार आतश।

रदीफ 'ऐन'.

[४०]

जादए रह[११] ख़ुर[१२] को वक़्ते शाम है तारे शुआअ[१३],
चर्ख़ वा करता है माहे नौ[१४] से आगोशे विदाअ[१५]।

[४१]

रुख़े निगारसे, है सोज़े जाविदानिए शमअ[१६],
हुई है आतशे गुल[१७], आबे ज़िन्दगानिए शमअ।

१ कटाक्ष, २ पूर्णत मनोभावोका उभाडनेवाला, ३ नखसे शिख तक तेरा हाव-भाव, ४ जौहरके तृण, ५ शीतलता, तरी, ६ मुखलोम, ७ हृदय, ८ रूपसीका मुख, ९ सौन्दर्यकी कान्ति, १० प्रेमीकी कठिनाइयोका समाधान, ११ पथ-चिह्न, १२ सूर्य, १३ किरणका तार, १४ नवचन्द्र, १५ विदाईकी गोद, १६ शमअ (दीपक) की अमर जलन, १७ पुष्प (माशूक) की कान्ति।

ज़बाने अह्ले ज़बाँ[1] में, है मर्ग ख़ामोशी,
यह बात बज़्ममें, रौशन हुई ज़बानिए शमअ।
ग़म उसको हसरते परवान.का है, ऐ शोल',
तेरे लरज़नेसे ज़ाहिर है नातवानिए शमअ।

रदीफ़ 'काफ़' :

[४२]

ज़ेहमत न खीचूँगा, पै ए तौक़ीरे दर्द[2],
है खन्द ए क़ातिल[3] है, सरतापा नमक।
याद है, ग़ालिब, तुझे वह दिन, कि वज्दे ज़ौक़[4] में,
ज़ख़्म से गिरता, तो मैं पलकोंसे चुनता था नमक।

[४३]

आहको चाहिए इक उम्र, असर होने तक
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़के सर होने तक।
दामे हर मौज[5]में है, हल्क.ए सद कामे निहङ्ग[6],
देखें क्या गुज़रे है क़तरे प, गुहर होने तक।
आशिक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब,
दिलका क्या रङ्ग करूँ, ख़ूने जिगर होने तक।
हमने माना, कि तग़ाफुल[7] न करोगे, लेकिन,
ख़ाक हो जायँगे हम, तुमको ख़बर होने तक।

---

१ भाषाविदोकी भाषा, २ वेदनाके सम्मानके लिए, ३ कातिलकी हँसीके समान, ४ आनन्द एव उमगकी मत्तता, ५ लहरोका जाल, ६ सैकडो मगरोंके खुले जबडे, ७ उपेक्षा।

ऐ तेरा गमज़ा[1], यक कलम अंगेज[2],
ऐ तेरा ज़ुल्म सर बसर अन्दाज़[3]।
मुझको पूछा तो कुछ गज़ब न हुआ,
मैं गरीब और तू गरीबनवाज़।

रदीफ 'शीन':

[३९]

न लेवे गर ख़से जौहर[4], तरावत[5] सब्ज़ए ख़त[6]से,
लगावे ख़ान ए आईन[7] में रूए निगार[8] आतिश।
फरोगे हुस्न[9]से होती है हल्ले मुश्किले आशिक[10],
न निकले शमअके पा-से निकाले गर न ख़ार आतश।

रदीफ 'ऐन':

[४०]

जादए रह[11] ख़ुर[12]को वक़्ते शाम है तारे शुआअ[13],
चर्ख़ वा करता है माहे नौ[14] से आगोशे विदाअ[15]।

[४१]

रुख़े निगारसे, है सोज़े जाविदानिए शमअ[16],
हुई है आतशे गुल[17], आबे ज़िन्दगानिए शमअ।

१ कटाक्ष, २ पूर्णत मनोभावोका उभाडनेवाला, ३ नखसे शिख तक तेरा हाव-भाव, ४ जौहरके तृण, ५ शीतलता, तरी, ६ मुखलोम, ७ हृदय, ८ रूपसीका मुख, ९ सौन्दर्यकी कान्ति, १० प्रेमीकी कठिनाइयोका समाधान, ११ पथ-चिह्न, १२ सूर्य, १३ किरणका तार, १४ नवचन्द्र, १५ विदाईकी गोद, १६ शमअ (दीपक) की अमर जलन, १७ पुष्प (माशूक) की कान्ति।

ज़बाने अह्ले ज़र्बां[1] में, है मर्ग ख़ामोशी,
यह बात बज़्ममें, रौशन हुई ज़बानिए शमअ।
ग़म उसको हसरते परवान·ऽा है, ऐ शोल',
तेरे लरज़नेसे ज़ाहिर है नातवानिए शमअ।

रदीफ़ 'काफ़' :

[४२]

ज़ह्मत न खींचूँगा, पै ए तौक़ीरे दर्द[2],
है खन्द·ए क़ातिल[3] है, सरतापा नमक।
गालिब, तुझे वह दिन, कि वज्दे ज़ौक़[4] में,
गिरता, तो मैं पलकोंसे चुनता था नमक।

[४३]

आहको चाहिए इक उम्र, असर होने तक
कौन जीता है तेरी जुल्फके सर होने तक।
दामे हर मौज[5] में है, हल्क·ए सद कामे निहङ्ग[6],
देखें क्या गुजरे है कतरे प, गुहर होने तक।
आशिक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब,
दिलका क्या रङ्ग करूँ, ख़ूने जिगर होने तक।
हमने माना, कि तग़ाफुल[7] न करोगे, लेकिन,
ख़ाक हो जायँगे हम, तुमको ख़बर होने तक।

---

१ भाषाविदोकी भाषा, २ वेदनाके सम्मानके लिए, ३ क़ातिलकी हँसीके समान, ४ आनन्द एव उमगकी मत्तता, ५ लहरोंका जाल, ६ सैकड़ो मगरोंके खुले जबडे, ७ उपेक्षा।

परतवे ख़ुर[1] से है शबनमको फ़नाकी तालीम,
मै भी हूँ एक इनायतकी नज़र होने तक।
गमे हस्तीका, 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग[2] इलाज,
शमअ हर रगमे जलती है सहर होने तक।

रदीफ 'गाफ़'

[४४]

गर तुझको है यक़ीने इजाबत[3] दु'आ न माँग,
या'नी बगैर यक दिल बे मुद्द'आ[4] न माँग।
आता है दागे हसरते दिलका शुमार[5] याद,
मुझसे मेरे गुनहका हिसाब, ऐ ख़ुदा न माँग।

रदीफ़ 'लाम' :

[४५]

है किस क़दर हलाके फरेबे वफाए गुल[6],
बुलबुलके कारोबार प है ख़न्द हाए गुल।
शर्मिन्द रखते है मुझे बादे बहारसे,
मीनाए बेशराबो दिले बेहवाए गुल[7]।
तेरे ही जल्व का है यह धोका, कि आज तक,
बेइख्तियार दौडे है गुल दरकफाए गुल[8]।

---

१ सूर्य-प्रकाश, २ मृत्युके सिवा, ३ स्वीकृतिका विश्वास, ४ निष्काम हृदयके बिना, ५ हृदयकी अपूर्ण कामनाओके दागकी गिनती, ६ गुलकी वफाके भ्रमका शिकार, ७ मदिरारिक्त मधुपात्र (दीनता) एव कुसुम-कामना-रहित हृदय (बुझा हृदय) ८ फूलके पीछे फूल।

रदीफ़ 'मीम' :

[४६]

महफ़िलें वरहम[1] करे है, गंजफ़ा बाज़े ख़याल[2],
है वरक़ गर्दानिए नैरंगे यक बुतख़ाना हम[3]।
दाइमुल हब्स[4] इसमें है लाखों तमन्नाएँ 'असद',
जानते हैं सीन ए पुरखूँको ज़िन्दाँख़ान हम[5]।

[४७]

मुझको दयारे गैर[6]में मारा, वतनसे दूर,
रखली मेरे ख़ुदाने, मेरी बेकसीकी शर्म।
वह हल्क़हाए जुल्फ़[7], कमीं[8] में है, ऐ ख़ुदा,
रख लीजो मेरे दाव ए वारस्तगीकी शर्म[9]।

रदीफ़ 'नून' :

[४८]

वह फ़ुराक़ और वह विसाल कहाँ,
वह शबोरोज़ो माहोसाल कहाँ?
दिल तो दिल, बस दिमाग भी न रहा,
शौरे सौदाए ख़त्तो ख़ाल कहाँ[10]?
थी वह इक शख़्सके तसव्वुरसे
अब वह रा'नाइए ख़याल[11] कहाँ?

---

१ वखेरना, विगाडना, २ कल्पनाका गजीफबाज़ या खिलाडी, ३ किसी बुतखानेकी तिलिस्मी सूरतोंके उलटते हुए पन्ने, ४ सदाके लिए बन्दी, ५ हम रक्तरंजित सीनेको बन्दीगृह समझते हैं, ६ परदेश, ७ अलक-जाल, ८ घात, ९ स्वतन्त्र होनेका दावा, १० वह रूपके प्रति उन्मादकी धूप अब कहाँ है? ११ कल्पनाका शृंगार।

[४९]

की वफा हमसे, तो गैर उसको जफ़ा कहते है,
होती आई है, कि अच्छोंको बुरा कहते है।
आज हम अपनी परीशानिए ख़ातिर[1] उनसे,
कहने जाते तो हैं, पर देखिए क्या कहते है।
है परे सरहदे इदराक[2] से, अपना मस्जूद[3],
क़िबलेको अह्लेनज़र[4] क़िबलनुमॉ[5] कहते है।

[५०]

हो गये है जमअ, अज्जाए निगाहे आफताब[6],
ज़र्रे, उसके घरकी दीवारोके रौज़न[7] मे नहीं।
रौनक़े हस्ती है इश्के खान वीरॉसाज़से[8]
अजुमन बेशमअ[9] है, गर बर्क़ ख़िर्मनमे नहीं।
थी वतनमें शान क्या गालिब, कि हो गुर्बतमें क़द्र,
बेतकल्लुफ, हूँ वह मुश्तेख़स[10] कि गुलख़न[11] मे नहीं।

[५१]

मेहरबॉ होके बुलालो मुझे, चाहो जिस वक़्त,
मै गया वक़्त नहीं हूँ, कि फिर आ भी न सकूँ।
ज़हू मिलता ही नहीं मुझको, सितमगर वर्नः,
क्या क़सम है तेरे मिलनेकी कि खा भी न सकूँ।

---

१ हृदय-व्यथा, २ ज्ञान-सीमा, ३ उपास्य, ४ ज्ञानी, दृष्टि रखनेवाले, ५ दिशादर्शक, ६ सूयके दृष्टि-खण्ड (किरणें), ७ रोशनदान, ८ घरको वीरान कर देनेवाले प्रेमसे ही अस्तित्वकी शोभा है, ९ दीपरहित, १० मुट्ठीभर घास, ११ भट्ठी।

[५२]

क़र्ज़की पीते थे मय, लेकिन समझते थे, कि हाँ,
रंग लायेगी हमारी फाक़ मस्ती एक दिन।
नग्महाए गमको भी, ऐ दिल गनीमत जानिए,
वेसदा हो जायगा यह साज़े हस्ती एक दिन।

[५३]

किस मुँहसे शुक्र कीजिए, इस लुत्फे ख़ास[1] का,
पुरसिश[2] है और पाये सुख़न[3] दरमियाँ नहीं।
वोसः नहीं, न दीजिए, दुश्नाम[4] ही सही,
आख़िर ज़बाँ तो रखते हो तुम, गर दहाँ[5] नहीं।
है नगे सीन.[6], दिल अगर आतशकद.[7] न हो,
है आ'रे दिल[8], नफस अगर आज़रफ़िशाँ[9] नहीं।

[५४]

कहते है, जीते हैं उम्मीद प लोग,
हमको जीनेकी भी उम्मीद नहीं।

[५५]

जहाँ तेरा नक़्शे क़दम[10] देखते हैं,
ख़ियावाँ-ख़ियावाँ[11] इरम[12] देखते है।

---

१ विशेष कृपा, २ पूछ-ताछ, ३ वाणीके चरण, ४ गाली, छोटा (सुन्दर) मुँह, ६. वक्षके लिए लज्जाकी वात, ७ अग्निशाला, दिलके लिए लज्जा, ९, अग्निवर्षक, ज्वालामुखी, १० चरण-चिह्न, १ क्यारी-क्यारी, १२ नन्दन-कानन।

तमाशा कि ऐ महे आईन.दारी[1],
तुझे किस तमन्नासे हम देखते है ।

[५६]

ता फिर न इन्तिज़ारमे नींद आये उम्र भर,
आनेका उहद कर गये, आये जो ख़्वाबमे ।
क़ासिद[2] के आते-आते, ख़त इक और लिख रखूॅ,
मै जानता हूॅ, जो वह लिखेंगे जवाबमे ।
है तेवरी चढ़ी हुई, अन्दर निक़ाबके,
है इक शिकन पडी हुई, तर्फे निकाब[3] में ।
लाखों लगाव, एक चुराना निगाहका,
लाखो बनाव, एक बिगडना इताब[4] मे ।

[५७]

जाँ क्यो निकलने लगती है तनसे दमे समाअ[5],
गर वह सदा[6] समाई है चंग[7] रबाब[8] मे ।
रौ[9] में है रख्शे-उम्र[10], कहॉ देखिए, थमे,
नै हाथ बागपर है, न पा है रिकाबमें ।
अस्ले[11] शुहूदो[12] शाहिदो[13] मशहूद[14] एक है,
हैरॉ हूॅ, फिर मुशाहिद[15] है किस हिसाबमे ।

---

१ अपने शृङ्गारमे लीन, २ पत्र-वाहक, ३ निकाबके कोनेमे, ४ क्रोध ५ गान-श्रवणके समय, ६ ध्वनि ७ एक वाद्य, ८ सितार, ९ गति, १० जीवन-अश्व, ११ मूल, १२ उपस्थित, १३ प्रत्यक्षदर्शी, १४ दर्शनीय, (११–१२–१४ साधक और साध्यकी अवस्थाएँ है), १५ दृश्य, देखना, अवलोकना ।

है मुश्तमिल नुमूदे सुवर[1] पर वजूदे बह्र[2]
यॉ क्या धरा है कतर ओ मौजो हुबाब[3] में ।
शर्म इक अदाए नाज है, अपने ही से सही,
हैं कितने बेहिजाब, कि हैं यों हिजाबमें ।
आराइशे जमाल[4] से फारिग नहीं हनोज़,
पेशे नज़र है आइना दाइम निकाबमें ।
है ग़ैबे ग़ैब[5], जिसको समझते हैं हम शुहूद,
हैं ख्वाबमें हनोज़, जो जागे है ख्वाबमें ।

[५८]

हैरॉ हूँ, दिलको रोऊँ, कि पीटूँ जिगरको मैं,
मक़दूर[6] हो, तो साथ रखूँ नौहगर[7] को मैं ।
छोडा न रश्कने, कि तेरे घरका नाम लूँ,
हर इकसे पूछता हूँ, कि जाऊँ किधरको मैं ।
चलता हूँ थोडी दूर, हर-इक तेज़रौके साथ,
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं ।
ख़्वाहिशको अहमक़ोंने, परस्तिश[8] दिया क़रार,
क्या पूछता हूँ उस बुते बेदादगर[9] को मैं ।
फिर बेख़ुदीमें भूल गया, राहे कूए यार[10],
जाता वगर्ना एक दिन अपनी ख़बरको मैं ।

१ रूपाभिव्यक्तिमें सम्मिलित है, २ सागरका अस्तित्व, ३ बिन्दु, तरंग और बुद्बुद, ४ सौन्दर्य-शृङ्गार, ५ परोक्षका परोक्ष, ६ सामर्थ्य, ७ शोक मनानेवाला, ८ पूजा, ९ ज़ालिम मा'शूक़, १० प्रियकी गलीका मार्ग ।

[५६]

मै जो कहता हूँ, कि हम लेंगे क़यामतमे तुम्हें,
किस रऊनत[1] से वह कहते है कि हम हूर नहीं।

[६०]

दोनो जहान देके, वह समझे, यह ख़ुश रहा,
यॉ आ पड़ी यह शर्म, कि तकरार क्या करें।
थक-थकके, हर मक़ाम प दो-चार रह गये,
तेरा पता न पायें, तो नाचार क्या करें।
क्या शमअके नहीं है हवाख़्वाह[2] अह्ले बज़्म,
हो ग़म ही जॉगुदाज़[3], तो ग़मख़्वार क्या करें।

[६१]

यह हम जो हिज्रमें, दीवारो दरको देखते है,
कभी सबाको, कभी नामबरको देखते है।
वह आयें घरमें हमारे, ख़ुदाकी क़ुदरत है,
कभी हम उनको, कभी अपने घरको देखते है।

[६२]

आहका किसने असर देखा है,
हम भी इक अपनी हवा बॉधते है।*
तेरी फ़ुर्सतके मुक़ाबिल, ऐ उम्र,
बर्क़को पा ब हिना[4] बॉधते है।

---

१ गर्व, २ शुभचिन्तक, ३ प्राण-लेवा, ४ मेहदी-रजित चरण (गतिहीन)।

★ उर्दूमे वर्णनको मज़मून बांधना कहते है। हवा बांधनाका अर्थ ।क बांधना, डूनकी लेना है।

[६३]

क्यों गर्दिशे मुदाम[1] से घबरा न जाये दिल,
इंसान हूँ, पियाल. वो सागर नहीं हूँ मैं।†
यारब' ज़मान. मुझको मिटाता है किसलिए,
लौहे जहाँ[2] प हर्फ़े मुकर्रर[3] नहीं हूँ मैं।
गालिब, वज़ीफ़ःख्वार हो, दो शाहको दुआ,
वह दिन गये कि कहते थे, नौकर नहीं हूँ मैं।

[६४]

सब कहाँ, कुछ लाल' ओ गुलमें नुमायाँ हो गयीं,
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी, कि पिन्हाँ[4] हो गयीं।
थीं बनातुन्ना'श गर्दू[5], दिनको पर्देमें निहाँ,
शबको उनके जीमें क्या आई, कि उरियाँ हो गयीं।
जूए खूँ आँखोंसे बहने दो, कि है शामे फिराक़,
मैं यह समझूँगा, कि शमएँ दो फरो[6]ज़ाँ हो गयीं।
नींद उसकी है, दिमाग उसका है, रातें उसकी है,
तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर, परीशाँ हो गयीं।
वह निगाहें क्यो हुई जाती हैं, यारब, दिलके पार,
जो मेरी कोताहिए क़िस्मतसे मिज़्गाँ हो गयीं।

---

१ सदाके चक्कर (परीशानी), २ ससार-पृष्ठ, ३ दुबारा लिखा (फ़ालतू) अक्षर, ४ विलीन, ५ सप्तर्षि-मण्डल, ६ दीप्त।

† प्राचीन कालमे सारी महफिलके लोग एक ही मधु-पात्रसे पीते थे इसलिए वह निरन्तर घूमता रहता था।

[५६]

मै जो कहता हूँ, कि हम लेंगे क़यामतमे तुम्हें,
किस रऊनत[1] से वह कहते है कि हम हूर नहीं।

[६०]

दोनो जहान देके, वह समझे, यह ख़ुश रहा,
यॉ आ पडी यह शर्म, कि तकरार क्या करें।
थक-थकके, हर मकाम प दो-चार रह गये,
तेरा पता न पायें, तो नाचार क्या करें।
क्या शमअके नहीं है हवाख़्वाह[2] अह्ले बज़्म,
हो गम ही जॉगुदाज़[3], तो गमख़्वार क्या करें।

[६१]

यह हम जो हिज्रमें, दीवारो दरको देखते है,
कभी सबाको, कभी नामबरको देखते है।
वह आयें घरमें हमारे, ख़ुदाकी क़ुदरत है,
कभी हम उनको, कभी अपने घरको देखते है।

[६२]

आहका किसने असर देखा है,
हम भी इक अपनी हवा बॉधते है।*
तेरी फुर्सतके मुक़ाबिल, ऐ उम्र,
बर्क़को पा ब हिना[4] बॉधते है।

---

१ गर्व, २ शुभचिन्तक, ३ प्राण-लेवा, ४ मेहदी-रजित चरण (गतिहीन)।

* उर्दूमे वर्णनको मज़मून बांधना कहते है। हवा बांधनाका अर्थ धाक बांधना, डीनकी लेना है।

[६३]

क्यों गर्दिशे मुदाम[1] से घबरा न जाये दिल,
इंसान हूँ, पियाल वो सागर नहीं हूँ मैं।†
यारब' ज़माना मुझको मिटाता है किसलिए,
लौहे जहाँ[2] प हर्फ़े मुक़र्रर[3] नहीं हूँ मैं।
ग़ालिब, वज़ीफ़ख्वार हो, दो शाहको दुआ,
वह दिन गये कि कहते थे, नौकर नहीं हूँ मैं।

[६४]

सब कहाँ, कुछ लाल. ओ गुलमें नुमायाँ हो गयीं,
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी, कि पिन्हाँ[4] हो गयीं।
थीं बनातुन्ना'श गर्दूं[5], दिनको पर्देमें निहाँ,
शबको उनके जीमें क्या आई, कि उरियाँ हो गयीं।
जूए खूँ आँखोंसे बहने दो, कि है शामे फ़िराक़,
मैं यह समझूँगा, कि शमएँ दो फ़रो[6]ज़ाँ हो गयीं।
नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, रातें उसकी हैं,
तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर, परीशाँ हो गयीं।
वह निगाहें क्यों हुई जाती हैं, यारब, दिलके पार,
जो मेरी कोताहिए क़िस्मतसे मिज़्गाँ हो गयीं।

१ सदाके चक्कर (परीशानी), २ संसार-पृष्ठ, ३ दुबारा लिखा (फ़ालतू) अक्षर, ४ विलीन, ५ सप्तर्षि-मण्डल, ६ दीप्त।

† प्राचीन कालमें सारी महफ़िलके लोग एक ही मधु-पात्रसे पीते थे इसलिए वह निरन्तर घूमता रहता था।

जाँ फिज़ा है बाद, जिसके हाथमें जाम आ गया,
सब लकीरें हाथकी, गोया रगेजाँ हो गयीं।
हम मुव्वहिद[१] है, हमारा केश[२] है, तर्केरुसूम[३],
मिल्लतें जब मिट गयीं, अज्ज़ाए ईमाँ[४] हो गयीं।
रंजसे ख़ूगर[५] हुआ इसाँ, तो मिट जाता है रंज,
मुश्किलें मुझपर पड़ीं इतनी, कि आसाँ हो गयीं।

[६५]

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ, तो सहल है,
दुश्वार तो यही है, कि दुश्वार भी नहीं।
इस सादगी प कौन न मर जाये, ऐ खुदा,
लड़ते है और हाथमें तलवार भी नहीं।

[६६]

दिल ही तो है, न सगो ख़िश्त[६], दर्दसे भर न आये क्यो,
रोयेंगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताये क्यो?
दैर[७] नहीं, हरम[८] नहीं, दर[९] नहीं, आस्ताँ[१०] नहीं,
बैठे है रहगुज़र[११] प हम, कोई हमें उठाये क्यो?
जब वह जमाले दिलफरोज़[१२], सूरते मेह्रे नीमरोज़[१३],
आप ही हो नज़ार सोज़[१४] पर्देमें मुँह छुपाये क्यो?

---

१ सृष्टिकी एकतामें विश्वास रखनेवाला, २ ढग, धर्म, ३ परम्परा-त्याग, ४ आस्थाके अग, ५ अभ्यस्त, ६ पत्थर-ईंट, ७ मन्दिर, ८ मस्जिद, का'ब, ९ द्वार, १० चौखट, ११ मार्ग, १२ दिलको प्रकाशित करनेवाला रूप, १३ मध्याह्नके सूर्य-समान, १४ दृष्टिको जलानेवाला।

अगर वह सरोक़द, गर्मे ख़िरामे नाज़[1] आ जावे,
कफ़े हर ख़ाके गुलशन[2] शक्ले कुमरी नाल फ़र्सा हो[3]।

[६६]

ता'अत[4] मे ता रहे न मय ओ अंगबी[5] की लाग,
दोज़खमें डाल दो कोई लेकर बिहिश्तको।
हूँ मुनहरिफ़[6] न क्यो, रहो रस्मे सवाबसे,
टेढा लगा है क़त, क़लमे सर नविश्त[7] को।

[७०]

है आदमी बजाए खुद इक महशरे ख़याल[8],
हम अंजुमन समझते है, ख़ल्वत[9] ही क्यों न हो।

[७१]

वफादारी, बशर्ते उस्तुवारी[10], अस्ले ईमाँ[11] है,
मरे बुतख़ाने मे, तो का'बेमे गाडो बरहमनको।
शहादत थी मेरी क़िस्मतमे, जो दी थी यह खू मुझको,
जहाँ तलवारको देखा, झुका देता था गर्दनको।
न लुटता दिनको, तो कब रातको यो बेखबर सोता,
रहा खटका न चोरीका, दुआ देता हूँ रहज़न[12] को।

---

१ मन्द मन्थर गतिवाला, २ बागको प्रत्येक मुट्ठीभर मिट्टी, ३ फाख्तेकी तरह अन्तर्नाद कर उठे अर्थात् हज़ार जानसे आशिक हो जाये, ४ पूजा, ५ मदिरा और मधु, ६ विद्रोही, ७ भाग्यलेखनी, ८ कल्पनाका प्रलय, ९ एकान्त, १० स्थायित्वकी शर्तके साथ वफादारी, ११ धर्मका मूल, १२ लुटेरा।

[७२]

धोता हूँ जब मैं पीनेको, उस सीमतन[1] के पाँव,
रखता है, ज़िदसे, खेंचके बाहर लगनके पाँव।
अल्लह रे ज़ौक़े दश्तनवर्दी, कि बा'दे मर्ग,
हिलते हैं खुद-बखुद मेरे, अन्दर कफ़नके पाँव।
शबको किसीके ख्वाबमें आया न हो कहीं,
दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुक बदनके पाँव।

[७३]

वाँ पहुँचकर जो ग़श आता पैहम[2] है हमको,
सदरह[3] आहंगे ज़मीं बोसे क़दम[4] है हमको।
दिलको मैं, और मुझे दिल, महे वफ़ा रखता है,
किस क़दर ज़ौक़े गिरफ्तारिए हम है हमको।
तुम वह नाज़ुक, कि खमोशीको फ़ुग़ाँ कहते हो,
हम वह आजिज़, कि तग़ाफ़ुल भी सितम है हमको।

[७४]

तुम जानो, तुमको ग़ैरसे जो रस्मो-राह हो,
मुझको भी पूछते रहो, तो क्या गुनाह हो।
उभरा हुआ निक़ाबमें है उनके, एक तार,
मरता हूँ मैं, कि यह न किसीकी निगाह हो।
सुनते हैं जो बिहिश्तकी ता'रीफ़, सब दुरुस्त,
लेकिन ख़ुदा करे, वह तेरी जल्वःगाह हो।

---

१ चन्द्रमुखी, रजत कान्तिवाली, २ निरन्तर (पैहम), ३ सौ वार, ४ चरण चूमनेके लिए जमीनपर झुकनेकी आकांक्षा।

अगर वह सरोकद, गर्मे ख़िरामे नाज़[१] आ जावे,
कफे हर ख़ाके गुलशन[२] शक्ले कुमरी नाल फर्सा हो[३]।

[६६]

ता'अत[४] मे ता रहे न मय ओ ऑगबी[५] की लाग,
दोज़खमे डाल दो कोई लेकर बिहिश्तको।
हूँ मुनहरिफ[६] न क्यो, रहो रस्मे सवाबसे,
टेढा लगा है क़त, क़लमे सर नविश्त[७] को।

[७०]

है आदमी बजाए ख़ुद इक महशरे ख़याल[८],
हम अजुमन समझते है, ख़ल्वत[९] ही क्यों न हो।

[७१]

वफादारी, बशर्ते उस्तुवारी[१०], अस्ले ईमाँ[११] है,
मरे बुतख़ाने मे, तो का'बेमें गाडो बरहमनको।
शहादत थी मेरी क़िस्मतमे, जो दी थी यह ख़ू मुझको,
जहाँ तलवारको देखा, झुका देता था गर्दनको।
न लुटता दिनको, तो कब रातको यो बेख़बर सोता,
रहा खटका न चोरीका, दुआ देता हूँ रहज़न[१२] को।

---

१ मन्द मन्थर गतिवाला, २ बागको प्रत्येक मुट्ठीभर मिट्टी, ३ फाख्तेकी तरह अन्तर्नाद कर उठे अर्थात् हजार जानसे आशिक हो जाये, ४ पूजा, ५ मदिरा और मधु, ६ विद्रोही, ७ भाग्यलेखनी, ८ कल्पनाका प्रलय, ९ एकान्त, १० स्थायित्वकी शर्तके साथ वफादारी, ११ धर्मका मूल, १२ लुटेरा।

[७२]

धोता हूं जब मैं पीनेको, उस सीमतन[1] के पॉव,
रखता है, ज़िदसे, खेंचके बाहर लगनके पॉव।
अल्लह रे ज़ौक़े दश्तनवर्दी, कि बा'दे मर्ग,
हिलते है खुद-बखुद मेरे, अन्दर कफ़नके पॉव।
शबको किसीके ख्वाबमें आया न हो कहीं,
दुखते है आज उस बुते नाज़ुक बदनके पॉव।

[७३]

वॉ पहुँचकर जो ग़श आता पैहम[2] है हमको,
सदरह[3] आहंगे ज़मीं बोसे क़दम[4] है हमको।
दिलको मैं, और मुझे दिल, महे वफ़ा रखता है,
किस क़दर ज़ौक़े गिरफ्तारिए हम है हमको।
तुम वह नाज़ुक, कि खमोशीको फ़ुग़ॉ कहते हो,
हम वह आजिज़, कि तग़ाफ़ुल भी सितम है हमको।

[७४]

तुम जानो, तुमको ग़ैरसे जो रस्मो-राह हो,
मुझको भी पूछते रहो, तो क्या गुनाह हो।
उभरा हुआ निक़ाबमें है उनके, एक तार,
मरता हूँ मैं, कि यह न किसीकी निगाह हो।
सुनते हैं जो बिहिश्तकी ता'रीफ़, सब दुरुस्त,
लेकिन खुदा करे, वह तेरी जल्वगाह हो।

---

१ चन्द्रमुखी, रजत कान्तिवाली, २ निरन्तर (पैहम), ३ सौ बार,
४ चरण चूमनेके लिए ज़मीनपर झुकनेकी आकांक्षा।

अगर वह सरोक़द, गर्मे ख़िरामे नाज़[1] आ जावे,
कफ़े हर ख़ाके गुलशन[2] शक्ले कुमरी नाल फर्सा हो[3]।

[६९]

ता'अत[4] मे ता रहे न मय ओ अँगबी[5] की लाग,
दोज़खमें डाल दो कोई लेकर बिहिश्तको।
हूँ मुनहरिफ[6] न क्यो, रहो रस्मे सवाबसे,
टेढा लगा है क़त, क़लमे सर नविश्त[7] को।

[७०]

है आदमी बजाए ख़ुद इक महशरे ख़याल[8],
हम अजुमन समझते है, ख़ल्वत[9] ही क्यों न हो।

[७१]

वफादारी, बशर्ते उस्तुवारी[10], अस्ले ईमाँ[11] है,
मरे बुतख़ान में, तो का'बेमे गाडो बरहमनको।
शहादत थी मेरी क़िस्मतमे, जो दी थी यह खू मुझको,
जहाँ तलवारको देखा, झुका देता था गर्दनको।
न लुटता दिनको, तो कब रातको यो बेख़बर सोता,
रहा खटका न चोरीका, दुआ देता हूँ रहज़न[12] को।

---

१ मन्द मन्थर गतिवाला, २ बागको प्रत्येक मुट्ठीभर मिट्टी, ३ फाख्तेकी तरह अन्तर्नाद कर उठे अर्थात् हजार जानसे आशिक हो जाये, ४ पूजा, ५ मदिरा और मधु, ६ विद्रोही, ७ भाग्यलेखनी, ८ कल्पनाका प्रलय, ९ एकान्त, १० स्थायित्वकी शर्तके साथ वफादारी, ११ धर्मका मूल, १२ लुटेरा।

[७२]

धोता हूँ जब मै पीनेको, उस सीमतन[1] के पॉव,
रखता है, ज़िद्से, खेंचके बाहर लगनके पॉव ।
अल्लह् रे ज़ौक़े दश्तनवर्दी, कि बा'दे मर्ग,
हिलते है खुद-बखुद मेरे, अन्दर कफ़नके पॉव ।
शबको किसीके ख्वाबमे आया न हो कहीं,
दुखते है आज उस बुते नाज़ुक बदनके पॉव ।

[७३]

वॉ पहुँचकर जो गश आता पैएहम[2] है हमको,
सदरह[3] आहगे ज़मीं बोसे क़दम[4] है हमको ।
दिलको मै, और मुझे दिल, महे वफा रखता है,
किस क़दर ज़ौक़े गिरफ्तारिए हम है हमको ।
तुम वह नाज़ुक, कि खमोशीको फुग़ॉ कहते हो,
हम वह आजिज़, कि तगाफ़ुल भी सितम है हमको ।

[७४]

तुम जानो, तुमको गैरसे जो रस्मो-राह हो,
मुझको भी पूछते रहो, तो क्या गुनाह हो ।
उभरा हुआ निक़ाबमें है उनके, एक तार,
मरता हूँ मै, कि यह न किसीकी निगाह हो ।
सुनते है जो बिहिश्तकी ता'रीफ, सब दुरुस्त,
लेकिन खुदा करे, वह तेरी जल्वगाह हो ।

---

१ चन्द्रमुखी, रजत कान्तिवाली, २ निरन्तर (पैहम), ३ सौ बार,
४ चरण चूमनेके लिए ज़मीनपर झुकनेकी आकाक्षा ।

[७५]

किसीको देके दिल कोई नवासजे फुगॉ[१] क्यो हो,
न हो जब दिल ही सीनेमे, तो फिर मुँहमे ज़बॉ क्यो हो।
वफा कैसी, कहॉका इश्क़, जब सर फोडना ठहरा,
तो फिर, ऐ संगे-दिल, तेरा ही संगे आस्तॉ क्यो हो।
यह कह सकते हो, हम दिलमे नहीं है, पर यह बतलाओ,
कि जब दिलमे तुम्हीं तुम हो, तो ऑखोसे निहॉ क्यो हो।

[७६]

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहॉ कोई न हो,
हमसुखन[२] कोई न हो और हमज़बॉ[३] कोई न हो।
बेदरो दीवार-सा इक घर बनाया चाहिए,
कोई हमसाय न हो और पास्बॉ[४] कोई न हो।
पडिए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार,
और अगर मर जाइए, तो नौहख्वॉ[५] कोई न हो।

रदीफ़ 'हे' :

[७७]

है सब्ज़ज़ार[६] हर दरो दीवारे गमकदः[७],
जिसकी बहार यह हो, फिर उसकी खिज़ॉ न पूछ।
नाचार बेकसीकी भी हसरत उठाइए,
दुश्वारिए रह ओ सितमे हमरहॉ[८] न पूछ।

१ रोदनका स्वर उत्पन्न करनेवाला, २ बात करनेवाला, ३ अपनी भाषा बोलनेवाला, ४ पहरेदार, ५ रोनेवाला, ६ हरीतिमा, ७ शोक-गृहके द्वार-दीवार, ८ सहपथिकोके अत्याचार।

रदीफ़ 'इये' :

[७८]

सीखे हैं महरुख़ों[1] के लिए हम मुसव्विरी[2],
तक़रीब कुछ तो बहे मुलाक़ात चाहिए।
मयसे ग़रज़ निशात है किस रूसियाह[3] को,
इक गूनः[4] बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए।

[७९]

घरमें था क्या, कि तेरा ग़म उसे ग़ारत करता,
वह जो रखते थे हम इक हसरते ता'मीर[5], सो है।

[८०]

ग़मे दुनियासे, गर पाई थी फ़ुर्सत सर उठानेकी,
फ़लकका देखना, तक़रीब[6] तेरे याद आनेकी।
उन्हें मंज़ूर अपने ज़ख़्मियोंका देख आना था,
उठे थे सैरे गुल्को, देखना शोख़ी बहानेकी।
हमारी सादगी थी, इल्तिफ़ाते नाज़[7] पर मरना,
तेरा आना न था, ज़ालिम, मगर तमहीद[8] जानेकी।

[८१]

दर्दसे मेरे है तुझको बेक़रारी हाय-हाय,
क्या हुई ज़ालिम तेरी ग़फ़्लतशि'आरी[9] हाय-हाय।

---

१ चन्द्रवदनियो, २ चित्रकारी, ३ कृष्णमुख, पापी, ४ किंचित्, ५ निर्माणकी कामना, ६ कारण, ७ माशूककी कृपा, ८ भूमिका, ९ असावधान आचरण।

तेरे दिलमें गर, न था आशोबे गमका हौसल.[1],
तूने फिर क्यों की थी मेरी गमगुसारी हाय-हाय।
क्यों मेरी गमख़्वारगीका तुझको आया था ख़याल,
दुश्मनी अपनी थी मेरी दोस्तदारी हाय-हाय।
उम्र भरका तूने पैमाने वफा बाँधा तो क्या,
उम्रको भी तो नहीं है पायदारी हाय-हाय।
शर्मे रुसवाईसे, जा छुपना निक़ाबे ख़ाकमें,
ख़त्म है उल्फतकी तुझपर पर्दादारी हाय-हाय।
हाथ ही तेगआज्माका कामसे जाता रहा,
दिल प इक लगने न पाया ज़ख्मेकारी हाय-हाय।
किस तरह काटे कोई, शबहाए तारे बर्शकाल[2]
है नज़र खूकर्दए अख्तरशुमारी[3] हाय-हाय।
गोश महजूरे पयाम[4] ओ चश्म महरूमे जमाल[5],
एक दिल, तिसपर यह नाउम्मीदवारी हाय-हाय।
इश्कने पकड़ा न था, 'गालिब', अभी वहशतका[6] रंग,
रह गया, था दिलमें जो कुछ ज़ौकेख़्वारी[7] हाय-हाय।

[८२]

हस्तीके मत फरेबमें आजाइयो, असद,
आलम तमाम हल्कए दामे खयाल[8] है।

१ गमकी परीशानी उठानेका साहस, २ बरसातकी अँधेरी रातें, ३ तारे गिननेकी अभ्यस्त, ४ सन्देशसे वंचित कान, ५ रूपसे वंचित नयन, ६ पागलपन, ७ असम्मानकी अभिरुचि, ८ कल्पना-जालका घेरा।

[८३]

जी जले ज़ौके फना[1] की नातमामी पर न क्यों,
हम नहीं जलते, नफस हरचंद आतशबार[2] है।
आगसे, पानीमें बुझते वक्त, उठती है सदा,
हर कोई दरमाँदगी[3] में नालेसे नाचार है।
आँखकी तस्वीर सरनामे प खेंची है, कि ता,
तुझ प खुल जावे, कि इसको हसरते दीदार[4] है।

[८४]

इश्क़ मुझको नहीं, वहशत ही सही,
मेरी वहशत, तेरी शोहरत ही सही।
क़तअ कीजे न तअल्लुक़ हमसे,
कुछ नहीं है, तो अदावत ही सही।
हम कोई तर्के वफा करते है!
न सही इश्क़ मुसीबत ही सही।
यारसे छेड़ चली जाये, असद,
गर नहीं वस्ल, तो हसरत ही सही।

[८५]

ढूँढे है उस मुग़न्निए आतश नफ़स[5] को जी,
जिसकी सदा हो जल्वःए वर्क़ेफ़ना[6] मुझे।

---

१ मृत्युकी उत्कण्ठा, २ अग्निवर्षक, ३ क्लेश, ४ दर्शनेच्छा,
५ आग लगानेके स्वरमें गानेवाला गायक, ६ मृत्युकी विजलीकी छवि।

मस्तान तय करूँ हूँ रहे वादिए ख़याल[१],
[२]ता बाज़गश्त[३] से न रहे मुद्द'आ मुझे।
खुलता किसी प क्यो, मेरे दिलका मु'आमल,
शेरोके इन्तिख़ाबने रुस्वा किया मुझे।

[८६]

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुज़री, 'गालिब',
हम भी क्या याद करेंगे कि ख़ुदा रखते थे।

[८७]

नज़्ज़ार क्या हरीफ़ हो, उस बर्के हुस्न[४] का
जोशे बहार, जल्वेको जिसके निकाब है।
मै नामुराद दिलकी तसल्लीको क्या करूँ,
माना, कि तेरे रुखसे निगह कामयाब है।
गुज़रा असद, मसर्रते पैगामे यार[५]से,
क़ासिद प मुझको रश्के सवालो जवाब है।

[८८]

देखना क़िस्मत, कि आप अपने प रश्क आ जाये है,
मै उसे देखूँ, भला कब मुझसे देखा जाये है।
हाथ धो दिलसे, यही गर्मी गर अन्देशे[६]में है,
आबगीन[७], तुन्दिए सहबा[८]से पिघला जाये है।

---

१ कल्पनाकी घाटियोके मार्ग, २ जिससे, ३ प्रत्यावर्त्तनमे, लौटते समय, ४ सौन्दर्य-विद्युत्, ५ प्रियके सन्देशके आह्लादसे, ६ चिन्ता, ७ शीशेका पात्र (दिल), ८ मदिराकी तीक्ष्णता।

गैरको, यारब, वह क्योंकर मनए गुस्ताख़ी[1] करे,
गर हया भी उसको आती है तो शर्मा जाये है।
शौक़को यह लत, कि हर दम नालः खेंचे जाइए,
दिलकी वह हालत, कि दम लेनेसे घबरा जाये है।
गरच: है तर्ज़े तग़ाफ़ुल[2], पर्दःदारे राज़े इश्क़[3],
पर हम ऐसे खोये जाते है, कि वह पा जाये है।
होके आशिक़, वह परीरुख़, और नाज़ुक बन गया,
रग खुलता जाये है, जितना कि उडता जाये है।
नक़्शको उसके, मुसव्विर पर भी क्या-क्या नाज़ है,
खेंचता है जिस क़दर, उतना ही खिंचता जाये है।

[८६]

देखना तक़रीरकी लज्जत, कि जो उसने कहा,
मैंने यह जाना, कि गोया यह भी मेरे दिलमें है।
बस, हुजूमे नाउमीदी, ख़ाकमें मिल जायगी,
यह जो इक लज़्ज़त हमारी सइए बेहासिल[4] में है।
जल्वज़ारे आतशे दोज़ख़[5], हमारा दिल सही,
फ़ितनए शोरे क़यामत[6], किसकी आबोगिल[7] मे है।

---

१ धृष्टतासे मना करना, २ यह उपेक्षाका ढग, ३ प्रेम-रहस्यको छिपानेवाला, ४ निष्फल प्रयत्न, ५ नरककी अग्निसे प्रकाशित, ६ प्रलयके शोरका फ़ितना, ७ पानी-मिट्टी (शरीर)।

[६०]

दिलसे तेरी निगाह जिगरतक उतर गयी,
दोनोंको इक अदामे रज़ामन्द कर गयी।
देखो तो, दिलफ़रेबिए अन्दाज़े नक़्शे पा[1],
मौजे ख़िरामे यार[2] भी, क्या गुल कतर गयी[3]।
हर बुल्हवस[4]ने हुस्नपरस्ती[5] श'आर[6] की,
अब आबरूए शेवए अहले नज़र[7] गयी।
नज़्ज़ारे[8]ने भी, काम किया वॉ निक़ाबका,
मस्तीसे हर निगह तेरे रुख़पर बिखर गयी।

[६१]

कोई दिन, गर ज़िन्दगानी और है,
अपने जीमें हमने ठानी और है।
देके ख़त, मुँह देखता है नामबर,
कुछ तो पैग़ामे ज़बानी और है।

[६२]

कोई उम्मीद बर नहीं आती,
कोई सूरत नज़र नहीं आती।
मौतका एक दिन मुअय्यन[9] है,
नींद क्यों रातभर नहीं आती।

१ चरण-चिह्नकी मनमोहकता, २ प्रियकी मथरगतिकी तरग, ३ फूल बिखेर गयी, ४ लोभी, ५ सौन्दर्योपासना, ६ ग्रहणकी, ७ दृष्टि रखनेवालोके आचरणका सम्मान, ८ दर्शन, दृश्य, ९ निश्चित।

आगे आती थी हाले दिल प हँसी,
अब किसी बातपर नहीं आती।
जानता हूँ सवाबे ताअतो ज़ुह्द,
पर तबीअत इधर नहीं आती।
है कुछ ऐसी ही बात, जो चुप हूँ,
वर्न: क्या बात कर नहीं आती।
हम वहाँ है, जहाँ से हमको भी,
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।
मरते हैं आरज़ूमें मरनेकी,
मौत आती है, पर नहीं आती।
का'ब: किस मुँहसे जाओगे 'ग़ालिब',
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

[६३]

दिले नादाँ, तुझे हुआ क्या है,
आख़िर इस दर्दकी दवा क्या है।
हम हैं मुश्ताक़[1] और वह बेज़ार[2],
या इलाही, यह माजरा क्या है।
मै भी मुँहमें ज़बान रखता हूँ,
काश, पूछो, कि मुद्द'आ क्या है।

---

१ उत्सुक, २ रुष्ट,

क़तअ

जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद,
फिर यह हंगाम ऐ ख़ुदा क्या है।
यह परीचेहर लोग कैसे हैं,
ग़मज़ः-ओ-इश्व.-ओ-अदा[1] क्या है।
शिकने ज़ुल्फ़े अंबरीं[2] क्यों है,
निगहे चश्मे सुर्मःसा[3] क्या है।
सब्ज़-ओ-गुल कहाँसे आये हैं,
अब्र क्या चीज़ है, हवा क्या है।
हमको उनसे वफ़ाकी है उम्मीद,
जो नहीं जानते, वफ़ा क्या है।
जान तुमपर निसार करता हूँ,
मैं नहीं जानता, दुआ क्या है।

[६४]

है साइक़.[4] ओ शोल[5] ओ सीमाब[6] का आलम,
आना ही समझमें मेरी आता नहीं, गो आये।
जल्लादसे डरते हैं, न वाइज़से झगड़ते,
हम समझे हुए हैं उसे, जिस भेसमें जो आये।
हाँ अहले तलब, कौन सुने ता'नए नायाफ़्त[7],
देखा, कि वह मिलता नहीं, अपने ही को खो आये।

---

१ कटाक्ष और हाव-भाव, २ अम्बर-गन्धमयी अलकोंके घूंघट, ३ सुरमा (अंजन)-रंजित नयनोंकी चितवन, ४ बिजली, ५ ज्वाला, ६ पारद, ७ वाञ्छित वस्तु न मिलनेका ता'ना।

[६५]

हस्ती हमारी, अपनी फनापर दलील[1] है,
यॉ तक मिटे, कि आप हम अपनी क़सम हुए।
अहले हवसकी फ़तह है तर्के नवर्दे इश्क[2]
जो पॉव उठ गये वही उनके अलम[3] हुए।
छोडी, असद न हमने गदाईमें दिल्लगी,
सायल हुए, तो आशिक़े अहले करम हुए।

[६६]

ज़ुल्मतकद[4] में मेरे शबे गमका जोश[5] है,
इक शमअ है दलीले सेहर, सो ख़मोश है।
ने मुज्दए विसाल[6], न नज़्ज़ार ए जमाल[7],
मुद्दत हुइ, कि आश्तिए चश्मोगोश[8] है।
दीदार बाद, हौसल. साक़ी, निगाह मस्त,
बज्मे ख़याल[9], मयकदए बेख़रोश[10] है।

क़तअ

ए ताज़ वारिदाने बिसाते हवाए दिल[11],
ज़िन्हार, अगर तुम्हें हवसे नायो नोश[12] है।

---

१ प्रमाण, २ लोलुपोकी विजय प्रेमके संघर्षका परित्याग है, ३ झण्डा, ४ तिमिराच्छन्न गृह, ५ ग़मकी रातका तूफ़ान यानी अंधेरा ही अंधेरा, ६ मिलनका सन्देश, ७ रूप-दर्शन, ८ नयन एव कानोकी मैत्री, ९ कल्पनाकी महफ़िल, १० नीरव मद्यशाला, ११ हृदयकी कामनाओंकी महफ़िलमें नये आनेवालो, १२ सुनने और पीनेकी लिप्सा, ।

देखो मुझे, जो दीदए इब्रतनिगाह[१] हो,
मेरी सुनो, जो गोशे नसीहत नियोश[२] है।
साक़ी, बजल्व दुश्मने ईमानो आगही[३]
मुतरिब[४], बनग़्म[५], रहजने तमकीनो होश[६] है।
या शबको देखते थे, कि हर गोशए बिसात[७],
दामाने बाग़बानो कफे गुलफरोश[८] है।
लुत्फे ख़िरामे साकिओ ज़ौक़े सदाए चग[९]
यह जन्नते निगाह[१०], वह फिर्दौसे गोश[११] है।
या सुबहदम जो देखिए आकर, तो बज्ममे,
ने वह सुरूरो सोज़[१२], न जोशो ख़रोश है।
दागे फिराक़े सोहबते शबकी जली हुई[१३],
इक शमअ रह गयी है, सो वह भी ख़मोश है।

[६७]

देते है जन्नत, हयाते दह्[१४] के बदले,
नश्श बअन्दाजे खुमार[१५] नहीं है।

---

१ शिक्षा लेनेवाली आँख, २ सदुपदेशपर ध्यान देनेवाले कान, ३ अपनी छविके कारण साकी ईमान व ज्ञान ले लेता है, ४ गायक, ५ सगीत द्वारा, ६ मनकी शान्ति और बुद्धिको लूट लेता है, ७ फर्शका हरएक कोना, ८ मालीका अचल और फूल बेचनेवालेकी हथेली, ९ माशूक (साकी) की मधर गति और वाद्य ध्वनि, १० स्वर्ग-नयन, ११ स्वर्ग-श्रवण, १२ खुशी और गर्मी, १३ रातकी महफिलके विरहके दागसे जली हुई, १४ इस जगत्के जीवन, १५ मदिरालयके बराबर नशा।

गिरिय· निकाले है तेरी बज़्मसे मुझको,
हाय, कि रोने प इख़्तियार नहीं है।

[६८]

जिस बज़्ममें, तू नाज़से, गुफ़्तारमें आवे[1]
जॉ[2], काल्बुदे[3] सूरते दीवारमें आवे।
सायेकी तरह साथ फिरें सरो सनोबर,
तू इस क़दे दिलकशसे, जो गुलज़ारमें आवे।
उस चश्मे फ़ुसूँगर[4] का, अगर पाये इशारा,
तूती[5] की तरह आइन गुफ़्तारमें आवे।
कॉटोंकी ज़बॉ सूख गयी प्याससे, यारब[6]!
इक आबल पा[7] वादिए पुरख़ार[8] में आवे।
तब चाके गिरेबॉका मज़ा है, दिले नादॉ,
जब इक नफ़स उलझा हुआ, हर तारमें आवे।

[६६]

और बाज़ारसे ले आये, अगर टूट गया,
सागरे जम[9] से मेरा जामे सिफ़ाल[10] अच्छा है।
उनके देखेसे, जो आजाती है मुँहपर रौनक,
वह समझते है कि बीमारका हाल अच्छा है।

---

१ बात करे (ग़ालिबके समयमें यह रूप प्रचलित था, अब नहीं है।), २ प्राण, ३ शरीर, ढाँचा, ४ जादू भरे नयन, ५ तूतीको आइने-के सामने बैठकर बोलना सिखाते हैं, ६ हे ईश्वर, ७ छाले पड़े चरणवाला, ८ कण्टकमय घाटी, ९ ईरानके प्राचीन सम्राट् जमशेदका मधुपात्र, १० मिट्टीका प्याला।

देखो मुझे, जो दीदए इब्रतनिगाह[1] हो,
मेरी सुनो, जो गोशे नसीहत नियोश[2] है।
साक़ी, बजल्व दुश्मने ईमानो आगही[3]
मुतरिब[4], बनग्म[5], रहज़ने तमकीनो होश[6] है।
या शबको देखते थे, कि हर गोशए बिसात[7],
दामाने बागबानो कफे गुलफरोश[8] है।
लुत्फे ख़िरामे साकिओ ज़ौके सदाए चग[9]
यह जन्नते निगाह[10], वह फिर्दौसे गोश[11] है।
या सुबहदम जो देखिए आकर, तो बज्ममे,
ने वह सुरूरो सोज़[12], न जोशो ख़रोश है।
दागे फिराक़े सोहबते शबकी जली हुई[13],
इक शमअ रह गयी है, सो वह भी खमोश है।

[६७]

देते है जन्नत, हयाते दह्र[14] के बदले,
नश्शा बअन्दाजे खुमार[15] नहीं है।

---

१ शिक्षा लेनेवाली आँख, २ सदुपदेशपर ध्यान देनेवाले कान, ३ अपनी छविके कारण साकी ईमान व ज्ञान ले लेता है, ४ गायक, ५ सगीत द्वारा, ६ मनकी शान्ति और बुद्धिको लूट लेता है, ७ फर्शका हरएक कोना, ८ मालीका अचल और फूल बेचनेवालेकी हथेली, ९ माशूक (साकी) की मधुर गति और वाद्य ध्वनि, १० स्वर्ग-नयन, ११ स्वर्ग-श्रवण, १२ खुशी और गर्मी, १३ रातकी महफिलके विरहके दागसे जली हुई, १४ इस जगत्के जीवन, १५ मदिरालयके बराबर नशा।

वह चीज़, जिसके लिए हमको हो, बिहिश्त[1] अज़ीज़,
सिवाय बाद:ए गुलफ़ामे मुश्कबू[2] क्या है।

[१०३]

क़हृ हो, या बला हो, जो कुछ हो,
काशके, तुम मेरे लिए होते।
मेरी क़िस्मतमें ग़म गर इतना था,
दिल भी, यारब, कई दिये होते।

[१०४]

ग़ैर लें महफ़िलमें, बोसे जामके
हम रहें यों तश्न लब[3], पैग़ामके[4]।
ख़त लिखेंगे, गर्चे मतलब कुछ न हो,
हम तो आशिक़ हैं, तुम्हारे नामके।
रात पी ज़मज़म[5] प मय, और सुब्ह् दम,
धोये धब्बे जामए अहराम[6] के।
इश्क़ने, ग़ालिब निकम्मा कर दिया,
वर्ना हम भी आदमी थे कामके।

[१०५]

फिर इस अन्दाज़से बहार आई,
कि हुए मेह्रो मह[7] तमाशाई।

---

१ स्वर्ग, २ कस्तूरी गन्धमयी फूलों-सी रंगीन मदिरा, ३ पिपासित अधर (प्यासे) ४ सन्देशके, ५ का'बेके निकट एक कुआँ है। ६ का'बेकी परिक्रमा करते समय हाजियों-द्वारा शरीरपर लपेटा जानेवाला कपड़ा, ७ सूर्य-चन्द्र।

हमको मालूम है, जन्नतकी हकीकत, लेकिन,
दिलके ख़ुश रखनेको, गालिब, यह खयाल अच्छा है ।

[१००]

एक हगामे प मौक़ूफ, है घरकी रौनक़,
नौह ए गम ही सही, नग्मए शादी न सही ।
न सताइश[1] की तमन्ना, न सिले[2] की परवा,
गर नहीं है मेरे अशआरमें मा'नी न सही ।

[१०१]

ख़ुदाके वास्ते, दाद इस जुनूने शौक़की देना,
कि उसके दर प पहुँचते है नाम बरसे हम आगे ।

[१०२]

हर एक बात प कहते हो तुम, कि तू क्या है,
तुम्ही कहो कि यह अन्दाज़े गुफ्तगू[3] क्या है ।
न शो'लेमे यह करिश्मः[4], न बर्क़मे यह अदा,
कोई बताओ, कि वह शोख़े तुन्द ख़ू[5] क्या है ।
जला है जिस्म जहाँ, दिल भी जल गया होगा,
कुरेदते हो जो अब राख, जुस्तजू क्या है ।
रगोंमें दौडते फिरनेके, हम नही क़ायल,
जब आँख हीसे न टपका, तो फिर लहू क्या है ।

१ प्रशसा, २ पुरस्कार, ३ बातचीतकी रीति, ४ चमत्कार, ५ तीव्र स्वभाववाला चपल (मा'शूक),

[१०८]

है वस्ल हिज्र, आलमे तमकीनोज़ब्त[1] में,
मा'शूक़े शोख़ो आशिके दीवान. चाहिए।

[१०६]

चाक मतकर जैब[2] वेअय्यामे-गुल[3],
कुछ उधरका भी इशारा चाहिए।
दोस्तीका पर्द, है वेगानगी,
मुँह छुपाना हमसे छोड़ा चाहिए।
मुनहसिर मरने प हो, जिसकी उमीद,
नाउमीदी उसकी, देखा चाहिए।
गाफिल, इन महतलअतों[4] के वास्ते,
चाहने वाला भी अच्छा चाहिए।
चाहते है खूबरूओंको असद,
आपकी सूरत तो देखा चाहिए।

[११०]

नुक्त चीं[5] है, ग़मे दिल उसको सुनाये न बने,
क्या बने बात, जहाँ बात बनाये न बने[6]।
मै बुलाता तो हूँ उसको, मगर ऐ जज्बए दिल[7],
उस प बन जाये कुछ ऐसी, कि बिन आये न बने।

---

१ सन्तोष और आत्मनियन्त्रणकी दशामें, २ गला, ३ फूलोकी ऋतु (वसन्त) के विना, ४ चन्द्रमुखियो ५ छिद्रान्वेषी (मा'शूक़), ६ मनोकामनाकी पूर्ति, ७ मनोभाव।

देखो, ऐ साकिनाने ख़ित्त ए ख़ाक[१],
इसको कहते है आलम आराई[२]।
कि ज़मीं हो गयी है सर ता सर[३]
रूकशे सतहे चर्ख़ मीनाई[४]।
सब्ज़े[५] को जब कहीं जगह न मिली,
बन गया रूए आब[६] पर काई।
सब्ज. ओ गुलके देखनेके लिए,
चश्मे नर्गिसको दी है बीनाई[७]।
है हवामें शराबकी तासीर,
बाद नोशी[८] है बाद पैमाई[९]।

[१०६]

कब वह सुनता है कहानी मेरी,
और फिर वह भी ज़बानी मेरी।
कर दिया ज़ो'फ[१०] ने आजिज गालिब,
नगे पीरी[११] है, जवानी मेरी।

[१०७]

अच्छा है सर अगुश्ते हिनाई[१२] का तसव्वुर[१३],
दिलमें नज़र आती तो है, इक बूँद लहूकी।

---

१ धरतीके अधिवासियो, २ विश्वका शृंगार, ३ सम्पूर्ण, एक सिरेसे दूसरे सिरेतक, ४ नील गगनकी बराबरी करनेवाली, ५ हरीतिमा, ६ पानीके मुख, पानीकी सतह, ७ दृष्टि-ज्योति, ८ मद्यपान, ९ हवा-खाना (बेकार) १० दुर्बलता, क्षीणता, ११ बुढापेको शर्मानेवाली, १२ मेंहदी-रजित उँगलीका सिरा, १३ ध्यान, कल्पना।

[११२]

ब तूफाँ गाहे जोशे इज्तिराबे शामे तनहाई[1],
शु'आए आफताबे सुब्हे महशर तारे बिस्तर है[2]।
कहूँ क्या दिलकी क्या हालत है, हिज्रे यारमें, गालिब,
कि बेताबीसे, हर इक तारे बिस्तर ख़ारे बिस्तर है।

[११३]

ख़ुदा या, जज़्बए दिलकी मगर तासीर उल्टी है,
कि जितना खेंचता हूँ और खिंचता जाये है मुझसे।
उधर वह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है,
न पूछा जाये है उससे, न बोला जाये है मुझसे।
सँभलने दे मुझे, ऐ नाउमीदी, क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़याले यार[3], छूटा जाये है मुझसे,
क़यामत है, कि होवे मुद्दईका हमसफ़र[4], ग़ालिब,
वह काफ़िर, जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाये है मुझसे।

[११४]

लागर[5] इतना हूँ, कि गर तू बज़्ममें जा दे मुझे,
मेरा जिस्मः, देखकर गर कोई बतला दे मुझे।
मुँह न दिखलावे, न दिखला, पर बअन्दाजे इताब[6],
खोलकर पर्दः, जरा आँखें ही दिखला दे मुझे।

---

१ बेचैनीके तूफ़ानसे भरी एकाकीपनकी विरह-सन्ध्या, २ बिस्तरका प्रत्येक तार प्रलय-प्रभातके सूर्यकी किरणके समान लगता है। ३ प्रियके ध्यानका आँचल, ४ सहयात्री, ५ क्षीण, दुबला, ६ गुस्सेकी अदामें।

इस नज़ाकतका बुरा हो, वह भले हैं, तो क्या,
हाथ आवें, तो उन्हें हाथ लगाये न बने।
कह सके कौन, कि यह जल्वःगरी किसकी है,
पर्दः छोड़ा है वह उसने, कि उठाये न बने।
मौतकी राह न देखूँ, कि बिन आये न रहे,
तुमको चाहूँ, कि न आओ, तो बुलाये न बने।
बोझ वह सरसे गिरा है, कि उठाये न उठे,
काम वह आन पड़ा है, कि बनाये न बने।
इश्क़पर ज़ोर नहीं, है यह वह आतश 'गालिब',
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

[१११]

वह आके ख़्वाबमें, तस्कीने इज़्तिराब[1] तो दे,
वले[2] मुझे तपिशे दिल[3] मजाले ख़्वाब[4] तो दे।
करे है क़त्ल, लगावटमें तेरा रो देना,
तेरी तरह कोई तेगे निगह[5]को आब[6] तो दे।
पिला दे ओकसे, साक़ी, जो हमसे नफरत है,
पियालः गर नहीं देता, न दे, शराब तो दे।
'असद' ख़ुशीसे मेरे हाथ-पाँव फूल गये,
कहा जो उसने, ज़रा मेरे पाँव दाब तो दे।

---

१ बेचैनीमें सान्त्वना, २. किन्तु, ३ दिलकी तपन, ४ सोने एव स्वप्नकी ताकत, ५ दृष्टिकी तलवार, ६ पानी देना, चमकाना।

[११७]

करने गये थे उससे, तग़ाफ़ुल[1] का हम गिला,
की एक ही निगाह, कि बस ख़ाक हो गये।

[११८]

जब तक दहाने ज़ख़्म[2] न पैदा करे कोई,
मुश्किल, कि तुझसे राहे सुख़न वा करे कोई[3]।
सरवर[4] हुई न वादए सब्रआज़मा[5] से उम्र,
फ़ुर्सत कहाँ, कि तेरी तमन्ना करे कोई।
हुस्ने फ़रोग़े शमए सुख़न[6] दूर है, असद,
पहले दिले गुदाख़्त.[7] पैदा करे कोई।

[११९]

इब्ने मरियम[8] हुआ करे कोई,
मेरे दुखकी दवा करे कोई।
बक रहा हूँ जुनूँमें क्या-क्या कुछ,
कुछ न समझे, ख़ुदा करे कोई।
न सुनो, गर बुरा कहे कोई,
न कहो, गर बुरा करे कोई।

---

१. उपेक्षा, उदासीनता, २ घावका मुँह, ३ तुझसे बातचीतकी राह निकालना मुश्किल है, ४ कर्त्तव्यमुक्त होना, ५ सन्तोषकी परीक्षा लेनेवाला आश्वासन, ६ काव्य-प्रदीपके प्रकाशका सौन्दर्य, ७ द्रवित हृदय, ८ मरियम-पुत्र (ईसामसीह, जो लोगोंको नीरोग करते फिरते थे)।

[११५]

वाज़ीच ए अत्फाल[१] है दुनिया मेरे आगे,
होता है शबो रोज[२] तमाशा, मेरे आगे।
मत पूछ कि क्या हाल है मेरा, तेरे पीछे,
तू देख, कि क्या रग है तेरा मेरे आगे।
ईमाँ मुझे रोके है, तो खेंचे है मुझे कुफ्र[३],
का'ब· मेरे पीछे है, कलीसा[४] मेरे आगे।
गो हाथको जुबिश[५] नहीं, आँखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी सागरो मीना[६] मेरे आगे।

[११६]

नहीं जरीयए राहत, जराहते पैकॉ[७],
वह जख्मे तेग है, जिसको कि दिल्कुशा कहिए[८]।
नहीं निगार[९]को उल्फ़त[१०], न हो, निगार तो है,
रवानिए रविशो मस्तिए अदा[११] कहिए।
नहीं वहारको फुर्सत, न हो, बहार तो है,
तरावते चमनो ख़ूबिए हवा[१२] कहिए।

---

१ वच्चोका खेल, २ रात-दिन, ३ अधर्म, ४ गिर्जाघर, ५ कम्पन, ६ मधुपात्रका और मधुकलश, ७ बाणका घाव चैनका, साधन नही है, ८ दिलको विकसित करनेवाला तो कृपाणका ही घाव है, ९ रूपसी, (प्रियतमा), १० प्रेम, ११ मस्तीसे भरी चालका ढग, १२ पुष्पोद्यानकी शीतलता और हवाकी खूबी।

कहाँ मयख़ानेका दरवाज़', ग़ालिब और कहाँ वाइज़,
पर इतना जानते है, कल वह जाता था, कि हम निकले ।

[१२१]

हूँ मै भी तमाशाइए नैरगे तमन्ना[1],
मतलब नहीं कुछ इससे, कि मतलब ही वर आवे ।

[१२२]

सियाही जैसे गिर जावे दमे तहरीर काग़ज़पर,
मेरी क़िस्मतमें यों तस्वीर है शबहाए हिज्राँ[2] की ।

[१२३]

ख़मोशियोंमें तमाशा अदा निकलती है,
निगाह, दिलसे तेरे, सुर्मःसा[3] निकलती है ।
फ़िशारे तंगिए ख़िल्वत[4] से बनती है शबनम,
सबा जो ग़ुंचे[5] के पर्देमें जा निकलती है ।

[१२४]

फूँका है किसने गोशे[6] मुहब्बतमें, ऐ ख़ुदा,
अफ्सूने इंतिज़ार[7], तमन्ना कहें जिसे ।

[१२५]

ऐ परतवे ख़ुर्शीदे जहाँताब[8], इधर भी,
सायेकी तरह हम प अजब वक़्त पड़ा है ।

---

१ कामनाके जादूका दर्शक, २ वियोगकी रातें, ३ सुर्मा-रंजित, ४ एकान्तकी संकीर्णताका दवाव, ५ कली, ६ प्रेमके कान, ७ प्रतीक्षाका जादू, ८ विश्वको प्रकाशित करनेवाले सूर्यकी ज्योति ।

रोक लो, गर गलत चले कोई,
बख्श[1] दो, गर ख़ता करे कोई।
कौन है, जो नहीं है हाजतमन्द,
किसकी हाजत रवा करे कोई।
क्या किया ख़िज्रने सिकन्दरसे[2],
अब किसे रहनुमा करे कोई।
जब तवक्को[3] ही उठ गयी, गालिब,
क्यो किसीका गिला[4] करे कोई।

[१२०]

हज़ारो ख्वाहिशें ऐसी, कि हर ख्वाहिश प दम निकले,
बहुत निकले मेरे अरमान, लेकिन फिर भी कम निकले।
निकलना ख़ुल्द[5] से आदम[6] का सुनते आये थे, लेकिन,
बहुत बे-आबरू होकर तेरे कूचेसे हम निकले।
मुहब्बतमे नहीं है फ़र्क़, जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते है, जिस काफिर प दम निकले।

---

१ क्षमा, २ खिज्र—एक पैगम्बर है जो भूले-भटकोको रास्ता बताते है। कहा जाता है कि वह सिकन्दरको अमृतके झरनेपर ले गये और स्वय अमृत पी लिया। सिकन्दरको वे आदमी दिखाये जो अमृत पीकर अमर हो गये थे। सिकन्दरने उनकी हालत देखी तो अमृत पीनेसे इन्कार कर दिया, ३ आसरा-भरोसा, ४ शिकायत, ५ स्वर्ग, ६ आदि पुरुष। जैसे हिन्दुओमे आदि मनु थे वैसे ही बाइबिल और कुरानमे आदि पुरुष आदम थे। यह शैतानके बहकावे मे आ गये इसलिए (नारी हव्वा या ईवके साथ) स्वर्गसे निकाल दिये गये। इन्हीको सन्तान आदमी है।

[१२८]

मुद्दत हुई है यारको मेह्माँ[1] किये हुए,
जोशे क़दह से, बज्म चरागाँ[2] किये हुए ।
करता हूँ जमअ फिर, जिगरे लख़्त-लख़्त[3] को,
अर्सः हुआ है दा'वते मिज़गाँ[4] किये हुए ।
फिर वज़ए एहतियात[5] से रुकने लगा है दम,
बरसों हुए है चाक गरेबाँ किये हुए ।
फिर पुर्सिशे जराहते दिल[6] को चला है इश्क़,
सामाने सद हज़ार नमकदाँ[7] किये हुए ।
फिर शौक़ कर रहा है ख़रीदारकी तलब,
अर्ज़े मताए अक़्लो दिलो जाँ[8] किये हुए ।
माँगे है फिर, किसीको लबे बाम[9] पर, हवस,
जुल्फे सियाह रुख़ प परीशाँ किये हुए ।
चाहे है फिर किसीको मुक़ाबिल[10] में आरज़ू[11],
सुरमेसे तेज़ दश्न ए मिज़गाँ[12] किये हुए ।
इक नौबहारे नाज[13] को ताके है फिर निगाह,
चेहरः फ़रोगे मय[14] से गुलिस्ताँ किये हुए ।

---

१ सुरोत्सव, २ दीपालोकित, ३ जिगरके टुकडे-टुकडे, ४. उनको पलकोंकी (बर्छी) की दावत, ५ सावधानीका ढग, ६ हृदयके घावोकी पूछ-ताछ, ७ लाखो नमकदानोके साथ, ८ बुद्धि, हृदय और प्राण-धनका पण, ९ छज्जेपर, १० सामने, ११ कामना, अभिलाषा, १२ पलको-ठारी, १३ रूपगर्वके नव-बसन्त, १४ मदिराभा ।

नाकर्द गुनाहों[१] की भी हसरतकी मिले दाद,
यारब, अगर इन कर्द गुनाहोंकी सजा है।

[१२६]

वाइज़ न तुम पियो, न किसीको पिला सको,
क्या बात है, तुम्हारी शराबे तहूर[२] की।
गो वाँ नहीं, प वाँके निकाले हुए तो हैं,
का'बेसे इन बुतोंको भी निस्बत है दूरकी।
क्या फ़र्ज़ है, कि सबको मिले एक-सा जवाब,
आओ न, हम भी सैर करें कोहेतूर[३]की।
गालिब, गर इस सफ़रमें मुझे साथ ले चलें,
हजका सवाब[४] नज़्र करूँगा हुजूरकी।

[१२७]

कहते हुए साक़ीसे ह्या आती है, वर्न,
है यों, कि मुझे दुर्दे तहे जाम[५] बहुत है।
खूँ होके जिगर आँखसे टपका नहीं, ऐ मर्ग,
रहने दे मुझे याँ, कि अभी काम बहुत है।
होगा कोई ऐसा भी, कि गालिबको न जाने,
शाइर तो वह अच्छा है, प बदनाम बहुत है।

---

१ अकृत पाप, जिन पापोंको करनेकी लालसा रह गयी। २ स्वर्गकी मदिरा, ३ एक पर्वत जिसपर हज़रत मूसा ईश्वरीय ज्योति देखने गये थे, ४ पुण्य, ५ प्यालेकी तलीमे बैठी तलछट।

[१२८]

मुद्दत हुई है यारको मेहमाँ[1] किये हुए,
जोशे क़दह से, बज़्म चरागाँ[2] किये हुए।
करता हूँ जमअ फिर, जिगरे लख़्त-लख़्त[3] को,
अर्सः हुआ है दा'वते मिज़गाँ[4] किये हुए।
फिर वज़ए एहतियात[5] से रुकने लगा है दम,
बरसों हुए हैं चाक गरेबाँ किये हुए।
फिर पुर्सिशे जराहते दिल[6] को चला है इश्क़,
सामाने सद हज़ार नमकदाँ[7] किये हुए।
फिर शौक़ कर रहा है खरीदारकी तलब,
अर्ज़े मताए अक़्लो दिलो जाँ[8] किये हुए।
माँगे है फिर, किसीको लबे बाम[9] पर, हवस,
ज़ुल्फे सियाह रुख़ प परीशाँ किये हुए।
चाहे है फिर किसीको मुक़ाबिल[10] में आरज़ू[11],
सुरमेसे तेज दश्न.ए मिज़गाँ[12] किये हुए।
इक नौबहारे नाज़[13] को ताके है फिर निगाह,
चेहर. फ़रोग़े मय[14] से गुलिस्ताँ किये हुए।

---

१ सुरोत्सव, २ दीपालोकित, ३ जिगरके टुकड़े-टुकड़े, ४. उनकी पलकोंकी (बर्छी) की दावत, ५ सावधानीका ढंग, ६ हृदयके घावोंकी पूछ-ताछ, ७ लाखों नमकदानोंके साथ, ८ बुद्धि, हृदय और प्राण-धनका समर्पण, ९ छज्जेपर, १० सामने, ११ कामना, अभिलाषा, १२ पलकोंकी कटारी, १३ रूपगर्वके नव-वसन्त, १४ मदिराभा ।

जी ढूंढ़ता है फिर वही फुर्सत, कि रात-दिन,
बैठे रहे तसव्वुरे जानाँ[1] किये हुए।

[१२६]

वह जिन्दः हम है, कि है रूशनासे खल्क[2], ऐ ख़िज़्र,
न तुम, कि चोर बने उम्रे जाविदाँ[3] के लिए।
बक़द्रे शौक़[4] नहीं, जर्फे तगनाए गज़ल[5],
कुछ और चाहिए वसअत[6] मेरे बयाँके लिए।

कसीदे

[१]

साज़ यक जर्रः नहीं फैजे चमनसे बेकार,
साय ए लालए बेदाग सुवेदाए बहार[7]।
मस्तिए बादे सबा[8] से है ब अरज सब्ज,
रेजए शीशए मय जौहरे तेगे कुहसार[9]।
मस्तिए अब्रसे गुलचीने तरब है हसरत[10],
कि इस आगोशमें मुमकिन है दो आलमका फिशार[11]।

---

१ मा'शूकका ध्यान, २ दुनियासे परिचित, ३ अमर-जीवन, ४ उत्सुकताकी मात्राके अनुरूप, ५ गजलका सँकरा क्षेत्र, ६ विस्तार, ७ वहारके हृदयका काला तिल, ८ प्रभात-समीरणकी मस्ती, ९ पहाडकी तलवार अर्थात् पहाडकी चोटीकी हरीतिमा मदिराकी सुराहीका कण बन गयी है। १० बादलोंकी मस्तीसे दिलकी अपूर्ण अभिलाषाएँ भी खुशीके फूल चुन रही है, ११ इसके आलिंगनमे दोनो जगत् सिमट गये है।

कोहो सहरा हमः मा'मूरिए शौक़े बुलबुल[1],
राहे ख़्वाबीदः[2] हुई ख़न्दए गुल[3] से बेदार।

दूसरा मतलअ

फ़ैज़से तेरे है ऐ शमए शबिस्ताने बहार[4],
दिले पर्वान· चराग़ाँ परे बुलबुल गुल्नार[5]।
शक्ले ताऊस करे आईन· ख़ान· पर्वाज़,
ज़ौक़में जल्व के तेरे बहवाए दीदार[6]।
दीद· ता दिल असद आईन· यक परतवे शौक़,
फ़ैज़े मानीसे ख़ते साग़रे राक़िम सरशार[7]।

[२]

दह्र जुज जल्वए यकताइए मा'शूक़ नहीं[8],
हम कहाँ होते, अगर हुस्न न होता ख़ुदबीं[9]।
बे-दिली हाय तमाशा, कि न इब्रत है न ज़ौक़,
बेकसी हाय तमन्ना, कि न दुनिया है न दीं।

---

१ पर्वत एव वन बुलबुलके शौक़से पूर्ण हैं, २ निद्रित-पथ, ३ फूलों की हँसी, ४. ऐ बहार (वसन्त) के गृहकी शमअ (दीप), ५ पर्वानों-के दिल दीपक बन गये हैं और बुल-बुलके पर गुलनारकी तरह रंगीन हो गये हैं, ६ तेरी छवि देखनेके लिए आइन ख़ान (दिल) मोरकी तरह उड रहा है, ७ ऐ असद ! आँखसे लेकर दिल तक उत्कण्ठाके प्रकाश-का आईन बन जाता कि अन्तरके औदार्यसे प्रशंसा लिखनेवालेके मधुपात्र-की रेखाएँ मस्त हो जायें, ८ संसार मा'शूक़की अप्रतिम छविके सिवा और कुछ नहीं है, ९ गर्वित।

मिस्ले मजमूने वफा, बाद बदस्ते तस्लीम[१],
सूरते नक्शे कदम, खाक बफर्के तमकी[२]।
इश्क बेरब्तिए शीराजए अजजाय हवास,
वस्ल जिंगारे रुखे आइनए हुस्ने यकी[३]।
किसने देखा नफसे अह्लेवफा आतशखेज[४],
किसने पाया असरे नालए दिलहाय हजी[५]?

[३]

हाँ, महे नौ[६]! सुनें हम उसका नाम,
जिसको तू झुकके कर रहा है सलाम।
दो दिन आया है तू नजर दमे सुब्ह,
यही अन्दाज और यही अन्दाम।
बारे दो दिन कहाँ रहा गायब?
"बन्द आजिज है, गर्दिशे अय्याम।
उडके जाता कहाँ, कि तारोंका,
आसमाँने बिछा रखा था दाम[७]।"
जानता हूँ, कि उसके फैजसे तू,
फिर बना चाहता है माह तमाम[८]।

---

१ स्वीकृति (समर्पण) को भी हम वफा (निष्ठा) की भाँति ही परीशान देखते है, २ मर्यादाको चरण-चिह्नकी भाँति धूलमे मिला पाते है, ३ जिस प्रकार बदहवासीमे चेतना विशृंखल हो जाती है उसी प्रकार प्रेम भी यहाँ परीशान है। मिलनका विश्वास दर्पण-पटकी भाँति धूमिल है, ४ भक्तोके आग लगानेवाले श्वासको किसने देखा है? ५ दुखिया दिलो, ६ नवचन्द्र, ७ जाल, ८ पूर्णचन्द्र।

माह बन, माहताब बन, मै कौन,
मुझको क्या बॉट देगा तू ईनाम ?
मेरा अपना जुदा मुआमिलः है,
औरके लेन - देनसे क्या काम ?

[४]

सुब्ह दम दरवाजए ख़ावर[1] खुला,
मेह्रे आलमताब[2] का मज़र[3] खुला।
खुसरुवे अंजुम[4] के आया सर्फ[5] में,
शबको था गंजीनए जौहर[6] खुला।
सत्हे गर्दू[7] पर पड़ा था रातको,
मोतियोंका हर तरफ़ जेवर खुला।
सुब्ह आया जानिबे मशरिक़[8] नज़र,
इक निगारे आतशीरुख़, सरखुला[9]।
थी नजरबन्दी, किया जब रद्दे सेह्र[10],
बादए गुलरंगका सागर[11] खुला।
लाके साकीने सुबूहीके लिए,
रख दिया है एक जामे ज़र खुला[12]।

१ प्राची, पूर्व, २ विश्वको प्रकाशित करनेवाला सूर्य, ३ खिड़की ४ तारिकाधिपति (सूर्य), ५ व्यय, ६ मोतियोंका खजाना, ७ गगन, ८ पूर्वकी ओर, ९ ज्वालाके चेहरेवाली प्रियतमा सर खोले हुए आ गयी है, १० जादूकी काट, ११ फूलों-जैसी रंगीन मदिराका पात्र, १२. या गगनरूपी साकीने प्रभातकालमे पी जानेवाली मदिराके लिए एक सोनहला प्याला लाकर रख दिया है।

देखियो 'गालिब'से गर उलझा कोई,
है वली पोशीद और काफिर खुला[1] ।

मस्नवी

आमकी प्रशंसामें

[१]

आमका कौन मर्दे मैदाँ[2] है,
समरो शाख़ गूए चौगाँ है[3] ।
न चला जब किसी तरह मक़दूर,
वादए नाब[4] बन गया अंगूर ।
यह भी नाचार जीका खोना है,
शर्मसे पानी-पानी होना है ।
मुझसे पूछो तुम्हें ख़बर क्या है,
आमके आगे नेशकर[5] क्या है ।
न गुल उसमें, न शाख़ोबर्ग न बार,
जब ख़िज़ाँ आये तब हो इसकी बहार ।

---

१ अन्दरसे साधु और ऊपरसे खुला काफिर है, २ प्रतिद्वन्द्वी, ३ फल गेंद और शाखाएँ चौगान है, ४ मदिरा, ५ गन्ना ।

नज़र आता है यूँ मुझे यह समर,
कि दवाख़ानए अज़लमें मगर[1]।
आतशे गुल प क़न्दका है क़वाम,
शीरःके तारका है रेश नाम[2]।
या यह होगा कि फ़र्ते राफ़तसे,
बाग़बानोंने बाग़े जन्नतसे।
अग्बीके बहुक्म रब्बुन्नास,
भरके भेजे हैं सर्ब मुहर गिलास[3]।
या लगाकर ख़िज़्रने शाख़े नबात,
मुद्दतों तक दिया है आबे हयात।
तब हुआ है समरफ़िशाँ यह नख़्ल[4],
हम कहाँ वर्ना और कहाँ यह नख़्ल।
साहबे शाख़ो बर्गोबार[5] है आम,
नाज़ पर्वर्दए बहार[6] है आम।

१–२ ऐसा जान पडता है कि यह आदि सृष्टिके दवाखानेमें बना है। फूलकी आग, गर्मी, पर मिश्रीकी चाश्नी देकर इसे बनाया गया है और इस चाश्नीके तारका नाम रेशा रख दिया गया है, ३ या ऐसा जान पडता है कि नन्दन-काननके मालियोंने मनुष्योंपर खुश होकर, कृपा-पूर्वक और ईश्वराज्ञासे, पुरस्कारस्वरूप शहदसे भरे हुए गिलास मुँहपर मुहर लगाकर भेज दिये हैं, ४ या खिज्रने मिश्रीका एक पौधा लगाकर उसे मुद्दतों तक अमृतसे सींचा है तब उस पौधेमें यह फल लगा है, ५ शाखाओं और पत्तोंसे युक्त, ६ बहार-द्वारा दुलारसे पाला हुआ।

[२]

चिकनी डली (सुपारी) की प्रशंसामें

[१८७१ ई० की बात है जब नवाब जियाउद्दीन अहमद और गालिब दोनो कलकत्तामे थे। एक दिन बात-चीत चल रही थी कि एक सज्जनने फारसी-कवि फैजीकी बडी प्रशसा की। गालिब तो सिवा खुसरोके किसी भारतीय फारसी-कविको मानते ही न थे, इसलिए बोले—ठीक है पर जितनी तारीफ फ़ैज़ीकी होती है उतनेका अधिकारी वह न था। उन सज्जनने फ़ैज़ीकी काव्य-शक्तिकी प्रशसा करते हुए कहा कि जब फैजी पहिली बार अकबरके दरबारमे गया, अवसर आते ही ढाई सौ शेरोका कसीद वही बनाकर पढा। गालिब बोले—अब भी ऐसे लोग है जो दो-चार सौ नही तो दो-चार शेर तो तुरन्त बनाकर कह ही सकते है। उन सज्जनने जेबसे एक चिकनी डली (सुपारी) निकाली और कहा—इसपर कुछ कहिए। गालिबने तुरन्त ये पक्तियाँ सुनाई।]

है जो साहबके क़फेदस्त[१] प यह चिकनी डली,
जेब देता है इसे जिस क़दर अच्छा कहिए।
ख़ाम अंगुश्त बदन्दॉ[२] कि इसे क्या लिखिए,
नातक़[३] सर बगिरेबॉ[४] कि इसे क्या कहिए।
मुह्रे मक्तूबे अज़ीज़ाने गरामी लिखिए[५],
हर्ज़े बाज़ूए[६] शिगर्फ़ाने खुदआरा[७] कहिए।

---

१ हथेली, २ हैरान, ३ वाणी, ४ चिन्तित, ५ सम्मानित प्रिय-जनोके पत्रोकी मुहर है, ६ भुजाकी तावीज, ७ स्वय शृगार किये हुए हसीन।

मिस्सीआलूद: सरअगुश्ते हसीनाँ लिखिए[1],
दाग़े तर्फ़े जिगरे आशिके शैदा[2] कहिए।
अख़्तरे सोख़्तए क़ैस[3] से, निस्वत दीजे,
ख़ाले मुश्कीने रुख़े दिलकशे लैला[4] कहिए।
क्यों इसे क़ुफ़्ले दरे गंजे मुहब्बत[5] लिखिए,
क्यों इसे नुक़्तए परकारे तमन्ना[6] कहिए?
बन्द: परवरके कफ़ेदस्तको दिल कीजिए फ़र्ज़,
और इस चिकनी सुपारीको सुवेदा कहिए।

क़ते

गये वह दिन, कि नादानिस्त[7] ग़ैरोंकी वफ़ादारी,
किया करते थे तुम तक़रीर हम ख़ामोश रहते थे।
बस, अब बिगड़े प क्या शर्मिन्दगी, जाने दो, मिल जाओ,
कसम लो हमसे, गर यह भी कहें "क्यों हम न कहते थे।"

× ×

कलकत्त का जो ज़िक्र किया तूने हमनशीं!
इक तीर मेरे सीन में मारा कि हाय-हाय!

---

१ चाहे इसे रूपसीका मिस्सीसे पूर्ण अँगुलीका सिरा लिख सकते हैं, २ मोहित प्रेमीके जिगरका दाग़, ३ मजनूँका जला हुआ नक्षत्र (भाग्य), ४ लैलाके चित्ताकर्षक मुख (कपोल) का सुगन्धपूर्ण तिल, ५ प्रेम-कोषके द्वारका ताला, ६ कामनाकी परिधिका बिन्दु। ७ अनुभवहीन,

वह सब्ज़ज़ार हाय मुतर्रा[1] कि है ग़ज़ब !
वह नाज़नीं बुताने ख़ुदआरा[2], कि हाय-हाय !
सब्रआज़मा[3] वह उनकी निगाहें, कि हिफ़ नज़र,
ताक़तरुबा[4] वह उनका इशारा, कि हाय-हाय !
वह मेवहाय ताज़ए शीरीं कि वाह-वाह !
वह बादहाय नाबे गवारा[5], कि हाय-हाय !

× ×

न पूछ इसकी हक़ीक़त, हुज़ूरेवालाने,
मुझे जो भेजी है, बेसनकी रोग़नी रोटी ।
न खाते गेहूँ, निकलते न ख़ुल्दसे बाहर,
जो खाते हज़रते आदम यह बेसनी रोटी ।

× ×

इफ़्तारे सूम[6] की कुछ, अगर दस्तगाह[7] हो,
उस शख़्सको ज़रूर है रोज़ा रखा करे ।
जिस पास रोज़ा खोलके खानेको कुछ न हो,
रोज़ा अगर न खाये, तो नाचार क्या करे ।

× ×

क्या इन दिनों बसर हो हमारी, फ़िराक़[8] में,
कुछ तफ़क़[9] रहा न दिलो दर्दो दाग़में ।

---

१ शीतल (तरावटवाला), २ स्वयमज्जिता रूपमियाँ, ३ धैर्यकी परीक्षा लेनेवाली, ४ शक्ति देनेवाला, ५ बढ़िया, स्वादिष्ट मदिराएँ, ६ रोज़ा खोलना ७ साधन ८ विरह ६ अन्तर ।

चाहा बचश्मे शौक़, जो मूसाने तूरपर,
यॉ देखते है रोज़ वही, हर चरागमें।
यह मक़नतो वक़ार अलाई! यह वहशतें,
शोरिश है कुछ ज़रूर, तुम्हारे दिमाग़में।

रुबाइयॉ

शब ज़ुल्फ़ो रुखे अर्क़ेफ़िशॉ[1] का गम था,
क्या शरह करूँ, कि तुर्फ़:तर आलम था।
रोया मै हज़ार ऑखसे सुबह तलक,
हर कतरए अश्क, दीद: पुरनम था।

× ×

दिल सख्त नज़न्द[2] हो गया है गोया,
उससे गिल मन्द[3] हो गया है गोया।
पर यारके आगे बोल सकते ही नहीं,
'ग़ालिब' मुँह बन्द हो गया है गोया।

× ×

दुख जीके पसन्द हो गया है, ग़ालिब,
दिल रुककर बन्द हो गया है, ग़ालिब।
वल्लाह, कि शबको नींद आती ही नहीं,
सोना सौगन्द हो गया है ग़ालिब।

× ×

१ द्रवणशील, २ आजिज, परीशान, ३ शिकायत करनेवाला।

रश्कसे लडती है, आपसमे उलझकर लडियॉ,
बॉधनेके लिए जब उसने उठाया सेहरा ।

मर्सियः

[शोक-गीत]

हॉ, ऐ नफसे बादे सेहर[१] ! शो'ल फिशॉ[२] हो,
ऐ दजलए खूॅ ! चश्मे मलाइक[३] से रवॉ हो ।
ऐ ज़मज़मए क़ुम[४] ! लबे ईसा प फुगॉ[५] हो ।
ऐ मातमयाने शहे मा'सूम कहॉ हो ?
बिगडी है बहुत, बात बनाये नहीं बनती ।
अब घरको बग़ैर आग लगाये नहीं बनती ॥
ताबे सुख़न व ताकते गोगा नहीं हमको ।
मातममें शहे दींके है, सौदा[६] नहीं हमको ॥
घर फूॅकनेमे अपने मुहाबा[७] नहीं हमको ।
गर चर्ख़ भी जल जाय, तो पर्वा नहीं हमको ॥
यह खर्गहे नु पाय[८] जो मुद्दतसे बजा है ।
क्या ख़ेमए शब्बीर[९] से रुत्व. में सिवा है ॥
कुछ और ही आलम नज़र आता है जहॉका ।
कुछ और ही नक़्श, है दिलो चश्मो ज़ुबॉका ॥

---

१ प्रात-समीरके श्वास, २ ज्वालामुखी, ज्वालावर्षी, ३ फरिश्तोकी आंखें, ४ 'उठजा' का राग, ५ ईसाके अधरोपर आर्त्तनाद बनजा, (हज़रत ईसा 'उठजा' कहते थे और मुर्दे उठ खडे होते थे।) ६ उन्माद, ७ सकोच, ८ नवपदी रावटी, ९ हज़रत इमाम हसन ।

कैसा फलक और मेहे जहाँताब कहाँका।
होगा दिले बेताब किसी सोख़्त:जाँका॥
अब मेहमें और बर्क़में कुछ फ़र्क़ नहीं है।
गिरता नहीं इस रूसे कहो बर्क़ नहीं है॥

स्फुट

मयकशीको न समझ बेहासिल,
बादए गालिब अर्क़े बेद नहीं।

× ×

दिल आपका, कि दिलमें है जो कुछ सो आपका,
दिल लीजिए, मगर मेरे अरमाँ निकालके।

× ×

चन्द तस्वीरें बुताँ, चन्द हसीनोंके ख़ुतूत,
बाद मरनेके, मेरे घरसे यह सामाँ निकला।

× ×

देखता हूँ उसे, थी जिसकी तमन्ना मुझको,
आज बेदारीमें है, ख़्वाबे ज़ुलेखा मुझको।

× ×

नियाज़े इश्क़[1], ख़िर्मनसोज़े अस्बाबे हवस बेहतर,
जो हो जावे निसारे बर्क़[2], मुश्ते ख़ारोख़स बेहतर।

× ×

---

१ प्रेमकी विनय, २ बिजलीपर निछावर।

जख्मे दिल तुमने दुखाया है, कि जी जाने है,
ऐसे हँसतेको रुलाया है, कि जी जाने है।

× ×

हम क्या कहें किसीसे, क्या है तरीक़ अपना,
मजहब नहीं है कोई, मिल्लत नहीं है कोई।

× ×

पीरी[1] मे भी कमी न हुई झॉक तॉककी,
रोजनकी[2] तरह दीदका आजार रह गया।
वह मुर्ग है खिजॉकी सुऊबत[3] से बेखबर,
आइन्दः सालतक जो गिरफ्तार रह गया।

चयन

[नुस्ख.हमीदियःसे]

[१]

है कहाँ, तमन्नाका दूसरा क़दम, यारब!
हमने दश्ते इम्काँ[4] को, एक नक़्शे पा[5] पाया।
बेदिमागे ख़िजलत[6] हूँ, रश्के इम्तिहाँ ताके,
एक बेकसी, तुझको आलम आशना[7] पाया।

[२]

कारख़ानेसे जुनूँके भी मै उरियाँ[8] निकला,
मेरी क़िस्मतका न यक-आध गिरेबाँ निकला।

---

१ वृद्धावस्था, २ छिद्र, ३ कष्ट, व्यथा, ४ सम्भावना-वन, ५ चरण-चिह्न, ६ शर्म, ७ ससारका प्रेमी, समारको समझनेवाला, ८ नगा।

साग़रे जल्वए सरशार, है हर ज़र्रए ख़ाक[1],
शौक़े दीदार, बिला आईन· सामाँ निकला।
कुछ खटकता था मेरे सीन में, लेकिन आख़िर*,
जिसको दिल कहते थे, सो तीरका पैकाँ निकला।

[३]

चाँ हुजूमे नग़्म·हाए साज़े इशरत[2] था 'असद'
नाख़ुने ग़म, याँ सरे तारे नफ़स मिज़राब[3] था।

[४]

'असद' यह इज्ज़ो[4] बेसामानिए फ़िरऔन[5] तौअम[6] है,
जिसे तू बन्दगी कहता है, दावा है ख़ुदाईका।

[५]

हमने वहशतकदए बज़्मे जहाँ[7] में ज्यूँ शमअ,
शोलए इश्क़को अपना सरो सामाँ समझा।

---

१ मिट्टीका प्रत्येक कण छविके मधुपात्रमें डूबा हुआ है,२ ऐश्वर्यके वाद्यसे निर्गत स्वरोंकी भीड़ थी। ३ श्वासके तारका सिरा मिज़राब बन गया था, ४ नम्रता, दीनता, ५ फ़िरऔनकी दरिद्रता, ६ यमज जुड़वाँ, फ़रोआ या फ़िरऔन प्राचीन मिस्रके बादशाहोंकी उपाधि थी। इनमेंसे एकने ख़ुदाईका दावा किया और मूसा द्वारा पराजित हुआ। उर्दू-फ़ारसी काव्यमें अत्याचार और अभिमानका प्रतीक, ७ संसारकी महफ़िलके उन्माद कक्षमें।

*शायद 'जिगर' मुरादाबादीका शेर है—

कुछ खटकता तो है पहलूमे मेरे रह-रहकर,
अब ख़ुदा जाने तेरी याद है या दिल मेरा।

[६]

बसूरत तकल्लुफ[१] ब'मानी तअस्सुफ[२],
'असद' मै तबस्सुम हूँ पजमुर्दगाँका[३] ।

[७]

निगाहे चश्मे हासिद वामले, ऐ जौक़े ख़ुदबीनी[४] !
तमाशाई हूँ वहदतख़ानए आईनए दिलका ।
मुझे राहे सुखनमे ख़ौफे गुमराही[५] नहीं 'गालिब',
असाए ख़िज्रे सेहराए सुख़न है ख़ाम 'बेदिल'का[६] ।

[८]

ऐ वाय ! गफ़लते निगहे शौक़, वर्न. याँ,
हर पार सग, लख्ते दिले कोहे तूर[७] था ।
जन्नत है तेरी तेगके कुश्तोकी मुतज़िर,
जौहर सवादे जल्वए मिजगाने हूर था ।

[९]

रगे गुल[८] जादए तारे निगहसे हद[९] मुआफिक है,
मिलेंगे मज़िले उल्फ़तमें हम और अन्दलीब[१०] आख़िर ।

---

१ रूपमे बनावट, २ अर्थमे पश्चात्ताप, ३ मै मलिन वदनोकी मुसकान हूँ, ४ ऐ मेरे गर्व (खुदबीनी) की उत्कण्ठा, तू किसी द्वेषीकी दृष्टि उधार ले ले (क्योकि विद्वेषी अपने सिवा किसी औरको देख ही नही सकता, ५ पथभ्रष्ट होनेका भय, ६ बेदिलकी लेखनी काव्यके जगलमे खिज्रकी लाठी है, ७ पत्थरका हर टुकडा तूर पर्वतके हृदयका ही खण्ड था, ८ फूलकी नमें ९ दृष्टिके तार मार्गके अनुकूल हैं, १० बुलबुल ।

गुरूरे ज़ब्त[1] वक़्ते निज़अ टूटा, वेक़रारान',
नियाज़े बालअफ़शानी[2] हुआ सब्रो शकेब आख़िर।

[१०]

तमाशाए गुल्शन, तमन्नाए चीदन[3],
बहार आफ़रीनाँ[4], गुनहगार है हम।
न ज़ौक़े गिरेबाँ, न पर्वाए दामाँ,
निगह आश्नाए गुलोख़ार[5] हैं हम।
'असद' शिकव' कुफ़्रो दुआ नासिपासी[6]
हुजूमे तमन्नासे नाचार है हम।

[११]

पाँवमें जब वह हिना बाँधते है,
मेरे हाथोंको जुदा बाँधते हैं।
शेख़जी, का'ब का जाना मालूम,
आप मस्जिदमें गधा बाँधते हैं।

[१२]

फिर हल्क़ए काकुल्में पड़ीं दीदकी राहें,
जूँ दूद[7] फ़राहम[8] हुई रौज़न[9]में निगाहें।
दैरो हरम, आईनए तक़रारे तमन्ना[10],
वामाँदगिए शौक़[11] तराशे है पनाहें।[12]

---

१ आत्म-नियन्त्रणका अभिमान, २ तड़प, ३ (फूल) चुननेकी कामना, ४ बहारके बनानेवाले, ५ फूलों और काँटोंकी आँखें पहचाननेवाले, ६ अकृतज्ञता, ७ धुवाँ, ८ एकत्र, ९ छिद्र, १० कामनाकी पुनरावृत्तिका प्रमाण, ११ रुचिकी थकान, १२ शरण ढूँढती है।

[१३]

दौराने सरसे गर्दिशे सागर है मुत्तसिल,
खुमख़ानए जुनूॅमें दिमागे रसीद हूॅ[१]।
की मुत्तसिल[२] सितार शुमारी[३]मे उम्र सर्फ़[४],
तस्बीहे अश्कहाय जामेज्गॉ चकीद हूॅ[५]।
हूॅ गर्मिए निशाते तसव्वुरसे नग्म सज[६],
मै अन्दलीबे गुलशने नाआफरीद हूॅ[७]।
देता हूँ कुश्तगॉको, सुख़नसे सरे तपिश,
मिज़राब तारहाय गुलूए बुरीद हूॅ[८]।

[१४]

है तिलिस्मे देह्[९]मे, सद हश्रे पादाशे अमल[१०],
आगही गाफिल, कि यक इमरोज़ बेफर्दा नहीं[११]।

१ सिरके चक्करके कारण निरन्तर यह मालूम हो रहा है कि मै मधुपानके चक्रमे सम्मिलित हूॅ (और प्यालेपर प्याला चढाता जा रहा हूॅ), मानो मै उन्मादके मदिरालयमे एक ऐसा दिमाग हूॅ जो नशेसे आप्लावित है, २ लगातार ३ तारे गिनना, ४ व्यय, ५ पलकोसे टपके हुए आंसुओकी तस्बीह (माला) हूॅ, ६ उनके ध्यानके आनन्दके उत्तापसे स्वरालाप कर रहा हूॅ, ७ मै अनजाई पुष्पवाटिकाका बुलबुल हूॅ, ८ मै मरनवालोको अपने काव्यसे उत्तप्त करता अर्थात् तडपाता हूॅ, मानो कटे हुए गलेके तारोपर मिजराबके तुल्य झकार पैदा करनेवाला हूॅ, ९ ससारके इन्द्रजाल, १० दुनियाके तिलिस्ममे कर्मके प्रतिकारके सैकडो प्रलय उठते रहते है, ११ ऐ गाफिल सावधान हो कि आजका कोई भी दिन अपने जोडके बिना (अकेला) नही है।

[१५]

कब तलक फेरे 'असद' लबहाय तुफ़्त[1] पर ज़ुबाँ,
ताक़ते लब तश्नगी, ऐ साक़िए कौसर[2] नहीं।

[१६]

'असद' उठना क़यामत क़ामतोंका[3], वक़्ते आराइश[4],
लिबासे नज़्म[5] में, बालीदने मज़्मूने आली[6] है।

[१७]

ज़िबस[7] दोशे रमे आहू[8] प है महमिल तमन्ना[9] का,
जुनूने क़ैससे भी शोख़िए लैला नुमायाँ है।
'असद' बन्दे क़बाए यार है फ़िर्दौसका ग़ुंच[10],
अगर वा[11] हो, तो दिखला दूँ कि यक आलम गुलिस्ताँ है।

[१८]

चश्मे ख़ूबाँ, मयफ़रोशे नश्शए सूज़ारे नाज़ है,
सुर्मः गोया मौजे दूदे शोलए आवाज़[12] है।

[१९]

जो कुछ है महे शोख़िए अब्रूए यार है,
आँखोंको रखके ताक़ प देखा करे कोई।

---

१ सूखे ओठों, २ स्वर्गकुण्डके जलको पिलानेवाले, ३ जिनकी यष्टि प्रलय ढाती है, ४ शृंगारके समय, ५ काव्यका परिच्छद, ६ उच्च विषयका विकास, ७ अत्यधिक, स्पष्ट, ८ दौड़ते हिरनोंके कन्धोंपर, ९ कामनाका महमिल (पालकी जिसमें लैला चलती थी ।), १० स्वर्गकी कली, ११ खुला, १२ सुर्मः मानो वाणीकी ज्वालाकी धूम्र-तरंग है।

[२०]

रुख़सारे यार[१] की खुली जो जल्व गुस्तरी[२],
ज़ुल्फे सियाह[३] भी शबे महताब[४] हो गयी।
'ग़ालिब' ज़िबस कि सूख गये चश्ममे सरश्क[५],
ऑसूकी बूँद गौहरे नायाब[६] हो गयी।

[२१]

ख़बर निगहको निगह चश्मको उदू[७] जाने,
वह जल्व कर, कि न मै जानूॅ और न तू जाने।

[२२]

आज़ूए ख़ान आबादीने वीरॉतर किया,
क्या करूँ गर सायए दीवार सैलाबी करे[८]।
सुबहदम वह जल्व रेज़े बे-नक़ाबी हो अगर,
रंगे 'रुख़सारे गुले ख़ुर्शीद महताबी[९] करे।
बादशाहीका जहॉ यह हाल हो, 'ग़ालिब', तो फिर,
क्यो न दिल्लीमे हर इक नाचीज़ नव्वाबी करे।

---

१ प्रियके कपोल, २ छवि फैलना, ३ काली अलकें, ४ चाॅदनी रात, ५ आंसू, ६ दुर्लभ मोती, ७ शत्रु, ८ यदि अपनी दीवारकी छाया ही बाढ ला दे, ९ यदि वह मुँह खोलकर सुबहके वक्त अपनी छवि दिखावे तो उसके कपोलोके गुलाबी रगके आगे सूर्य चाॅद बन जाय, (दूसरा अर्थ—सूर्य उसके कपोलोके गुलाबी रगको चन्द्रिका तुल्य कर दे)।

[२३]

सुब्हसे मा'लूम, आसारे ज़हूरे शाम[1] है,
ग़ाफ़िलों ! आग़ाज़ेकार, आईनए अंजाम है।
बस कि तेरे जल्वए दीदारका है इश्तियाक़[2],
हर बुते ख़ुर्शीद तलअत[3], आफ़तावे बाम है।

[२४]

तोड़ बैठे जबकि हम जामो सुबू[4], फिर हमको क्या ?
आस्माँसे बादए गुलफ़ाम[5] गर बरसा करे।

[२५]

रेहने ज़ब्त है आईन बंदिए गौहर[6]
वगर्न[7] बह्में हर क़तरः चश्मे पुरनम है।

[२६]

ख़ुद नामः बनके जाइए, उस आशनाके पास,
क्या फ़ायदः कि मन्नते बेगानः खींचिए।

[२७]

चमन-चमन गुले आईन[8] दर किनारे हवस[9],
उमीद महवे तमाशाय गुलिस्ताँ[10] तुझसे।

---

१ सन्ध्या प्रगट होनेके लक्षण, २ उत्कण्ठा, ३ सूर्यमुखी, ४ मधुपात्र एव मधुघट, ५ गुलाबी शराब, ६ मोतीकी सजावटके सयम एव नियन्त्रणकी अश्रु अपेक्षा है, ७ अन्यथा सागरमें तो प्रत्येक बूँद अश्रुपूर्ण आँख है। ८ दर्पणोंके फूल, ९ लालसाकी गोदमें (लालसाकी गोदमें दर्पणोंके फूलसे तूने चमन भर दिये हैं), १० आशाको तूने पुष्पोद्यान-का दृश्य देखनेमें लीन कर दिया है।

नमूदे आलमे अस्बाब क्या है लफ़्ज़े बे-मानी,
कि हस्तीकी तरह मुझको अदम[१] में भी तअम्मुल[२] है।

× ×

दर्द हो दिलमे तो दवा कीजे,
दिल ही जब दर्द हो तो क्या कीजे।
हमको फरियाद करनी आती है,
आप सुनते नहीं तो क्या कीजे।
दुश्मनी हो चुकी बक़द्र वफा,
अब हक़्क़े दोस्ती अदा कीजे।

× ×

मौत फिर ज़ीस्त न हो जाय, यह डर है 'गालिब',
वह मेरी क़ब्र प अगुश्त बददाँ होगे।[3]

---

१ अनस्तित्व, परलोक, २ शका, ३ मेरी मृत्युपर उन्हे अफसोस होगा, वह मेरी कब्रपर आयेंगे, मुझे डर है कि उनके आनेसे मेरी मृत्यु जीवन न बन जाय और उन्हें मुँहमे उँगली देनी पडे।

परिशिष्ट भाग

परिशिष्ट १

ग़ालिबके कुछ शागिर्द

ग़ालिबके शिष्योंकी सख्या वहुत अधिक थी और उसमे सब धर्मों और सम्प्रदायोंके लोग थे। यही नहीं, उनकी विचार तथा काव्य-शैलीमें भी भिन्नता पाई जाती है। इससे ग़ालिबके व्यक्तित्वकी विशालता तथा उनकी उदारतापर प्रकाश पड़ता है। उनके शिष्योंमें वहुत ही कम ऐसे है जिन्होने उनका रग अपनाया। वात यह है कि ग़ालिबने कभी किसी शिष्यकी शैली वदलनेकी कोशिश नही की। उनकी विशेषता यही थी कि वह हर एकको उसीके तर्ज़पर वनाने-सँवारनेकी कोशिश करते थे जिससे उसके व्यक्तित्वकी छाप उसके काव्यपर वनी रहे। वह कभी अपनी प्रवृत्तियोंको उनपर लादनेकी कोशिश नही करते थे। इसीलिए ग़ालिबके शागिर्दोंमें तुफ़्ता, हाली, साकिब, जको, सालिक, शेफ़्ता जैसे विभिन्न शैलियोवाले शाइर मिलते हैं।

यह ग़ालिबकी लोकप्रियता और उदारताका प्रमाण है कि उनके शिष्योंकी सख्या सैकडो तक पहुँच गयी थी। जनाव आफ़ाक़ हुसेन 'आफाक़' ने अपनी पुस्तक 'नादिराते ग़ालिव' में ग़ालिबके ९३ शिष्योंपर सक्षिप्त टिप्पणियाँ दी हैं। मालकरामजीने 'तलामज़ ए ग़ालिव'में खोज करके अनेक नये शिष्योंके नाम-धाम दिये है, इनकी कुल सख्या १४६ तक पहुँच गयी है। इनके अतिरिक्त विभिन्न सकलनो एव तज़किरोंमे कुछ नाम और भी मिलते हैं जो विवादास्पद हैं। मालकरामजीके अनुसार ग़ालिबके शिष्योंकी नामावली निम्नलिखित है—

१ '[illegible]' [illegible]
२ '[illegible]' [illegible]
३ '[illegible]' सय्यद [illegible] उर्फ अहमद मिर्ज़ा
४ '[illegible]' हाजी [illegible] अली [illegible] देहलवी
५ '[illegible]' मुन्शी मुहम्मद सुल्तान हसन खाँ
६ 'अहसन' हकीम मजहर अहसनखाँ रामपुरी
७ 'अख्तर' हकीम फरहयावखाँ रामपुरी
८ 'अख्तर' मौलवी फर्ज़न्दअली अज़ीमाबादी
९ 'अदीब' मौलवी मुहम्मद सैफुल्हक़ देहलवी
१० 'इस्माइल' मौलाना मुहम्मद इस्माइल मेरठी
११ 'अनवर' सय्यद शुजाउद्दीन उर्फ उमराव मिर्ज़ा देहलवी
१२ 'बाक़र' शाह बाकरअली बिहारी
१३ 'बिस्मिल' मुंशी शाकिरअली मेरठी
१४ 'बेताब' साहिबज़ादा अब्बास अलीखाँ रामपुरी
१५ 'बेदिल' मौलवी अब्दुल समीअ रामपुरी
१६ 'बेदिल' मौलवी मुहम्मद हबीबुलरहमान असारी सहारनपुरी
१७ 'अश्क' मुंशी बालमुकुन्द सिकन्दराबादी
१८ '[illegible]' श्री ऐनुलहक़ काठवी
१९ '[illegible]' हकीम मुहम्मद मुरादअली

२६	'तमन्ना'	मौल्वी मुहम्मद हुसैन मुरादाबादी
२७	'तौफ़ीक़'	शाहज़ादा बशीरुद्दीन मैसूरी
२८	'साक़िब'	मीरज़ा शहाबुद्दीन अहमदख़ाँ देहलवी
२९	'जम'	सय्यद मुहम्मद जमशेदअलीख़ाँ मुरादाबादी
३०	'जुनूँ'	क़ाज़ी अब्दुल जमील बरेलवी
३१	'जौहर'	मुंशी ज्वाहरसिंह देहलवी
३२	'जौहर'	हकीम मुहम्मद मा'शूकअली ख़ाँ शाहजहाँपुरी
३३	'हाली'	मौलाना अल्ताफ़हुसैन अंसारी पानीपती
३४	'हुबाब'	पण्डित उमराव सिंह लाहौरी
३५	'हज़ीं'	मीर बहादुरअली बरेलवी
३६	'हिसाम'	ख़लीफ़ हिसामुद्दीन अहमद
३७	'हसीन'	ख़ुर्शीद साहब देहलवी
३८	'हक़ीर'	मुंशी नबी बख़्श अकबराबादी
३९	'हैदर'	आग़ा हैदरअली बेग देहलवी
४०	'ख़ावर'	मीरज़ा मुहम्मद अकबर ख़ाँ क़िज़िलबाश
४१	'ख़लील' व 'फ़ीक'	श्री मुहम्मद इब्राहीम आर्वी
४२	'ख़िज्र	मीरज़ा ख़िज्र सुलतान देहलवी
४३	'ख़ुर्शीद'	श्री ख़ुर्शीद अहमद देहलवी
४४	'दर्द'	मुंशी हीरासिंह देहलवी
४५	'ज़का'	मौल्वी मुहम्मद हबीबुल्ला मद्रासी
४६	'ज़की'	हकीम अशफ़ाक़ हुसैन मारहर्वी
४७	'राबित'	मीरज़ा हसन रज़ा ख़ाँ देहलवी
४८	'राज़ी'	दीवान जानी बिहारीलाल अकबराबादी
४९	'राक़िम'	मीरज़ा क़मरुद्दीन ख़ाँ देहलवी
५०	'रुस्वा'	शेख़ मुहम्मद अब्दुल हमीद ग़ाज़ीपुरी
५१	'रस्की'	नवाब मुहम्मद अली ख़ाँ जहाँगीराबादी

५२	'रश्की'	काज़ी मुहम्मद इनायत हुसेन बदायूँनी
५३	'रिज्वाँ'	मीरजा शमशाद अलीबेग देहलवी
५४	'रिज्वाँ'	नवाब मुहम्मद रिज्वाँ अली खाँ मुरादाबादी
५५	'रफअत' व 'सुरूर'	मौलाना मुहम्मद अब्बास शर्वानी
५६	'रम्ज़'	मीरज़ा गुलाम फख़्रउद्दीन उर्फ मिर्ज़ा फख़्रू देहलवी
५७	'रज' व 'तबीब'	हकीम मुहम्मद फसीहउद्दीन मेरठी
५८	'रिन्द'	जानी बाँकेलालजी
५९	'ज़की'	सय्यद मुहम्मद ज़िक्रिया खाँ देहलवी
६०	'सालिक'	मीरज़ा कुरबान अलीबेग देहलवी
६१	'सालम'	: मीर अहमद हुसेन
६२	'सज्जाद'	सय्यद सज्जाद मिर्ज़ा देहलवी
६३	'सुखन'	ख्वाज फख़्रउद्दीन हुसेन खाँ देहलवी
६४	'सुरूर'	श्री देवी परशाद देहलवी
६५	'सुरूर'	चौधरी अब्दुल गफूर मारहर्वी
६६	'सुरूर'	मुहम्मद अमीर अल्ला अकबराबादी
६७	'सरोश'	साहिबज़ाद अब्दुलवहाबखाँ रामपुरी
६८	'सोज़ाँ'	हसीबउद्दीन अहमद असारी सहारनपुरी
६९	'सोज़ाँ' व 'मद्दाह'	मुहम्मद सादिकअली गढमुक्तेसरी
७०	'सय्याह'	मियाँ दाद खाँ औरङ्गाबादी
७१	'शादाँ'	मीरज़ाहुसेन अली खाँ देहलवी
७२	'शाकिर'	मौलवी मुहम्मद अब्दुलरज्ज़ाक मछलीशहरी
७३	'शाह'	अनवरअली अज़ीमाबादी
७४	'शायक'	सय्यद शाह आलम मारहर्वी
७५	'शायक'	ख्वाजा फैज़उद्दीन उर्फ हैदरजान जहाँगीरनगरी
७६	'शफक'	नवाब मुहम्मद सैदुद्दीन खाँ बहादुर

७७	'शोखी'	नादिरशाह रामपुरी
७८	'शौकत'	नवाब यार मुहम्मद खाँ भूपाली
७९	'शहाब'	शहाबउद्दीन खाँ रामपुरी
८०	'शहीर'	हाफ़िज खानमुहम्मद खाँ रामपुरी
८१	'शेर'	सय्यद मुहम्मद शेर खाँ बिहारी
८२	'शेफ्त' व 'हस्रती'	नवाब मुहम्मद मुस्तफा खाँ देहलवी
८३	'साहिब'	नवाब शेरजमाँ खाँ देहलवी
८४	'साहिब'	मुहम्मद हुसेन बरेलवी
८५	'सादिक़'	मुहम्मद अज़ीजउद्दीन बदायूनी
८६	'सफीर'	सय्यद फर्ज़न्द अहमद बिलग्रामी
८७	'सूफी'	शाह फर्ज़न्द अली मनेरी
८८	'सूफ़ी'	मुहम्मद अली नजीबाबादी
८९	'तालिब'	सरदार मुहम्मद खाँ
९०	'तालिब'	मीरजा सईदउद्दीन अहमद खाँ देहलवी
९१	'तालिब'	सय्यद शेर मुहम्मद खाँ देहलवी
९२	'तालिब'	डाक्टर मुहम्मद हफ़ीजउल्ला अकबराबादी
९३	'तालिब'	मुहम्मद रियाज़उद्दीन
९४	'तर्रार'	सरफराज़ हुसेन देहलवी
९५	'तर्ज़ी'	कुतुबउद्दीन दिलावर अली जा'फरी
९६	'ज़फ़र'	अबूज़फ़र सिराजउद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह
९७	'ज़हीर'	मुंशी प्यारेलाल देहलवी
९८	'आरिफ'	मीरज़ा जैनुलआब्दीन खाँ देहलवी
९९	'आशिक'	शंकरदयाल अकबराबादी
१००	'आशिक'	मुहम्मद इकबाल हुसेन देहलवी
१०१	आशिक'	मुहम्मद आशिक हुसेन खाँ अकबराबादी
१०२	'आकिल'	सय्यद मुहम्मद सुलतान देहलवी

१०३	'अर्शी'	सय्यद अहमद हुसेन कन्नौजी
१०४	'अजीज़'	मुहम्मद विलायतअली खाँ सफीपुरी
१०५	'अज़ीज'	मिर्ज़ा यूसुफअली खाँ वनारसी
१०६	'अता'	अता हुसेन मारहर्वी
१०७	'अलाई'	नवाब अलाउद्दीन अहमद खाँ देहलवी
१०८	'फिदा'	मुहम्मद फिदाअली खाँ रामपुरी
१०९	'फिगार'	मीर हुसेन देहलवी
११०	'फना' व 'जमाली'	सय्यद अहमद हुसेन सहवानी
१११	'फौक'	डाक्टर मुहम्मद जान अकबराबादी
११२	'कद्र'	गुलाम हुसेन बिलग्रामी
११३	'काशिफ'	बद्रुद्दीन अहमद उर्फ फकीर देहलवी
११४	'कोकब'	मुशी तफज्जुल हुसेन खाँ देहलवी
११५	'लतीफ'	लतीफ अहमद उस्मानी
११६	'माइल'	मीर आलम अली खाँ सहवानी
११७	'मजरूह'	मीर मेहदी हुसेन देहलवी
११८	'महशर'	अब्दुल्ला खाँ रामपुरी
११९	'महमूद'	मुहम्मद हुसेन देहलवी
१२०	'महमूद'	मुहम्मद महमूदुलहक देहलवी
१२१	'मह्रो'	नवाब गुलाम हसन खाँ देहलवी
१२२	'मदहोश'	सखावत हुसेन बदायूनी
१२३	'मुश्ताक'	बिहारीलाल देहलवी
१२४	'मग्लूब'	इफ्तखारउद्दीन रामपुरी
१२५	'मफ्तूँ'	लछमीनरायन फर्रुखाबादी
१२६	'मकसूद'	मकसूद आलम रिज्वी पहानवी
१२७	'मसूर'	मुसल्लह उद्दीन अकबराबादी
१२८	'यूनिस'	पण्डित शिवराम देहलवी

१२९	'मैकश'	अहमद हुसेन देहलवी
१३०	'मैकश' व 'महवी'	इर्शाद अहमद देहलवी
१३१	'मीना'	अहमद हुसेन मिर्ज़ापुरी
१३२	'नादिम'	फ़ख़्रउद्दीन रामपुरी
१३३	'नासिर'	नासिर उद्दीन हैदर ख़ाँ उर्फ़ यूसुफ़ मिर्ज़ा लखनवी
१३४	'नाज़िम'	नवाव मुहम्मद यूसुफ अली ख़ाँ वहादुर रामपुरी
१३५	'नामी'	मुहम्मद अली ख़ाँ मुंगेरी
१३६	'निशात'	वाबू हरगोविन्द सहाय अकवरावादी
१३७	'निज़ाम'	नवाव मुहम्मद मर्दान अली ख़ाँ मुरादावादी
१३८	'नय्यर' व 'रख़्शाँ'	नवाव ज़ियाउद्दीन अहमद ख़ाँ वहादुर देहलवी
१३९	'नय्यर'	हकीम मुहिव अली काकोरवी
१४०	'वहीद'	वहीद उद्दीन अहमद ख़ाँ देहलवी
१४१	'वफा' व 'तालिव'	मीर इब्राहीम अली ख़ाँ सहसवानी
१४२	'वफा' व 'अख़्तर'	ख़्वाजा अब्दुल गफ्फार जहाँगीरनगरी
१४३	'वकील'	मुंशी शकूर अहमद पानीपती
१४४	'वली'	मौलवी अम्मू-जान देहलवी
१४५	'होशियार'	केवल राम देहलवी
१४६	'यकता'	ख़्वाजा मुईनुद्दीन ख़ाँ देहलवी

इनके अतिरिक्त 'नादिराते गालिब'की नामावलीमें निम्नलिखित नाम और हैं —

१	'आशोव'	रायवहादुर प्यारेलाल टण्डन देहलवी
२	'राना'	नवाव मुराद अली अकवरावादी
३	'रजूर'	नवाव अलीवख़्श ख़ाँ देहलवी
४	'करामत'	सय्यद शाह करामत गयावी

यह तो सम्भव नही कि इस ग्रन्थमे उनके सब शिष्योका परिचय दिया जा सके। परन्तु उनमे जो प्रसिद्ध हुए या गालिबके विशेष प्रिय थे, उनका सक्षिप्त परिचय दे देना भी उचित होगा।

'आराम' :

रायबहादुर मुशी शिवनरायन अकबराबादी माथुर कायस्थ थे। इनके परदादा राय उजागरचन्द निर्वासन कालमें राजा चेतसिहके वज़ीर थे। दादा और पिता भी उच्च पदोपर थे। मुशी शिवनारायणका जन्म १० सितम्बर १८३३को आगरेमे हुआ। इन्होने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। प्रसिद्ध कोशकार डा० फेलन आगरा कालेजमे इनके अंग्रेज़ीके अध्यापक थे। पढाई समाप्त करनेके अनन्तर अनेक नौकरियां की, परन्तु नाम आगरा म्युनिसपिलिटीके सेक्रेटरीकी हैसियतसे कमाया। जन-सेवामे लगे रहते थे। इतने लोकप्रिय हो गये थे कि कुम्हार इनकी मिट्टीकी मूर्तियां बनाकर बेचते थे। उन्होने प्रकाशन-कार्यके लिए 'मतबअ मुफीदुल खलायक' कायम किया जिससे गालिबकी दो पुस्तकें 'दस्तम्बो' (१८५८) तथा 'दीवाने-उर्दू' (१८६३ ई०) प्रकाशित हुईं। एक मासिक (मफीदुल खलायक) और दूसरा पाक्षिक (गुलदस्त मय्यारुश्शुअरा) पत्र भी सम्पादित एव प्रकाशित करते थे। १८५८ मे 'रिसाला बगावते हिन्द' नामक मासिक भी निकाला जिसके सम्पादक उनके मित्र डा० मुकुन्दलाल थे। मुशी शिवनारायणकी मृत्यु ४ सितम्बर १८९८ को हुई।

इनका काव्य बहुत कम पाया जाता है। उसपर तसव्वुफका रग है। नमूना यह है —

यह दुनिया इक सरा है, इसको आख़िर छोड जाना है,
अगर दो-चार दिन आकर यहाँ ठैरे तो क्या ठैरे।

क़याम[1] अपना हो इस मेहनत सराए देह[2] में क्योंकर,
जहाँ आफ़त ही आफ़त हो वहाँ 'आराम' क्या ठैरे।

'आगाह' :

नवाब सय्यद मुहम्मद रज़ा देहलवी। जन्म १८३९ ई०, मृत्यु १९१७ ई०। काव्यके उदाहरण लीजिए—

यह भी इक रंग है मुहब्बतका
रोयें हम और हँसा करे कोई।

× ×

जो निगाहें उठ न सकती थीं ख़ुदाया शर्म से,
बेहिजाबान[3]. वह क्योंकर दिलमें पैका हो गयीं।
शुक्र हो किससे अदा, क़ातिलकी तेगे तेज़का,
मौतकी दुश्वारियाँ[4] दम-भरमें आसाँ हो गयीं।

'अदीब' :

मौलवी मुहम्मद सैफुलहक़ देहलवी। जन्म १८४६ ई०, मृत्यु १८९१ ई०।

उच्च वंशके थे। दादा ख़ाँ बहादुर इकराम उद्दीन देहलीके सदर अमीन थे। सैफुलहक़की शिक्षा अच्छी हुई। कई नौकरियाँ की। 'कोहे-नूर', 'शफ़ीके हिन्द' इत्यादि कई पत्रोंका संपादन किया। फिर हैदराबादमें साढे चार सौ रुपये मासिकपर रिपोर्टर हो गये थे। भाषा-विज्ञानकी ओर रुचि थी, उदार हास्यप्रिय व्यक्ति थे, बोलते भी अच्छे थे। इनके कलाममें देहलीके मुहाविरोंका अच्छा प्रयोग मिलता है।

---

१ निवास, २ संसारकी श्रमशाला, ३ बिना लज्जाके, ४ कठिनाइयाँ।

ख़ाली ख़याले यारसे दिल, एक दम नहीं,
रहते हैं अपने घरमें भी, इक मेहमाँसे हम !
सब कुछ अदीब ! इश्क़ने जीसे भुला दिया,
जाना कहाँ है और थे आये कहाँसे हम ।

× ×

गैर तक पूछते है—"हो गयी हालत कैसी ?"
डाल दी आपने, हमपर यह मुसीबत कैसी ।
कह दिया उसने, कि "अब यह भी न देखोगे कभी"
जब कहा मैने, कि "मुँह देखेकी उल्फत कैसी ?"

'इस्माइल' :

मौलाना मुहम्मद इस्माइल मेरठी । जन्म १२ नवम्बर १८४४ मृत्यु १ नवम्बर १९१७ इन्होने उर्दू एव फारसी गद्य-पद्यमें बहुत कुछ लिखा है । बच्चोके लिए लिखी इनकी कविताएँ हमलोगोके बचपनमे बडी लोकप्रिय थी । इनके काव्यमे नीति और दर्शनका गहरा पुट है । इस्माइल साहब उन लोगोमे थे जिन्होने उर्दू काव्यको नये विषय दिये, नई भूमिकाएँ प्रदान की । काव्यके कुछ उदाहरण दिये जाते है—

मै बेक़रार, मजिले मक़सूद[1] बेनिशाँ[2]
रस्तेकी इन्तिहा[3], न ठिकाना मुक़ामका[4] ।

× ×

---

१ उद्दिष्टस्थल, लक्ष्य स्थान, २ चिह्न-रहित, ३ अन्त, ४ महसे का स्थान ।

हिजाबे शाहिदे मुतलक़[1] न उट्ठा है न उट्ठेगा,
जिसे हम लामकाँ समझे थे, वह भी इक मकाँ निकला।

× ×

कैसी तलब ! कहाँकी तलब, किसलिए तलब !
हम हैं, तो वह नहीं है, वह है, तो हम नहीं।

× ×

बज़्मे ईजाद[2] में बेपर्दः कोई साज नहीं,
है यह तेरी ही सदा, ग़ैरकी आवाज़ नहीं।

'अनवर' :

सय्यद शुजाअ उद्दीन उर्फ उमराव मिर्जा। जन्म १८४७ ई० मृत्यु १८८५ ई०।

इनका एक दीवान मिलता है जो रिफ़ाहे आम प्रेस लाहौरसे छपा था। इनके कलाममें रोज़मर्रः तथा व्यंगकी बहार है।

वह आँखें नहीं हाय क्या हो गया,
वह काफ़िर तो अब कुछ नया हो गया।
तुम्हें यां तक आना क़यामत सही,
हमें जीसे जानेमें क्या हो गया ?

× ×

यह मस्तियोंका रंग है जोशे शबाब[3] में,
गोया कि वह नहाये हुए हैं शराबमें।

---

१ एक मात्र द्रष्टा (ईश्वर) का घूँघट या पर्दा, २. आविष्कारोंकी महफ़िल, ३ जवानीका जोश, यौवन-प्राबल्य।

घर बयाबाँमें बनाया नहीं हमने लेकिन,
जिसको घर समझे हुए थे, वह बयाबाँ निकला।

× ×

रंजिशसे गर कहा हो, तो ईमाँ न हो नसीब,
काफ़िर बुतोंको कहते हैं उश्शाक़ प्यारसे।

× ×

कल मैंने कहा कि बन्दः पर्वर,
चेहरेसे निक़ाब आप उठायें।
कहते हैं अदाशनास[2] बाहम[3],
"अच्छा हो जो रुख़, तो क्यों छुपायें।
बोले रुदादे[4] मूसा व तूर,
सुन ली हो, तो देखनेको आयें।
बिस्मिल्ला! हम उठायें पर्दः,
पर उनसे कहो कि ताब[5] लायें।"

'हाली'

शम्सुलउलमा मौलाना अल्ताफ़ हुसेन अंसारी। जन्म १८३६ ई० मृत्यु ३१ दिसम्बर १९१४ ई०।

शेफ्त के संसर्गसे साहित्य एवं काव्यकी सेवाका शौक पैदा हुआ।

इन्होंने सबसे पहिले 'गालिब' पर किताब (यादगारे गालिब) लिखी। गालिबके शिष्य होकर यह 'मीर'के अनुयायी थे, जैसा स्वयं ही कहा है—

---

१ प्रेमीगण (आशिकका बहुवचन), २ अदा (हाव-भाव) को पहिचाननेवाले, ३ परस्पर, ४ वृत्तान्त, ५ देखनेका साहस।

'हाली' सुख़नमें शेफ़्तःसे मुस्तफ़ीज़[1] हूँ,
शागिर्द मीरज़ाका मुक़ल्लिद[2] हूँ मीरका।

हालीने उर्दूमें नेचुरल शाइरीकी बुनियाद डाली और सामाजिक समस्याओंकी ओर उसे मोड़ा तथा नई डगरपर डाल दिया। मुसद्दस हाली, मनाजात बेवामें उर्दूने एक नये तर्ज़की अँगड़ाई ली है। गद्यमें हयाते सादी, यादगारे गालिब और हयाते जावेद अमर ग्रन्थ हैं। 'मुक़दमा शेरो शाइरी' तथा 'यादगारे ग़ालिब'में इनकी समीक्षाशक्तिके भी दर्शन होते हैं। उर्दूके अलावा अरबी-फ़ारसीमें भी कविता करते थे। इनकी गणना उर्दूकी प्रथम पंक्तिके शाइरोंमें होती है।

इश्क़ सुनते थे जिसे हम, वह यही है शायद,
ख़ुद ब ख़ुद दिलमें है इक शख़्स समाया जाता।
तुमको हजार शर्म सही, मुझको लाख जब्त,
उल्फ़त[3] वह राज़[4] है, कि छुपाया न जायगा।

दिखाना पड़ेगा मुझे ज़ख़्मे दिल,
अगर तीर उसका ख़ता[5] हो गया।*
नहीं भूलता उसकी रुख़्सतका वक़्त,
वह रो-रोके मिलना बला हो गया।

---

१ लाभ उठानेवाला, २ अनुकरणकारी, ३ प्रेम, ४ रहस्य, ५ लक्ष्यभ्रष्ट।

*'जिगर' मुरादाबादीका प्रारम्भिक शेर है—

गिने जा रहे हैं मेरे ज़ख़्मे दिल,
कोई तीर शायद ख़ता हो गया।

गो मय है तुन्दो तल्ख़[1], प साक़ी है दिलरुबा,
ऐ शेख़ ! बन पडेगी न कुछ, हाँ कहे बगैर ।
हम जिस प मर रहे है वह है बात ही कुछ और,
आलममें तुमसे लाख सही, तुम मगर कहाँ ?

'इक़ीर' :

मुशी नबी बख़्श अकबराबादी । मृत्यु १८६० ई० ।

गालिब इनकी समीक्षाशक्तिमे बडा विश्वास रखते थे और उनसे बराबर सलाह-मश्विरा लेते रहते थे । उनके नाम गालिबके अनेक पत्र 'नादिराते गालिब' में सग्रहीत है ।

ज़ख्मके मुँहमें भर आया पानी,
जब कि पैकाँ[2] का मज़ा याद आया ।
ख़त जो गैरोंके किये उसने रक़म,
हमको क़िस्मतका लिखा याद आया ।
बस कि मसनूअ[3] है सानअ[4]की सिफत,
बुतको देखा तो ख़ुदा याद आया ।

'रम्ज़' :

मीरज़ा फनहुरमुल्क बहादुर गुलाम फखरुद्दीन उर्फ मिर्ज़ा फखरू । जन्म १८१२ ई०, मृत्यु १०-७-१८५६ ई० । बहादुर शाह ज़फरके चौथे बेटे थे । कविताके अतिरिक्त सगीत और नृत्यका भी शौक था ।

आखें तो उसको देखके होती है बेकरार,
बिन देखे दिल तडपने लगा इसको क्या हुआ ।

× ×

---

१ तीक्ष्ण और कटु, २ बाणकी नोक, ३ निर्मित, ४ निर्माता ।

दर्द क्या, जिसमें कुछ न हो तासीर,
बात क्या, जिसमें कुछ मज़ा न हुआ।
वह तो मिलता, पर ऐ दिले कमज़र्फ़[1]!
तुझको मिलनेका हौसला न हुआ।
तुम रहो और मजमए अग़ियार,
मेरा क्या है, हुआ, हुआ, न हुआ।

'रंज' व 'तबीब' :

हकीम मुहम्मद फसीह उद्दीन। जन्म १८३६ ई० मृत्यु ३१ मार्च १८८५। मेरठके प्रसिद्ध चिकित्सकोंमें थे।

देखता था मैं निगाहोंसे हर इक जा तुझको,
और उन्हींमें तू निहाँ था, मुझे मालूम न था।

× ×

लाखों बनाव, एक तग़ाफ़ुल[2]में आपकी,
लाखों बिगाड़, एक मेरे इज्तिराबमें।*

'ज़की' :

नवाब सय्यद मुहम्मद ज़िक्रिया ख़ाँ। जन्म १८३९ई० मृत्यु १९०३ई०। अच्छे कवि थे।

---

१ क्षुद्र, २ उदासीनता।

*ग़ालिबका शेर है—

लाखों लगाव एक चुराना निगाहका
लाखो बनाव एक बिगड़ना इताबमे।

का इलाका खरीद लिया था। बचपन और जवानीमे रँगरलियाँ की पर बादमे परहेजगार हो गये। अरबी फारसीके आलिम थे। १८५७ के विद्रोहमे यह भी घसीट लिये गये और इनकी जायदाद ज़ब्त कर ली गयी तथा कारावासका दण्ड भी मिला। बादमे नवाब भूपाल तथा अन्य प्रभावशाली मित्रोकी सिफारिशपर छोड दिये गये और आधी जायदाद भी मिल गयी। गालिबसे इनकी खूब पटती थी। उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। समीक्षक भी अच्छे थे। उर्दू शाईरोका मशहूर फारसी तज़किरा 'गुलशन बेखार' इन्हीकी रचना है। इनका काव्य सच्चे रससे परिपूर्ण है —

एक दिन शाम हमारी भी सेहर[1] कर देगा,
वही जो शामको हर रोज़ सेहर[2] करता है।

× ×

शायद इसीका नाम मुहब्बत है शेफ्ता !
है आग-सी जो सीनेके अन्दर लगी हुई।

× ×

हाय वह शेफ्त की बेताबी,
थाम लेना वह तेरे महमिलको।

× ×

'तालिब'

मीरज़ा सईद उद्दीन अहमद खाँ। जन्म १८५२ ई० मृत्यु १ सितम्बर १९२५।

साकिबके छोटे भाई थे। कविताकी ओर बचपनसे रुचि थी। इनकी भाषा साफ सुथरी तथा मुहाविरेदार है।

---

१ प्रभात, २ जादू।

उठाया जो रुख़से वज़्ममें, उसने निक़ाबको,
शोख़ीने कुछ बढ़ा दिया लुत्फ़े हिजाब[1]को।

× ×

यहाँ तो वहीकी वही सूझती है,
ज़मानेको क्योंकर नई सूझती है।
क़यामतके वादों प तुम जी रहे हो,
तुम्हें ज़ाहिदो! दूरकी सूझती है।

× ×

'ज़फ़र' :

अबूज़फ़रसिराजउद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह। जन्म २४।१०।१७७५। मृत्यु ७ नवम्बर १८६२ ई०।

मुगल वंशके अन्तिम सम्राट्। गदरके अभिनेता। ग़दरके बाद इन पर अंग्रेज़ोंने मुकदमा चलाया और इन्हें रंगूनमें निर्वासित कर दिया। वहीं बड़ी दुरवस्थामें मृत्यु हुई। दर्दमन्द तबीयत पाई थी। उर्दू और हिन्दी (ब्रजभाषा) दोनोंमें कविता करते थे। ज़मानेकी रविश और बेवफाईने दिलके दर्दको और गहरा कर दिया था और यह तसव्वुफकी ओर झुक गये थे। मिज़ाजमें दरवेशी आ गयी थी। इनके काव्यमें करुणाका गहरा रंग है।

पसे मर्ग[2] मेरी मज़ारपर जो दिया किसीने जला दिया,
उसे आह दामने बाद[3]ने सरेशाम ही से बुझा दिया।
शबेवस्ल[4] यूँ ही गुज़र गयी जो अकेला पाया था यारको,
कभी पा दबाके सुला दिया कभी बोस लेके जगा दिया।

---

१ लज्जाका सौन्दर्य, २ मृत्युके बाद, ३ वायुके आँचलकी आह, ४ मिलनरात्रि।

पये मगफिरत[1] मेरे क्या 'ज़फर' पढे फातिहा कोई आनकर,
वह जो टूटी क़ब्रका था निशॉ उसे ठोकरोसे मिटा दिया ।

'आरिफ़' :

मीरजा जैनुल आबदीन खां । जन्म १८१७ ई० मृत्यु १८५२ ई० ।

गालिबके साढू भाई नवाव गुलाम हुसेनके वेटे थे । गालिब इन्हें पुत्रवत् स्नेह करते थे और इन्हीकी मृत्युपर उन्होने वह मृत्युगीत लिखा जो उर्दूकाव्यमें अमर हो गया है । इनके वेटोको अपने यहाँ लाकर रखा और पाला । आरिफमे वडी प्रतिभा थी और गालिव कहा करते थे कि यह मेरा सच्चा उत्तराधिकारी होगा पर भरी जवानीमे मर गये ।

जो का'ब में है, है वही वुतख़ान में जल्व[2],
इक पर्द है सो शेखे हरम उठ नहीं सकता ।
इक देखना है, कहिए तो उसको भी छोड दें,
रखते नहीं है आपसे, इसके सिवा गरज़ा ।
उठता क़दम जो आगेको, ऐ नाम बर नहीं,
पीछे तो छोड आये कहीं उसका घर नहीं ।

'आशिक़' :

मुशी मुहम्मद एकबाल हुसेन । उस्तादोकी गज़लपर गज़ल लिखते थे । गद्य-पद्यमे समान गति थी । उर्दूके तीन दीवान प्रकाशित है । कलामके चन्द नमूने यहां दिये जाते है —

हाय किस नाज़से कहते है वह मुझसे हरदम,
"अपनी सूरतको तो देखो, तुम्हें चाहें क्योंकर ?"
× ×

---

१ मुक्तिके लिए । २ छवि ।

उन्हें ग़ुस्सः, कि मेरी बज़्ममें यह किसलिए आया,
मुझे यह ग़म, कि वह पहलूमें क्यों दुश्मनके बैठे है।

× ×

वह दिल है ख़ाक, जिसमें तेरी आर्ज़ू न हो,
वह गुल है ख़ार, जिसमें मुहब्बतकी बू न हो।

× ×

तोबः तो कर चुका हूँ, मगर कुछ-कुछ इन दिनों,
देती है दम बहारकी आबोहवा मुझे।

'अज़ीज़' :

मौलाना मुहम्मद विलायतअलीख़ाँ। जन्म ८ मार्च १८४३ ई० मृत्यु २ जुलाई १९२८ ई०।

फारसी और उर्दूमें कहते थे। फारसीमे चार और उर्दूमे तीन दीवान हैं। उर्दू कलामका रग देखिए—

[१]

हमने इक आलम[1] को छोड़ा इश्क़में,
लेकिन उनका और ही आलम[2] रहा।
जान दी मैंने तो पाई मरके जान,
दममें जबतक दम रहा बेदम रहा।
का'ब. कैसा! सिज्दः[3] क्या! कैसी नमाज!
उम्र-भर सर उनके दरपर ख़म रहा[4]।

---

१ दुनिया, २ हाल, ३ उपासना, ४ झुका।

पये मगफिरत[1] मेरे क्या 'ज़फर' पढ़े फातिहा कोई आनकर,
वह जो टूटी क़ब्रका था निशाँ उसे ठोकरोंसे मिटा दिया ।

'आरिफ़' :

मीरजा जैनुल आबदीन खाँ । जन्म १८१७ ई० मृत्यु १८५२ ई० ।

गालिबके साढ़ू भाई नवाब गुलाम हुसेनके बेटे थे । गालिब इन्हें पुत्रवत् स्नेह करते थे और इन्हींकी मृत्युपर उन्होंने वह मृत्युगीत लिखा जो उर्दूकाव्यमें अमर हो गया है । इनके बेटोंको अपने यहाँ लाकर रखा और पाला । आरिफमें बड़ी प्रतिभा थी और गालिब कहा करते थे कि यह मेरा सच्चा उत्तराधिकारी होगा पर भरी जवानीमें मर गये ।

जो का'ब में है, है वही बुतख़ान में जल्व[2],
इक पर्द है सो शेखे हरम उठ नहीं सकता ।
इक देखना है, कहिए तो उसको भी छोड़ दें,
रखते नहीं है आपसे, इसके सिवा गरज़ ।
उठता क़दम जो आगेको, ऐ नाम बर नहीं,
पीछे तो छोड़ आये कहीं उसका घर नहीं ।

'आशिक़' :

मुंशी मुहम्मद एकबाल हुसेन । उस्तादोंकी गजलपर गज़ल लिखते थे । गद्य-पद्यमें समान गति थी । उर्दूके तीन दीवान प्रकाशित है । कलामके चन्द नमूने यहाँ दिये जाते है —

हाय किस नाज़से कहते है वह मुझसे हरदम,
"अपनी सूरतको तो देखो, तुम्हें चाहें क्योंकर ?"

× ×

१ मुक्तिके लिए । २ छवि ।

उन्हें गुस्स:, कि मेरी बज़्ममें यह किसलिए आया,
मुझे यह गम, कि वह पहलूमें क्यों दुश्मनके बैठे है।

× ×

वह दिल है ख़ाक, जिसमें तेरी आर्ज़ू न हो,
वह गुल है ख़ार, जिसमें मुहब्बतकी बू न हो।

× ×

तोब. तो कर चुका हूँ, मगर कुछ-कुछ इन दिनों,
देती है दम बहारकी आबोहवा मुझे।

'अज़ीज़':

मौलाना मुहम्मद विलायतअलीख़ाँ। जन्म ८ मार्च १८४३ ई० मृत्यु २ जुलाई १९२८ ई०।

फारसी और उर्दूमें कहते थे। फारसीमें चार और उर्दूमे तीन दीवान हैं। उर्दू क़लामका रंग देखिए—

[१]

हमने इक आलम[1] को छोड़ा इश्क़में,
लेकिन उनका और ही आलम[2] रहा।
जान दी मैंने तो पाई मरके जान,
दममें जबतक दम रहा बेदम रहा।
का'ब: कैसा! सिज्द.[3] क्या! कैसी नमाज़!
उम्र-भर सर उनके दरपर ख़म रहा[4]।

१ दुनिया, २ हाल, ३ उपासना, ४ झुका।

उल्फते ज़िन्दगी नहीं जाती,
जान बेइश्क़ दी नहीं जाती।
जान जाये तो आर्जू जाये,
यह बला जीते जी नहीं जाती।
होश जाते है, जब वह आते है*,
दिलकी हालत कही नहीं जाती।
क्या कहूँ, तुर्फ[1] माजरा है, अज़ीज !
दिल गया, बेखुदी नहीं जाती।

'अजीज़'

मीरजा यूसुफ अली खां। मश्मिय गोईका बडा शौक था। अच्छा शेर कहते थे।

नासह[2] की, नातवानी[3] में हम सुनके क्या करें,
सर उनके आस्ता[4] से उठाया न जायगा।

× ×

हम यह, कि अपनी मर्गको, तुम बिन तलब करें,
तुम वह, कि हमको तुमसे बुलाया न जायगा।

× ×

★ मीर कहते है—

होश जाता नहीं रहा लेकिन,
जब वह आता है, तब नहीं आता।

१ अजीब, २ उपदेशक, ३ दुर्बलता, क्षीणता, ४ चौखट स्थान।

क्या कहूँ, कूचए क़ातिलमें क्या किया जाकर,
हमनशीं ! ख़ाकमें मिलना था मुझे, मिल आया ।

× ×

'अलाई' :

नवाब अलाउद्दीन अहमद ख़ाँ । जन्म २५ अप्रिल १८३३ मृत्यु ३१ अक्तूबर १८८४ । नवाब अमीन उद्दीन ख़ाँ के पुत्र थे । इनकी शिक्षा शुरूमें ग़ालिबकी देख-रेखमें हुई और गालिबने उन्हें एक समयमें अपने बाद फारसी और उर्दू दोनोंमें अपना ख़लीफ़ और उत्तराधिकारी नियुक्त किया था । उर्दू-फारसी दोनोंमें शेर कहते थे ।

मुश्ते ख़ाकस्तर है वह बुल्बुल, कि गुल्शनमें नहीं,
दाग़ है वह दिल, कि ख़ूँके साथ दामनमें नहीं ।

× ×

अल्ला री बेसबातिए उम्रे फ़नापसन्द[1],
बुझता है यह चिराग पलककी हवाके साथ ।

× ×

रखियो सँभलके पाँव जो बीना[2] हो चश्मे दिल[3],
कीजो समझके काम जो रोशन दिमाग है ।

× ×

'फ़ौक़' :

डाक्टर मीरज़ा मुहम्मद जान अकबराबादी । कलामका नमूना देखिए :

---

१ विनाशप्रिय आयुकी अस्थिरता, २ दृष्टिशक्ति युक्त, ३ हृदयकी आँख ।

सर पटकता हूँ एक मुद्दतसे,
दारुए दर्दे सर नहीं मिलती।
सुबहसे शामतक है गश इतना,
नब्ज़ दो-दो पहर नहीं मिलती।
देखते वह है, किन ऑखियोसे,
क्यो नज़रसे नज़र नहीं मिलती।

'क़द्र' :

मीर गुलाम हुसेन विलग्रामी। जन्म १८३३ ई० मृत्यु १४ सितम्बर १८८४ ई०।

कलामका नमूना—

वह मुझे देखके हँस देते है,
ऑख छुपती नहीं है यारीकी।

× ×

अभी था वस्लका क़रार, और अभी इन्कार,
चलो हटो, इन्हीं बातोंसे 'क़द्र' जलते है।

× ×

तू मेरे बोस लेने प, इतना ख़फा हुआ!
बोस भी कोई चीज़ है, तू सौ बार ले।

'मजरूह' :

मीर मेहदी हुसेन। जन्म १८३३ मृत्यु १५ मई १९०३ ई०।

गालिबके अत्यन्त प्रिय शिष्योमें थे। इनके नाम लिखे गालिबके अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र मिलते है। कलाम दिल्लीकी निखरी जबानमें है—

यह जो चुपकेसे आये बैठे है,
लाख फ़ितने[1] उठाये बैठे है।
यह भी कुछ जीमें आ गई होगी,
क्या वह मेरे बिठाये बैठे है।

× ×

दिल्में क़ूवत, जिगरमें ताब कहाँ,
अब वह पहला-सा इज़्तिराब[2] कहाँ ?
वह समाये हुए हैं नजरोंमें,
अपनी आँखोंमें जाये ख़्वाब[3] कहाँ ?
दरे मयख़ानः यह रहा, मजरूह !
आप जाते है, ऐ जनाब, कहाँ ?

× ×

मेरी टूटी हुई तोबःके टुकड़े,
कोई ला दे दरे पीरे मुग़ाँ[4] से।
कि उनको जोड़कर मैं तोड डालूँ,
फिर इक जामे शराबे अर्ग़वाँ[5] से।

'नाज़िम' :

नवाब मुहम्मद यूसुफ अलीखाँ, नवाब रामपुर। जन्म ५ मार्च १८१६ ई० . मृत्यु २१ एप्रिल १८६५ ई०।

---

१ उपद्रव, माशूकका नटखटपन, २ व्याकुलता, ३. स्वप्नकी जगह, ४ मद्यशालाका बूढा प्रबन्धक, ५ रक्तिम मदिरा।

है यह साक़ीकी करामत, कि नहीं जामके पाँव,
और फिर बज्ममें सबने उसे चलते देखा ।

× ×

इससे क्या बहस, कि होगी शबे फ़ुरक़त कैसी,
मौत इसमें नहीं आती, यह मुसीबत कैसी ।

× ×

होते ही दर्दे दिलका बयाँ उठ खड़े हुए,
यानी यह ऐसे हैं, कि न इनसे सुना गया ।

परिशिष्ट २

गदर और बादके जमानेकी दिल्ली

गालिबने अपने मित्रो तथा शिष्योको १८५७ तथा बादमें जो पत्र लिखे है उनसे उस ज़मानेकी दिल्लीकी हालतपर प्रकाश पडता है। इन पत्रोंसे कुछ अंश यहां दिये जाते है।

पत्र १ : दिसम्बर १८५७ :

"अपने घरमें बैठा हूं। दर्वाजेसे बाहर नही निकल सकता। सवार होना और कही जाना तो बडी बात है। रहा यह कि कोई मेरे पास आवे! शहरमें है कौन जो आवे? घरके घर बेचिराग़ पडे हैं।"

पत्र २ : ५ दिसम्बर १८५७ :

"खुदाकी क़सम! ढूंढनेपर मुसलमान इस शहरमे नही मिलता, क्या अमीर, क्या गरीब, क्या कारीगर अगर कुछ है तो बाहरके हैं। हिन्दू ज़रूर कुछ बस गये हैं। अभी देखना चाहिए, मुसलमानोकी आबादीका हुक्म होता है या नही।"

पत्र ३ : ५ दिसम्बर १८५७ :

"तुम हर्गिज़ यहां आनेका इरादा न करना। अमीर गरीब सब निकल गये। जो रह गये थे वह निकाले गये, जागीरदार, पेंशनदार वगैर कोई भी नही है। मुफस्सिल हाल लिखते हुए डरता हूं। किलअके नौकरोंपर कडी नजर है। इन लोगोकी पूछ कुछ ज्याद है और इनकी धर-पकड हो

रही है। फौजी इन्तिज़ाम ११ मईसे आज यानी ५ दिसम्बर तक बरावर जारी है।"

पत्र ४ : ५ दिसम्बर १८५७

"साहब, कैसी बच्चोंकी-सी वातें करते हो। दिल्लीको वैसी ही वसी हुई जानते हो जैसी पहले थी। कासिमजानकी गली, मीर खैरातीके फाटकसे फतहउल्ला खांके फाटक तक बेचिराग है। हां, अगर आबादी है तो यह है कि गुलाम हुसेन खांकी हवेली अस्पताल है और ज़ियाउद्दीन खांके कमरेमें डाक्टर साहब रहते हैं। ज़ियाउद्दीन खां और उनके भाई अपने वाल-बच्चे समेत लोहारूमें जा बसे। लालकुएँके मुहल्लेमें धूल उडती है। आदमीका नाम नहीं। तुम्हारे मकानमें जो छोटी बेगम फिरंगी की बीवी रहती थी उसके पास इस इश्तहारको भेजा था। मालूम हुआ वह लाहौरको गयी है। खेमीकी दुकानमें कुत्ते लोटते हैं। मुफ्ती सदरउद्दीन साहब लाहौर गये हैं।"

पत्र ५ : १८५८ ई०

"एक मजेदार वात परसोंकी सुनो। हाफिज मम्मू बेगुनाह साबित हो चुके। छूट चुके। हाकिमके सामने हाज़िर हुआ करते हैं। अपनी जायदाद मांगते हैं। उनके हक़का सुबूत गुज़र चुका है। सिर्फ हुक्मकी देरी थी। परसों वह हाज़िर हुए थे। मिस्ल पेश हुई। हाकिमने पूछा—"हाफिज मुहम्मद वख्श कौन?" अर्ज किया कि—"मैं। अस्ल नाम मेरा मुहम्मद वख्श है। मम्मू मशहूर हूँ।" कहा—"यह क्या! हाफिज़ मुहम्मद वख्श भी तुम और हाफिज मम्मू भी तुम, सारा जहान भी तुम, जो कुछ दुनियामें है वह भी तुम। हम मकान किसको दें?" मिस्ल दफ्तरमें दाखिल हुई। मियां मम्मू अपने घर चले आये।"

पत्र ६ : ५ मार्च १८५८ ई० :

"तुम्हारे उस खतका जवाव न लिख सका। जवाव तो लिख सकता था लेकिन कल्यानका पैर सूज गया था। वह चल नही सकता था। मुसलमान आदमी शहरमें सडकपर विला टिकट नही चल सकता। इसी मजवूरीसे तुमको खत न भेज सका। कई दिनके वाद जव कहार अच्छा हुआ तव मैं तुमको आगर में समझकर सिकन्दरावाद खत न भेज सका।"

पत्र ६ : १८६० ई० :

"वडी भारी आफत यह है कि क़ारीका कुवाँ वन्द हो गया। लाल-डिग्गीके कुएँ विलकुल वन्द ही गये। खैर खारी ही पानी पीते। गर्म पानी निकलता है। परसो मैं सवार होकर कुवोंका हाल जानने गया था। जामअ मस्जिद होता हुआ राजघाट दरवाजेको चला। मस्जिद जामअसे राजघाट दरवाजे तक वेशक एक सुनसान जगल हो गया है। ईंटोंके जो ढेर पडे हैं अगर वह उठ जायें तो वह भयानक जगह हो जाये। याद करो, मिर्ज़ा गौहरके वाग़ीच के इस तरफ़ कई वाँस नीचा था। अव वह वाग़ीच आँगनके मानिन्द हो गया। यहाँ तक कि राजघाटका दरवाज वन्द हो गया। चहारदीवारीके कगूरे खुले हुए हैं। पानी सव लुट गया। काश्मीरी दरवाज का हाल तुम देख गये हो। अव लोहेकी सडक (रेलवे लाइन) के लिए कलकत्ता दरवाज से कावुली दरवाज तक मैदान हो गया है। पजावी कटर, घोवीवाड, रामजीगज, सआदत खाँका कटर, जरनैलकी वीवीकी हवेली, रामजीदास गोदामवालेके घर, साहव रामवाग व हवेली इनमेंसे किसीका पता नही मिलता। पूरा शहर जंगल हो गया।"

पत्र ७ : १८६० ई०

"यहाँ शहर ढह रहा है। वडे वडे नामी वाजार, खास वाजार और उर्दू वाजार और खानमका वाजार जो कि इनमेंसे हर एक-एक शहर था अव पत भी नही कि कहाँ थे। घर व दूकानके मालिक यह नही वता

सकते कि हमारा घर कहाँ था और हमारी दूकान कहाँ थी। बरसातमे भी पानी नही बरसता। अब वसूल व फावड के बाड मे घर गिर गये। नाज मँहगा है। मौत सस्ती है। फलके भाव अनाज बिकता है। उर्दकी दाल आठ सेर, बाजरा १४ सेर, चना १६ सेर, घी डेढ सेर, तरकारी मँहगी। इन सब बातोमे बढकर बात यह है कि कुँआरका महीना जिसे जाडेका दरवाजा कहते है, मे पानी गर्म, धूप तेज़, और लू चलती है, जेठ आसाढकी सी गर्मी पडती है।"

पत्र ८ : २६ जुलाई १८६१ ई० :

"एक जङ्ग कालोकी, एक मुसीबत गोरोकी। एक दुश्वारी घरोके गिराये जानेकी। एक आफत हैज़ा की बीमारीकी। एक कयामत कालकी। अब यह बरसात सब मुसीबतोसे भरी है। आज इक्कीसवाँ दिन है, सूरज इस तरह देखनेमे आता है जैसे बिजली चमक जाती है। रातको कभी-कभी अगर तारे दिखाई देते है तो लोग उनको जुगनू समझ लेते है। अँधेरी रातोमे चोरोकी बन आई है। कोई दिन नही कि दो-चार घरोकी चोरीका हाल न सुना जाय। मुबालगा न समझना, हजारो घर गिर गये, सैकडो आदमी इधर उधर मर गये, गली-गली नदी बह रही है। कही वह अनकाल था कि पानी नही बरसा, अनाज नही पैदा हुआ। यह पनकाल है। पानी ऐसा बरसा कि बोये हुए दाने बह गये। जिन्होने अभी नही बोया था वह बोनेसे रह गये। सुन लिया दिल्लीका हाल? इसके सिवा कोई नई बात नही है।"

पत्र ९ : १६ फरवरी १८६२ ई० .

"ऐ मेरी जान! यह वह दिल्ली नही है जिसमे तुम पैदा हुए हो। यह वह दिल्ली नही है जिसमें तुमने तालीम हासिल की है। यह वह दिल्ली नही है जिसमे तुम शाहानवेगकी हवेलीमें मुझसे पढने आते थे, यह वह

दिल्ली नही है जिसमे सात-सालकी उम्रसे मै आता-जाता हूँ। यह वह दिल्ली नही है जिसमे इक्यावन सालसे ठहरा हुआ हूँ। एक कैम्प है।

"बर्खास्तशुद बादशाहके घरानेके लोग जो बचे है वह पाँच-पाँच रुपये महीने पाते है। बड़े-बड़े मुसलमानोमें-से मरनेवालोको गिनो—हसन अली खाँ बहुत बड़े बापका बेटा, सौ रुपये रोजका पेंशनदार सौ रुपये महीने की नौकरीवाला बनकर मर गया। अमीर नासिरउद्दीन वालिदकी जानिबसे आली खान्दान और नाना व नानीकी जानिबसे बहुत बड़ा अमीर था। वह बेगुनाह मारा गया। आगा सुल्तान, बख्शी मुहम्मद अली खाँका लड़का जो खुद भी बख्शी हो चुका है, बीमार पड़ा। दवा न गिजा। आखिरमे मर गया। तुम्हारे चचाके जरिये मरनेवालेका आखरी काम अजाम दिया गया। जिन्द लोगोको पूछो। नाजिर हुसेन मिर्जा, जिसका बड़ा भाई मारा गया था, उसके पास एक पैसा नही, टकेकी आमदनी नही। मकान हालाँकि रहनेको मिल गया है लेकिन देखिए छुटा रहेगा या जब्त हो जाये। बुड्ढे साहब सब जायदाद बेचकर और सब कुछ खा-पीकर सीधे भरतपुर चले गये। जियाउद्दौलाकी पाँच सौ रुपये किरायेकी जायदाद छुट-छाटकर फिर कुर्क हो गयी। बुरी हालतमे लाहौर गया। वहाँ पड़ा हुआ है। देखिए क्या होता है। क्रिल , भज्जर, बहादुरगढ, बल्लभगढ़ और फर्रुखनगर करीब करीब तीस लाख रुपये की रियासतें मिट गयी। शहरके अमीर मिट्टीमें मिल गये ।"

—ऐजाज जावेदके लेख ('नया दौर' अगस्त १९५७) से।